धूमिल का काव्य और यथार्थवाद

(हिंदी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय की पीएच.डी.
(हिंदी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध)

***

शोध प्रबंध
(2003-2004)

***

891.431
KEV/Dho
T-252

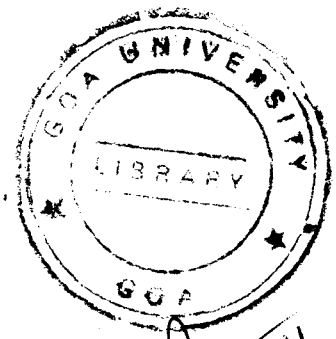

श्री रमाशंकर केवट
अनुसंधान कर्ता
हिंदी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय

All suggestions & corrections incorporated in the thesis

***

शोध निर्देशक
डॉ. बी. के. शर्मा 'रोहिताश्व'
रीडर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग
गोवा विश्वविद्यालय, गोवा

7/12/04
A. Achuthan
External examiner

7/12/04

7/12/04
Head
Department of Hindi
GOA UNIVERSITY

गोवा विश्वविद्यालय, तालेगाँव, गोवा - 403206

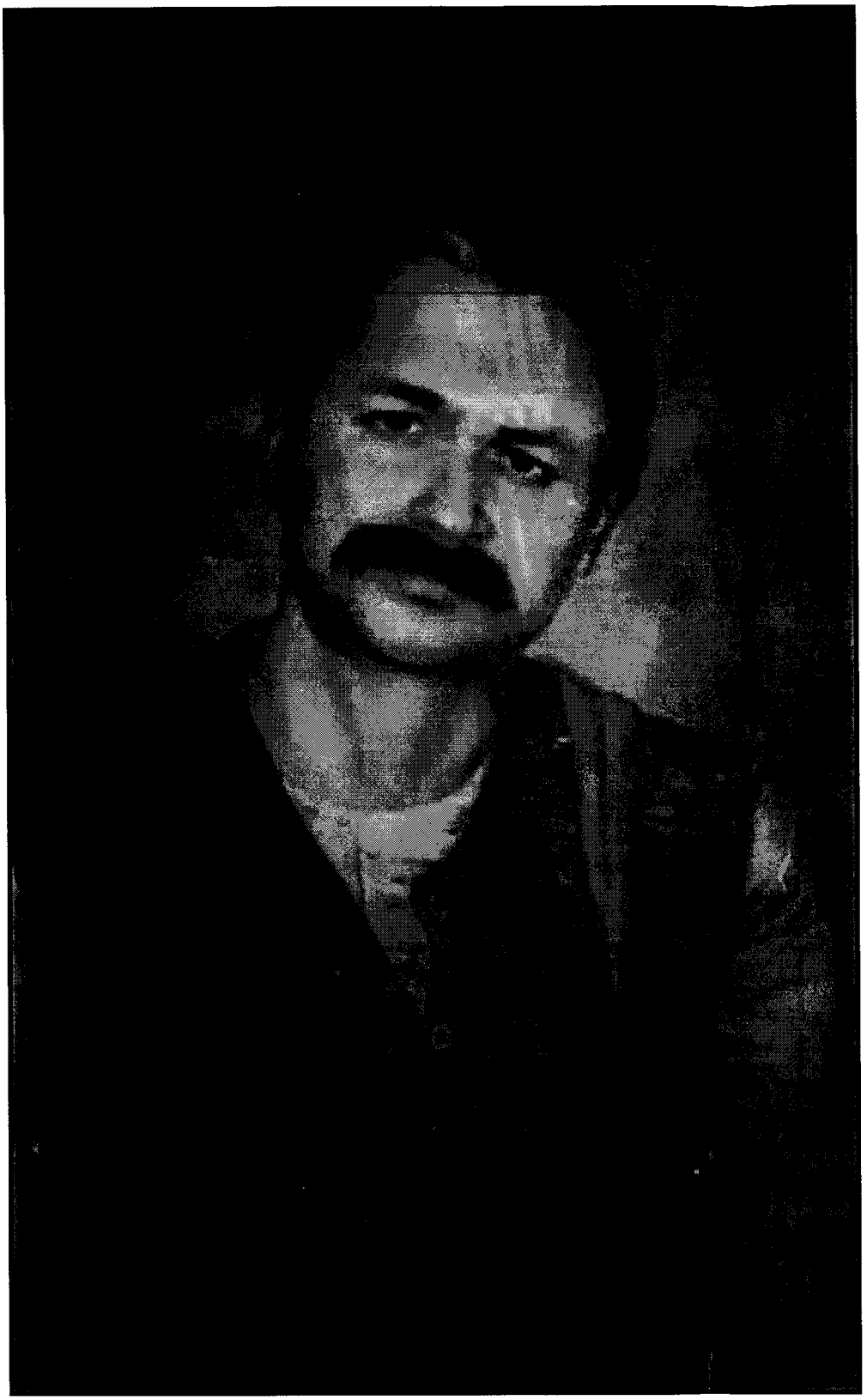

सुदामा पांडेय 'धूमिल' (1936-1975)

CERTIFICATE

As per the Goa University ordinance, I certify that this thesis entitled 'Dhoomil Ka Kavya Aur Yatharthwad' is a record of research work done by the candidate himself during the period of study under my guidence and that it has not previously formed the basis for the award of any degree or diploma in the Goa University or elsewhere

Taleigao - Goa
Dated. 7/12/ 2004

Research Guide
Dr. B. K. Sharma 'Rohitashav'
Reader & Head
Department of Hindi
Goa University. Goa 403206

DECLARATION

I the undersigned, himself declare that the thesis entitled 'Dhoomil Ka Kavya Aur Yatharthwad' has been exclusively done by me and that no part of this dissertation has been submitted earlier for the award of this university or any other university.

Taleigao plateau, Goa
Dated: 2004

Ramashankar Kevat

भूमिका

'धूमिल का काव्य और यथार्थवाद' नामक प्रस्तुत शोध प्रबंध में समकालीन हिंदी काव्य जगत् के श्रेष्ठ कवि सुदामा पांडेय 'धूमिल' के काव्य-संसार का यथार्थपरक अध्ययन किया गया है। धूमिल ने हिंदी कविता को अपनी शाब्दिक अभिव्यंजना द्वारा एक नई दृष्टि एवं चेतना प्रदान की है; जिससे हिंदी के कतिपय समीक्षकों ने उन्हें 'शब्दों का जादूगर' कहा है।

समकालीन कवियों के विस्तृत परिप्रेक्ष्य में धूमिल सर्वाधिक प्रिय कवि रहे हैं। उनकी कविताएँ युवा पाठकों के लिए हमेशा प्रेरक तत्त्व रहीं हैं। 'धूमिल का काव्य-संसार' नामक एम. फिल के लघु शोध प्रबंध लेखन के दौरान महसूस किया गया है कि लघु शोध की अपनी सीमाएँ होती हैं। वहाँ विस्तार में जाकर कवि से संबंधित सभी पक्षों का अध्ययन करना मुमकिन नहीं है। लघु शोध प्रबंध लिखने के दौरान ही मन में धूमिल के काव्य और यर्थाथवाद पर विशेष अध्ययन करने का विचार पनपा था। उसी वैचारिक चिंतन एवं मनन का प्रतिफलन प्रस्तुत शोध प्रबंध है। धूमिल के काव्य पर अनेकानेक शोध प्रबंध और आलोचना ग्रंथ उपलब्ध हैं; जिनमें हुकुमचंद राजपाल, बी. डी. मिश्र, चमनलाल गुप्त, राहुल, राकेश, मंजुल उपाध्याय आदि का कार्य महत्त्वपूर्ण है। पर वे भी यथार्थवाद को केंद्र में रख कर धूमिल के काव्य का मूल्यांकन प्रस्तुत नहीं कर सके हैं।

विवेच्य शोध प्रबंध में धूमिल के काव्य में यथार्थवाद के प्रतिफलन का अनुसंधानात्मक प्रयास किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रबंध के प्रथम अध्याय में 'धूमिल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व' पर प्रकाश डाला गया है ; जिसमें उनके जन्म, शिक्षा, परिवेश, व्यक्तित्व और युगीन परिवेश तथा उनके रचनाओं का विहंगावलोकन किया गया है।

यथार्थवाद : द्वितीय अध्याय 'यथार्थवाद : दर्शन एवं सिद्धांत' में यथार्थवाद की अवधारणा एवं स्वरूप को बतलाते हुए उसकी प्रमुख विशेषता तथा उसके विभिन्न रूपों की विवेचना की गई है।

'यथार्थवाद और धूमिल का काव्य' नामक तृतीय अध्याय में प्रकृतिवादी यथार्थवाद, आलोचनात्मक यथार्थवाद, समाजवादी यथार्थवाद तथा साम्यवादी यथार्थवाद आदि का विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय 'यथार्थवाद और धूमिल की काव्य कला' के अंतर्गत काव्य कल्पना, रचनात्मक यथार्थ के साथ-साथ यथार्थ की कलात्मक प्रतिबिंबन आदि प्रतिमानों की चर्चा की गई है। यही नहीं, अनुषंग रूप में युगबोध तथा प्रतिबद्धता की विवेचना भी उनके काव्य संसार के आलोक में की गई है।

शोध प्रबंध के पंचम अध्याय 'धूमिल का काव्य:भाषा, शैली तथा शिल्प विधान' के अंतर्गत उनकी काव्यभाषा, काव्य-शैली तथा छंद विधान के साथ साथ शिल्प विधान संबंधी विवेचना धूमिल के काव्य संसार के आधार पर की गई है।

'समकालीन कविता और यथार्थवाद के संदर्भ में धूमिल का योगदान' नामक उपसंहार रुपी षष्ठ अध्याय के अंतर्गत धूमिल का काव्य परंपरा और प्रभाव तथा समकालीन कविता में धूमिल का योगदान एवं उपलब्धियाँ जैसे विषय पर चर्चा की गई है। साथ ही यह महसूस किया गया है कि लीलाधर जगूड़ी, वेणुगोपाल और चंद्रकांत देवताले आदि ने उनके जीवनकाल में ही उनकी व्यंग्य शैली तथा सपाटबयानी को अपनाने का सार्थक प्रयास किया है। साथ-ही-साथ धूमिल के काव्य का प्रभाव परवर्ती पीढ़ी के युवा रचनाकारों - राजेश जोशी, अरुण कमल, मनमोहन, बोधिसत्व आदि के काव्य सृजन में परिलक्षित किया जा सकता है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध में मेरी प्रेरणा के सबसे महत्त्वपूर्ण आधार मेरे आदरणीय गुरुवर डॉ. रोहिताश्व (विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय) रहे हैं। प्रस्तुत शोध प्रबंध उनके स्नेह और सान्निध्य की छाया में पूर्ण हो सका है। उन्होंने न केवल विषय चयन एवं रूपरेखा के निर्माण में सहायता की है; बल्कि प्रस्तुत सामग्री की उपलब्धि तक में उन्होंने अपार सहृदयता एवं अतिउदारता का परिचय दिया है। मैं नि:संकोच कह रहा हूँ कि उनकी सहायता, परामर्श एवं मार्ग निर्देशन के बिना यह कार्य संभव नहीं था।

गोवा विश्वविद्यालय के अन्यान्य वरिष्ठ हिंदी प्राध्यापक वर्ग के प्रति भी आभार प्रकट करना चाहूँगा। विशेषकर डॉ. रवींद्रनाथ मिश्र, डॉ. इशरत खान, डॉ. वृषाली मांद्रेकर आदि का विशेष सहयोग भी प्राप्त हुआ है। हिंदी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय द्वारा

आयोजित राष्ट्रीय सेमिनारों , कार्यशाला एवं पुनश्चर्या पाठ्यक्रम आदि में देश भर के विभिन्न विद्वानों का आगमन होता रहा है; जिनसे विचार-विमर्श का अवसर प्राप्त होता रहा है; उनमें डॉ. नामवर सिंह (दिल्ली), डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित (लखनऊ) डॉ. नारायण शर्मा (औरंगाबाद) डॉ. अर्जुन चव्हाण(कोल्हापुर), डॉ. रतनकुमार पांडेय (मुम्बई), डॉ. काशीनाथ सिंह (वाराणासी) आदि मुख्य हैं।

प्रस्तुत शोधप्रबंध के सिलसिले में हमने बनारस और इलाहबाद की कई बार यात्राएँ की है। इन यात्राओं में प्राय: उन सभी लोगों से मिला; जो धूमिल के आत्मीय मित्र और निकट संबंधी थे। इन लोगों से हमें धूमिल के व्यक्तित्व और उनके काव्य को समझने में भरपूर मदद मिली। उन्हीं लोगों के माध्यम से धूमिल के व्यक्तित्व को भली-भाँति जाना गया। सहयोगी लोगों के नाम इस प्रकार हैं - डॉ. बच्चन सिंह, डॉ. त्रिभुवन सिंह, डॉ. वाचस्पति, डॉ. अवधेश प्रधान, वशिष्ठमुनि ओझा (वाराणसी), आचार्य पंकज, कैलाश सिंह, डॉ विश्वनाथ सिंह, डॉ. सदानंद सिंह (हरहुआ-वाराणसी), कन्हैया पांडेय, धूमिल की चाची प्रभावती देवी, कवलजीत सिंह, देवीशंकर सिंह, पूर्वप्रधानाचार्य राजेश्वरी सिंह, भगेलूसिंह (खेवली - वाराणसी) डॉ. रामचन्द्र शुक्ल, मार्कण्डेय (इलाहाबाद) आदि लोगों के प्रति आदरपूर्वक आभार व्यक्त करता हूँ। इनके अतिरिक्त धूमिल के ज्येष्ठ पुत्र डॉ. रत्नशंकर पांडेय को विशेष आभार प्रकट करना चाहूँगा; जिन्होंने अपना अमूल्य समय निकाल कर इन सभी लोगों से साक्षात्कार करने-करवाने में हमारी भरपूर मदद की। उनके परिवार व पत्नी श्रीमती सुधा पांडेय का शुक्रगुजार हूँ, जिन्होंने अपने घर में रहने की आवश्यक सुविधा प्रदान की।

सभी सहयोगी महानुभावों का उल्लेख हमारे लिए संभव नहीं है। अत: उन सभी के प्रति प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से आभारी हूँ; जिनका नामोल्लेख नहीं हो पाया है। इनके अतिरिक्त विभागीय कर्मचारी यशवंत नाईक, लाइब्रेरियन सी. आर. नाईक आदि जिसने समय-समय पर विभिन्न ग्रंथों को तलाशने, प्राप्त करने-करवाने में सहयोग देते रहे हैं। डॉ. रामकृष्ण हलर्णकर, संदीप लोटलीकर, श्रीमती जैनेट जैसे साथियों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ। सुबास पांडेय और आर. के. यादव (केंद्रीय विद्यालय, वास्को) के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ; जिन्होंने विभिन्न विद्वानों से लिए गए साक्षात्कार को शुद्ध रूप देने में सहयोग प्रदान किया।

इस अवसर पर मैं अपने पूज्य माता-पिता रामलछन और प्रभावती देवी को अत्यंत श्रद्धा एवं आदर के साथ स्मरण कर रहा हूँ; जो मेरे अध्ययन और चिंतन के लिए सदैव प्रेरक एवं आराध्य रहे हैं। अपनी जीवन संगिनी 'आशा देवी' के मौन तप तथा प्रतीक्षा का सहयोग मूल्य मेरे लिए वर्णनातीत है। शोधकार्य के टंकण लेखन कर्ता श्रीमती गौरी केळकर, (कलाकृति, सांत इनेज, पंजिम, गोवा) को धन्यवाद अर्पित करना चाहता हूँ; जिसने बड़ी तत्परता के साथ कम समय में टंकण कार्य पूर्ण करके इस पुनीत कार्य में महत्त्वपूर्ण योगदान

दिया है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध काव्यालोचन के क्षेत्र में विनम्र प्रयास है। कार्य पूर्ण रोमांचक रहा है। आशा है कि यह शोध कार्य अपनी सीमाओं में 'यथार्थवाद और धूमिल का काव्य' जानने में सहायक उपादन बन सकेगा।

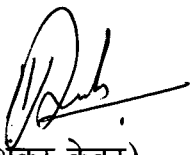

(रमाशंकर केवट)

अनुक्रमणिका

1. **धूमिल का व्यक्तित्व एवं कृतित्व** 1-50
   - 1.1 धूमिल का व्यक्तित्व
   - 1.2 धूमिल का युगीन परिवेश
   - 1.3 धूमिल का कृतित्व : एक विहंगावलोकन

2. **यथार्थवाद : सिद्धांत एवं दर्शन** 51-94
   - 2.1 यथार्थवाद की अवधारणा एवं स्वरूप
   - 2.2 यथार्थवाद का उद्‌भव एवं विकास
   - 2.3 यथार्थवाद की विशेषताएँ
   - 2.4 यथार्थवाद के विविध रूप

3. **यर्थाथवाद और धूमिल का काव्य** 95-156
   - 3.1 प्रकृतवादी यथार्थवाद और धूमिल का काव्य
   - 3.2 समाजवादी यथार्थवाद और धूमिल का काव्य
   - 3.3 आलोचनात्मक यथार्थवाद और धूमिल का काव्य
   - 3.4 साम्यवादी यथार्थवाद और धूमिल का काव्य

4. **यथार्थवाद और धूमिल की काव्य कला** 157-197
   - 4.1 कल्पना और यथार्थ के सहसंबंध
   - 4.2 काव्य कल्पना और रचनात्मक यथार्थ
   - 4.3 यथार्थवाद और कलात्मक प्रतिबिंबन
   - 4.4 धूमिल का काव्य : युगबोध एवं प्रतिबद्धता

5. **धूमिल का काव्य : भाषा, शैली एवं शिल्प विधान** 198-256
   - 5.1 काव्यभाषा एवं शिल्प विधान
   - 5.2 काव्य-शैली एवं प्रयोगात्मक पक्ष
   - 5.3 छंद एवं लयात्मकता का प्रयोग
   - 5.4 धूमिल का काव्य : शिल्प विधान एवं प्रयोग

6. **समकालीन कविता और यथार्थवाद के संदर्भ में धूमिल का योगदान : उपसंहार** 257-277
   - 6.1 धूमिल का काव्य : परंपरा और प्रभाव
   - 6.2 समकालीन कविता : धूमिल का योगदान एवं उपलब्धियाँ

परिशिष्ट : 1.धूमिल का संक्षिप्त जीवन एवं सृजन परिचय 278-279

2. विभिन्न विद्वानों के साक्षात्कार 279-336

सहायक ग्रंथ सूची 337-342

सहायक पत्र-पत्रिकाएँ 343-344

धूमिल का काव्य और यथार्थवाद

कवि धूमिल समकालीन कविता के एक विवादास्पद एवं महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। वे सातवें दशक के प्रारंभ में आम जनता में से उभरे हुए एक ऐसे सशक्त कवि हैं; जिन्होंने समसामयिक जीवन-संघर्षों एवं संवेदनाओं की ईमानदार और यथार्थपरक अभिव्यक्ति रची है तथा समकालीन रचनाशीलता को एक नई दिशा प्रदान की है। 'धूमिल का काव्य और यथार्थवाद' नामक प्रस्तुत शोध प्रबंध में समकालीन हिंदी काव्य जगत के चर्चित कवि धूमिल की कविताओं का अध्ययन यथार्थवाद के आधार पर करने का प्रयास किया गया है। कवि धूमिल ने हिंदी कविता को अपने शाब्दिक अभिव्यंजना द्वारा नई दृष्टि एवं चेतना प्रदान की है। यही देखकर समकालीन कविता के आलोचकों-समीक्षकों ने उन्हें 'शब्दों का जादूगर' और 'कटघरे का कवि धूमिल' की संज्ञा दी है।

सातवें दशक के प्रारंभ में 'अकविता आंदोलन' का जोर था। यह आंदोलन भारत-चीन-सीमा संघर्ष तथा भारत-पाक युद्ध से जन्मे मोहभंग के प्रति व्यवस्था विरोधी काव्यांदोलन रहा है। इस आंदोलन के प्रवर्तक कवि 'विजप' - गंगा प्रसाद विमल, जगदीश चतुर्वेदी और श्याम परमार रहे हैं। तत्कालीन दौर में नागार्जुन, त्रिलोचन, नरेश मेहता, दुष्यंत कुमार, शमशेर बहादुर सिंह, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, केदारनाथ अग्रवाल आदि कवि भी सक्रिय रहे हैं। ये सारे कवि कलामूल्यों एवं जीवनमूल्यों के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं।

धूमिल कलामूल्यों के स्थान पर जीवनमूल्यों के महत्त्वपूर्ण कवि हैं। वे अपनी कविताओं में कलापक्ष को विशेष महत्त्व न देकर जीवन सापेक्ष्य संदर्भों को अधिक महत्त्व देते हैं। धूमिल की कवि दृष्टि को विभिन्न दृष्टिकोण से जाँचने- परखने, विश्लेषित अथवा मूल्यांकन करने का प्रयास अनेक पाठकों, अनुसंधानकर्ताओं एवं आलोचकों ने किया है। अन्य आलोचकों द्वारा धूमिल की काव्यभाषा एवं शिल्पपक्ष की विवेचना भी यथा साध्य रूप से की गई है, पर समग्र रूप से धूमिल के वैचारिक यथार्थबोध एवं शिल्पपक्ष की चर्चा विस्तार से नहीं हो पाई है। प्रस्तुत शोध प्रबंध में धूमिल के काव्य को यथार्थवादी दृष्टि से देखने का प्रयास किया गया है।

1. धूमिल का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

धूमिल एक सामान्य व्यक्ति की तरह भरे-पूरे जिस्म के व्यक्ति रहे हैं। घनी मूँछों और तगड़े जिस्म के धनी को देखकर उनके दबंग स्वभाव का पता चलता था। वे सही बात के लिए लड़नेवाले, गुस्सैल किस्म के आदमी रहे हैं; पर मित्रों के प्रति लगाव और लेखकों के प्रति आत्मीय भाव भी उनमें कम नहीं था।

1.1 धूमिल का व्यक्तित्व :

धूमिल ग्रामीण संस्कारों में कद्दावर जिस्म के एक भरे-पूरे सुदृढ़ व्यक्ति दिखाई देते थे। घनी मूँछों के बीच उनका मुस्कुराता, झुंझलाता और बहस करता हुआ व्यक्तित्व सामान्य जन का प्रतिनिधि चरित्र महसूस होता रहा है। धूमिल के शरीर का डाल-डौल देखकर उनके विरोधी डर भी जाया करते थे; लेकिन उनके निकट संबंधी लोग उससे आकर्षित हुए बिना नहीं रहते। वे जो वस्त्र धारण करते थे, वह उन्हें सुशोभित नहीं करता था; बल्कि वे पहने हुए वस्त्रों को सुशोभित करते थे।

1.11 जन्म : इक्कीसवीं शताब्दी के समकालीन कविता के महाजन कवि धूमिल का जन्म एक ब्राह्मण किसान परिवार में, "अगहन सुदी 13, शुक्रवार, संवत् 1993 विक्रमीय तदनुसार 9 नवम्बर 1936 ईसवी[1] में खेवली नामक गाँव में हुआ। यह गाँव वाराणसी से ठीक पश्चिम की ओर स्थित है। यहाँ पहुँचने के लिए तीन मार्ग हैं। एक वाराणसी से 12 किलोमीटर दूर बाबतपुर हवाई अड्डे की ओर जानेवाले मार्ग पर स्थित हरहुआ बाजार से होते हुए पंचक्रोशी के तीसरे पड़ाव यानी रामेश्वर महादेव से 3 किलोमीटर पूरब की तरफ से होते हुए वरूणा नदी पार करके जाया जा सकता है। दूसरा मार्ग वाराणसी के ठीक पश्चिम की ओर बौलिया लहरतारा से 15 किलोमीटर दूर कोटवाँ होते हुए तथा तीसरा मार्ग इलाहाबाद से आते हुए राजा तालाब से 15 किलोमीटर दूर उत्तर दिशा में स्थित 'खेवली' पहुँचा जा सकता है।

1.12 बचपन : बचपन में धूमिल का नाम 'सुदामा' था। उनका यह नाम उनके पितामह (दादा) बिंदेश्वरी पांडेय ने रखा था। चूँकि 'सुदामा' का जन्म बहुत दिनों के

बाद पूजा-पाठ तथा तंत्र-मंत्र करने-करने के पश्चात् हुआ था; इसलिए उनका बहुत लाड़-प्यार होता था। शायद इसी लाड़-प्यार के कारण सुदामा कुछ हठीले हो गए थे। धूमिल के अनुज कन्हैया पांडेय के शब्दों में ''भाई धूमिल जी, बचपन से ही बड़े हठी थे। किसी चीज के लिए यदि वे जिद्द पकड़ लेते थे तो बिना लिए नहीं छोड़ते थे।'' (2) यह स्वाभाविक है कि जिस बच्चे को बचपन में बहुत ही प्यार मिलता है; वह या तो जिद्दी हो जाएगा या तो फिर उसकी आदत बिगड़ जाएगी।

बचपन में धूमिल काफी दुबले-पतले से मरियल लड़के की तरह थे। परिवार में वे एकलौती संतान रहे। उन्हें परिवार में सभी सदस्यों का प्यार मिलता था। धूमिल की माँ उनको 'बचवा' कहकर बुलाती थी। इनके दादा तो इनको अपने कंधे पर बिठाकर दूर-दूर तक खूब सैर करवाते थे। वे इनको हट्टा-कट्टा एवं स्वस्थ्य बनाने के लिए प्रतिदिन अखाड़े में ले जाते थे। घंटों भर नरम-नरम मिट्टी से मालिश करते थे। राजशेखर के कथनानुसार- ''बचपन में गाँव की जुबान पर 'सींकिया पहलवान' के नाम से मशहूर 'सुदामाजी' पितामह बिंदेश्वरी पांडेय की आँखों के तारे थे। तो पितामह के साथ बचपन में अखाड़े की तेल-माटी खाकर अपने लहीम-सहीम ढाँचे में ऐसे उभरे कि खेवली के दरिंदों से लेकर, हिंदी साहित्य के अच्छे-से-अच्छे अखाड़िए चकरघिन्नी खा गए।''(3)

धूमिल की चाची प्रभावती देवी और हरहुआ के निवासी उनके सहपाठी कैलाश सिंह से संस्मरण सुनते हुए शोधकर्ता को पता चला कि - वे पढ़ने-लिखने में ज्यादा ध्यान नहीं देते थे। कैलाश सिंह के अनुसार ''वे तेज विद्यार्थी नहीं थे न कमजोर थे। उस समय उनकी गणित बहुत अच्छी नहीं थी। वे मेहनती थे। मन लगाकर पढ़ते जरूर थे। यहाँ उनकी प्रतिभा में ऐसी कोई झलक या चमत्कार देखने को नहीं मिला। उदंडता उनमें नहीं थी। गरीब विद्यार्थी के प्रति उनकी हमदर्दी रहती थी। हाँ, हिंदी पढ़ने में रुचि जरूर लेते थे। एक बार के. के. इंटर कॉलेज में 'झूठ' शीर्षक पर बोलने का 'डिबेट' हुआ था। तब वे नवीं कक्षा में थे। उन्होंने इस डिबेट में भाग लिया। उन्हें प्रथम पुरस्कार मिला। कक्षा दस तक आते-आते सुदामा पांडेय एकदम बदल गये।'' (4) धूमिल बहुत लाड़-प्यार में पले थे। अच्छा पहनना ओढ़ना उनको पसंद नहीं था। धूमिल की चाची के अनुसार ''बचपन में ऊ बचवा कौनौव किसी बात पर हट न करै। कभी-कभी हाफ पैन्ट पहिन के यू. पी. कालेज चल जाई। हम लोग कहिं पैजामा है पहिन-वहिन कर जावा कर। सब बच्चवन अच्छा कपड़ा पहिन के जात हैं''। तब धूमिल कहैं - 'वह सब पागल हैं जो सजधजकर जात हैं।' कभी उनका बरबा काटै की बात हम करै तो कहैं कि 'कौनौव हम नाचे जात हैं।' जबरन हम ही तेल-फुलैल लगा देई।''(5)

1.13 शिक्षा : धूमिल की प्रारंभिक शिक्षा भतसार गाँव की प्राइमरी पाठशाला में हुई । खेवली और भतसार को प्राय: एक ही में मिलाकर 'खेवली भतसार' कहा जाता है। डॉ. रत्नशंकर पांडेय के अनुसार -''यहाँ से कक्षा-चार उत्तीर्ण करने के पश्चात् जुलाई

1947 में मिडिल स्कूल हरहुआ, वाराणसी में इनका नाम पाँचवी कक्षा में लिखवाया गया। 1950 ई. में मिडिल स्कूल की कक्षा-सात की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करके कुर्मी क्षत्रिय इंटर कालेज, हरहुआ, वाराणसी (जिसका नाम आजकल काशी कृषक इंटर कालेज, हरहुआ वाराणसी हो गया है) में आठंवीं कक्षा में प्रविष्ट हुए। आठवीं कक्षा में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करने के कारण नवीं एवं दसवीं कक्षा में छात्रवृत्ति मिलती रही। 1953 ई.वी. में वे हाई स्कूल की परीक्षा संस्कृत में विशेष योग्यता के साथ द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुए।''(6) ब्राह्मण परिवार में सुदामा पांडेय उर्फ 'धूमिल' सबसे पहले हाई स्कूल पास होने वाले छात्र थे।

धूमिल ने उच्च शिक्षा पाने हेतु वाराणसी के हरिश्चंद्र कालेज में नामांकन करवा लिया; लेकिन आगे चलकर आर्थिक अभाव के कारण नियमित रूप से कक्षाओं में नहीं पढ़ सके। उस समय उनके सामने परिवार के भरण-पोषण की गंभीर समस्या खड़ी हो गई, जिसने उनके मन-मस्तिष्क को आजीवन झकझोरा है। नौकरी की तलाश में दर-दर भटकने के बाद पुन: अपने गाँव आए। डॉ. रतनकुमार पांडेय के अनुसार - ''सन् 1958 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी के परिसर में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा संचालित 'औद्योगिक प्रशिक्षण केंद्र' से 'इलेक्ट्रिकल' में डिप्लोमा की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए तथा सबसे ज्यादा अंक हासिल करके इस संस्थान में नया कीर्तिमान कायम किया।''(7)

1.14 नौकरी : पिता की असामयिक मृत्यु हो जाने के कारण बड़े बेटे होने के नाते परिवार का बोझ उनके कंधों पर आ पड़ा और नौकरी की तलाश में पहली बार अपना गाँव छोड़कर वे कलकत्ता गए। डॉ. रत्नशंकर पांडेय के अनुसार ''अपने मौसेरे भाई पं. कृष्ण उपाध्याय के बुलाने पर कलकत्ता चले गए। वहाँ पहुँचने पर उनसे कोई सहयोग प्राप्त नहीं हुआ। यहाँ तक कि रात को उन्हें बाहर सड़क पर सोना पड़ा।''(8) उन्होंने धूमिल की कुछ भी मदद नहीं की। कहीं-कहीं यह देखा जाता है कि खून के रिश्ते से बढ़कर दोस्ती का रिश्ता ही काम आता है । वहाँ उनका एक सहपाठी मित्र तारकानाथ पांडेय रहते थे। उन्होंने उनके लिए रोजी-रोटी का साधन जुटाने की असफल कोशिश की; लेकिन असफल रहे। धूमिल ने अपनी हिम्मत नहीं हारी। कन्हैया पांडेय के विचारानुसार ''कुछ दिन बाद अपने ही गाँव खेवली (पांडेयपुर) के निवासी घीसन यादव तथा विजय बहादुर सिंह के पास पहुँच गए। इन लोगों के लाख मना करने के बावजूद लोहा ढोनेवाले मजदूरों के साथ लोहा ढोने का काम करने लगे।''(9)

जब लोहा ढोने की खबर उनके सहपाठी मित्र तारकानाथ पांडेय को मालूम हुई; तो वे तुरंत धूमिल को अपने घर पुन: लाए। अपने बहनोई रामखेलावन पांडेय की मदद से कलकत्ते की 'मेसर्स तलवार ब्रदर्स प्राइवेट लिमिटेड' नामक प्रसिद्ध कंपनी में नौकरी दिलवा दी। यहाँ उनको ''लकड़ी क्रय-विक्रय करने''(10) का काम मिल गया था। बाद में उसी

कंपनी में उनकी ईमानदारी देखकर उनको पासिंग आफिसर बना दिया गया। अत: काम की जिम्मेदारी बढ़ गई। धूमिल अस्वस्थ्य रहने लगे। कन्हैया पांडेय के अनुसार ''सुदामा पांडेय 'धूमिल' इतने बड़े स्वाभिमानी थे कि जब वे मोतीहारी (बिहार) में बीमार थे और कंपनी के मालिक ने जून 1956 में उन्हें मोतीहारी से गौहाटी (आसाम) जाने के लिए कलकत्ता से ट्रंक-कॉल किया। इन्होंने जब अपनी बीमारी की बात मालिक को बतलाई तो बात के दौरान मालिक के इन शब्दों - ''आई ऐम पेइंग फार माइ वर्क, नाट फार योर हेल्थ'' का जवाब उन्होंने इन शब्दों में तुरंत इस प्रकार दिया -'' आई एम वर्किंग फार माइ हेल्थ, नाट फार योर वर्क।''(11) इस तरह मालिक के बात करने का ढंग धूमिलजी को पसंद नहीं आया। अत: उन्होंने नौकरी से इस्तीफा दे दिया। तत्पश्चात् अपने गाँव खेवली चले आए।

प्राय: हर व्यक्ति समाज में बड़े आत्मसम्मान और आत्मविश्वास के साथ जीना चाहता है। वह किसी भी वैषम्य परिस्थितियों के दबाव में जीवित रहना पसंद नहीं करता है। उसके लिए उसका अपना आत्मसम्मान प्यारा होता है; न कि अच्छी मिली हुई नौकरी। धूमिल इस स्थिति को पूरी तरह भाँप गए थे। मजदूरी और हिकारत से जीनेवाले नौकरी पेशा आदमी की स्थिति का बयान उनकी कविता में इस तरह उभरकर आया है -

> दुख होता है अगर किसी को/मिली नौकरी छूट गई हो/
> लेकिन उतना नहीं कि जितना /बार-बार सुनने पर भी
> फटकार/आदमी, लौट-काम पर/फिर आया हो/कालर फटी
> कमीज पहन कर।''(12)

कवि धूमिल को अपने आप पर गहरा विश्वास था। इसी आत्मविश्वास के कारण ही उन्होंने कई नौकरियाँ पकड़ी और छोड़ी भी। जहाँ भी उन्हें उनके मन-मुताबिक काम नहीं मिलता; तो कोई-न-कोई बहाना भी वे ढूँढ लेते थे। जहाँ कहीं भी मजदूरों का शोषण होता देखते; तो वे उनके हक के लिए लड़ बैठते। भले ही अपनी नौकरी से हाथ धो बैठते। हुकुमचंद राजपाल ने लिखा भी है - ''नि:संदेह जिस लड़ाई को धूमिल जीवनपर्यन्त लड़ता रहा, अनुभवों के अनेक मोड़ो पर भोगता रहा, वे ही उसकी निष्ठा में परिणत हो गए- जिसे अनेक चिंतकों ने अंतर्निष्ठा का नाम दिया है।''(13)

धूमिल जी ने आजीविका चलाने के लिए काशी हिंदू विश्वविद्यालय से विद्युत प्रविधि का डिप्लोमा प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान में प्राप्त किया। उनको वहाँ पर 12 जून 1958 को विद्युत अनुदेशक (Electrician Insructor) की नौकरी मिल गयी। धूमिल अनुदेशक पद पर रहते ही अपने कर्तव्यनिष्ठा व कुशाग्र बुद्धि का प्रमाण दे चुके थे। सन् 1961 ईसवी में उनको उत्तर प्रदेश सरकार से 'नेशनल टेकनिकल ट्रेनिंग वीक सेलेब्रेशन के अवसर की सूचना मिली। धूमिल के अनुज कन्हैया पांडेय के अनुसार- ''मई सन् 1963 में पर्यवेक्षक (Supervisor) के पद पर पदोन्नति करके उन्हें औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान बलिया भेज

दिया गया... इस संस्थान को उत्तर प्रदेश का सर्वोत्तम संस्थान घोषित कराने में उनका योगदान सराहनीय एवं महत्त्वपूर्ण रहा और इसके लिए भी उन्हें प्रशंसा प्रमाण-पत्र प्राप्त हुआ है।'' (परिक्षेत्र पत्रिका अगस्त 81- जनवरी 82)

सन् 1964 ईसवी में धूमिल पुनः औद्योगिक प्रशिक्षण केंद्र, वाराणसी में आ गए उस समय तक वह काफी चर्चित कवि हो गए थे। बिजली विभाग के कर्मचारियों के मध्य बढ़ती हुई उनकी प्रतिष्ठा और साहित्यिक जगत में कवि के रूप में बढ़ती हुई ख्याति के कारण उन्हें विभागीय वरिष्ठ अधिकारियों की नौकरशाही का शिकार होना पड़ा। धूमिल के अनुज कन्हैया पांडेय के अनुसार - ''जे. पी. सिंह तथा बिहारी तिवारी के मामले को लेकर सन् 1966 में केंद्र के उपप्रधानाचार्य के शिकायती पत्र के आधार पर परेशान करने की गरज से, उनका स्थानांतरण औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान, सहारनपुर कर दिया गया। स्थानांतरण न चाहते हुए भी उन्हें जाना पड़ा।''(14) क्योंकि उन्हीं दिनों पट्टीदारों से झगड़े व मुकदमेंबाजी शुरू हो गई थी। इससे निबटने के लिए उन्होंने 6 महीनें की छुट्टी भी ले ली थी; किंतु मामला ज्यों-का-त्यों ही बना रहा। अंत में असहाय होकर उनको सहारनपुर जाना ही पड़ा।

धूमिल को सहारनपुर में खूब घूमने फिरने का मौका मिला। नेताओं व बुद्धिजीवियों तथा साहित्यिक प्रेमियों के बीच उठते-बैठते थे। उनकी जान-पहचान बढ़ती गई। ''नेता राजनारायण तथा गीत के मीत ठाकुरप्रसाद सिंह की सहायता से श्रम-मंत्री महोदय के विशेष आदेश से औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान, वाराणसी में नया पद सृजित करवा कर वे पुनः जनवरी सन् 1968 में उसी पद पर आ गए।'' धूमिल आजीवन स्थानांतरण की पीड़ा भोगते रहे हैं और उन्हें जीवन के खट्टे-मीठे अनुभव प्राप्त होते रहे। इसके दौरान उन्होंने लोगों की समस्याओं को नजदीक से देखा और समझने की कोशिश भी की। राजशेखर के कथनानुसार -''उसके इन तमाम स्थानांतरणों के पीछे उच्च पदाधिकारियों के आक्टोपस चेहरे थे, क्योंकि 'उत्तर प्रदेश औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों' के संयोजक मास्टर सुदामा पांडेय थे, जिसमें उन्होंने खुले अधिवेशन में, उच्च अधिकारियों के कुत्सित षड्यंत्री चेहरों को बेनकाब कर दिया था। विक्षुब्ध होकर अधिकारियों ने उसे पुनः बनारस से सीतापुर फेंक दिया।''(15) धूमिल को सीतापुर स्थानांतरण करने के पीछे विभाग के कर्मचारियों-अधिकारियों के बदले की भावना व उन्हें मानसिक पीड़ा पहुचाने की नीयत थी। वे इस साजिश को अच्छी तरह भाँप गए थे। उन्हीं दिनों उनके गाँव में खेत की चकबंदी हो रही थी। उन्होंने अपना स्थानांतरण रद्द करवाने की कोशिश भी की। परंतु वे असफल रहे।

धूमिल इस स्थानांतरण से बहुत चिंतित थे। इस वक्त वे वाराणसी से क्या, अपने घर से भी दूर नहीं जाना चाहते थे। इस ऊहापोह की स्थिति में काफी दिन बीत गए। एक दिन अचानक बिना किसी को बताए सीतापुर चले गए। धूमिल के अनुज कन्हैया पांडेय

के अनुसार पूर्व योजना के मुताबिक अपने कार्यभार ग्रहण करने की सूचना पूर्वान्ह जुलाई 1974 को प्रधानाचार्य औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान, सीतापुर को देकर प्रधानाचार्य की असहमति और उनके द्वारा अवकाश न देने पर भी, यहाँ तक कि मुख्यालय छोड़ने की अनुमति न देने के बावजूद, उसी दिन अपरान्ह 4.00 बजे सीतापुर से चलकर 2 जुलाई सन्1974 को सुबह वाराणसी चले आए। यह स्थानांतरण धूमिल के जीवन का अंतिम स्थानांतरण सिद्ध हुआ।

1.15 परिवार एवं परिवेश : धूमिल का परिवार बहुत बड़ा परिवार रहा है। धूमिल की वंश परंपरा में, इनसे आठवीं पीढ़ी पहले उनके पूर्वज 'छेदा पांडेय' गोरखपुर से आकर वरुणा नदी के किनारे 'खेवली' नामक गाँव में बस गए थे। वे धीरे-धीरे किसानी करने लगे। गाँवों में अक्सर छोटे-छोटे 'पुरवे' हुआ करते हैं। धूमिल का परिवार जिस 'पुरवे' में रहता है, उसे खेवली का 'पांडेयपुर' कहा जाता है। उनके पूर्वज मूलतः किसान थे। मेहनत से खेती-बाड़ी करते थे। धूमिल के अनुज कन्हैया पांडेय के अनुसार ''हमारे पितामह बिंदेश्वरी पांडेय के पिता गौरी पांडेय ने लगन तथा परिश्रम से जंगल को काटकर, साढ़े चार बीघा जमीन जोतने-बोने के योग्य तैयार किया और गाँव के तमाम लोगों के विरोध एवं शिकायत के बावजूद, अंग्रेज कलेक्टर की प्रशंसा के पात्र बने। इनके एकमात्र पुत्र बिंदेश्वरी पांडेय हुए; जो पाँच रुपये मासिक वेतन पर गाँव के जमींदार के सम्मानित कारिंदा थे , जिससे गाँव में इनका ज्यादा बोलबाला था।''[16] इसप्रकार सुदामा पांडेय उर्फ 'धूमिल' के परिवार की आर्थिक और सामाजिक स्थिति का बोध होता है।

धूमिल के पितामह बिंदेश्वरी पांडेय छेदा पांडेय की छठवीं वंश परंपरा के थे। बिंदेश्वरी पांडेय के कुल छः संतान थी। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र शिवनायक पांडेय का विवाह वाराणसी जिले के 'पलही पट्टी' नामक गाँव के बद्री चौबे की कन्या रजवंती देवी से कराया। बहुत पूजा-पाठ तथा तंत्र-मंत्र करने-कराने के चार वर्ष बाद रजवंती देवी ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया। बिंदेश्वरी पांडेय ने इस पुत्र का नाम 'सुदामा' रखा। शिवनायक पांडेय को कुल पाँच लड़के - सुदामा पांडेय, कन्हैया पांडेय, अर्जुन पांडेय, शोभनाथ तथा लोकनाथ पांडेय। अंतिम दो पुत्र जुड़वा थे।

धूमिल के माता-पिता के संस्कार आपस में विरोधी दिशाओं के थे। एक ओर जहाँ उनकी माता पूजा-पाठ-आरती विश्वास रखनेवाली धार्मिक महिला थी, वहीं दूसरी ओर उनके पिता का इससे कड़ा विरोध था। धूमिल पर उनके दादा बिंदेश्वरी पांडेय का प्रभाव तो पड़ा ही था, पिता शिवनायक पांडेय का भी प्रभाव उनके मन-मस्तिष्क पर देखा जाता है। वे पिता की तरह नास्तिक रहे। धूमिल के पिता कुल छः भाई थे। शिवनायक पांडेय, रामनायक पांडेय, हरिनायक पांडेय, रामनेवाज पांडेय, हरिहर पांडेय, और जगन्नाथ पांडेय। शिवनायक पांडेय कविवर जयशंकर प्रसाद के यहाँ मुनीब के पद पर कार्यरत थे। कन्हैया पांडेय के अनुसार ''शिवनायक पांडेय, महाकवि जयशंकर प्रसाद के पिता देवी प्रसाद

(सूंघनी साव) के मुनीब थे, नौकरी छोड़कर घर चले आए और गाँव में ही एक छोटी-सी परचून की दुकान खोल लिए और इसके साथ-ही-साथ यजमानी में पूजा-पाठ करने लगे।[17] धूमिल के पहले चाचा रामनायक पांडेय; जो तंत्र-मंत्र की विद्या में निपुण थे, चेचक की महामारी में उनकी मृत्यु हो गई। दूसरे चाचा हरिनायक पांडेय भी 'सुंघनी साव' के यहाँ कारिंदा (छोटे किसान) के रूप में कार्यरत थे। तीसरे चाचा रामनेवाज पांडेय घर-गृहस्थी खेती-बारी का काम संभालते थे। चौथे चाचा हरिहर पांडेय जयशंकर प्रसाद के सहपाठी थे। ये भी घर-गृहस्थी में हाथ बँटाते थे। पाँचवें चाचा जगन्नाथ पाण्डेय कलकत्ता में रहते थे; लेकिन अंतिम क्षणों में उनकी मृत्यु गाँव में हुई। इस प्रकार धूमिल का एक बड़ा संयुक्त परिवार था; लेकिन धीरे-धीरे सब छिन्न-भिन्न हो गया। परिवार पर आर्थिक संकट आ पड़ा।

धूमिल का विवाह मुंशी प्रेमचंद की तरह ही कम उम्र में हुआ जब वे कक्षा सातवीं में पढ़ रहे थे; तभी लालपुर के निवासी पं. नान्हक दीक्षित की सुशील कन्या मूरत देवी के साथ इनका विवाह संपन्न हुआ। धूमिल के कुल छः संतान हुई - आशा, इन्दु, रत्नशंकर, इंदिरादेवी, ऊषादेवी और आनंदशंकर पांडेय। धूमिल के पिता की मृत्यु तो पहले ही हो गई थी। बाद में उनके चाचा रामनेवाज पांडेय (1962) और हरिहर पांडेय(1968) के मरने के बाद इनके ऊपर गृहस्थी की सारी जिम्मेदारी आ पड़ी। परिवार काफी लंबा चौड़ा था। कन्हैया पांडेय के शब्दों में ''धूमिलजी सबको समेटकर एक जगह रखना अपना परमकर्तव्य समझते थे। 'सबका एक चूल्हा और सबका एक जगह खाना' में उनका अटूट विश्वास था। यह उन्हें बहुत अच्छा लगता था। तभी अंतिम समय तक उन्होंने इस संयुक्त परिवार को बिखरने नहीं दिया। यह संयुक्त परिवार कभी टूट न जाय, इसीलिए चकबंदी में संयुक्त चक बनवाने हेतु उन्होंने पहले ही आवेदन पत्र दे दिया था। 27 सदस्यों के इतने बड़े संयुक्त परिवार के लिए मालिक का सर्वप्रथम कर्तव्य अपने-पराए का भेद न करने का गुण उनमें कूट-कूट कर भरा हुआ था''[18]

धूमिल ने जीवनपर्यंत पूरे परिवार को सुखी रखने का भरसक प्रयत्न किया। अपनी अपने परिवार की परवाह व चिंता किए बिना परिवार को एकता के सूत्र में बांधे रहे। इस संदर्भ में धूमिल के ज्येष्ठ पुत्र रत्नशंकर पांडेय ने कहा है- ''एक बार की बात है किसी ने कह दिया कि अपने तो सिर से पैर तक ऊलेन से ढके हैं और भाइयों को क्या किए हैं? उसी समय से, पहले के बने कोटों को पहनना ही छोड़ दिए थे। परिवार की एकता और सुख के लिए हम लोगों से लेकर अपने शरीर तक को कष्ट दिए। शायद उन्हें जिंदा रहना था पूरे परिवार के लिए, पूरे गाँव के लिए, पूरे राष्ट्र के लिए, पूरे विश्व के लिए उनके सामने मात्र 'हम' ही नहीं थे।''[19]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि धूमिल बहुत कुछ परिवारिक व्यक्ति थे। अपने परिवार में भाइयों को लेकर, बेटी की शादी को लेकर तथा लड़कों की अच्छी शिक्षा को

लेकर काफी चिंतित रहते थे। उनके भाई उनका बहुत सम्मान करते थे। उन्हें देवता की तरह पूजते थे। धूमिल जीते जी यही चाहते थे कि उनमें परस्पर मन-मुटाव न हो। वे कभी-भी अलग होने की न सोचें। मुट्ठी की सारी ऊँगलियाँ एक-दूसरे से जिस तरह मिली-जुली रहती हैं; ठीक उसी तरह से वे उनको मिलाकर रखना चाहते थे। डॉ. राजशेखर ने ठीक ही कहा है - ''परिवार के लिए वह माँ का हृदय और पिता की छाँह था।''(20)

खेवली के बुजुर्ग एवं धूमिल के समवयस्क श्री बनारसी बाबू उर्फ भगेलू सिंह के कथनानुसार - '' खेत की सिंचाई करने के लिए वे एक 'पंपिग सेट' भी लगवा लिए थे; जिससे गाँव के लोगों को तथा अपने खेत की सिंचाई करने की सुविधा रहे।''(21) धूमिल अपने गाँव को एक परिवार की ही तरह मानते थे। धूमिल के सहपाठी कैलाश सिंह के संस्मरण सुनने से पता चलता है कि एक समय ऐसा आया था; जब सभी जगह 'खाद' बिकने पर रोक लगा दी गई थी। धूमिल को अपनी चिंता बढ़ गई, जब खेत में खाद नहीं पड़ेगी तो पैदावरी नहीं होगी। कैलाश सिंह ने किसी तरह उनके लिए दो-चार बोरी खाद की व्यवस्था कर दी। तब उनको अपने गाँव की चिंता हुई। गाँव के लोग खाद नहीं पाएँगे; तो उनके बच्चे भूखें मरेंगे। अत: उन्होंने खाद लेना अस्वीकार कर दिया।

परिवेश : भगवतीशरण सिंह ने परिवेश के संदर्भ में प्रकाश डालते हुए कहा है -''हम सामान्यतया जिसे परिवेश मानते हैं। वह प्राय: परिसर के अर्थ में होता है, अर्थात् किसी स्थान विशेष की भू-भौतिक स्थितियाँ।''(22) डॉ. रामलखन शुक्ल के कथनानुसार - ''व्यक्ति का परिवेश उसकी मनोभूमि के निर्माण में अपना विशेष महत्त्व रखता है। अत: व्यक्ति के मानसिक यथार्थ का अंकन उसे परिवेश से पृथक करके नहीं किया जा सकता। यथार्थवादी लेखक यदि स्वस्थ दृष्टिकोण अपनाकर चलता है; तो व्यक्ति को समाज-सापेक्ष स्थिति में देखता है और इस प्रकार उसके बाह्य और आंतरिक पक्षों का चित्रण करता है।''(23)

परिवेश न हो तो कविता में जड़ एकरूपता और गतानुगतिकता आ जाएगी। परिवेश रचना को गति देता है, प्रेरणा देता है। काव्येतर द्रव्य परिवेश से आकर उसे समृद्ध बनाते हैं। परिवेश और कवि का संबंध अनिवार्य होता है। चाहे वह संतुलन और तालमेल द्वारा आए, चाहे विद्रोह और प्रतिक्रिया द्वारा। श्यामनंदन किशोर के शब्दों में ''परिवेश ही काव्य को बहुआयामिका विस्तार, नवीनता और गति देता है। वस्तुत: काव्य संस्कार के बीज और वातावरण की जलवायु से उत्पन्न एक भावलता है। संस्कार वह आंतरिक शक्ति है; जो काव्य-सृजन की क्षमता देता है और वातावरण वह बाह्य परिवेश है, जो उस क्षमता को आवश्यकतानुसार विकासों के विभिन्न आयाम प्रदान करता है। परिवेश काव्य-प्रेरणा का अक्षय स्त्रोत और अनुभूतियों का संदेशजनक है।''(24)

धूमिल का परिवेश मूलत: ग्रामीण रहा है। इनका जन्म ही एक खेड़े गाँव 'खेवली' में हुआ था। खेवली गाँव के अंदर व उसके आस-पास जमींदारी प्रथा थी। यह क्षेत्र भूमिहार-

ब्राह्मणों के प्रभाव में रहा। इनके अतिरिक्त कुर्मी, अहीर (यादव), बिंद, केवट, चमार, पासी आदि छोटी जातियाँ के भी अलग-अलग टोले बने हुए हैं। चूँकि यहाँ जमींदारी प्रथा थी; अत: बड़े भूमिधर किसान नहीं थे। जमींदारी प्रभुत्व से प्राप्त अधिकार को लेकर छोटे-छोटे भूखंडों में इन लोगों ने अपनी खेती-बारी करनी शुरू कर दी थी। अत: खेवली की आर्थिक स्थिति में आज भी कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ है। कुछ ही लोग धनधान्य संपन्न हैं। अधिकांश लोग आज भी अभावग्रस्त हैं। ऐसे लोग या तो छोटे-छोटे भूमिधर किसान हैं या धन संपन्न जमींदार लोगों से अधिया पर लेकर खेत जोतते हैं या उनके खेतों में मजदूरी करते हैं। धूमिल के पितामह बिंदेश्वरी भी इसीतरह के छोटे किसान थे और जमींदारों के यहाँ काम किया करते थे।

धूमिल का जन्म जिस समय हुआ; उस समय शोषण, अन्याय, असमानता और अशिक्षा चरम सीमा पर थी। उस वक्त 'हँसुआ यज्ञ' और 'लाल घोड़ा' की घटनाएँ अन्याय का प्रतीक बन गई थीं। 'हँसुआ यज्ञ' का प्रतीकात्मक अर्थ है रातों-रात तैयार फसल को कटवा लेना। 'लाल घोड़ा' का प्रतीकात्मक अर्थ है; तैयार खड़ी ईख की फसल में आग लगवा देना।

खेवली के युवा श्री देवीशंकर सिंह ने 'हँसुआ यज्ञ ' की घटना का संस्मरण सुनाते हुए कहा- ''हँसुआ यज्ञ' 1916 के आस-पास से चला आ रहा था। यह व्यक्तिगत लड़ाई थी। इस लड़ाई में एक पट्टीदार दूसरे पट्टीदार की फसल काट लेते थे। यह खासकर के भूमिहारों (ठाकुरों) में हुआ करता था। यह सब अपना विरोध जताने के लिए होता था। आगे चलकर यह 'हँसुआ यज्ञ' अन्याय का प्रतीक बन गया। इस 'हँसुआ यज्ञ' में गाँव के उस दबंग किस्म के लोग शामिल थे; जिनके पास धन और सत्ता दोनों हुआ करते थे या फिर पहुँचवाले होते थे। ये पढ़े-लिखे समझदार भी होते थे। भूमिहारों में बेचनसिंह एम.ए. के विद्यार्थी हुआ करते थे। इस गुट में लालजी सिंह, हौसिला सिंह और मधुसूदन सिंह शामिल थे। और तो और इस गाँव के प्रधान रामरति सिंह का भी इसमें सक्रिय योगदान होता था। इधर पंडितों में धूमिल के पड़ोसी कन्नन पांडेय भी इस 'हँसुआ यज्ञ' के सक्रिय कार्यकर्ता थे। उस समय यह 'हँसुआ यज्ञ' काफी जोर पकड़े हुए था। यह लगभग दस-बारह दिन तक चलता रहा। इस 'यज्ञ' में लगभग 40 अथवा 45% लोगों की फसल स्वाहा हो गई थी। अब कन्नन पांडेय को भी भय होने लगा था कि कभी भी मेरी फसल कट सकती है। इस 'हँसुआ यज्ञ' का अंत एक ग्रामीण पंचायत में बहस के दौरान शिवालय में जाकर शपथ ग्रहण समारोह में खत्म हो गया; लेकिन उसके भूत-प्रेत आज भी कहीं-न-कहीं जीवित मिलते हैं और भविष्य में भी मिलते रहेंगे।''[25]

आजादी के बाद भी प्राय: इस तरह के सामाजिक शोषण-अन्याय होते रहे हैं जिसका चरम विकृत रूप धूमिल ने अपनी नग्न आँखों से देखा था। 'हँसुआ यज्ञ' को समाप्त करने में धूमिल की भूमिका रही है। खेवली के श्री कवलजीत सिंह कन्नन पांडेय के दोस्त

के शब्दों में - ''उस समय गाँव में झगड़ा-फसाद की मुख्य जड़ कन्नन पाण्डेय ही था। गाँव में उसका उपद्रव मचाना, खड़ी फसल काटना और कटवाना रोज का काम था। खुले आम वह लोगों को गाली-फक्कड़ देता रहता था। एक बार उसने मेरे पिताजी से झगड़ा कर लिया और बात-बात में यही कहता कि मेरा 'हँसुआ चमकेगा'। रात में ही मेरी फसल कटवा डाला। धूमिल का विचार था कि अब इस अनर्थ को बंद किया जाए। यह अन्याय है। भरी पंचायत में धूमिल और कन्नन से इतनी बहसें हुई कि उनको मंदिर में जाकर गंगाजल उठाकर कसम खानी पड़ी कि अब इस तरह का अनर्थ कभी नहीं होगा।''(26)

धूमिलजी के क्रांतिकारी विचार से सारा गाँव प्रभावित था। वे कहा करते थे कि 'मैं अपने गाँव को शहर से जुड़वा दूँगा। उन्हीं के प्रयास से आज जगह-जगह 'चकरोट' बन गए हैं यानी गाँव-गाँव में जाने के लिए तीनगज का रास्ता बना है। उनका अपना सपना था कि गाँव के परिवेश को शहर के परिवेश से जोड़ने का। उनके मरणोपरांत यह सपना साकार हुआ। आज खेवली जैसे पिछड़े गाँव में पक्की सड़क बनकर तैयार हो गई है।

धूमिल मुख्यत: दो परिवेश से जुड़े हुए थे। एक गाँव खेवली और दूसरा वाराणसी शहर का अस्सी तथा गोदौलिया। शहर के इसी दो अड्डे पर उनकी साहित्यिक चर्चाएँ हुआ करतीं थीं। धूमिल का साहित्यिक परिवेश यहीं से बना । धूमिल जब इस एक परिवेश से छूटते थे; तो दूसरे परिवेश में प्रवेश करते थे। वह दूसरा परिवेश उनका गाँव खेवली था। धूमिल ने अपने गाँव खेवली पर एक कविता भी रची है-

> ''वहाँ कोई सपना नहीं है / न भेड़िये का डर /बच्चों को
> सुलाकर औरतें खेत पर चली गई हैं /खाये जाने लायक कुछ
> भी शेष नहीं है/वहाँ सब कुछ सदाचार की तरह सपाट /
> और ईमानदारी की तरह असफल है।''(27)

धूमिल के परिवेश और उनके जीवन पर दृष्टि डालने से प्रतीत होता है कि वे आम जनता के बीच से उभरे हुए कवि हैं। समकालीन कविता के अन्य कवियों में से इस प्रकार का परिवेश अन्य किसी भी कवि का नहीं था। यदि त्रिलोचन शास्त्री का परिवेश ग्रामीण था, तो वे धूमिल से अधिक पढ़े-लिखे थे। इसके अतिरिक्त एक लंबे समय तक संपादक के रूप में कार्य करने के कारण उनका व्यक्तित्व कुछ सुसंस्कृत हो चुका था। बाबा नागार्जुन की तुलना एक सीमा तक उनसे की जा सकती है; लेकिन धूमिल में जैसा जुझारूपन व्यक्तित्व था वैसा नार्गाजुन में नहीं दर्शन होता। केदारनाथ अग्रवाल के साथ उनकी तुलना कुछ हद तक की जा सकती है। 'विपक्ष का कवि धूमिल' के रचयिता राहुल के अनुसार ''केदारनाथ अग्रवाल की तरह गाँव की मिट्टी और किसान जीवन से जुड़े हुए धूमिल में ग्रामीण संवेदना का एक लंबा दर्द है; जो कभी उबल पड़ता है और कभी भीतर-ही-भीतर सुलगता रहता है।''

सच है कि त्रिलोचन, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल आदि समकालीन कवियों

की भाँति धूमिलजी की भी ग्रामीण दृष्टि रही है। उन्होंने ग्रामीण परिवेश से जुड़े मानव-जीवन का बड़ा ही यथार्थ और विशद चित्र खींचा है। हाँ ! धूमिल में एक विशेष बात यह थी कि वे नितांत सामान्य परिवार के थे। जन्मना ब्राह्मण थे; लेकिन उनका परिवेश छोटे जाति के लोगों का था। वे न तो ज्यादा पढ़े-लिखे थे और न बहुत बड़ी नौकरी करते थे। उनका संसर्ग ऐसे सामान्य तबके के लोगों से था; जो अधिक पढ़े-लिखे या विचारवान नहीं थे। उनके पास जो भी जमीन थी उसकी तुलना में परिवार के सदस्यों की संख्या अधिक होने के कारण धूमिल का आर्थिक स्तर भी बहुत अच्छा नहीं था। वे जीवन के अंतिम क्षणों तक अपने परिवार को आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी बनाने में प्रयत्नशील रहे; किंतु उनकी लंबी बीमारी ने परिवार की कमर ही तोड़ दी। सब कुछ छिन्न-भिन्न हो गया।

1.16 प्रेरणास्त्रोत : कवि धूमिल की काव्य-प्रेरणा-स्त्रोत उनका ही गाँव 'खेवली' रहा है। ग्यारह वर्ष की अल्पायु में ही जब वे कक्षा सातवीं में पढ़ रहे थे; तभी से तुकबंदियाँ करने लगे थे। उन्होंने पहली बार पहली तुकबंदी वरुणा नदी तट पर पड़े एक शिलाखंड पर बैठकर की थी। वह तुकबंदी इसप्रकार है - 'पड़ा हुआ है, बरना के तट पर/ एक बड़ा कला-सा पत्थर।' सन् 1958 से लेकर 1962 तक धूमिलजी का झुकाव गीत-लोकगीतों की तरफ ज्यादा रहा। यद्यपि यहीं से कवि धूमिल के लेखन का क्रम निरंतर चलता रहा। सन् 1962 के आस-पास इनकी रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में स्थान पाने लगी थीं, जिससे वे हिंदी कविता के संसार में जाने-पहचाने लगे।

धूमिल के प्रेरणास्त्रोत और परिवेशगत अनुभव के बारे में राजशेखर ने कहा है कि "नौकरी के दौरान धूमिल डेढ़ वर्ष तक भारत के विभिन्न जंगली और पहाड़ी इलाकों में घूमा। उसने अपनी खुली आँखों से यह देखा कि मेहनतकश जनता और पूँजीपति मुर्दाफरोशों के बीच कितनी दूरी है। मजदूरों के साथ धन-पशुओं के घृणित व्यवहार को देखकर उसने यह महसूस किया कि पिरामिडों के शिखरों का संपूर्ण शिला-लेख गुलाम मजदूरों ने अपने आँसुओं और खून से लिखा है।"(मरणोत्तर धूमिल- एक कथा यात्रा, कल सुनना मुझे, पृ.13) कहना न होगा कि इन सारी परिस्थितियों ने धूमिल की रचना-प्रक्रिया को प्रभावित किया है।

धूमिल प्रारंभिक दौर में गीत लिखा करते थे। इससे हटकर अब कविता लिखने की धुन उन पर सवार होने लगी। अत: वे वाराणसी में ही कथाकार शिवप्रसाद सिंह, ठाकुरप्रसाद सिंह, शंभुनाथ सिंह, केदारनाथ सिंह, मोहनराज शर्मा, गोविंद उपाध्याय, सत्यव्रत शर्मा, चंद्रभूषण मिश्रा आदि कवि-लेखकों के संपर्क में आये। इनके संपर्क में आने से पहले धूमिल अस्सी पर महीनों से आया करते थे। उस समय युवा रचनाकारों के मार्गदर्शक कला विभाग के चित्रकार डॉ. रामचंद्र शुक्ल थे। लेकिन इनसे बात करने में हिचकते थे। उन दिनों हनुमान सिंह शुक्ल के काफी नजदीक थे। धूमिल ने हनुमान सिंह से दोस्ती की। इन्होंने ही उनको शुक्ल जी से मिलवाया। डॉ. रामचंद्र शुक्ल ने धूमिल के गीत सुने और

कहा कि आज का जो जमाना है, वह गीतों का नहीं है। इसीतरह रोज यहाँ हम लोगों के संपर्क में रहा करो। धीरे-धीरे सब समझ में आ जाएगा। यही पहली मुलाकात थी। उसके बाद से धूमिल रोज अस्सी पर आया करते थे।

धूमिल से संबंधित संस्मरण सुनाते हुए डॉ. रामचंद्र शुक्ल ने कहा है- ''गीत काव्य का अब जबाना है नहीं। यह कविता है या संगीत - दोनों में कोई अंतर है कि नहीं या दोनों एक ही हैं। संगीत गाने की चीज है - गाओ। कविता कोई गाने की चीज है? वह साहित्य है। उसका अपना व्यक्तित्व है। उसका अपना रूप है। उसको गीत कह देना, संगीत कह देना यह उचित नहीं है। उनकी रचनाओं में वही रीतिकालीन परंपरा का प्रभाव था। उनको हमने सुझाव दिया कि आप अपने जमाने की बात कहें, आप पुरानी बातें छोड़ दीजिए। आप जहाँ भी रहे, वहाँ से चीज उठाइए। आपके चारों तरफ जो समस्याएँ हैं; जो वातावरण है उसको लीजिए। उसको सजाकर रखने की चीज नहीं है। जैसा आप इस वक्त देख रहे हैं, अनुभव कर रहे हैं उसको वैसे ही शब्दों में सीधे-सीधे सपाट ढंग से कहने की जरूरत है। आपकी भाषा उस तीर के समान हो; जो शरीर में लगते ही बिंध जाए आप ऐसी कविता लिखिए; जो पढ़ने वाले को तुरंत झाड़ दे। बीज मंत्र जिसको कहते हैं वह उसके अंदर मैंने डाल दिया। जब बीज डाल दिया, तो वह उठेगा ही। उसका जो रूप बना, उसमें बीज के रूप में हम आते हैं।''(28)

धूमिल वाराणसी में ही काव्य पाठ के दौरान डॉ. नामवर सिंह के संपर्क में आए। उनकी कविता का उल्लेख नामवर सिंह ने 'ज्ञानोदय' पत्रिका की लेखमाला 'नई कविता में क्षण भर' में किया। जिससे वे रातो रात चर्चित कवि बने। धूमिल का झुकाव नागानंद मुक्तिकंठ के कारण एलेन्सगिन्स वर्ग, येन्तुशेको व राजकमल चौधरी की अकविता की ओर हो रहा था। किंतु नामवर सिंह के विचार-विमर्श से प्रेरित होकर मार्क्सवादी साहित्य के अध्ययन की ओर उनका झुकाव ज्यादा रहा। धूमिल को साहित्यिक मित्रों के बीच बैठकर बहस करना अच्छा लगता था। उनकी जेब में हमेशा एक कलम और कुछ कागज के टुकड़े जरूर होते। हर पल, हर वक्त अपनी आँख और कान खोलकर चौकन्ना और सतर्क रहते थे। धूमिल के अनुज कन्हैया पांडेय के शब्दों में - ''फिल्म देखना उनका शौक रहा है। उसमें क्या नई चीज है, उसे बराबर समझने की कोशिश करते थे और नोट भी किया करते थे। इसीतरह वे जब भी कैंटीन में चाय के लिए जाया करते थे, वहाँ बैठे लोगों की बातें ध्यान से सुना करते थे। उस बीच कोई नया शब्द उन्हें सुनाई देता; तो वे उसे तुरंत बिना किसी को बताए कागज का टुकड़ा फाड़ लेते थे या अखबार का टुकड़ा ही सही या फिर सिगरेटवाली वह पन्नी ही सही उस पर वह शब्द लिख लेते थे। पूरा-का-पूरा उस आदमी का वाक्य लिख लेते थे और उसे कविता में अपनी जगह फिट कर लेते थे।''(29)

कवि धूमिल मामूली-सी आई. टी. आई की नौकरी करते हुए भी पढ़ने-लिखने में रुचि अधिक लेते थे। बाजार में हमेशा नई चीज की तलाश में रहते थे। धूमिल के मित्र,

हिंदुस्तान समाचार पत्र के उपसंपादक वशिष्ठमुनि ओझा के शब्दों में - ''धूमिल बहुत ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं थे। लेकिन बाजार में जो भी नई-से-नई चीज आ जाती; उसको किसी तरह प्राप्त करके पढ़ते जरूर थे। वहीं से लिए हुए विचार को जस-की-तस भाषा में अपनी कविता में फिट कर लेते थे। इसके साक्षी शुकदेव सिंह भी हैं। शुकदेव सिंह ने एक बार उनको टोका भी था। यह लाइन हमने वहाँ देखी है। इस संबंध में धूमिल का तर्क था- विचार जोरदार है, चोट करनेवाला है, उसमें उपयुक्त भाषा है; तो दूसरे किसी कवि की रचना की एक पंक्ति या शब्दों को लेने में संकोच नहीं करना चाहिए। धूमिल इस विचार धारा के कवि थे।''(30)

1.17 व्यक्तित्व निर्माण : श्यामनंदन किशोर के शब्दों में ''मनोविज्ञान में दो भिन्न धाराएँ हैं-व्यक्तित्व निर्माण में एक वंशानुक्रम को महत्त्वपूर्ण मानता है और दूसरा वातावरण को। वंशानुक्रमवादी मनोवैज्ञानिक परंपरा में यह लोकोक्ति प्रश्रय पाती रही है कि कवि जन्मजात होता है (पोयट्स आर बोर्न, नोट मेड), लेकिन वातावरणवादी मनोवैज्ञानिकों ने बाह्य भौतिक, आंतरिक एवं सामाजिक वातावरणों के प्रभावों को व्यक्तित्व के विकास का मूल कारण माना है। आंतरिक वातावरण के अंतर्गत वे गर्भस्थ वातावरण (प्रीनैटल इन्भिरानमेण्ट) को भी मानते हैं। भोजन से उत्पन्न रक्त में मिले हुए तत्त्व, न्यासर्ग (हारमोन) आदि का प्रभाव भी व्यक्तित्व पर पड़ता है। घर-परिवार, खान-पान, रहन-सहन, जलवायु, प्रकृति के अन्य साधन आदि के प्रभाव भौतिक वातावरण के अंतर्गत आते हैं। सामाजिक वातावरण का परिप्रेक्ष्य विशाल है और उसके अंतर्गत वे सब कुछ आते हैं, जिनके संपर्क में मनुष्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आता है। तात्पर्य यह कि जो परिस्थितियाँ किसी मनुष्य के गर्भस्थ होने के समय से लेकर जीवनपर्यन्त बनी रहती हैं और उसकी क्रियाओं को निरंतर प्रभावित करती रहती हैं, वे ही वातावरण कही जाती हैं।''(31) गाल्टन, पियरसन, गेडार्ड, थाम्पसन गेसेल, न्यूमैन, प्रीमैन, ट्रायन आदि मनोवैज्ञानिकों के विभिन्न प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य के व्यक्तित्व को वंशानुक्रम और वातावरण दोनों ही प्रभावित करते हैं।

धूमिल का जन्म एक ब्राह्मण किसान परिवार में हुआ। अत: वंशानुक्रम की विशद चर्चा नहीं हो सकती। हाँ, व्यक्तित्व-निर्माण का जो दूसरा पक्ष है- वातावरण। यह धूमिल पर चरितार्थ अवश्य होता है। वाराणसी के आस-पास का जो परिवेश है, वातावरण है, वह बड़े-बड़े साहित्यकारों का रहा है। श्यामनंदन किशोर के अनुसार ''वातावरण से परिवेश का परिप्रेक्ष्य वृहत्तर है।... काव्य के अर्थ में परिवेश शब्द अधिक समीचीन है। मनोविज्ञान कहता है कि मनुष्य वातावरण (या कहिए कि परिवेश) की उपज है, साहित्य कहता है कि मनुष्य परिवेश को बनाता है।''(32) कबीर-तुलसी, भारतेन्दु, प्रेमचंद आदि प्रसिद्ध साहित्यकारों का कर्मक्षेत्र वाराणसी का परिवेश ही रहा है।

गाँव 'खेवली' में ही धूमिल के जन्म के पहले ही एक कवि जन्म ले चुका था।

धूमिल के अनुज कन्हैया पांडेय के शब्दों में ''शिक्षा और सभ्यता में सबसे पिछड़े हुए इस भूभाग में धूमिल के पहले भी हिंदी के एक और कवि हो चुके हैं- दीनदयाल गिरि जिनकी कुंडलियाँ काफी लोकप्रिय हैं।''(33) धूमिल के पिता शिवनायक पांडेय छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद के यहाँ 'मुनीम' के रूप में काम किया करते थे। स्वाभाविक है कि उनके घर में पांडेय जी का उठना-बैठना, खान-पान बराबर रहता होगा। खान-पान से उत्पन्न रक्त में कहीं-न-कहीं हारमोन तत्त्व अवश्य आ गये होंगे। उसी का ही परिणाम है कि धूमिल ने अल्पायु में ही पहली बार तुकबंदी की थी। आगे चलकर के धूमिल हिंदी कविता जगत में महान जन कवि के रूप में उभर कर सामने आए।

धूमिल का कवि व्यक्तित्व मूलत: ग्रामीण परिवेश से जुड़ा रहा। शहर में रहते हुए भी उन्हें ग्रामीण परिवेश से मुक्ति नहीं मिलती थी; अत: वे समय पाते ही किसी-न-किसी तरह अपने गाँव हाजिर हो जाया करते थे। उनका ग्रामीण परिवेश ही उनकी कविताओं का मूल भागीदार रहा है। श्यामनंदन किशोर के अनुसार परिवेश और कवि व्यक्तित्व एक-दूसरे के लिए समय-समय पर चुंबक का काम करते हैं। कवि के आसपास जो कुछ स्थूल या सूक्ष्म है; जिसमें कवि जी रहा है, लिख रहा है, व्यापक अर्थों में वह सब उसके काव्य-सृजन के परिवेश के नियामक तत्त्व होते हैं। परिवेश ही कवि की रचना के लिए कच्चा माल जुटाता है। कवि के भीतर जो कुछ है, वह उसका निजी है, व्यक्तिगत है; लेकिन उसके बाहर जो स्थूल या सूक्ष्म है, वह परिवेश है।··· परिवेश से प्रतिध्वनित होनेवाला, परिवेश को उजागर करनेवाला काव्य ही जीवंत काव्य होता है। परिवेश से कटी-छँटी कविता पलायनवादी, अतिशय कल्पनावादी और सामंतवादी कही गई है।''(34)

कवि धूमिल का व्यक्तित्व अनोखा एवं विचित्र व्यक्तित्व रहा है। उनके व्यक्तित्व पर उनके युगीन परिवेश का गहरा प्रभाव पड़ा है। उनके व्यक्तित्व की गहराई नाप लेना टेड़ी खीर है। फिर भी मैंने उसे समझने का प्रयास मात्र किया है। अपने व्यक्तित्व के कारण ही कोई व्यक्ति समाज में अपना अधिकार पा सकता है। जिस व्यक्तित्व की हम चर्चा कर रहे हैं वह दो प्रकार के होते हैं- बाह्य व्यक्तित्व और आंतरिक व्यक्तित्व। धूमिल के बाह्य व्यक्तित्व ने अधिकांश लोगों को प्रभावित किया है इसमें एक-दो राय नहीं है। उनके बाह्य व्यक्तित्व के विषय में उनके अनुज कन्हैया पांडेय का कथन है - ''वे सादा मिजाज थे, मगर गुदड़ी में ढाँकने पर भी उनका तप्तकांत मुख, उन्नत नासा एवं प्रशस्त ललाट छिप नहीं सकता था। एक बार देखकर आप आसानी से भुला नहीं सकते। साधारण हैंडलूम के सस्ते कपड़े का खुली बाँह का कुरता, धोती तथा पैरों में मामूली सी चमड़े की चप्पलों के साथ, उनके चेहरे की स्वाभाविक शांति एवं गंभीरता बहुधा उनके भीतर छिपी प्रतिभा को ढाँकने का काम करती थी; किंतु धधकते अंगारे की तरह चमकती बड़ी-बड़ी आँखों से निकलती किरणें सबका भंडा फोड़ देती थीं।''(35)

छोटे बच्चे तो धूमिल का भारी-भरकम शरीर देखकर डर जाते थे। खेवली के

युवा देवीशंकर सिंह के शब्दों में- ''जब वे हमारे घर आते थे; तो हम उन्हें प्रणाम वगैरह किया करते थे। हम बहुत ज्यादा खुलकर उनके सामने नहीं आते थे; क्योंकि अवस्था का फर्क था। उस समय हम बहुत छोटे थे। उनका डील-डौल काफी लंबा चौड़ा था। काफी ऊँचे कद के थे। घनी मूँछें थीं। पहली नजर में देखकर कोई भी डर जाता था।''(36) हरहुआ के नेता आचार्य पंकज ने भी धूमिल के शारीरिक बल और बनावट पर जोर देते हुए कहा है- ''धूमिल जैसा शरीर हिंदुस्तान में किसी कवि का नहीं था। उनके शरीर का भौगोलिक स्तर काफी बड़ा था। मूँछों के भीतर से मुस्कराते हुए धूमिल अच्छे लगते थे। एक दिन धूमिल ने एक हाथ मार दिया; तो त्रिलोचन मूत दिए धोती में और गिर गए पनारे में।(37)

धूमिल के शारीरिक बल का संकेत करते हुए गोविंद उपाध्याय ने भी लिखा है- ''धूमिल में कुल मिलाकर यह कहना होगा कि अद्‌भुत शक्ति थी- बौद्धिक तथा शारीरिक भी। खेवली गाँव में अपने घर से आई. टी. आई. के अपने कार्यालय तक कभी-कभी महीनों रोज साइकिल से आते-जाते थे; जो करीब 12 मील पड़ता है।''(38) इनके शारीरिक बल का परिचय तो उनके ब्रेनट्यूमर की असह्य पीड़ा को कई दिनों तक सहने से भी मिलता है। कोई भी सामान्य बल एवं शक्तिवाला व्यक्ति मस्तिष्क की वैसी पीड़ा को उतने दिन बिना किसी से कुछ कहे सह ले यह मुमकिन नहीं है।

धूमिल का व्यक्तित्व बहुत कुछ छायावादी कवि निराला जैसा लगता था। इस संदर्भ में डॉ. नामवर सिंह ने लिखा है - ''मुझे ऐसा लगता है कि धूमिल ने बहुत-सी बातों में निराला का व्यक्तित्व पाया था। शायद एक अर्थ में वे दूसरे निराला थे।''(39) धूमिल स्वयं निर्मित व्यक्ति थे। जीवन में भी और कविता में भी। अत: वे कभी भी किसी के सामने झुकते नहीं थे। निराला ने लिखा है कि 'झुककर कुछ भी मत उठाओ भले ही वह कविता ही क्यों न हो।' धूमिल के जीवन में यही चीज थी। निराला ने जो कुछ कहा था; वह धूमिल पर चरितार्थ होता है। धूमिल ही ऐसे कवि हुए हैं; जिनका अनुकरण बहुतों ने करने की कोशिश की पर नाकामयाब रहे। कारण धूमिल जो मुहावरा, वाक्य विन्यास का प्रयोग करते हैं; वह उनका अपना है। डॉ. वाचस्पति ने धूमिल के आंतरिक व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है - ''धूमिल मस्तमौला, घूमने-फिरनेवाले व्यक्ति थे। वे बहुत ही मुँहफट और स्पष्टवादी कवि थे। अपनी स्पष्टवादिता के कारण ही वे अपने परम मित्र काशीनाथ सिंह को भी नहीं बख्शते थे। धूमिल बाहर से मुँहफट थे, उदंड थे (जिसे लोग भोजपुरी में लट्‌ठ मार किस्म का व्यक्ति कहते और मानते हैं) लेकिन अंदर से वे बहुत कोमल संवेदनशील थे। वे अपने से छोटे के प्रति बहुत स्नेह का भाव रखनेवाले थे।''(40)

धूमिल की कविता जिस तरह पारंपरिक आलोचना के शब्दों में बांधी नहीं जा सकती; ठीक उसी प्रकार उनका व्यक्तित्व भी परंपरा से घिसे-पिटे शब्दों के माध्यम से बयान नहीं कर सकते। शारीरिक बल से संपन्न धूमिल व्यवहार में नितांत कठोर नहीं थे।

विशेष प्रसंग पर किसी से किसी विषय पर मतभेद और वितंडवाद होने पर उसे ललकारने के लिए कभी कभार आस्तीनें चढ़ा ली होंगी यह अलग बात है; परंतु उनकी प्रकृति कोमल ही थी। उनके स्वभाव में सहनशीलता एवं संवेदनशीलता का गुण कूट-कूट कर भरा हुआ था। वह अपने भाइयों के प्रति अत्यंत उदार, दयाशील एवं करुण थे। परिवार के सभी लड़के-लड़कियों के हित की हमेशा चिंता बनी रहती थी। पारिवारिक जिम्मेदारी एवं साहित्य प्रेमी के कारण वह बुरी आदतों से मीलों दूर रहे।

धूमिल बड़ों के प्रति आदर-सम्मान का भाव रखते थे। उनका व्यवहार अपने जिन साहित्यिक मित्र मंडलियों के साथ सबेरे कड़ाई का रहता; तो शाम को उन्हीं के साथ नरमी का रहता। यही एक संवेदनशील कवि के सरल हृदय का परिचायक होता है। इस संदर्भ में डॉ. वाचस्पति का कहना है- ''अनेक बातों पर मतभेद होते हुए भी किसी से गाँठ बाँध कर मनमुटाव रखना धूमिल की मनोवृत्ति नहीं थी। एक दिन शाम को आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी से खूब तेज-तर्रार बहस करके धूमिल लौटे। दूसरे दिन गोदौलिया पर धूमिल से 'यूनिवर्सल बुक कंपनी' के कामरेड त्रिलोकीनाथ सिंह ने अपने इस प्रतिष्ठान के उद्घाटन के बारे में पूछा; तो धूमिल ने तुरंत ही आचार्य द्विवेदी का नाम सुझाते हुए कहा कि वे बुजुर्ग हैं और हमारे शहर के गौरव हैं।''(41) धूमिल से संबंधित संस्मरण सुनने से पता चलता है कि धूमिल का व्यवहार, उनकी कविता एवं डायरी में अभिव्यक्त उनके व्यक्तित्व की एक-रूपता इस बात का साक्षी है कि वह जैसे भीतर थे वैसे ही बाहर। डायरी के पृष्ठों में अभिव्यक्त धूमिल के व्यक्तित्व में कोई व्यावहारिक विरोधाभास नहीं था। जो स्पष्टता डायरी के पृष्ठ पर अंकित हो सकती थी, वही या संभवत: उससे अधिक स्पष्टता उनकी बातचीत में भी थी। विचार एवं व्यवहार में कोई परस्पर विरोध नहीं दिखाई देता था।

धूमिल के व्यक्तित्व में एक सरलता, संकोच एवं स्पष्टवादिता का भाव था; जो उनके व्यक्तित्व की कई परतों को खोलकर रख देती थी। वे साहसी, निर्भीक एवं मेहनती बहुत थे। धूमिल के अनुज कन्हैया पांडेय के शब्दों में - ''वे विषम-से-विषम परिस्थिति में भी घबराते नहीं थे; बल्कि गंभीरता से सोचते-विचारते थे। वे बड़े ही योजना-विश्वासी तथा साधनारत व्यक्ति थे। उनमें अपने को परिस्थितियों के अनुरूप ढालने की अद्भुत क्षमता थी। वे जिस बात पर अड़ जाते थे, उसे पूरा करके ही साँस लेते थे।... किसानों की मजबूरियों को वे जानते थे। वे किसानों के निर्भीक नेता थे। रात-दिन वे किसानों को घंटों समझाया करते थे। सोते-जागते, रात-दिन उन्हें यही धुन सवार रहती थी कि किसान अपने मालिक कैसे बनें। वे गरीबों के अपमान को कभी सहन नहीं कर सकते थे। ... उनका हृदय पीड़ित गरीब जनता की मार्मिक व्यथा को सबसे पहले अनुभव करता था। उन्हें इस षड्यन्त्र का अच्छी तरह पता था कि किस तरह सत्ताधारी लोग जाति-पाँति के नाम पर जनता को भ्रम में डालकर अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं।''(42)

धूमिल स्वभाव से निर्भीक तथा स्पष्टवादी थे। अन्याय, अनुचित एवं भ्रष्टाचार

के प्रति उनका विरोध रहता था। उनका यही विरोध कई बार उनके नौकरी की राह में संकट बनकर उठ खड़ा हुआ था। फिर भी वे किसी की भी परवाह नहीं करते थे। वस्तुतः धूमिल का व्यवहार, उनका स्वभाव एवं उनके बातचीत का ढंग छल-कपट रहित था। वे आसमान की तरह साफ-खुला एकदम सपाट एवं सरल स्वभाव के थे। डॉ. गुरचरण सिंह के शब्दों में - ''उनका यही अगोपनीय व्यवहार ही उनका शत्रु बन गया था। आज के युग में वे ही लोग सफल होते हैं; जिनके कई रूप होते हैं; जो मुखौटों का प्रयोग करते हैं अथवा जो अंदर से कुछ और तथा बाहर से कुछ और होते हैं। ऐसी विसंगति धूमिल के जीवन में नहीं थी। वे जो अन्दर से थे, वही बाहर से थे। वे जो सोचते थे, वही करते थे। वे खुद में दुहरा व्यक्तित्व पैदा नहीं कर पाए, नहीं उन्होंने ऐसा करने की कोशिश ही की। वे न झूठी प्रशंसा चाहते थे और न कर सकते थे। दुहरे और तिहरे व्यक्तित्ववाले लोगों से उन्हें घृणा थी।''(43)

धूमिल ने अपनी क्रांतिकारी विचारधारा से गांव को प्रभावित किया था। निडरता एवं स्पष्टवादिता उनका अनुपम गुण था। उनका यह स्वभाव किसी व्यक्ति विशेष से नहीं, बल्कि सामाजिक बुराइयों एवं कुप्रथाओं से विद्रोह करना था। धूमिल के पास जो भी अमीर-गरीब जाते थे; वे यथाशक्ति सबकी मदद करते थे। सही मायने में वे लोगों के मददगार थे। वास्तव में वे गरीबों एवं असहायों के मसीहा थे। धूमिल की मृत्यु से गंभीर रूप से आहत गांव का एक मल्लाह रो पड़ता है- ''भइया भगवान हमहन पर गजब गिरा देहलना। अब हम गरीबन का खेवनहार इहवाँ कोई नाहीं रह गयल... गरीबन का देवता मर गयल भइया, अब गाँव में हमहन के खातिन लड़ेवाला कोई नाहीं हउवै।''(44) धूमिल असहायों के सुखदुःख के साथी रहे। वे लौहपुरुष एवं मसीहा के रूप में एक ढाल बनकर हमेशा विरोध में लड़ते रहे। आज उनकी तरह कोई भी आदमी नहीं दिखाई देता। यदि कोई दिखाई दिया भी; तो वह स्वार्थ से परिपूर्ण होता है।

धूमिल बहुत मेहनती और हर दर्जे के ईमानदार थे। वे घर-गृहस्थी से लेकर कविता के छप-छपाने तक बहुत ही ईमानदारी से मेहनत करते थे। डॉ. विश्वनाथ प्रसाद के शब्दों में - ''धूमिल ने अपनी जिंदगी में बहुत रियाज किया था। घर-बाहर हर जगह रियाज-ही-रियाज ! मेहनत से वह कभी भागता नहीं था; बल्कि यों कहा जाय कि कभी-कभी मेहनत को बुलाता था। अपनी कविता के साथ भी उसने ऐसा ही किया। छपते-छपते और अच्छा बनाने की कोशिश वह करता था। छप जाने पर भी कुछ जोड़ता घटाता था और यह जोड़ना-घटाना बराबर अच्छे के लिए होता है।''(45) धूमिल के मेहनत और चिंतन पर प्रकाश डालते हुए उनके जूनियर हाईस्कूल के सहपाठी डॉ. लल्लन मिश्र ने लिखा है - ''धूमिलजी को मैंने विविध भूमिकाओं में देखा था। कभी जौनपुर-वाराणसी मार्ग पर जाड़े की सिकुड़ती संध्या में साइकिल द्वारा सरटि से निकलते देखा था; तो कभी होली में लोगों से मिलकर उलझे बालों के साथ चेहरे पर अबीर-गुलाल छिड़के गोधूली बेला में काशी

की सड़कों पर और गलियों में भटकते देखा था और भटकाव में भी उनका चिंतन बराबर उनके साथ रहता था।''(46) प्रसिद्ध निबंधकार विद्यानिवास मिश्र के अनुसार- ''स्व. धूमिल अपनी जिंदगी और अपनी रचना दोनों में बहुत ईमानदारी के साथ संपन्न थे। बातचीत में उनकी गरम जोशी इस संपृक्तता की सहज परिणाम थी। जो लोग उनकी बेवाक भाषा से आहत हो जाते थे; उन्हें अंदाज नहीं हो सकता था कि स्वयं धूमिल कितने आहत हैं। इसका अंदाज उनके संक्षिप्त वक्तव्यों एवं निजी पत्रों से मिलता है।''(47)

धूमिल अपने परिवार में सबसे बड़े सदस्य रहे। अत: भाइयों की पढ़ाई-लिखाई, बेटी की शादी, घर-गृहस्थी आदि पारिवारिक झंझटों का भार उन्हीं पर था। नौकरी के दौरान घर से दूर रहकर पारिवारिक गृहस्थी की बात सोचकर आकंठ दु:खी हो जाया करते थे; मगर हिम्मत हारते नहीं थे। आजीवन वे अपनी हिम्मत और साहस के बल-बूते मुसीबतों से जूझते रहे। इस संदर्भ में राहुल ने भी कहा ''धूमिल में आत्मबल और आत्म-विश्वास था; जो किसी भी स्थिति का सामना करने के लिए अदम्य साहस और हिम्मत बधाता रहा।''(48) धूमिल के साहस से परिचित कराते हुए राजशेखर ने 'कल सुनना मुझे' काव्य संग्रह में संकलित अपने लेख में कहा है - ''साहस के ढाँचे में ढला हुआ धूमिल आदमकद इस्पात था। बचपन का जिद्दी धूमिल, जात-पांत, भूत प्रेत और धार्मिक अंधविश्वासों में अपनी अनास्था के कारण, पिता की दृष्टि में बराबर 'नास्तिक' रहा है।''

धूमिल प्रगतिशील चेतना के कवि रहे हैं। अत: वे ऊँच-नीच, जाति-पाँति तथा धर्म के पाखंड में विश्वास नहीं करते थे। उनके अनुज कन्हैया पांडेय के अनुसार ''वे धर्म की दौड़ में विश्वास नहीं करते थे। चोटी तथा जनेऊ धारण करना वे पसन्द नहीं करते थे। छुआछूत को वे नहीं मानते थे। मुसलमान के घर का खाना खाने के लिए वे ईद के दिन घर पर खाना नहीं खाते थे। ईसाइयों के घर भी खाना-खाने में वे नहीं हिचकते थे। चमार तथा ब्राह्मण उनके लिए बराबर थे।... उन्हें मानवतावाद अच्छा लगता था। वे देखने में एक साधारण आदमी जान पड़ते थे।''(49)

''धूमिल का व्यक्तित्व अव्यक्त परमाणुओं का एक पुंज है; जिसे कोई नाम देना संभव नहीं। धूमिल की चाची और माँ की आँखों में बाघ था। वस्तुत: सफेदपोश अपराधियों और अत्याचारियों के लिए वह एक क्रुद्ध बाघ था। खेवली से आई. टी. आई. की लम्बी दूरी, पट्टीदारों के अट्ठारह-बीस जाली मुकदमों का संत्रास लंका, अस्सी, गोदौलिया से लेकर नवाबगंज तक की बैठकों में- बारह-एक बजे रात तक मानसिक तनाव झेलते हुए, साहित्यिक हथकंडेबाजों से जूझना और फिर रातभर जागकर कविता लिखना। अकेले शरीर सागर मंथन नहीं तो और क्या है?''(50) वस्तुत: धूमिल के व्यक्तित्व में कई प्रकार के अंतर्विरोध थे। कम शिक्षा के अभाव ने उनमें एक तरह से हीनभाव आ गया था। इस कमी को उन्होंने विद्वानों-साहित्यकारों से विचार-विमर्श एवं उनकी कृतियों से हासिल की। जहाँ भी वह रहते थे; कुछ-न-कुछ सीखने के प्रयास में रहते थे। डॉ. मंजुल उपाध्याय के शब्दों

में - ''वह आदमी को भीतर से पढ़ने की कोशिश करता था, बाहर से नहीं। जब लगता कि सामनेवाला अपने को दुहरा रहा है; तब वह दूर हो जाता था।''(51) डॉ. विश्वनाथ प्रसाद के अनुसार ''धूमिल अंतर्विरोधों से जूझनेवाला कवि था। जो अंतर्विरोधों से जूझता है; उसका एक निश्चित पक्ष होता है। उसकी एक खास समझ होती है। वह विरोध के लिए ही विरोध नहीं करता है।''(52)

निष्कर्षत: धूमिल के व्यक्तित्व का विश्लेषण, उनकी रचनाएँ ही करती हैं। धूमिल के बेटे डॉ. रत्नशंकर लिखते हैं - ''उनका पूरा का पूरा व्यक्तित्व, पूरी सच्चाई एवं ईमानदारी के साथ, उनके लेखन में निखार पा सका है। उनका साहित्य, जिस सादगी और सपाटता का बयान मेरे सामने करता है; ठीक वैसा ही था उनका व्यक्तित्व - सरल एवं सुबोध था। उनके साहित्य को पढ़ने (यद्यपि मैं अभी पूर्ण रूप से उनके साहित्य को समझने का दावा नहीं कर सकता) से पता चलता है कि उनका साहित्य एक जुझारू व्यक्तित्व की जूझने की व्यथा-कथा है। भोगी हुई अनुभूतियों को पूरी ईमानदारी से व्यक्त करने में वे सफल रहे हैं। तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक विसंगतियों एवं विड़ंबनाओं का यथार्थ वर्णन ही है, उनका साहित्य।''(53)

धूमिल का शौक : धूमिल बचपन से ही खेलकूद में रुचि लिया करते थे। इस संदर्भ में उनके अनुज कन्हैया पांडेय का कहना है - ''धूमिल को बचपन में हॉकी, फुटबाल तथा वॉली-बाल खेलने का बड़ा शौक था। गाँव तथा स्कूल के लड़कों के साथ खेलने में उन्हें बड़ा आनंद आता था।''(54) धूमिल को खेलकूद के अलावा चित्रकला एवं अभिनय में रुचि बहुत थी। कन्नन पांडेय के दोस्त कवलजीत सिंह के शब्दों में - ''धूमिल एक बहुत कुशल चित्रकार एवं कलाकार थे। उनकी रुचि चित्र बनाने में हुआ करती थी। जब भी हम रामलीला में विदूषक का काम किया करते थे; तो इसके पीछे सुदामा का जबरदस्त हाथ रहा करता था। मुझे याद है एक बार जब 'कृष्ण नाटक' हुआ था, उसमें वे जब कृष्ण बनकर आए; तो लोगों को लगा कि सही में कृष्ण आ गए हैं।''(55) खेवली के भूतपूर्व प्रधानाचार्य राजेश्वरी प्रसाद सिंह का कथन है - ''वे एक अच्छे अभिनेता भी थे। सन् 1953 में हम लोगों ने 'कृष्णावतार' नाटक खेला था। उस नाटक में उन्होंने कृष्ण की भूमिका अदा की थी। उस समय वे दसवीं कक्षा के विद्यार्थी हुआ करते थे। कृष्ण के रूप में जितना बढ़िया रोल सुदामा पांडेय ने उन दिनों अदा किया करते थे बिरला ही उस उम्र का कोई छात्र कर पायेगा। विभिन्न सीन-सीनरियों के बीच से उनको निकलना पड़ता था। जैसे यमुना नदी में कालिया नाग के साथ नाग नथैया करना, चतुर्भुज कृष्ण के रूप में प्रदर्शित करने की कला आदि। जहाँ-जहाँ भी उन्हें पिरोया गया; उसमें वे साक्षात प्रमाणित होते गए। कहीं से भी यह कोई नहीं कह सकता था कि ये कृष्ण नहीं हैं। बाँसुरी बजाते हुए नृत्य की बेजोड़ कला का वह दृश्य-बहुत आकर्षक हुआ करता था। सभी लोगों ने उसकी सराहना

की थी।''(56) धूमिल को अभिनय कला का शौक हमेशा बना रहा। वे शहर में होते या गाँव में होते; लेकिन नाटक के समय वे उपलब्ध जरूर होते। वे अभिनय कला में इतने पारंगत हो गए थे कि एक बार जिस पात्र को समझा देते दुबारा समझाने की जरूरत नहीं पड़ती। धूमिल को साहित्यिक शौक का रोग भयंकर साबित हुआ। मृत्युशैया पर पड़े हुए भी कविता करने की धुन सवार रहती थी। दिनांक 14-1-1975 को लिखी गई धूमिल की अंतिम कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

''लोहे का स्वाद। लोहार से मत पूछो/ उस घोड़े से पूछो।
जिसके मुँह में लगाम है।''(57)

धूमिल को साहित्यिक शौक वाराणसी के एक 'अस्सी' नामक चौराहा से मिला। यहीं पर डॉ. रामचंद्र शुक्ल, नामवर सिंह, नागानंद मुक्तिकंठ, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, शिवप्रसाद सिंह, काशीनाथ सिंह आदि साहित्यिक प्रेमियों का जमघट हुआ करता था। यह चौराहा साहित्यिक गोष्ठियों का केंन्द्र है। यहीं पर देश-विदेश के साहित्य व साहित्यकारों की बहसें चलती थीं। अब भी वही हाल है। धूमिल ने धीरे-धीरे इस साहित्यिक माहौल को जाना-पहचाना, फिर धीरे-धीरे अपनी जमीन बना ली। गोष्ठियों में या चौराहों पर बहस करते, व्याख्यान देते और अपनी राय भी देते। धूमिल के अनुज कन्हैया पांडेय के शब्दों में ''वे एक बहुत ही सुंदर वक्ता थे। उन्हें बहस तथा व्याख्यान का शौक था। जब कोई उन्हें वाद-विवाद के लिए छेड़ देता था; मानो सुप्त ज्वालामुखी जागृत हो उठता था।''

'धूमिल को साहित्यिक शौक के साथ-ही-साथ एक और शौक उत्पन्न हो गया था; वह है फोटो खिंचवाना। डॉ. वाचस्पति ने धूमिल की समकालीन कविता में एक सार्थक हस्तक्षेप मानकर कहा है कि ''धूमिल को एक और शौक फोटो खिंचवाने का था। कभी मोटी मूछों में, कभी चश्मा लगाकर, कभी ठहाका लगाते हुए, कभी बेलचट खोपड़ी में और कभी काशी के युवा मित्रों के साथ धूमिल के सैकड़ों फोटो एस. अतिबल ने खींचे।''(58)

1.18 मृत्यु : धूमिल की मृत्यू 'ब्रेन ट्यूमर' के कारण हुई थी। उसके कारण धूमिल के सिर में कभी-कभी इतना दर्द उठता था कि वह असहनीय होता था। सीतापुर से वाराणसी आने के बाद सिरदर्द फिर से उभरा और वह निरंतर बढ़ता ही गया। सिरदर्द का कारण किसी को भी ठीक से पता नहीं था। घरेलू दवा-दारू से उनका इलाज बराबर होता था। वह ठीक भी हो जाते थे। अचानक 18 अक्टूबर 1974 को सुबह ही बेहोशी का दौरा पड़ा। परिवार के सभी सदस्य घबरा गए। धूमिल के अनुज कन्हैया पांडेय के अनुसार- ''चिकित्सा हेतु उन्हें सर-सुंदरलाल चिकित्सालय, बी. एच. यू. वाराणसी में दिखाया गया। डाक्टरों ने उन्हें भर्ती नहीं किया। सिर-दर्द की दवाएँ देकर वापस कर दिया।''(59) उसके बाद उनको जब-तब बेहोशी के दौरे पड़ जाते और पसीने से सराबोर हो जाते।

धूमिल को ठीक करने का बीड़ा उनके खास मित्र डॉ. एस. एन. चंद्रा ने उठा लिया।

उनकी देख-रेख एवं दवा से हालत ठीक होने लगी थी। किंतु 28 अक्टूबर सन् 1974 को उनकी हालत बिगड़ गई। तब उनको पुन: सर सुंदरलाल अस्पताल में डॉ. कटियार को दिखाया गया। सिर का एक्स-रे किया गया। पता चला कि वे ब्रेनट्यूमर के शिकार हो गए हैं। उन्होंने तुरंत डॉ. जी. न्यूटन के नाम पत्र लिखा और के. जी. मेडिकल कॉलेज, लखनऊ में जाँच करवाने की सलाह दी। धूमिल के अनुज कन्हैया पांडेय के अनुसार ''ब्रेनट्यूमर का इलाज कराने हेतु 1 नवम्बर 1974 को उन्हें के. जी. मेडिकल कालेज, लखनऊ में भरती करा दिया गया। उनके मित्र ठाकुर प्रसाद सिह, श्रीलाल शुक्ल, कुँवर नारायण, राजेश शर्मा, विजय श्रीकर आदि लखनऊ के मित्रों ने काफी दौड़-धूप की तथा हम लोगों ने भी पैसा पानी की तरह बहाया। दो बार उनकी खोपड़ी को छेद कर ब्रेन-टेस्ट किया गया और तरह-तरह की औषधियों का प्रयोग किया गया। हालत फिर काफी अच्छी हो चली थी। स्वस्थ होने की आशा बँध गई थी।''(60) धूमिल को लखनऊ ले जाने के लिए उनके गाँव के लोगों ने भी अपनी अहम भूमिका निभाई है। पूर्व प्रधानाचार्य राजेश्वरी प्रसाद सिंह, बनारसी बाबू उर्फ भगेलू सिंह (उन्हीं दिनों वे लखनऊ के गांधी स्मारक में क्लर्क का काम करते थे) डॉ. वाचस्पति (वाराणसी) आदि लोगों ने रात-दिन उनकी देख रेख में लगे रहे। हालत आशाजनक होने पर वाचस्पति, राजेश्वरी प्रसाद सिंह व गाँव के अन्य लोग घर चले आए। डॉ. जी. न्यूटन ने उन्हें 26 जनवरी को अस्पताल से मुक्त कर देने का आश्वासन दिया था। लोग उनको देखने के लिए बराबर आया करते थे। धूमिल खूब बातचीत करने लगे थे।

अचानक 25 जनवरी 1975 की रात में उनका सिर-दर्द शुरू होने लगा। बेहोशी के दौरे भी होने लगे। तब से उनकी तबियत में सुधार नहीं आया। 29 जनवरी को उनके सिर का अंतिम ऑपरेशन किया गया। हालत आशाजनक न थी। 10 फरवरी 1975 की रात्रि में 9.50 बजे उनकी मृत्यु हो गई । हिंदी जगत के जाने-पहचाने आलोचक नेमिचंद जैन ने धूमिल की मृत्यु पर चिंता एवं शोक प्रकट करते हुए कहा है- '' युवा कवि धूमिल की असामयिक मौत हिंदी कविता के रचना जगत के लिए एक बड़ी दु:खद दुर्घटना है। एक ऐसी आवाज अचानक थम गई; जिसने पहले ही हल्ले में अपनी ताकत और विशिष्ट व्यक्तित्व से समकालीन कविता लेखन में अलग पहचान पैदा कर ली थी। अभी उनकी काव्य-यात्रा की शुरुआत ही हुई थी और उनकी प्रतिभा और उसकी बेचैनी को देखते हुए उनसे और बहुत आगे जाने की आशा की जाती थी।''(61)

धूमिल की मृत शरीर को उनके गाँव 'खेवली' पहुँचाने में उनके साहित्यिक मित्र श्रीलाल शुक्ल और कुँवरनारायण ने बंदोबस्त किया। 11 फरवरी की शाम के 6 बजे वाराणसी के मणिकर्णिका घाट पर उनका दाह-संस्कार संपन्न हुआ। मृत्यु के समय तक उनकी उम्र 38 वर्ष, 3 महीने और 3 दिन थी।

1.2 धूमिल का युगीन परिवेश

समकालीन कविता में युगीन परिवेश की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति हुई है। समकालीन कविता के अनेक कवि जीवन के अनेक ज्वलंत प्रश्नों एवं सम-सामयिक समस्याओं से जूझते रहे। आज युद्ध का भय, आतंक, अन्याय, अत्याचार एवं मानव जाति का भयादोहन-शोषण सर्वप्रमुख समस्या बना हुआ है। आम आदमी बेरोजगारी-महँगाई से जूझते हुए व्यथित है, पीड़ित एवं दु:खी है। आत्मचेतस कवि अपने युगीन- परिवेश से बराबर जूझता रहा है। वह सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि तत्कालीन समस्याओं से कदम मिलाकर चलने की कोशिश करता है। इस संदर्भ में श्री नारायण मिश्र का कथन है- ''आज के कवि से यह अपेक्षा की जाती है कि वह तात्कालिक क्षणों के प्रति उसी प्रकार जागरूक रहे जिसप्रकार पत्रकार अथवा दल-नेता रहता है। यह कहा जाता है कि कवि उस समय तक सुंदर रचना प्रस्तुत नहीं कर सकता और अपने समीक्षकों को रसानुभूति नहीं दे सकता; जब तक वह अपने युग की हलचलों का पूर्णतया जानकार न हो।''(62)

कहना न होगा कि धूमिल अपने युगीन परिवेश के गहराई तक संपृक्त रहे हैं। बी. डी. मिश्र के विचारानुसार ''परिवेश का गहरा बोध ही धूमिल के काव्य की शक्ति और सीमा दोनों है। यह बोध इतना प्रासंगिक है कि उसे रोमानियत का सहारा लिए बिना झुठलाया नहीं जा सकता। जबकि रोमानियत से धूमिल का कुछ लेना-देना नहीं। वह यथार्थवादी गैर रोमैंटिक कवि है। उसने अपनी रचनात्मक ऊर्जा को सम-सामयिक संदर्भों से गहराई तक संबद्ध किया और आम आदमी को केंद्र में रखकर अपने अनुभव को वाणी दी। सम-सामयिकता से यह जुड़ाव सर्वथा बेमानी नहीं होता, न तो उसकी महत्ता मात्र एक काल-खंड तक सीमित रहती है। यह तो एक उथला नजरिया है कि सामयिक बोध से जुड़ी रचना का महत्त्व केवल सामयिक होता है। इसमें शक नहीं कि ऐसा भी होता है; किंतु तब, जब रचनाकार का सरोकार भी सीमित होता है। वरना डॉ. जगदीश गुप्त के साक्ष्य पर कहें तो समसामयिक होना, समयातीत होने के लिए भी आवश्यक है।''(63)

समकालीन कवियों में कवि धूमिल का व्यक्तित्व उस तरह जटिल नहीं था, जिसतरह उनका युगीन परिवेश जटिल था। पर उनमें कुछ कर गुजरने की छटपटाहट जरूर थी। धूमिल के काव्य-व्यक्तित्व का विकास उस समय हुआ था; जब हिंदी कविता के क्षेत्र में प्रयोगवाद का दौर समाप्ति के बिंदु पर था और समकालीन कविता की प्रवृत्तियाँ लगभग विकसित हो रहीं थीं। समकालीन कविता का युग सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन का युग था। स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय समाज में नए-नए बदलाव आ रहे थे; किंतु शोषण, अन्याय, अत्याचार, असमानता एवं वर्ग भेद से मुक्ति का स्वप्न पूरा नहीं हुआ। समाज परिवर्तन की प्रक्रिया दिशाभ्रष्ट होने लगी; जिससे आम जनता में असंतोष की मन:स्थिति पनपती गई। देश के कर्णधारों ने अनुभव किया कि समाज परिवर्तन के लिए जो संघर्ष स्वतंत्रता पूर्व आरंभ हुआ था; वह लक्ष्य तक नहीं पहुँचा है। अत: उस

संघर्ष को अभी तक बनाए रखना है। ये सारी चिंताएँ धूमिल के काव्य रचना में अभिव्यक्त हुई हैं।

कहना न होगा कि धूमिल के युगीन परिवेश को समझे बिना हम उनके काव्य-रचना को ठीक से नहीं समझ सकते। धूमिल जन्म से ही कठोर तत्कालीन युगीन परिवेश से प्रभावित थे। उनका जीवनकाल बहुत अल्प रहा है। अपने जन्म से लेकर अंतिम क्षणों तक (सन् 1936 से लेकर 1975 ई. तक) उन्होंने जिस युग को देखा, जाना और पहचाना; उसी को उन्होंने अपने काव्य-साहित्य में अभिव्यक्ति दी है। वह एक युग ही नहीं था; बल्कि अनेक युगों की संश्लिष्ट चेतना थी। कवि धूमिल के काव्य में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि जो युगीन परिवेश उभर कर सामने आए हैं; उन्हीं का अध्ययन हमने इस उप-अध्याय में करने का प्रयास मात्र किया है।

1.21 सामाजिक युगीन परिवेश : कोई भी सामाजिक व्यवस्था तत्कालीन आर्थिक प्रणाली पर आधारित होती है। अत: जब तक आर्थिक प्रणाली में बदलाव की स्थिति नहीं आयेगी; तब तक सामाजिक व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन संभव नहीं है। सुरेंद्र चौधरी के अनुसार- "आजादी के बाद भारतीय संविधान में अपने भविष्य की जो तस्वीर देखी वह परंपरित पितृ सत्तात्मक और कृषक समाज से भिन्न आधुनिक बौद्धिक, औद्योगिक, तंत्रात्मक और समाजवादी जनतंत्रवादी समाज की तस्वीर है। यह समाज एक ओर व्यक्ति को पूरी तरह स्वतंत्रता देनेवाला है। वास्तविकता यह है कि संविधान द्वारा प्रचारित यह समाज भारत में स्थापित नहीं हुआ।"(64) इस भारतीय समाज का स्थान उस मिश्रित समाज ने लिया; जहाँ एक ओर पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था की समस्त बुराइयाँ हैं और दूसरी ओर जहाँ पर समाजवादी पैबंद भी हैं। देश के दिशा निर्देशकों ने सामाजिक संदर्भों की अपेक्षा तो की ही तथा साथ ही राजनैतिक दाँव-पेचों से जनता के सामाजिक जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन की विचारधाराओं को भी पंगु बना दिया है। छठवें-सातवें दशक में सामाजिक परिस्थितियों में इतना परिवर्तन आया कि इससे पहले शायद किसी ने इसकी कल्पना भी नहीं किया था। यह परिवर्तन नारी स्वातंत्र्य, युवा पीढ़ी का आक्रोश, जाति व्यवस्था, मध्यवर्ग की भूमिका, परिवार में विघटन एवं सांस्कृतिक अवमूल्यन आदि अनेक क्षेत्रों में हुआ।

सामाजिक मान्यताओं के विघटन पर प्रकाश डालते हुए डॉ सरोज मार्कंडेय ने कहा है- "स्वतंत्रता के पश्चात् देश के विभाजन ने जो पारिवारिक विघटन की प्रक्रिया की गति को और त्वरित कर दिया। वैयक्तिक स्वार्थ, भौतिक उपलब्धियों और धन-संपदा के प्रति मिथ्या एवं बाह्य आकर्षण बढ़ा। विभाजन के पश्चात् पारिवारिक विस्थापन ने शील, संस्कार, सौजन्य एवं मानवता पर कुठाराघात किया। पारिवारिक संबंधों की धुरी केवल अर्थतंत्र में सीमित हो गई। मुक्त यौनाचार, विवाहपूर्व संतान, प्रेम-विवाह, विवाह संबंध-विच्छेद तथा अनैतिक यौन संबंध जैसे तत्त्व पनपने लगे।"(65) प्राय: परिवेश को देशकाल

वातावरण की संज्ञा दी जाती है। परिवेश किसी भी कृति का प्रधान तत्व होता है। इससे कृति को प्रामाणिकता मिलती है और इसका सही पृष्ठभूमि में प्रयोग किया जाए; तो कृति को जीवंतता भी मिलती है। हिंदी साहित्य में तो इसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है। क्योंकि इसका उद्देश्य ही सामाजिक, आर्थिक आदि परिस्थितियों को मद्दे नजर रखते हुए उस परिवेश का समग्र चित्रण करना होता है।

कहना न होगा कि कवि धूमिल का काव्य अपने समय के सामाजिक परिवेश का यथार्थ चित्र है। 'संसद से सड़क तक', 'कल सुनना मुझे' और 'सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र' इन काव्य-संग्रहों में कवि धूमिल ने सामाजिक यथार्थ चित्रण किया है। धूमिल की कविता 'मोचीराम' तत्कालीन सामाजिक चेतना की सशक्त, कलात्मक एवं युगांतकारी कविता मानी जाती है। यह कविता समाज में व्याप्त प्रत्येक वर्ग के अंतर्मन में बसी है। राकेश कुमार के शब्दों में- ''मोचीराम रचयिता का अनुभवी पारदर्शी चिंतक है; जो समाज में प्रत्येक वर्ग के व्यक्तित्व के भीतरी और बाहरी दोनों धरातलों पर पैनी; सूक्ष्म एवं संश्लिष्ट दृष्टि आत्मसात किए हुए है।''(66) कवि धूमिल का मोचीराम मात्र जूते के माध्यम से समाज के विभिन्न व्यवसायी लोगों के दोहरे व्यक्तित्व को भली-भाँति पहचानते हुए कहता है-

> ''सच कहूँ मेरी निगाह में/ न कोई छोटा है / न कोई बड़ा
> है /मेरे लिए, हर आदमी एक जोड़ी जूता है /जो मेरे सामने/
> मरम्मत के लिए खड़ा है। आज कल/ कोई आदमी जूते की
> नाप से/बाहर नहीं है।''(67)

सामाजिक-आर्थिक मोर्चे की समस्या को हमारा राष्ट्रीय नेतृत्व - 'गरीबी हटाओ', 'हरितक्रांति' और 'खुशहाली' के नारे से बहकाता रहता है। कवि धूमिल की काव्य संवेदना में सामाजिक पीड़ा है। यह पीड़ा कहीं रागात्मक बोध के असफलता के कारण है; तो कहीं सामाजिक विसंगतियों के कारण निरंतर विकृत हो रहे मानवमूल्यों के कारण आज मानवीय संबंधों में दरार पड़ती जा रही है। मूल्यों के पक्षधर कवि की पीड़ा इसीसे अधिक गहरी है तथा इसी गहनता के कारण वह सच्ची अभिव्यक्ति भी पा सकी है।

1.22 आर्थिक युगीन परिवेश : 'सोने की चिड़िया' कहा जानेवाला भारत आज भी आर्थिक रूप से विभिन्न है। भारत की भूमि पर मुगल और ब्रिटिश सरकार पनपने के बाद सामाजिक दृष्टि से जनता का शोषण तो होता ही था आर्थिक दृष्टि से भी शोषण होने लगा। भारत के आर्थिक पृष्ठभूमि के शोषण का आधार ब्रिटिश सरकार ही रही है। सारा अधिकार सामंती व्यवस्था को मिलने लगा था; जिनके अंतर्गत जमींदार वर्ग, उद्योगपति एवं पूँजीपति वर्ग आते हैं। कृषि एवं उद्योग-धंधे, व्यापार-नौकरी यह जो भारतीय अर्थ-व्यवस्था का मुख्य आधार रही है; वह इन्हीं वर्गों के बीच फलती-फूलती एवं पनपती रही। निम्नवर्ग एवं मध्यवर्ग का आर्थिक शोषण निरंतर होता आ रहा है।

आज भारत को आजाद हुए पचास वर्ष से अधिक हो गया है। फिर भी आर्थिक युगीन परिवेश में ऐसा कोई प्रशंसनीय परिवर्तन देखने को नहीं मिला। देश टुकड़ों में बँट गया। अत: आर्थिक स्थिति और भी कमजोर हो गई। तत्पश्चात् थोड़ी बहुत जो भी आर्थिक स्थिति सँभली; वह सब इन उद्योगपति एवं पूँजीपतियों के धनकोष में ही कैद रही। इससे आम जनता वंचित रह गई। उसने आजादी के पहले जो सपने देखे थे; वह सपना टूटकर बिख र गया। डॉ. सरोज मार्कंडेय के शब्दों में - ''स्वातंत्र्योत्तर काल में राष्ट्रीय स्तर पर विकसित भारी उद्योगों के विकास तथा पंचवर्षीय योजनाओं व विभिन्न बांध-परियोजनाओं द्वारा देश की आर्थिक क्षमता के विकास हेतु प्रयत्न भी जनसाधारण को कोई तात्कालिक लाभ नहीं पहुँचा सके। इसका कुल लाभ पूंजीपति वर्ग को हुआ। अतएव शोषण की प्रक्रिया नहीं बदली, शोषक दल अवश्य बदल गया। विदेशी शासकों व शोषकों के स्थान पर देशी शासकों व शोषकों का दल खड़ा हो गया। लाइसेंस पद्धति के कारण रिश्वतखोरी व कालाबाजारी का महत्त्व बढ़ा। कुटीर उद्योग धंधों पर बल देने पर भी आशातीत लाभ नहीं हुआ; किंवा वे घाटे में ही चले। जमींदारी उन्मूलन तथा चकबंदी के माध्यम से सरकारी स्तर पर किए गए कृषि-सुधार के उपाय भी असफल रहे; क्योंकि उनका लाभ बड़ी जोतवाले किसानों को तो हुआ; किंतु छोटे किसानों की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।''(68)

यातायात एवं सिंचाई के उपकरणों-साधनों से ग्रामीण सामाजिक-आर्थिक दृष्टि में कुछ सफलता अवश्य मिली है। औद्योगिकरण के कारण नगरी आर्थिक स्थिति में सुधार आया है। देश की भुखमरी एवं बेकारी पर संयम पाने के लिए वैज्ञानिक तकनीक प्रगति बहुत कुछ सहायक सिद्ध हुई है। लेकिन डॉ. बादाम सिंह रावत ने कहा है- ''भारत की मिलों और कारखानों ने अपने उत्तरदायित्वों को गंभीरता से नहीं लिया और इनके माध्यम से 'पूँजी के एकाधिकार' और 'श्रमिकों के शोषण' को ही प्रश्रय मिलता रहा है। आज देश की आर्थिक नीति नौकरशाही, थैलीशाही और राजनेता के स्वार्थी शिकंजे में है। इसके फलस्वरूप देश में गरीबी और असमानता बढ़ी है। स्वार्थ, विलास और खुशामद के जीवन मूल्य लोकप्रिय हुए हैं। आर्थिक कार्यक्रमों से असमानता और ईमानदारी आदमी के लिए जीना आसान नहीं रह गया है।''(69)

कहना न होगा कि आर्थिक दृष्टि सुधारने के लिए जो कार्यक्रम एवं पंचवर्षीय योजनाएँ बनाई गई; उनसे समाज के मध्यवर्ग एवं निम्न-मध्यवर्ग को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र के अनुसार ''मूल्य वृद्धि के अनुपात में आय न बढ़ने के कारण ये वर्ग बुरी तरह प्रभावित हुए हैं। सामुदायिक विकास तथा अन्य योजनाओं का पूरा लाभ नौकरशाही के भ्रष्टाचार के कारण जन-साधारण तक नहीं पहुँच सका है।''(70)

उपर्युक्त सभी आर्थिक विषमता, जन-जीवन एवं चिंतन के प्रत्येक क्षेत्रों को प्रभावित किए बिना नहीं रही है। साहित्यकारों को विवशता, असमंजस, आक्रोश, संवेदना सहानुभूति आदि की स्थिति से झकझोर दिया है। अपनी आर्थिक परिस्थिति से ही मानव

धारण कर लिया है। नेमिचंद जैन के शब्दों में - ''हर सार्थक कविता हमारी रोजमर्रा की दुनिया के जाने-पहचाने उपकरणों की सहायता से एक ऐसे संसार की रचना करती है; जो किसी-न-किसी ढंग से किसी-न-किसी सतह पर उस परिचित दुनिया की हमारी पहचान को गहरा या विस्तृत तीखा या नया कर सके।''(73) धूमिल की कविताओं में सम सामयिक राजनीतिक परिस्थितियों का वर्णन पाया जाता है।

कवि धूमिल के जीवन और व्यक्तित्व से राजनीति बहुत गहराई तक जुड़ी हुई है। किसी भी साहित्यकार को राजनीति से दूर नहीं रखा जा सकता है। आजकल राजनीति ही यश, धन, लाभ आदि का साधन हो गई। इस युग के राजनेता अपने आपको देवता समझ बैठे हैं; जिसका प्रभाव समाज-समाज में, घर-घर में और जन-जन के दिलों पर पड़ना स्वाभाविक हो गया। यह सब कवि धूमिल प्रत्यक्ष अपने नेत्रों से देख रहे थे। उनसे रहा नहीं गया और उनके भीतर जो अग्नि दफन थी; वह भभककर ज्वाला का रूप ले ली। यही कारण है कि उनके काव्य में जो सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना का पुट मिलता है, उसके साथ राजनीतिक चेतना का परिचय सहज ही मिल जाता है। धूमिल ही एक ऐसे कवि हुए हैं; जिनको संसदीय राजनीति को सड़क पर लाने का श्रेय जाता है। धूमिल की कविता स्वयं एक जगह सीधी जनता की राजनीति और ललकारनेवाले को संबोधित करती है-

''ओ, क्रांति की मुँहबोली बहन!/जिसकी आँतों में जन्मी
है/उसके लिए रास्ता बन।''(74)

वास्तव में राजनीतिक अव्यवस्था एवं दुराचार ने देश को खोखला बना दिया है। पर धूमिल अपनी प्रगतिशील चेतना से आस्थावादी हैं। अत: उन्होंने कभी-कभी आश्वस्त होते हुए कहा है-

''अब कोई किसी की रोटी नहीं छीनेगा/कोई किसी को नंगा
नहीं करेगा/अब यह जमीन अपनी है/आसमान अपना
है''(75)

ये आश्वासन आज के नेताओं ने आम जनता को दिए हैं। मगर वादें-वादें ही रह गए। शोषक और शोषितों के बीच दरारें बढ़ती गई। उद्योगपतियों ने अपने फायदे की बात देखी और मजदूर आज भी उसी दशा में है; जिस दशा में आजादी के पूर्व था। धूमिल ने सार्वजनिक व्यथा को अपनी व्यथा समझा। राजनीतिक अमानवीयता को देखकर कवि धूमिल को लगने लगा-

''जनतंत्र, त्याग, स्वतंत्रता/ संस्कृति, शांति, मनुष्यता
ये सारे शब्द थे/ सुनहरे वादे थे/ खुशफहम इरादे थे।''(76)

कवि मानते हैं कि सपने केवल सपने ही होते हैं। वे कभी अपने नहीं होते। अर्थात्

जीवन की सामाजिक स्थिति का ज्ञान-बोध होता है। कवि धूमिल ने बचपन से लेकर जवानी तक इस आर्थिक स्थिति का बड़ा दु:ख झेला है। जिसका दर्द आँसू दर्पण बनकर उनके काव्य के माध्यम से उभरकर सामने आया है। धूमिल ने कहा है-

> "एक आदमी/ रोटी बेलता है/एक आदमी रोटी खाता है
> एक तीसरा आदमी भी है जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता
> है/ वह सिर्फ रोटी से खेलता है।"(71)

सन् 1947 यानी आजादी के पश्चात् हमारे देश की आर्थिक स्थिति बड़ी ही दयनीय रही है। नेताओं ने रामराज्य की घोषणा की थी; लेकिन वह सरकारी पन्नो में ही दबकर रह गई। देश के विभाजन में दंगे-फसाद, गांधी की हत्या, चीनी आक्रमण, पंडित नेहरू व लाल बहादुर शास्त्री की मृत्यु, पाकिस्तानी आक्रमण, श्रीमती इंदिरा गांधी व उनके बेटे राजीव गांधी की हत्याओं ने देश की आर्थिक स्थिति को खोखला बना दिया।

1.23 राजनीतिक युगीन परिवेश : भारत की राजनीतिक इतिहास में प्रमुख रूप से तीन बातें उभरकर सामने आई हैं - पहला रूस की समाजवादी क्रांति 1919, दूसरा 1947 में भारत की उपनिवेशवादी दासता से मुक्ति तथा अंतिम चीन की कृषक क्रांति-1949।

राजनीतिक दृष्टि से भारत 1947 में आजाद हुआ। फलस्वरूप भारत और पाकिस्तान ये दो देश बने। देश कई दुर्घटनाएँ घटी। गांधी की हत्या देश के लिए एक अभिशाप बन गई। देश के पहले प्रधानमंत्री पं. नेहरू के युग में हम प्रवेश कर गए। यह युग ही एक तरह से समस्याओं से घिरासां था। सांप्रदायिक हिंसा की समस्या, शरणार्थियों के पुनर्वास की समस्या, कश्मीर को लेकर समस्या आदि कई समस्याएँ विकराल रूप धारण कर लेती हैं। इस समय देश के राजनीतिक पर्दे पर मुख्य रूप से तीन महापुरु ष थे- पं. जवाहरलाल नेहरू, सरदार भाई पटेल और डॉ. राजेंद्र प्रसाद। इनके विचारों में कहीं भी समानता नहीं थी। अत: श्री दुर्गादास ने कहा है - "जवाहरलाल राष्ट्र के लाड़ले, नए शासक और अल्पसंख्यकों के रक्षक थे। लौह पुरुष पटेल अनिश्चय के उन दिनों में शक्ति के प्रतीक थे। उन्होंने अपने चारों ओर ऐसे तत्त्वों को एकत्र कर लिया था; जिनके द्वारा उनके नेतृत्व में देश ने संगठित होकर एक राष्ट्र का रूप लिया। राजेन्द्र प्रसाद गांधीवादी विनम्रता और नि:स्वार्थ सेवा की भावना के प्रतीक थे।"(72)

धूमिल समकालीन कविता में राजनीतिक चेतना के जाने-माने कवियों में से एक हैं। उनके काव्य में व्यक्तित्व की निजता के परिहार की स्थूल सैद्धांतिकता का आग्रह है; जो उनके सर्जनात्मक व्यक्तित्व एवं कृतित्व का केंद्रीय तत्त्व है और जिसने उन्हें कवि बनने को मजबूर एवं विवश किया; वरना वे एक अनुभवी एवं अच्छे राजनीतिक नेता बन सकते थे। इसमें कोई संदेह नहीं। धूमिल के काव्य में विभिन्न भावानुभूतियों-विचारों के स्वर पाए जाते हैं। 'राजनीति' धूमिल की कविताओं का मूल स्वर है। उनका काव्य-संग्रह 'संसद के सड़क तक' एक जीती-जागती मिसाल बन गई है। वैसे तो आज कविता ने नया रूप

धारण कर लिया है। नेमिचंद जैन के शब्दों में - "हर सार्थक कविता हमारी रोजमर्रा की दुनिया के जाने-पहचाने उपकरणों की सहायता से एक ऐसे संसार की रचना करती है; जो किसी-न-किसी ढंग से किसी-न-किसी सतह पर उस परिचित दुनिया की हमारी पहचान को गहरा या विस्तृत तीखा या नया कर सके।"(73) धूमिल की कविताओं में सम सामयिक राजनीतिक परिस्थितियों का वर्णन पाया जाता है।

कवि धूमिल के जीवन और व्यक्तित्व से राजनीति बहुत गहराई तक जुड़ी हुई है। किसी भी साहित्यकार को राजनीति से दूर नहीं रखा जा सकता है। आजकल राजनीति ही यश, धन, लाभ आदि का साधन हो गई। इस युग के राजनेता अपने आपको देवता समझ बैठे हैं; जिसका प्रभाव समाज-समाज में, घर-घर में और जन-जन के दिलों पर पड़ना स्वाभाविक हो गया। यह सब कवि धूमिल प्रत्यक्ष अपने नेत्रों से देख रहे थे। उनसे रहा नहीं गया और उनके भीतर जो अग्नि दफन थी; वह भभककर ज्वाला का रूप ले ली। यही कारण है कि उनके काव्य में जो सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना का पुट मिलता है, उसके साथ राजनीतिक चेतना का परिचय सहज ही मिल जाता है। धूमिल ही एक ऐसे कवि हुए हैं; जिनको संसदीय राजनीति को सड़क पर लाने का श्रेय जाता है। धूमिल की कविता स्वयं एक जगह सीधी जनता की राजनीति और ललकारनेवाले को संबोधित करती है-

"ओ, क्रांति की मुँहबोली बहन!/जिसकी आँतों में जन्मी
है/उसके लिए रास्ता बन।"(74)

वास्तव में राजनीतिक अव्यवस्था एवं दुराचार ने देश को खोखला बना दिया है। पर धूमिल अपनी प्रगतिशील चेतना से आस्थावादी हैं। अत: उन्होंने कभी-कभी आश्वस्त होते हुए कहा है-

"अब कोई किसी की रोटी नहीं छीनेगा/कोई किसी को नंगा
नहीं करेगा/अब यह जमीन अपनी है/आसमान अपना
है"(75)

ये आश्वासन आज के नेताओं ने आम जनता को दिए हैं। मगर वादें-वादें ही रह गए। शोषक और शोषितों के बीच दरारें बढ़ती गई। उद्योगपतियों ने अपने फायदे की बात देखी और मजदूर आज भी उसी दशा में है; जिस दशा में आजादी के पूर्व था। धूमिल ने सार्वजनिक व्यथा को अपनी व्यथा समझा। राजनीतिक अमानवीयता को देखकर कवि धूमिल को लगने लगा-

"जनतंत्र, त्याग, स्वतंत्रता/ संस्कृति, शांति, मनुष्यता
ये सारे शब्द थे/ सुनहरे वादे थे/ खुशफहम इरादे थे।"(76)

कवि मानते हैं कि सपने केवल सपने ही होते हैं। वे कभी अपने नहीं होते। अर्थात्

नेताओं ने इन सपनों को कभी-साकार करने का प्रयास ही नहीं किया। मोहभंग गांधीवादी नीति की विवशता, लाचारी, भ्रष्टाचार से उपजा मुहावरे का दूसरा नाम है। 'सिर कटे हुए मुर्गे की तरह फड़फड़ाते हुए जनतंत्र में सुबह सिर्फ चमकते रंगों की चालबाजी है।'यहाँ पर आम जनता को आजादी, जनतंत्र और गांधी के नाम पर ठगा जा रहा है। चारों ओर थोथे नारेबाजी और झूठे बयानों की 'चिकन बिरयानी' परोसी जा रही है। भाषण पर राशन नहीं मिलता; बल्कि राशन पर भाषण जरूर मिलता है। इससे पेट की भूख कम नहीं हो सकती। अत: ऐसी राजनीति को देखकर कवि धूमिल का मोहभंग हो जाता है और कह उठते हैं-

> ''उस मुहावरे को समझ गया हूँ/जो आजादी और गांधी के
> नाम पर चल रहा है/जिससे न भूख मिट रही है, न मौसम/
> बदल रहा है लोग बिलबिला रहे हैं(पेड़ों को नंगा करते हुए)पत्ते
> और छाल खा रहे हैं/मर रहे हैं, दान कर रहे हैं/जलसों-
> जुलूसों में भीड़ी की पूरी ईमानदारी से हिस्सा ले रहे हैं।''(77)

आज राजनीति एक मुखौटा बन गई है। किसी को पता तक नहीं चलता कि कौन असली है और कौन नकली। हर कोई गांधीजी की विचारधारा को व्यक्त करता है; जिससे भूख नहीं मिटती। आज के नेता गांधी-टोपी पहनकर सभ्यता का प्रतीक बनने जा रहे हैं।

1.24 धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवेश : स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत देश धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित हुआ था। पाश्चात्य प्रभाव के कारण धर्म एवं संस्कृति में अवमूल्यन होने लगा। डॉ. सरोज मार्कंडेय के शब्दों में - ''अब धर्म जीवन का पर्याय नहीं; वरन् विरासत में प्राप्त एक उपलब्धि भर है। देवी-देवता, रूढ़ियों, अंधविश्वास तथा कर्मकांड का महत्त्व नगण्य होता जा रहा है। भौतिकवादी दर्शन ने ऐहिक जीवन की उपलब्धि को ही सब कुछ मान लिया है। धर्म से पुरोहित वर्ग अथवा ब्राह्मणों का एकाधिकार समाप्त हो चुका है। मंदिर, मस्जिद एवं पूजागृहों के प्रति पूर्वाग्रह की मान्यताएँ बदल गई हैं।''(78)

धूमिल मार्क्सवादी प्रगतिशील चेतना के कवि रहे हैं। उन्होंने धर्म एवं जाति के नाम पर हो रहे बाह्याडम्बर को अच्छी तरह माँप लिया था। धूमिल की प्रगतिशील चेतना पर प्रकाश डालते हुए उनके अनुज कन्हैया पांडेय ने लिखा है- ''वे धर्म के ढोंग में विश्वास नहीं करते थे। चोटी तथा जनेऊ धारण करना वे पसंद नहीं करते थे। छुआछूत को वे नहीं मानते थे। मुसलमान के घर खाना खाने के लिए वे ईद के दिन घर पर खाना नहीं खाते थे। ईसाइयों के घर भी खाना खाने में वे नहीं हिचकते थे। चमार तथा ब्राह्मण उनके लिए बराबर थे, बल्कि ईमानदार तथा मेहनतकश उनके लिए बेईमान तथा दूसरों की कमाई पर जीनेवाले ब्राह्मण से कई लाख गुना अच्छा था, उन्हें मानवतावाद अच्छा लगता था। वे देखने में एक साधारण आदमी जान पड़ते थे।''(79) धूमिल ने उन धार्मिक ठेकेदारों- शोषण करनेवाले लोगों पर जो धर्म के नाम पर पौसरा चलाते फिरते हैं- व्यंग्य करते हुए कहा

है-

"जो जाति/ ठंड के माकूल दिनों में आदमी का खून/खींच
लेती है, गर्मी के मौसम में/पौसरा चलाती है।"(80)

स्वतंत्रता प्राप्ति के पचपन वर्षों के बाद भी देश की स्थिति नहीं बदली। सातवें दशक के कवि धूमिल को प्रतीत होता था कि चारों तरफ का वातावरण दूषित हो गया है। इस दूषित वातावरण में कवि वीरान सड़कों पर टूटे हुए पुलों के नीचे खोई हुई आजादी का अर्थ ढूँढ रहे हैं। कवि धूमिल को यकीन हो गया कि आज जितने भी धार्मिक-सांस्कृतिक एवं साहित्यिक लोग हैं; वे सभी सहानुभूति, आत्मीयता, प्यार, अहिंसा, ईमानदारी और विवेक की आड़ में एक-दूसरे को छल रहे हैं। अत: कवि धूमिल कह उठते हैं-

"सिर्फ एक शोर है/ जिसमें कानों के पर्दे फटे जा रहे हैं/
शासन सुरक्षा रोजगार शिक्षा/राष्ट्रधर्म देशहित हिंसा अहिंसा /
सैन्यशक्ति देशभक्ति आजादी वीसा/ वाद बिरादरी भूख भीख
भाषा/शांति क्रांति शीतयुद्ध एटमबम सीमा/एकता सीढ़ियाँ
साहित्यिक पीढ़ियाँ, निराशा/ झाँय-झाँय, खाँय-खाँय, हाय-
हाय, साँय-साँस.../ मैंने देखा हर तरफ/रंग बिरंगे झंडे फहरा
रहे हैं/गिरगिट की तरह रंग बदलते हुए/गुट से गुट टकरा
रहे हैं/एक-दूसरे को दुर-दुर बिल-बिल कर रहे हैं।"(81)

कवि धूमिल तो बचपन से ही पिता शिवनायक की तरह भूत-प्रेत व पूजा-पाठ आदि में विश्वास नहीं करते थे। धूमिल की नास्तिक प्रवृत्ति की ओर ईशारा करते हुए राजशेखर ने कहा है कि "बचपन का जिद्दी धूमिल जात-पांत, भूत-प्रेत, और धार्मिक अंधविश्वासों में अपनी अनास्था के कारण पिता की दृष्टि में बराबर नास्तिक रहा है।"(82)

धूमिल साहित्यिक मित्र-मंडली में मार्क्सवादी विचारधारा के आलोचक चंद्रवली सिंह, नामवर सिंह आदि के संपर्क में हमेशा रहते थे। मार्क्सवादी विचारधारा पर बतियाते चर्चा करते रहते थे। धूमिल को साहित्यिक संस्कार इन्हीं लोगों से मिला; जो जीवन के अंतिम क्षणों तक बरकरार था। राहुल के शब्दों में "अपनी मार्क्सवादी वैचारिकता के कारण धूमिल धर्म और ईश्वर में आस्था को अवैज्ञानिक और प्रतिक्रियावादी मानते थे। उनकी मान्यता थी कि धर्म के मार्ग पर भाग्यवाद जहालत और अंधविश्वास को बढ़ावा देता है। इससे जनता में जड़ता और दब्बूपन की भावना बढ़ती है। कार्ल मार्क्स ने धर्म को जनता के लिए अफीम की तरह मादक बताया था। प्रगतिवादी कवियों ने भी उसे उसी दृष्टि से चित्रित किया। जनता के भाग्यवाद और धर्मभीरुता के साथ-साथ उन्होंने पंडे और पुरोहितों की धूर्तता और मक्कारी का भी पर्दाफाश किया है।"(83) वैसे मार्क्सवाद का बीज धूमिल के भीतर बचपन से ही पनप रहा था। आगे चलकर मार्क्सवादी आलोचकों द्वारा उस बीज को विकसित करने में काफी मदद मिली। मानव समाज का कर्तव्य है कि वह धर्म को

सुरक्षित बनाए रखे। यही कारण है कि वह आज भी धार्मिक प्रपंचों-षड्यंत्रों में फँसा हुआ है। वह इन्हीं कुचक्रों में पड़कर भ्रमित हो गया है। अत: अब उसे धर्म से वितृष्णा हो गई है। कवि धूमिल कहते हैं -

''भूतकालीन क्रियाओं से/ घिरे हुए लोग/ समय की अर्थी
उठाये चल रहे हैं।''(84)

आज सांप्रदायिकता के नाम पर जगह-जगह मार-काट हो रहे हैं। कभी-कभी यह सांप्रदायिकता धर्म के नाम पर विकृत एवं घिनौना रूप धारण कर लेता है। ऐसे में धूमिल कह उठते हैं-

''वे खेतों में भूख और शहरों में /अफवाहों के पुलिंदे फेंकते
हैं / देश और धर्म और नैतिकता की / दुहाई देकर/ कुछ
लोगों की सुविधा /दूसरों की 'हाय' पर सेंकते हैं।''(85)

यह सांप्रदायिकता ही धर्म का घृणित एवं अमानवीय पक्ष रहा है। अनिल राकेशी के शब्दों में - ''सांप्रदायिकता मनुष्य से उसका मनुष्यत्व छीनकर उसको राक्षस बना देती है। सच तो यह है कि मानव-प्रेम, भाईचारा, सहिष्णुता, करुणा, संयम, न्याय और विश्वदृष्टि आदि जिन मूल्यों पर आदर्शों के पोषण का दावा धर्म करता है, उन सभी के विरुद्ध सांप्रदायिकता खड़ी मिलती है। वह धर्म का नकारात्मक पक्ष है।''(86) आज मानव धर्म ही सच्चा धर्म माना जाता है। दया, करुणा, प्रेम-स्नेह तथा मानवीय संवेदना ही ईश्वर प्राप्ति के मुख्य साधन हैं। कवि धूमिल इन भावनाओं से भलि-भाँति परिचित हो गए थे। जिसका प्रमाण उनका काव्य संग्रह 'संसद से सड़क तक', 'कल सुनना मुझे' और 'सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र' है।

1.25 साहित्यिक युगीन परिवेश : हर साहित्यकार का परिवेश उसके युग के अनुरूप होता है। वह अपनी युगीन परिस्थितियों से अवगत होकर ही तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिस्थितियों का चित्रण अपने साहित्य में करता है। यद्यपि धूमिल का साहित्यिक जीवन बहुत अल्प समय रहा। लेकिन अल्प समय में ही उनका साहित्य काफी परिपक्व सोच का रहा है। साहित्य जगत् में अज्ञेय, मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, शमशेर बहादुर, गिरिजा कुमार माथुर, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि की भाँति वे लोकप्रिय नहीं हो पाए; पर धूमिल का योगदान इन साहित्यकारों से किसी भी भाँति कम नहीं है। आज धूमिल की कविताएँ लगभग सभी विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जा रही हैं। उनकी कविताओं की पंक्तियाँ लोगों के जुबान पर ऐसी चढ़ गई जैसे कबीर और तुलसीदास के दोहे और चौपाइयाँ।

धूमिल के तत्कालीन साहित्यिक परिवेश के संदर्भ में डॉ. रोहिताश्व का कथन है - ''पुनरुत्थान के छद्म में प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ न केवल किसिम-किसिम की कविता, अकविता, सप्तकों, त्रयियों में अभिव्यक्त होती है; बल्कि सरकारी संरक्षण में नए कलावाद

के उत्थान की घोषणा करती हुई नामवर सिंह के विचारानुसार प्रेमचंद की नोटीस न लेकर मुक्तिबोध का इस्तेमाल करती हैं।''(87) धूमिल का साहित्यिक परिवेश नई कविता के उदयकाल और अकविता आंदोलन के उभार का रहा है; जो समकालीन कविता का पूर्व पक्ष है। नई कविता आंदोलन में दो विरोधी दल साहित्यिक सांस्कृतिक स्तर पर सक्रिय रहे हैं - एक प्रयोगवादी परिमल दल और दूसरा प्रगतिशील चेतना का पक्षधर दल।

शमशेर बहादुर सिंह का अभिमत है - ''इलाहाबाद में तब परिमल नाम की साहित्यिक संस्था का जोर था जब यह प्रगतिशील लेखक संघ के मुकाबले में सक्रिय थी...। परिमल के संचालन में उस पीढ़ी के अग्रज विजयदेव नारायण साही, डॉ रघुवंश और नई कविता के संपादक डॉ. जगदीश गुप्त, डॉ. धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा, और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का हाथ था।''(88)

अत: उस काल की आलोचना व आलोचना के खेल की राजनीति विरोधी रूपों में स्पष्ट है। पर उस ''प्रगति व परिमल के विरोध में 'मलयज' जैसे तत्कालीन युवा लोगों का विचार भी कम प्रासंगिक नहीं रहा है कि परिमल की नई विद्यार्थी पीढ़ी प्रगतिवाद की विरोधी है। वास्तविकता तो यह है कि उसके इस समर्थन पर या विरोध में कोई दिलचस्पी नहीं है।''(89) डॉ. रोहिताश्व के शब्दों में ''तत्कालीन काव्यालोचना में सरलीकरण, सपाट बयानी और विसंगति बोध पर सृजनात्मक विडंबनाएँ वर्तमान दौर की समकालीन कविता के समान नहीं थी; जहाँ रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, रमेश कुन्तल मेघ, विश्वंभरनाथ उपाध्याय आदि की सैद्धांतिक मार्क्सवादी सौंदर्य बोध की स्थापनाएँ हैं और प्रायोगिक काव्य-सृजना का विशाल कैनवास भी।(90)

धूमिल ने अपने काव्य कर्म का आरंभ गीत-लेखन से किया था और शुरुआती दौर में अकवितावादी रचनाकारों के संपर्क में भी आए। काशीनाथ सिंह के साक्ष्य से कहा जा सकता है कि - ''उन दिनों कविता में राजकमल चौधरी, मलयराय चौधरी आदि भूखी पीढ़ी के कवियों ने जोर पकड़ा था, नागानंद के सत्संग ने उसे गिन्सबर्ग और दूसरे बीट कवियों के साहित्य के समीप किया था; जिसके प्रभाव के छर्रे 'योनि, चूँची, गाँड़, मासिकधर्म, संभोग, आदि शब्दों के प्रयोग में बाढ़ तक दिखाई पड़ते हैं। लेकिन भूखी पीढ़ी का 'प्रचारमूल्य' और 'अर्थहीनता' तथा 'नकारवाद' का जीवन-दर्शन उसे पूरी तरह अपनी लपेट में ले, इसके पहले ही नामवर सिंह का परिचय उसे मार्क्सवाद की तरफ ले आया।''(91) यह सच है कि प्रारंभ में उनकी रुचि मार्क्सवाद में नही थी; किंतु बाद में मार्क्सवादी साहित्य में बढ़ी; खास तौर से हिंदी की प्रगतिशील कविता और कविता की प्रगतिशील समीक्षा में।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। इसी दर्पण को साफ सुथरा बनाए रखने के लिए साहित्यिक बहसों में विवादास्पद मुद्रा के लिए धूमिल चर्चित थे। डॉ. अवधेश प्रधान

के शब्दों में ''बनारस में प्रगतिशील धारा के प्रतिनिधि कवि थे - त्रिलोचन शास्त्री और प्रतिनिधि आलोचक चंद्रबली सिंह। धूमिल नई क्रांतिकारी धारा के, नई साहित्यिक पीढ़ी के अगुआ थे । वे दोनों से बराबर मिलते रहते। उनसे साहित्य और राजनीति पर बहस करते। कठोर जीवन-संघर्ष के बीच त्रिलोचन की समझौताहीन चारित्रिक दृढ़ता और अदम्य साहित्यनिष्ठा धूमिल को विशेष रूप से प्रभावित करती।''(92) धूमिल के साहित्यिक युगीन परिवेश में विजयशंकर मल्ल, प्रो. चंद्रवली सिंह, केदारनाथ अग्रवाल, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, नागानंद मुक्तिकंठ, त्रिलोचन, काशीनाथ सिंह, नामवर सिंह, विद्यानिवास मिश्र, शुकदेव सिंह, बच्चन सिंह, आदि साहित्यकार-आलोचकों के साहित्यिक कार्यों में तहलका मचा हुआ था। इन सभी की मित्रता धूमिल से हो गई थी। धूमिल कहीं से भी जब इन मित्रों के बीच पहुँचते; तो भक्तिकाल से लेकर आधुनिकाल तक की चर्चा करते हुए अघाते नहीं थे।

सन् 1972 में धूमिल, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन और नागार्जुन पर प्रगतिशील काव्यधारा पर जनता के संघर्ष में साहित्यकार की भूमिका पर गंभीरता से सोचने लगे थे। धूमिल बहुत बड़े साहित्यिक प्रेमी थे। हर गोष्ठियों में वे अपनी भागीदारी से माहौल को गरमा-गरम बना देते। उन्हीं के कारण तीन-तीन दिनों तक गोष्ठियाँ चलती रहती थीं। धूमिल समकालीन कविता के एक क्रांतिकारी कवि थे। अपने साहित्यिक विचार को अपने मित्र-मंडलियों तक पहुँचाने के लिए धूमिल ने 'त्रिलोचन अध्ययन केंद्र' खोला और पत्रिका की योजना भी बनाई। डॉ. अवधेश प्रधान के शब्दों में ''1972 के अगस्त में धूमिल ने त्रिलोचन के नाम पर एक मंच स्थापित करने की योजना बनाई। इसका नाम भी सोच लिया- 'त्रिलोचन अध्ययन केंद्र' याने 'त्रिके'। इसका आदर्श वाक्य रहेगा साहित्यिक और सामाजिक सक्रियता के लिए प्रतिबद्ध। सोचा गया कि साहित्यिक और सामाजिक समस्याओं पर खुली बहसें होंगी और एक त्रैमासिक पत्रिका निकाली जाएगी जिसका नाम होगा 'विपक्ष'.. पत्रिका तो नहीं निकली; लेकिन 'त्रिके' की जो पहली गोष्ठी 25 दिसम्बर 1972 को हुई; वह कई दृष्टियों से ऐतिहासिक और महत्त्वपूर्ण थी।... 25 दिसम्बर की शाम को तुलसी पुस्तकालय पुरानी और नई पीढ़ी के लेखकों, पत्रकारों, अध्यापकों और साहित्य प्रेमियों से खचाखच भरा था। गोष्ठी का संचालन सूत्र धूमिल ने संभाला।''(93)

धूमिल का जिंदगी भर साहित्यिक बहस में किसी से भी बनी नहीं ; क्योंकि उनकी बहस में एक तीखापन रहता था। तीखापन के कारण उनका लोगों से संबंध बिगड़ जाया करता था। यहाँ तक कि अपने परममित्र कहानीकार काशीनाथ सिंह को भी उन्होंने कभी नहीं बख्शा। इस संदर्भ में वाचस्पति ने कहा है - ''बहस में उनसे अनबन हो जाती थी। धूमिल हफ्तों-महीनों काशी के यहाँ नहीं जाते थे। जीवन के अंतिम क्षणों में यही हुआ भी। काशीनाथ सिंह के बहुत अधिक संपर्क में रहनेवाले समकालीन जनमत के संपादक महेश्वरशरण उपाध्याय और एक कुमार संभवजी थे। धूमिल इनसे बहुत ही चिढ़ते थे; क्योंकि

ये दोनों पार्टी लाइन के हिसाब से उनका बहुत उपहास करते थे।''(94)

वाराणसी के साहित्यकारों में धूमिल की 'पर्सनालिटी' दबंग किस्म की मानी जाती थी। वे बहुत पढ़ते -लिखते थे। इससे उनके पास अच्छी जानकारी हो गई थी। वे बड़े दबंग टाइप के 'इंस्ट्रक्टर' थे। 'सोसायटी' में उनकी अच्छी जान-पहचान हो गई थी। बड़े-बूढ़े हर तरह के उनके साथी थे। शिवप्रसाद सिंह, काशीनाथ सिंह, नामवर सिंह, दूधनाथ सिंह, केदारनाथ सिंह, डॉ. रामचंद्र शुक्ल (कला समीक्षक) चंद्रबली सिंह (अंग्रेजी के प्रो.) आदि उनके मित्र बन गए थे। अब वे किसी से भी डरते नहीं थे। धूमिल के अनुज कन्हैया पांडेय के शब्दों में - ''यदि कोई अपने आप को गुंडा समझता तो भैया भी किसी गुंडे से कम अपने आपको नहीं समझते थे। वे अपनी बात से उनको मारते थे। उनका दिमाग बहुत तेज था। यदि आई. टी. आई. का कोई विद्यार्थी बहुत बदमाश होता; तो वे अपने दिमाग से उसे वश में कर लेते थे।''(95) धूमिल कभी भी किसी को जल्दी बोलने का मौका नहीं देते थे। वह हमेशा एक 'धासु' कवि के रूप में जाने-पहचाने जाते थे।

राजशेखर का कथन उचित है कि - ''साहित्यकारों की जमात से घिरा हुआ धूमिल, अपनी खनकदार बुलंद आवाज के कारण दूर से पहचान में आ जाता था। आंतरिक तनाव की स्थिति में बात-बात में मूँछ पर ताव देकर आस्तीन चढ़ा लेना उसकी एक खास आदत बन गई थी। वह अपने सामने बैठे व्यक्ति के सिर पर अकस्मात कोई मुहावरेदार वाक्य पटक देता था और जब सामने बैठा आदमी, अपने नियंत्रण से बाहर आकर बकने लगता था, तब घनी मूँछों पर हाथ फेरकर धूमिल हल्के-से मुस्कराता था। ऐसे मौकों पर उसकी आँखों में एक खास किस्म की चमक पैदा हो जाती थी और वह अपने ताबड़तोड़ हमले से प्रतिपक्षी को उसके वक्तव्यों के अंतर्विरोधों द्वारा धराशायी कर देता था।''(96)

कवि धूमिल जनता के पक्षधर कवि रहे हैं। उन्होंने हमेशा जनभाषा में ही काव्यलेखन किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल मानते हैं कि ''हृदय की मुक्ति -साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं। इसी साधना को हम भावयोग कहते हैं और इसे कर्मयोग और ज्ञानयोग का समकक्ष मानते हैं।''(97) अर्थात् काव्य वाणी जनभाषा में हो। किसान, देहात, ग्रामीण जीवन उनके काव्य के प्रमुख विषय रहे हैं। इस दृष्टि से धूमिल का काव्य-संसार बहुआयामी है। ग्रामीण और शहरी जीवन उनके काव्य में जिस ढंग से व्यक्त हुआ है, उसकी भीतरी दुनिया में प्रवेश करते समय व्यंग्य एवं करुणा की प्रतीति होती है; जैसे-

''कैसे आदमी हो/ अपनी जाति पर थूकते हो।''(98)

यह सच है कि संसार में एक ही जाति है; वह है मनुष्य जाति । अन्य जाति एवं धर्म इंसान ने ही बनाए हैं। धूमिल संपूर्ण मानव जाति से दया, सहानुभूति एवं करुणा का व्यवहार बरतते हैं। अत: वे उनका अपमान करना पसंद नहीं करते।

सारांशत: हम कह सकते हैं कि धूमिल ने हिंदी साहित्य को पर्याप्त समृद्ध किया है। भले ही उनके तीन ही काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं। साहित्य ने उनके व्यक्तित्व को संवेदनशील और मानवीय बनाया है। वे अपनी कविता में कहीं खुद को खो जाते हैं और कहीं खुद को खोजते हैं और कहीं खुद को मानव मूल्यों से जोड़ते हैं और मानवीय संघर्ष में, वर्ग चेतना भावना से अपनी प्रतिबद्धता निम्नवर्ग के प्रति जाहिर करते हैं। धूमिल का काव्य बहुआयामी है। उनके काव्य के अनेक पहलू हैं। उन्होंने युगीन समस्याओं को अनेक रूपों में प्रस्तुत किया है। उनकी कविताएँ रोटी समस्या, मानवीय संवेदना- पीड़ा, बेरोजगारी, शहरीकरण की समस्या, औद्योगिकीकरण एवं व्यवसाय की समस्या से सामाजिक एवं आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याओं की झलक प्रस्तुत करती हैं; जो परिवेशगत विसंगतियों की पहचान बनाती है।

1.3 धूमिल का कृतित्व : एक विहंगावलोकन

1.31 गीत : धूमिल की काव्य-यात्रा गीत से प्रारंभ होती है। धूमिल के गीत रचनाएँ बनारस की 'चाँद सितारे' नामक मासिक पत्रिका में प्रकाशित होते थे। प्रमाण तौर पर उनकी पहली गीत इसी पत्रिका के मई सन् 1961 के अंक में 'यहाँ हर एक आँचल से कफन तैयार होता है' शीर्षक से छपी मिलती है। आगे चलकर यह पत्रिका 'नीहार' के नाम से प्रकाशित होने लगी। डॉ. रत्नशंकर पांडेय के अनुसार - ''नीहार सिकरौल (वाराणसी) से छपती थी। 'नीहार' और 'चाँद-सितारे' के उपलब्ध अंकों में मंमथनाथ गुप्त, शिवमंगल सिंह 'सुमन', केदारनाथ अग्रवाल प्रभृति लोगों की रचनाएँ छपी थी। पहली बार धूमिल जी इसी पत्रिका से जाने गए। यह पत्रिका 1961-62 तक छपी, बाद में बंद हो गई।''(99)

'नीहार' मासिक पत्रिका नवम्बर 1961 वर्ष-1 अंक-5 के अनुक्रम में देखने से पता चला कि (उनके गीतों में उनकी प्रसिद्ध गीत; जो प्राय: अपने मित्र मंडली के बीच सुनाया करते थे।) ''बांसुरी जल गई...'' शीर्षक से उनकी दूसरी गीत रचना भी पृष्ठ संख्या 73 में छपी मिलती है; लेकिन जब पन्ना उलट कर देखा गया तो उसमें वह पन्ना ही संकलित नहीं किया गया था। ये दोनों गीत 'धूमिल' के नाम से प्रकाशित थे। शायद सुदामा पांडेय ने 'धूमिल' उपनाम अपने गीतकार के लिए रखा था।

धूमिल के ज्येष्ठ पुत्र डॉ. रत्नशंकर पांडेय के अनुसार- ''वे अपना उपनाम 'धूमिल' कब से लिखने लगे, इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है। 1958 ई. वी. की प्राप्त प्रथम पांडुलिपि में उन्होंने कहीं-कहीं 'सुदामा पांडेय' तथा कहीं-कहीं 'धूमिल' भी लिखा है।''(100) सुदामा पांडेय का साहित्यिक नाम 'धूमिल' था। उनके कवि और साहित्यिक मित्र मंडली इसी नाम से ज्यादा परिचित थे। उन्होंने अपना नाम 'धूमिल' बहुत ही सोच-समझकर रखा था। इसके पीछे उनके अनेक तर्क हुआ करते थे। धूमिल ने वेणुगोपाल के पत्र का जवाब देते हुए एक

तर्क दिया है- ''हिंदी का सौभाग्य है कि हमारे यहाँ रचनाकारों के नाम काफी वजनी और चमकदार हैं। सारे नाम 'देव-नाम' हैं। कुछ को छोड़ तमाम लोगों के नाम देवताओं के 'प्रसाद' या सीधे उनके नामों के साथ अगल-बगल नत्थी हैं। उदाहरण के लिए वाराणसी, प्रयाग, पटना, दिल्ली या अन्य जगहों के परिचय छपित नामों को देख लें, बात साफ हो जायेगी। किंतु उनकी रचनाएँ - आह ! उन्हें पढ़ते वक्त , मेरा निवेदन है कि उनके नामों की महिमा 'रचना' में सम्मिलित न करें, दु:ख होगा। निराशा होगी।''

सुदामा पांडेय चमकना नहीं चाहते थे, शायद इसीलिए उन्होंने अपना नाम 'धूमिल' रखा। यह नाम आज हिंदी जगत में इतना प्रचलित हो गया, इतना चमक गया है कि कोई भी साहित्यकार- रचनाकार बिना धूमिल का नाम लिए आगे नहीं बढ़ सकता। 'धूमिल' शब्द अपने आप में वजनी एवं चमकदार तो नहीं है; लेकिन उनकी रचनाओं ने इस शब्द को इतना वजनी एवं चमकदार बना दिया है कि वह पूरे हिंदी साहित्य जगत में सूर्य की तरह अपने आप दीप्तमान है। सुदामा पांडेय की प्रारंभिक गीत रचनाएँ 'धूमिल' के नाम से प्रकाशित होती थीं। यहाँ तक कि उन्होंने 'बांसुरी जल गई..' शीर्षक से गीतों का एक संग्रह भी छपवाने की योजना बनाई थी। परिक्षेत्र (धूमिल विशेषांक) पत्रिका के अनुसार ''सन् 1962 के आस-पास 'बांसुरी जल गई' नाम से एक गीत-संग्रह छपाने की योजना थी। लेकिन यह योजना ही रह गई, संग्रह नहीं छपा। गोविंद उपाध्याय ने 'आलोचना' के धूमिल विशेषांक में तथा रमेश कुन्तल मेघ ने धूमिल के पुत्र, प्रिय रत्नशंकर को लिखे एक पत्र में 'बांसुरी जल गई' के छपने की सूचना दी है। लेकिन यह एक दम गलत बात है। धूमिल की गीत-संग्रह कभी छपा नहीं।''[101] डॉ. विश्वनाथ प्रसाद के अनुसार - ''धूमिल की काव्य-यात्रा गीत से आरंभ होती है। ये गीत दो प्रकार के हैं-पहला कुछ गीत उनके निजत्व से जुड़े हुए हैं; जिनमें प्रेम संबंधी रचनाएँ हैं दूसरे कुछ ऐसे गीत हैं; जिनमें किसान और किसानों की जिंदगी है। खेत, खलिहान, हल और बैल हैं। गाँव के लोग और उनका जीवन है तथा गांव की प्रकृति है। ये सभी बातें उनके आरंभिक गीतों में अधिक आई हैं।''[102] बाद के गीतों में प्रेम और प्रकृति का सौंदर्य सबसे अधिक परिलक्षित होता है। प्रेम संबंधी धूमिल का एक गीत जो 'नीहार' में छपी है - द्रष्टव्य है-

''पूछता भँवरा कली से फूल से /यह अधूरा प्यार फिर किसके
लिए /××रात मुझे केश फूलों की महक/ताजगी को छोड़
बासी हो गई / पी गई मुस्कान की प्याली उठा /आसुओं
की धार प्यासी हो गई''

सभी गीतों में धूमिल के भावुक व्यक्तित्व की गहरी छाप झलकती हुई दिखाती है। इनमें यथार्थ से उत्पन्न जीवनानुभूतियों के दर्शन नहीं मिलते। यहाँ रोमानी मनोवृत्ति की प्रधानता अधिक है। कहीं-कहीं किसानों व श्रमिक मजदूरों के प्रति गहरी सहानुभूति प्रदर्शित होती है। डॉ. रतनकुमार पांडेय के अनुसार - ''धूमिल के गीत धरती के यथार्थ

से उसी प्रकार जुड़े हैं; जिस प्रकार कि उनकी कविताएँ श्रमिकों की दयनीय दशा देखकर चित्कार उठती हैं।''(103) 'श्रमिक' शीर्षक गीत में धूमिल का भोगा हुआ जीवंत यथार्थ परिलक्षित होता है-

''खड़ी बरौनी, फैले सीने, फूले हुए नथुने/ लूँ जैसी है साँस
धधकती/उमड़ी सूखी मांस पेशिया / ये दधीचि की बज्र
हड्डियाँ /पसली में धँस, उमड़ कसकतीं।''(104)

धूमिल गीत से जब हटते हैं; तो सीधे मुक्तक और कविता पर टिकते हैं। मुक्तकों की संख्या अधिक नहीं है; जबकि कविताओं की संख्या अधिक है। उनके मुक्तक और कविताएँ बलिया से प्रकाशित 'कुटज' पत्रिका के सन्1962-63 के अंक में प्रमाण तौर से देखे जा सकते हैं। उदाहरणार्थ धूमिल का एक मुक्तक द्रष्टव्य है-

गीत ढलकर आँसुओं में वह न जाये / प्यार को नि:सार कोई
कह न जाये। हर कली से आज बस इतना हो-/ फूल का
यौवन कुंवारा रह न जाये।

डॉ. रत्नशंकर पांडेय के बातचीत से पता चला कि 'बासंती' मई 1962 के अंक में धूमिल की एक कविता 'फागुन' छपी है। यह कविता के स्वरूप में छपी उनकी पहली कविता है; जिसकी प्रशंसा में जून 62 के अंक में अलवर राजस्थान के कवि-लेखक श्री जुगमंदिर तायल ने लिखा है कि मई 62 के अंक में 18 कविता गीत हैं। जिसमें मुझे दो ही अच्छी लग पाई- धूमिल का फागुन और ...। यहीं उनके समय हैं जब; धूमिल गीत से कविता में प्रवेश करते हैं। अपने लिखे गीत उनके लिए बड़े ही जल्दी पुराने पड़ गए। पुराने गीतों की तर्ज पर लिखना बिल्कुल बंद कर दिया। यहाँ तक कि पूरे जीवन में फिर उस तरह की गीतोंवाली तुकबंदियाँ देखने को नहीं मिलती। अपने ही बनाए गीतों की पुरानी लयात्मकता को पूर्ण रूप से त्यागने लगे।

1.32 काव्य : कवि धूमिल के कुल तीन काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं - पहला 'संसद से सड़क तक' (सन् 1972) उनके जीवनकाल में तथा अंतिम दो 'कल सुनना मुझे' सन् 1977 में और 'सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र' सन् 1984 में।

'संसद से सड़क तक' काव्य संग्रह धूमिल के जीवनकाल की सबसे बड़ी उपलब्धि रही है। इस काव्य-संग्रह में धूमिल की सन् 1966 से लेकर सन् 1970 के बीच की प्रतिनिधि कविताएँ संकलित हैं। 'कविता', 'बीस साल बाद', 'जनतंत्र के सूर्योदय में', 'अकाल दर्शन, 'वसन्त', 'एकांत कथा', 'शांति पाठ', 'उस औरत की बगल में लेटकर', 'राजकमल चौधरी के लिए', 'मोचीराम', 'शहर में सूर्यास्त', 'प्रौढ शिक्षा', 'मकान', 'एक आदमी', 'शहर का व्याकरण', 'पतझड़', 'कवि 1970', 'नक्सलवादी', 'कुत्ता', 'शहर, शाम और एक बूढ़ा : मैं', 'सच्चीबात', 'हत्यारी संभावनाओं के नीचे', 'मुनासिब कारवाही', 'भाषा

की रात' तथा 'पटकथा', कुल पच्चीस कविताएँ इस संग्रह में संकलित हैं। सभी कविताएँ विशेष मुद्दे के कारण चर्चित बन गई हैं। इन कविताओं में कहीं आजादी की चिंता अभिव्यक्त है; तो कहीं जनतंत्र की दुर्व्यवस्था का यथार्थपरक चित्रण परिलक्षित होता है; कहीं वासना की समस्या है; तो कहीं रोटी व भूख आदि की समस्या। कहीं कविता क्या है? को लेकर कवि धूमिल ज्यादा जागरूक और सतर्क दिखाई पड़ते हैं।

'कल सुनना मुझे' काव्य संग्रह का महत्त्व इस दृष्टि से है कि वह धूमिल के काव्य-विकास को समझने में मदद करता है। इस संग्रह पर उन्हें सन्1979 में साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिला है। इस संग्रह में संकलित सभी कविताएँ युगबोध की यथार्थता को चित्रित करती हुई प्रतीत होती हैं। 'जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु पर', 'आस्था', 'दस्तक', 'देश-प्रेम : मेरे लिए', 'किस्सा जनतंत्र', 'प्रजातंत्र के विरुद्ध', 'कविता श्री काकुलम', 'आतिश के अनार-सी वह लड़की', 'मुक्ति के तुरंत बाद', 'एक कविता : कुछ सूचनाएँ', 'सुदूर पूर्व में', 'रोटी और संसद', 'लेनिन का सिर', 'शब्द जहाँ सक्रिय हैं', 'अंतर', 'बारिश में भींग कर', 'दूसरे का घर', 'कल', 'दिनचर्या', 'नगर-कथा', 'गृहस्थी : चार आयाम', 'सापेक्ष्य-संवेदन', 'युवा सदी गाती है', 'उसके बारे में', 'खेवली', 'खून के बारे में कविता', 'मैं हूँ', 'मेरी कविता', 'आलोचक', 'कविता के द्वारा हस्तक्षेप', 'आज मैं लड़ रहा हूँ', 'पराजय बोध', 'मृत्यु-चिंता', 'प्रवेश पत्र', 'गाँव में कीर्तन', 'ओ वैरागी: पं. शांतिप्रिय द्विवेदी' तथा 'धूमिल की अंतिम कविता' ये कुल 37 कविताएँ संकलित हैं।

इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ पारिवारिक हैं। इस संग्रह की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए डॉ. मनोज सोनकर ने कहा है- ''कवि के कविता संबंधी विचारों में गर्वोक्ति का भी पुट है। इस संकलन में, बहुत ही साफ शब्दों में धूमिल ने 'वर्ग संघर्ष' में अपनी दृढ़ आस्था जतलाई है और मार्क्सवाद की ओर अपने झुकाव को पुख्ता किया है। गाँव से संबंधित कविताओं में सच्चाई है। इस संकलन के शिल्प में प्रशंसनीय सादगी है, सपाट बयानी है, तड़क-भड़क नहीं है। धूमिल ने इस संकलन में सायास चौंकाने का प्रयास भी नहीं किया है।'' सारांशत: कहा जा सकता है कि उनका पहला काव्य संग्रह 'संसद से सड़क तक' बरसात में उफनी पहाड़ी नदी है और दूसरा काव्य संग्रह 'कल सुनना मुझे' गर्मी-ग्रस्त मैदानी नदी है।

'सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र' धूमिल का तीसरा काव्य-संग्रह है। धूमिल के ज्येष्ठ पुत्र डॉ. रत्नशंकर पांडेय के द्वारा सन् 1970 के बाद की चुनी हुई 59 महत्त्वपूर्ण कविताओं का संकलन किया गया है। इस संकलन की कविताओं में कहीं राजनीति है, कहीं संघर्ष चेतना है, कहीं 'हरितक्रांति' की विफलता का जिक्र है। कहीं अभावग्रस्त में जीता हुआ कवि का परिवार है, तथा कहीं विपदाग्रस्त किसान व मजदूर हैं। अधिकांश कविताओं में भूख की समस्या का अंकन किया गया है।

उक्त तीनों काव्य-संग्रहों की रचनाएँ सोद्देश्यपूर्ण एवं यथार्थपरक हैं। इन रचनाओं की यथार्थतता पर प्रकाश डालते हुए डॉ. अरविन्द पाण्डेय ने कहा है - ''तत्कालीन संदर्भों

को यथार्थ के धरातल पर पेश करके व्यंग्य, गुस्सा, खीझ तक अपने आपको उन्होंने सीमित नहीं रखा; बल्कि एक राह भी संकेतित की। उनके वक्तव्यों की सार्थकता के प्रति कोई विवाद है ही नहीं। युगीन समस्याओं का लेखा-जोखा, मूल्यहीनता की स्थिति वैयक्तिक विवशता आदि उनकी कविताओं में विद्रोही स्वर में उपस्थित हैं। धूमिल की काव्य-यात्रा एक तलाश है; जो निरंतर गतिशील है; प्रजातंत्र एक मूल्य है, जो ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक बोध को उभारता है।'' (105) 'संसद से सड़क तक', 'कल सुनना मुझे' तथा 'सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र' धूमिल के इन सभी काव्यसंग्रहों की कविताएँ जिस काव्य- संसार का साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं; वह कवि की अपने परिवेश से संपृक्ति तथा जिंदगी की चुनौतियों को स्वीकार करने की मानसिकता से निर्मित है। धूमिल की कविताओं का अंतर्जगत कहीं नितांत निजी अनुभूतियों, आत्म संघर्षों और उलझनों की बारीकियों से अनुप्रेरित है; तो कहीं उनकी अनुभूतियों के दायरे में संपूर्ण सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक वैषम्य की उलझनें समाहित हो जाती हैं।

कवि धूमिल का चौथा प्रतिनिधि काव्य-संग्रह डॉ. शुकदेव सिंह द्वारा संपादित 'धूमिल की कविताएँ' के नाम से प्रकाशित किया गया है। इसमें कुल सत्ताइस कविताएँ संग्रहीत हैं। यह संग्रह कोई नया संकलन न होकर उनकी चुनी हुई प्रतिनिधि प्रकाशित कविताओं का संग्रह मात्र है।

कवि धूमिल समकालीन हिंदी कविता के क्षेत्र में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर के रूप में जाने-पहचाने जाते हैं। वस्तुत: उनके बिना समकालीन हिंदी कविता की चर्चा अधूरी रह जाती है। उनकी रचनात्मक भाव-भूमि हिंदी कविता में लोकजीवन के यथार्थवादी कवियों की परंपरा से गहराई के साथ जुड़ी हुई है। आधुनिक हिंदी की इस गौरवशाली परंपरा की शुरुआत भारतेंदु से हुई है। फिर यह छायावादी कवि निराला से होते हुए मुक्तिबोध, बाबा नार्गाजुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि के काव्य में प्रवाहित होती हुई आज हमारे सामने है। धूमिल के उक्त काव्य-संग्रह की कविताएँ इस परंपरा की महत्त्वपूर्ण और सशक्त कड़ी हैं।

1.33 कहानी एवं निबंध : धूमिल सन् 1960 के दौर से ही पद्य और गद्य साहित्य में रचनाएँ करने लगे थे। गद्य साहित्य में उन्होंने सर्वप्रथम एक कहानी लिखी - 'फिर भी वह जिन्दा है।' इसका प्रकाशन 15 जून 1960 के 'साकी' नामक पत्रिका में हुआ है। कहानी का आरंभ कुछ इस प्रकार है- ''अब तो सब कुछ घने अँधेरे में समेट लिया है। वह पश्चिम का आकाश जो सूरज डूबने से पहले लाल था, काला हो चुका है और उसी अँधेरे में एक सितारा राह भूले राही की तरह झिलमिला रहा है। बगलवाली कदंब की डाली पर चिड़ियों का शोर... यह सड़क और यह मस्जिद जैसे सबको काठ मार गया है। निस्तब्ध वातावरण रात की काली चादर ओढ़े खड़ा है, निस्पंद.....। दीपू देख रहा है- सड़क पर बत्तियाँ जल उठी हैं।''(106)

प्रस्तुत कहानी की व्याख्या करने से पता चलता है कि धूमिल की सौंदर्य के प्रति गहरी आस्था रही है। यहाँ वे रोमानी शब्दावली से वातावरण को चित्रित करते हुए दिखाई पड़ते हैं। इस कहानी का एक परिच्छेद इस प्रकार है- ''तो यह गेरुये रंग में रंगा हुआ मंदिर, पीला-पीला ऊँचा-सा गिरिजाघर और दूध जैसी सफेद मस्जिद सबों के निर्माण में एक ही धरातल है- विश्वास का, श्रद्धा का, प्रेम का, निर्माण में ईंटें लगीं हैं, पत्थर व चूना है और सीमेंट भी, ठीक उसी तरह जैसे पहले सभी आदमी हैं, खून-हाड़-मांस के आदमी और फिर हिंदू, ईसाई और मुसलमान... फिर काले-गोरे। लेकिन है आदमी ही। लेकिन अब आदमी-आदमी रहा ही कहाँ।''(107)

धूमिल ने इस कहानी में पाकिस्तान में स्थित लाहौर की पृष्ठभूमि को रेखांकित किया है। यहाँ धूमिल की धार्मिक दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाती है। लेकिन पूरे परिच्छेद को देखने से पता चलता है कि धूमिल कहानी लिख रहे हैं या अपने विचार-मंतव्य प्रकट कर रहे हैं। यह उनकी पहली कहानी है। इसके पहले वे पद्य में ही ज्यादा रमे हैं। शायद इसी कारण इस कहानी पर पद्यात्मकता का प्रभाव पड़ा है। डॉ. रत्नशंकर पांडेय के अनुसार धूमिल की कुल सात कहानियाँ प्रकाशित हैं; जिनमें 'रतना', 'नई पौध', 'नया माली', 'कुसुम दीदी' आदि कहानियाँ पहली कहानी की अपेक्षा कथ्य और शिल्प की दृष्टि से अधिक बेहतर हैं।

यदि धूमिल की समस्त रचना कर्म को ध्यान में रखते हुए कालक्रमानुसार अवलोकन करें तो ज्ञात होता है कि धूमिल पहले एक गीतकार थे, फिर कथालेखक हैं या कवि रहे हैं। जहाँ उनकी प्रारंभिक रचनाओं में करुणा- वेदना है तथा स्थितियों के प्रति असंतोष भी; किंतु उसका विद्रोह करने का साहस उनमें नहीं था। वहाँ जैसे-जैसे उनकी चेतना का विकास हुआ, उनकी कविताओं में आक्रोश एवं तनाव के स्वर परिलक्षित होने लगे। उनका काव्य चिंतन आत्मगत स्थितियों से कम; बल्कि प्रगतिवादी मार्क्सवादी दृष्टिकोण से अधिक बदलना शुरू हो गया।

निबंध : प्रामाणिक तौर से 'बासन्ती' पत्रिका में मई 1962 में छपा धूमिल का पहला आलेख 'नई पीढ़ी का दायित्व' से जाहिर होता है कि निबंध विधा के क्षेत्र में उनका यह पहला प्रयास था। कुल मिलाकर धूमिल लगभग 15-20 निबंध लिखे हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण प्रकाशित निबंधों की एक सूची आपके सामने प्रस्तुत की जा रही है-

प्रकाशित निबंध	पत्रिका	वर्ष
1. नई पीढ़ी का दायित्व	बासन्ती	1962
2. राम की शक्तिपूजा : सीमा संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में	भारती	1963
3. तुलसी और आधुनिक लेखकों की समस्याएँ	कुटज	1963

4. नवलेखन में समीक्षण	आमुख	1964
5. नई कविता और उसके बाद	भारती	1965
6. नक्सलवादी आतंक और बुद्धिजीवी	दिनमान	1970
7. बनारस खो गया है : एक प्रतिक्रिया	धर्मयुग	1971
8. आलोचना की प्रासंगिकता अपने संदर्भ में	अर्थात्	1974
9. कविता पर एक वक्तव्य	नया प्रतीक/परिप्रेक्ष	1978/1982
10. रचनाओं की भाषाहीनता	सारिका	1980
11. भाषा की आड़ में साजिश	सारिका	1980

उक्त निबंधों की सूची का अध्ययन करते हुए हमें यह मालूम होता है कि धूमिल के द्वितीय और तृतीय निबंध हिंदी के दो महाकवियों से संबंधित हैं- एक तुलसी और दूसरा निराला। धूमिल का पहला निबंध 'नई पीढ़ी का दायित्व' चूँकि यह उनका अपना पहला प्रयास था; लेकिन पाठकों पर अपना प्रभाव छोड़े बिना नहीं रहा। इस निबंध की प्रशंसा करते हुए 'बासन्ती' के संपादक महोदय जी ने अपनी संपादकीय के अंतर्गत लिखा है कि ''साहित्यकार की नई पीढ़ी के दायित्व पर उठाये गये प्रश्न बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं और उनका प्रतीकात्मक समाधान भी सुलभ है।''

'तुलसी और आधुनिक लेखकों की समस्याएँ तथा 'राम की शक्ति पूजा : सीमा संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में' धूमिल के ये दो निबंध विद्वानों के बीच वाद-विवाद का प्रश्न खड़ा कर देते हैं। तुलसी संबंधी निबंध पर तीन दिन तक गोष्ठियाँ होती रहीं। इस प्रकरण को और अधिक पुष्ट करने के लिए मैं आपके समक्ष वह साप्ताहिक पत्रिका 'कुटज' बुधवार 28 अगस्त 1963 में वह प्रकाशित निबंध को रखना चाहूँगा। इसके संपादकीय में लिखा गया है- ''प्रस्तुत निबंध हिंदी प्रचारिणी सभा एवं साहित्यालोक के संयुक्त तत्वा-वधान में आयोजित गत तुलसी जयंती के अवसर पर पढ़ा गया था। निबन्ध की विचार उत्तेजकता के फलस्वरूप आचार्य परशुराम चतुर्वेदी की अध्यक्षता में तीन दिनों तक तीन-तीन घंटे विचार गोष्ठी चलती रही। सभा एवं साहित्यिकों के आग्रह पर उक्त निबंध प्रकाशित किया जा रहा है। 'कुटज' के दूसरे अंक में विचार गोष्ठी में व्यक्त अन्य विद्वान वक्ताओं तथा अध्यक्ष श्री चतुर्वेदी के विचार को भी प्रस्तुत किया जायेगा।''[108] यह रहा 'कुटज' के सम्पादक की टिप्पणी। अब हमें देखना है कि धूमिल की बौद्धिक क्षमता तथा भाषा में शब्द एवं वाक्य-विन्यास के गठन में कितनी प्रौढ़ता आई है- प्रमाण तौर से तुलसी पर लिखे गए निबंध का यह अंश द्रष्टव्य है- ''परंपरागत रूढ़ाग्रहों और आदर्श वाक्यों के उद्धरणों से घिरा सारा व्यक्ति परिवेश एक अनिश्चित विवाद से ग्रस्त है और तब इस वातावरण में फिर सोचने के लिए हम बाध्य होते हैं कि क्या तुलसी इस बौद्धिक असंतुष्टियों के हाथ

विश्वास का कोई ऐसा सूत्र दे सकते हैं; जो हमें एक नए संदर्भ में जी सकने या परिभाषित होने के लिए उत्प्रेरित ही करें।''(109) इस प्रकार सन् 1970 के आस-पास धूमिल के निबंधों को देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि कितना मनन और चिंतन है इन निबंधों में। धूमिल के विचारों में प्रौढ़ता एवं तेजस्विता परिलक्षित होती हुई दिखाई देती है। साहित्य के अतिरिक्त वे भाषा तथा राजनीतिक मूल्यों पर भी गहन विचार करने लगते हैं। 'आलोचना की प्रासंगिकता' 'भाषा की आड़ में साजिश' तथा 'नक्सलवादी आतंक और बुद्धिजीवी' आदि इसके प्रमाण हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि धूमिल के निबंधों को बिना पढ़े हम उनकी वैचारिक मानसिकता तथा भाषा की प्रौढ़ता का अंदाजा नहीं लगाया जा सकता। उनकी प्रतिबद्धता समाज के किस ओर है तथा अपने लेखन के माध्यम से वे किस तरह का समाज चाहते थे। वे किसी की अंगुली पकड़कर चलना पसंद नहीं करते थे। इस संदर्भ में बनारस हिंदू विश्व विद्यालय के प्रवक्ता डॉ. अवधेश प्रधान से विचार-विमर्श करते हुए उन्होंने कहा है ''काशीनाथ सिंह ने अपने संस्मरणों में यही लिखा है कि हमने धूमिल को यह पढ़ने को दिया है, वह पढ़ने को दिया है; परंतु वह कहीं भी यह नहीं कहा है कि धूमिल ने भी मुझे कुछ दिया है .... यदि उस दौर की उनकी कहानियाँ देखी जाएँ; तो आप वाक्य-वाक्य अंडर लाइन कर सकते हैं कि यह धूमिल का बोला हुआ वाक्य हो सकता है।''(110)

1.34 डायरी एवं पत्र-लेखन : धूमिल ने सन् 1961 ('बासन्ती' मई 1962 पत्रिका के आधार पर) में डायरी लिखना प्रारंभ कर दिया था। उनके डायरी लिखने का यह सिलसिला सन् 1972 तक अबाध्य रूप से चलता रहा। उसके बाद ब्रेनट्यूमर के शिकार होने के कारण वे अस्वस्थ रहने लगे। जब उनका दिमाग साथ नहीं देता; तब भी कभी-कभार एक हफ्ते की या महीनों भर की डायरी एक साथ जरूर लिख लिया करते थे।

धूमिल की डायरी (बासन्ती पत्रिका 1961) का अध्ययन करने के पश्चात् हमें उनकी रचना-प्रक्रिया और मानसिकता का बोध होता है। उनकी डायरी में कुछ ऐसे प्रसंग आए हैं; जिनमें धूमिल की अपनी पारिवारिक समस्याएँ, पट्टीदारों का झगड़ा-मुकदमा आदि की उलझनें, रचनाकारों एवं साहित्यकारों की भेट-वार्ता, मुलाकात, मित्रों के विचार इत्यादि संदर्भ शामिल हैं। यही नहीं, डायरी में कहीं छायावाद की शब्द-योजना एवं कवियों के संबंध में विचार, कहीं आलोचक व साहित्यकारों की रचना-प्रक्रिया व भाषा संबंधी विचार, कहीं कविता की भाषा एवं शिल्प संबंधी विचार, कहीं घर-गृहस्थी या बैल संबंधी, कहीं वकील व अध्यापक संबंधी तथा समसामयिक राजनीतिक संबंधी घटनाएँ इत्यादि के प्रसंग देखे जा सकते हैं। धूमिल की डायरी पढ़ने से हमें उनके गद्य लेखन शैली की विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं। उन्होंने अंग्रेजी, उर्दू व हिंदी के शब्दों का प्रयोग बड़ी सरलता एवं सफलता से किया है। वे आम जनता की बोलचाल की भाषा के पक्षधर रहे हैं। उनके वाक्य बहुत

ही स्पष्ट और सुलझे-से लगते हैं। आप उनकी पूरी डायरी की छान-बीन कर लीजिए; तो पता चलता है कि वे सारी बातों को बड़े ही यथार्थवादी दृष्टिकोण से देखते हुए अपनी प्रतिक्रिया को सीधी व सरल भाषा में अभिव्यक्त करते हुए दिखाई पड़ते हैं।

कवि धूमिल ने अपनी डायरी में अपनी निजी व पारिवारिक बातों की अपेक्षा कवि और कविता से संबंधित अधिक चर्चा की है। यहाँ मैं नीचे धूमिल की डायरी से उनके निजी संदर्भों व कवि तथा उनके विचारों के कुछ महत्त्वपूर्ण उद्धरणों को उद्धृत करना चाहूँगा; जिससे कवि धूमिल को समझने-पहचानने में सहायता मिलेगी।

घर-गृहस्थी संबंधी विचार : रविवार 19 जनवरी सन्1969

''गृहस्थी चलाने के लिए समझदारी की नोक तोड़ देनी चाहिए, आखिरकार यह मानकर चलना चाहिए कि इस जमाने में संबंध सिर्फ वे ही निभा सकते हैं, जो मूर्ख हैं।''(111)

धूमिल के अपने घनिष्ठ मित्रों के संबंध में विचार : 29 मार्च 1972

कँचन कुमार और डॉ. शुकदेव सिंह के साथ बातचीत। ''कँचन कुमार अपनी नासमझी के कारण कविताओं का विरोध करता है, और काशीनाथ सिंह अपनी समझदारी की वजह से कविता-विरोधी हो गया है। मेरे ये दोनों मित्र कविता को मलामत की नजर से देखते हैं।'' (112)

धूमिल के पट्टीदार छेदी पांडेय उर्फ कन्नन पांडेय के झगड़े के संबंध में विचार : रविवार 23 फरवरी 1969

''छेदी पांडेय ने तारीख 22-2-69 को थाने में मेरे भाइयों अर्जुन व शोभनाथ व लोकनाथ के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज करवाई है। दफा 246, 504 तथा 506 के अंतर्गत कि उन्होंने हदबंदी के पत्थर उखाड़ दिए तथा नांद खोदकर फेंक दी। गाली-गलौज किया और जानमाल की धमकी दी। सालिक और शामू गवाह हैं।''(113)

धूमिल के मन को सालनेवाले दर्द उनकी करीब डेढ़ सौ प्रकाशित कविताओं, डायरी के पन्नों और अप्रकाशित पत्रों में दर्ज है। वे पेशे से I.T.I. के अध्यापक थे। अध्यापक की पीड़ा को अच्छी तरह जान गए थे। लोगों को सलाह भी दिया करते थे कि अध्यापक और सरकारी नौकरी कभी भी नहीं करना चाहिए; क्योंकि डॉ. वाचस्पति के शब्दों में ''अध्यापक का दिमाग धोबी के पाट की तरह होता है। भाषा में आप भाग नहीं सकते; क्योंकि भाषा में भागते हुए आदमी के पैर दूर तक दिखलाई पड़ते हैं। ऐसे जुमले धूमिल की डायरियों में हैं। नौकरी, घर-बाहर, अध्ययन और गोष्ठियों की टीका-टिप्पणी धूमिल की डायरियों में बहुत ही जीवंत और संवेदनात्मक ढंग से शामिल है।''(114)

कवि धूमिल के पत्र : प्रमाण तौर पर कवि धूमिल के पत्र 'युवा' पत्रिका के पहले अंक, अक्तूबर 1974 में दो पत्र, 'आलोचना' पत्रिका अप्रैल-जून 1975 में विनोद भारद्वाज द्वारा प्रकाशित 28 पत्र तथा 'परिक्षेत्र' पत्रिका धूमिल विशेषांक वर्ष / अगस्त81-

जनवरी 82 में चार पत्र देखे गए हैं। इनके अतिरिक्त धूमिल के ढेर सारे पत्र अभी भी अप्रकाशित हैं, जिनको धूमिल के बेटे रत्नशंकर पांडेय ने बड़े जतन से सँभाल कर रखा है।

धूमिल हमेशा अपने पारिवारिक सदस्यों, मित्र मंडलियों तथा साहित्यकारों को पत्र लिखते रहते थे। इन पत्रों में पट्टीदारों द्वारा चलाई गई मुकदमेबाजी, पारिवारिक समस्याएँ आदि को लेकर धूमिल अपने चाचा-हरिहर पाण्डेय तथा भाइयों को पत्र लिखते रहते थे। कुछ पत्रों में साहित्यिक मित्र मंडलियों को लिखे जिनमें धूमिल की साहित्यिक संबंधी विचार अभिव्यक्त होते हुए दिखाई देते हैं। यही नहीं उन पत्रों में उनकी कविताएँ संबंधी राय भी तथा मंच एवं जनवादी लेखन संबंधी विचार आदि प्रमुख रूप से पाए जाते हैं। इन पत्रों के जरिए धूमिल की शब्द-योजना तथा उनके विचारों की प्रौढ़ता जाहिर होती है। इस संदर्भ में विनोद भारद्वाज का कथन है- ''धूमिल के ये पत्र अपने खास अर्थों में साहित्यिक जरूर नहीं है; पर इनकी चिंताएँ साहित्य की ही हैं।''(115) धूमिल ने अपने जिन पत्रों में पारिवारिक चिंता, स्थिति, मुकदमेबाजी तथा उनके साहित्यिक मंच खास तौर से जनवादी लेखन संबंधी अपने विचार जाहिर किए हैं, उनके कुछ महत्त्वपूर्ण उद्धरण यहाँ पर उद्धृत किए जा रहे हैं-

सहारनपुर से खेवली अपने चाचा श्री हरिहर पांडेय को लिखे पत्र के कुछ अंश-

''आदरणीय बाबूजी

सादर नमस्कार !

''आज तारीख 3-6-67 को कन्हैया की चिट्ठी मिली थी। समाचार मालूम हुआ।....

मुकदमे की तारीख 8 जून है। उसकी पैरवी अच्छी तरह से करियेगा, देवमूर्ति सिंह वकील से मिलकर। जैसा वे राय दें उसके अनुसार काम करने की कोशिश करियेगा। गवाही के लिए जियावन बिंद और खरपत से बात कर लीजिएगा। साथ ही जगरदेव लोहार से भी बात करिएगा। ये लोग मुझसे गवाही के लिए कहे थे।..... घर के लोगों को जूठन, शोभनाथ, लोकनाथ को समझा दीजियेगा कि वे लोग अपने काम से काम रखें। इधर-उधर की बातों में बहुत ध्यान न दें।''(116)

धूमिल गुस्सैल पर आत्मविश्वास से भरे व्यक्ति माने जाते हैं। वे लापरवाह नहीं बल्कि जिम्मेदार इंसान रहे हैं। इस अवधारणा को सहारनपुर से धूमिल द्वारा अपनी कविता संबंधी राय जानने के लिए विनोद भारद्वाज को लिखे एक पत्र (29-11-67) के कतिपय अंश में देखा जा सकता है-

''प्रिय भाई,

... कविताएँ भेज रहा हूँ। खास तौर से एक कविता 'मोचीराम' पर आपकी राय जानना चाहूँगा। प्रयत्न यह रहा है कि भीड़ से अलग, आदमी के रोजमर्रा के कामों और पेशे के आधार पर बनी हुई भाषा की मान्यता के खिलाफ कुछ लिखूँ। मुझे अक्सर

लगा है कि सही आदमी वे हैं, जो अस्तित्व में नहीं हैं। 'एक चेहरा, जो कि पूरे आदमी का है, किंतु वह मेरा नहीं, मेरी कमी का है।' 1- मोचीराम, 2- कुत्ता और 3- एक बूढ़ा मैं भेज रहा हूँ। जिसे उचित समझे इस्तेमाल कर लें। मगर इससे पहले संपादक की पूरी सजगता और तटस्थता से उस पर अपनी राय लिखें।''(117)

वाराणसी से, मंचीय सम्मेलन के चरित्र संबंधी राय धूमिल के एक पत्र 20-10-73 के उस अंश में देखा जा सकता है, जो बहुत ही तल्ख भरे अंदाज लिखा गया है-

''मंच से मेरा मतलब साफ रहा है- उसकी रुझान से। मंच पर आकर अक्सर विद्रोह भी समारोह बन जाता है। लोग-बाग ज्यादातर मंच का इस्तेमाल चरित्र चमकाने के लिए करते हैं। मेरा अनुभव रहा है कि यह अपने यहाँ एक खुले वैचारिक चकलाघर की तरह चलता रहा है। पटना, बाँदा, इलाहाबाद के बड़े और मंचीय सम्मेलनों के चरित्र इस बात को सिद्ध कर चुके हैं।''(118)

1.35 अनुवाद एवं नाट्यलेखन :

कवि धूमिल अनुवाद एवं नाट्यलेखन की विधाओं में भी अपनी छाप छोड़ गए हैं। उन्होंने सुप्रसिद्ध बंगाली कवि सुकांत भट्टाचार्य की कविताओं का हिंदी अनुवाद किया था। अब यहीं एक सवाल उठ खड़ा होता है कि हिंदी का कवि बंगाली भाषा की कविता का अनुवाद कैसे किया होगा? बात बिल्कुल साफ है। नौकरी के दौरान उनको भारत के पूर्वी क्षेत्रों में रहने का मौका मिला था; जिससे असमिया व बंगाली आदि हिंदीतर भाषाओं की पकड़ उनको हो गई थी। उदाहरण तौर से उनकी 'मेमन सिंह' शीर्षक कविता देखा जा सकता है, जहाँ उन्होंने बंगाली भाषा में एक पंक्ति लिखा है- ''आ भी तोमार भालो बासी।''

धूमिल द्वारा अनुवादित कविताओं के संग्रह का नाम 'पारपत्र' रखा गया था। ''छपते-छपाते इस पांडुलिपि पर धूमिल के अलावा एक और नाम 'कंचनकुमार' जुड़ गया। यह पुस्तक मार्केट में आने से पहले ही उनके विरोधियों ने धूमिल का नाम ब्लेड से काट दिया। सिर्फ कंचनकुमार के नाम से वह अनुवादित कृति प्रचारित हो गई। आज भी धूमिल के घर में ब्लेड से कटी नामवाली तथा बिना कटी हुई धूमिल के नामवाली दोनों प्रतियाँ सुरक्षित पड़ी हुई हैं।''(119)

यही नहीं कवि धूमिल अपने जीवनकाल में एक प्रहसन नाटक भी लिखा है 'धरती की प्यास' शीर्षक के नाम से। यह अब भी अप्रकाशित है। इसकी भी पांडुलिपि मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखी है। काश ! धूमिल आज जीवित होते; तो वे अपने आप को लगभग साहित्य के सभी विधाओं में रचना करते हुए देख पाते। इसमें कोई संदेह नहीं है। लेकिन नियति को जो मंजूर था; वही देखने के लिए हम लोग अभिशप्त हैं।

x-x-x

संदर्भ-सूची

1.	कन्हैया पांडेय	: आलोचना पत्रिका, अप्रैल-जून 1975	पृ.51
2.	कन्हैया पांडेय	: परिक्षेत्र पत्रिका, अगस्त81-जनवरी 82	पृ.43
3.	राजशेखर	: धूमिल : कल सुनना मुझे, भूमिका	पृ.10
4.	कैलाश सिंह	: शोधकर्ता की निजी बातचीत, हरहुआ, दिनांक 25-05-2003	
5.	धूमिल की चाची	: शोधकर्ता की व्यक्तिगत बातचीत-साक्षात्कार, खेवली, दिनांक 22-03-2002	
6.	रत्नशंकर पांडेय	: धूमिल की कविताएँ, (सं.) शुकदेव सिंह,	पृ.10
7.	रतनकुमार पांडेय	: साठोत्तरी हिंदी कविता	पृ.115
8.	रत्नशंकर पांडेय	: धूमिल की कविताएँ (सं.) शुकदेव सिंह	पृ.10
9.	कन्हैया पांडेय	: परिक्षेत्र पत्रिका, अंक 2,3,4 अगस्त81- जनवरी 82	पृ.45
10.	ग. तु. अष्टेकर	: कटघरे का कवि धूमिल	पृ.19
11.	कन्हैया पांडेय	: परिक्षेत्र पत्रिका, अंक 2,3,4, अगस्त81- जनवरी 82	पृ.46
12.	धूमिल	: कल सुनना मुझे	पृ. 52
13.	हुकुमचन्द राजपाल	: समकालीन बोध और धूमिल का काव्य	पृ. 36
14.	कन्हैया पांडेय	: परिक्षेत्र पत्रिका, अंक 2,3,4, अगस्त 81- जनवरी 82	पृ.46
15.	राजशेखर	: कल सुनना मुझे, काव्य संग्रह की भूमिका	पृ.18
16.	कन्हैया पांडेय	: परिक्षेत्र पत्रिका अंक 2,3,4, अगस्त 81- जनवरी 82	पृ.42
17.	कन्हैया पांडेय	: परिक्षेत्र पत्रिका अंक 2,3,4, अगस्त 81- जनवरी 82	पृ.42
18.	कन्हैया पांडेय	: आलोचना पत्रिका, अप्रैल-जून 1975	पृ. 53
19.	रत्नशंकर पांडेय	: परिक्षेत्र पत्रिका, अंक 2,3,4, अगस्त 81- जनवरी 82	पृ.39
20.	राजशेखर	: धूमिल - कल सुनना मुझे, भूमिका	पृ. 26
21.	बनारसी बाबू	: शोधकर्ता की निजी बातचीत. गाँव खेवली, दिनांक 22-03-2002	
22.	भगवतीशरण सिंह	: (सं.) अज्ञेय- साहित्य का परिवेश	पृ. 13

23.	रामलखन शुक्ल	: हिंदी उपन्यास कला	पृ. 85
24.	श्यामनंदन किशोर	: दस्तावेज पत्रिका, अंक जनवरी 1981	पृ. 29
25.	देवी शंकर सिंह	: शोधकर्ता से वार्ता, खेवली, दिनांक 22-03-2002	
26.	कवलजीत सिंह	: शोधकर्ता की बातचीत, खेवली दिनांक 22-03-2002	
27.	धूमिल	: कल सुनना मुझे	पृ.58
28.	रामचंद्र शुक्ल	: शोधार्थी की व्यक्तिगत वार्ता- बातचीत इलाहाबाद, दिनांक 19-02-2003	
29.	कन्हैया पांडेय	: शोधकर्ता की बातचीत, खेवली, दिनांक 22-03-2002	
30.	वशिष्ठमुनि ओझा	: शोधकर्ता की बातचीत साक्षात्कार, वाराणसी, दिनांक 15-02-2003	
31.	श्यामनंदन किशोर	: दस्तावेज पत्रिका, अंक 10, जनवरी 1981	पृ. 24
32.	श्यामनंदन किशोर	: दस्तावेज पत्रिका, अंक 10, जनवरी 1981	पृ. 24-25
33.	कन्हैया पांडेय	: आलोचना पत्रिका, अप्रैल-जून 1975	पृ. 53
34.	श्यामनंदन किशोर	: दस्तावेज पत्रिका, अंक 10, जनवरी 1981	पृ. 26
35.	कन्हैया पांडेय	: आलोचना पत्रिका, अप्रैल-जून 1975	पृ.54
36.	देवीशंकर सिंह	: शोधकर्ता से वार्ता, खेवली, दिनांक 22-02-2002	
37.	आचार्य पंकज	: शोधकर्ता की व्यक्तिगत बातचीत, हरहुआ, दिनांक 25-05-2003	
38.	गोविंद उपाध्याय	: आलोचना पत्रिका, अप्रैल-जून 1975	पृ.67-68
39.	नामवर सिंह	: आजकल पत्रिका, 1980	
40.	वाचस्पति	: शोधकर्ता की निजी वार्ता, वाराणसी, दिनांक 15-02-2004	
41.	वाचस्पति	: दैनिक 'जनसत्ता' नई दिल्ली, दिनांक 9-11-1986	पृ. 4
42.	कन्हैया पांडेय	: आलोचना पत्रिका, अप्रैल-जून 1975	पृ.55
43.	गुरचरण सिंह	: समकालीन कविता का मूल्यांकन,	पृ. 103
44.	राजशेखर	: भूमिका- कल सुनना मुझे,	पृ.2
45.	विश्वनाथ प्रसाद	: परिक्षेत्र पत्रिका, अंक 2,3,4, अगस्त81-जनवरी 82	पृ.55

46.	लल्लन सिंह	: आलोक पत्रिका, अंक 19 जून 1978	पृ.31
47.	विद्यानिवास मिश्र	: सारिका पत्रिका, 1 जनवरी 1980	पृ.10
48.	राहुल	: विपक्ष का कवि- धूमिल	पृ.17
49.	कन्हैया पांडेय	: आलोचना पत्रिका, अप्रैल-जून 1975	पृ.55
50	राजशेखर	: भूमिका - कल सुनना मुझे	पृ.4
51.	मंजुल उपाध्याय	: समकालीन कविता और धूमिल	पृ.43
52.	विश्वनाथ प्रसाद	: परिक्षेत्र पत्रिका अंक 2,3,4, अगस्त 81- जनवरी 82	पृ.3
53.	रत्नशंकर पांडेय	: परिक्षेत्र पत्रिका अंक 2,3,4, अगस्त 81- जनवरी 82	पृ.37
54.	कन्हैया पांडेय	: आलोचना पत्रिका, अप्रैल-जून 1975	पृ.54
55.	कवलजीत सिंह	: शोधकर्ता की बातचीत, खेवली, दिनांक 22-03-2002	
56.	राजेश्वरी सिंह	: शोधकर्ता की निजी वार्ता- बातचीत खेवली, दिनांक 22-03-2002	
57.	धूमिल	: कल सुनना मुझे	पृ.80
58.	वाचस्पति	: दैनिक 'जनसत्ता' नई दिल्ली, दिनांक 9-11-1986	पृ.4
59.	कन्हैया पांडेय	: परिक्षेत्र पत्रिका, अंक 2,3,4 अगस्त 81- जनवरी 82	पृ.48
60.	कन्हैया पांडेय	: परिक्षेत्र पत्रिका, अंक 2,3,4 अगस्त 81- जनवरी 82	पृ.48
61.	नेमिचंद जैन	: पूर्वग्रह पत्रिका, अंक 7 मार्च-अप्रैल 1975	पृ.4
62.	नारायण मिश्र	: आलोचना पत्रिका, अप्रैल 1956	पृ.45
63.	ब्रह्मदेव मिश्र	: धूमिल और उसका काव्य-संघर्ष	पृ. 116
64.	सुरेंद्र चौधरी	: कल्पना पत्रिका, अगस्त 1967	पृ. 32
65.	सरोज मार्कंडेय	: निराला साहित्य में युगीन समस्याएँ	पृ.43
66.	राकेश कुमार	: धूमिल की काव्य चेतना- विविध आयाम	पृ.56
67.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.37
68.	सरोज मार्कंडेय	: निराला साहित्य में युगीन समस्याएँ	पृ.38
69.	बादाम सिंह रावत	: साठोत्तरी हिंदी कविता की वस्तुचेतना	पृ.58
70.	कृष्ण बिहारी मिश्र	: आधुनिक सामाजिक आंदोलन और आधुनिक हिंदी साहित्य	पृ.318

71.	धूमिल	: कल सुनना मुझे	पृ.33
72.	दुर्गादास	: भारत, कर्जन से नेहरू और उसके पश्चात्	पृ.275
73.	जगदीश चतुर्वेदी	: आधुनिक हिंदी कविता	पृ.101
74.	धूमिल	: सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र	पृ.82
75.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.101
76.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.101
77.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.16
78.	सरोज मार्कंडेय	: निराला साहित्य में युगीन समस्याएँ	पृ.45
79.	कन्हैया पांडेय	: आलोचना पत्रिका, अप्रैल-जून 1975	पृ.55
80.	धूमिल	: कल सुनना मुझे	पृ.46
81.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.117-18
82.	राजशेखर	: भूमिका, कल सुनना मुझे,	पृ.11
83.	राहुल	: विपक्ष का कवि धूमिल	पृ.101
84.	धूमिल	: कल सुनना मुझे	पृ.8
85.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.110
86.	अनिल राकेशी	: छायादोत्तर कविता में समाज-समीक्षा,	पृ.294
87.	रोहिताश्व	: समकालीन कविता और सौंदर्यबोध	पृ.35
88.	शमशेर बहादुर सिंह	: पूर्वग्रह पत्रिका, संयुक्तांक 51-52, जुलाई-अक्तूबर 1982	पृ.95
89.	मलयज	: एक प्रतिमा के विकास का परिवेश द्वारा शमशेर की वार्ता	
90.	रोहिताश्व	: समकालीन कविता और सौंदर्यबोध	पृ.42
91.	काशीनाथ सिंह	: आलोचना भी रचना है	पृ.66
92.	अवधेश प्रधान	: वर्तमान साहित्य पत्रिका, अगस्त 1992	पृ.14
93.	अवधेश प्रधान	: वर्तमान साहित्य पत्रिका, अगस्त 1992	पृ.15
94.	वाचस्पति	: शोधकर्ता की निजी वार्ता, वाराणसी, दिनांक 15-02-2003	
95.	कन्हैया पांडेय	: शोधकर्ता की बातचीत, खेवली, दिनांक 22-03-2002	
96.	राजशेखर	: भूमिका, कल सुनना मुझे	पृ.17
97.	आचार्य रामचंद्र शुक्ल	: आधुनिक आलोचना के प्रतिमान	पृ.23
98.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.38
99.	रत्नशंकर पांडेय	: धूमिल के पुत्र से शोधकर्ता की वार्ता, खेवली, दिनांक 22-04-2002	

100. रत्नशंकर पांडेय	: धूमिल की कविताएँ, (सं.) शुकदेव सिंह	पृ.9
101. परिक्षेत्र पत्रिका	: धूमिल विशेषांक अगस्त 81- जनवरी 82	पृ.35
102. विश्वनाथ प्रसाद	: शोधकर्ता की वार्ता बातचीत, हरहुआ, दिनांक 18-02-2003	
103. रतन कुमार पांडेय	: साठोत्तरी हिंदी कविता	पृ.125
104. धूमिल	: परिक्षेत्र पत्रिका, अंक 2,3,4, अगस्त 81- जनवरी 82	पृ.36
105. अरविंद पांडेय	: हिंदी के प्रमुख कवि : रचना एवं शिल्प	पृ.
106. धूमिल	: साकी पत्रिका, 15 जून 1960, अर्दली बाजार, वाराणसी	
107. धूमिल	: साकी पत्रिका, 15 जून 1960, अर्दली बाजार, वाराणसी	
108. कुटज पत्रिका	: बुधवार 28, अगस्त 1963	पृ.9
109. कुटज पत्रिका	: बुधवार 28, अगस्त 1963	पृ.9
110. अवधेश प्रधान	: शोधकर्ता से विचार-विमर्श, वाराणसी, दिनांक 16-02-2003	
111. परिक्षेत्र पत्रिका	: धूमिल विशेषांक, अगस्त 81-जनवरी 82	पृ.26
112. आगाह पत्रिका	: धूमिल विशेषांक अंक 3,4	पृ.27
113. परिक्षेत्र पत्रिका	: धूमिल विशेषांक, अगस्त 81-जनवरी 82	पृ.28
114. वाचस्पति	: दैनिक 'जनसत्ता' नई दिल्ली, दिनांक 09-11-1986	पृ.4
115. विनोद भारद्वाज	: आलोचना पत्रिका, अप्रैल-जून 1975,	पृ.35
116. परिक्षेत्र पत्रिका	: धूमिल विशेषांक, अंक2,3,4, अगस्त 81-जनवरी 82	पृ.31
117. विनोद भारद्वाज	: आलोचना पत्रिका, अप्रैल-जून 1975	पृ. 40
118. परिक्षेत्र पत्रिका	: धूमिल विशेषांक, अंक2,3,4, अगस्त 81-जनवरी 82	पृ.31
119. रत्नशंकर पांडेय	: धूमिल के पुत्र से शोधकर्ता की वार्ता, खेवली, दिनांक 22-04-2002	

×-×-×

2. यथार्थवाद : सिद्धांत एवं दर्शन

यथार्थवाद एक पाश्चात्य साहित्यिक सिद्धांत एवं दर्शन है, जिसके अनुसार किसी भौतिक पदार्थ का यथार्थ रूप में चित्रण किया जाता है।

2.1 यथार्थवाद : अवधारणा एवं स्वरूप

यथार्थवाद मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र केंद्रीय अवधारणा तथा मार्क्सवादी साहित्यालोचना और समाजशास्त्रीय मूल्यांकन पद्धति का मूलाधार है। डॉ. रोहिताश्व के अनुसार मार्क्स और एंगेल्स ने यथार्थवादी सिद्धांत को विभिन्न कालावधियों के विभिन्न साहित्यिक सुझावों या कलात्मक दृष्टिकोणों में से एक नहीं, बल्कि जीवन-यथार्थ के प्रतिबिंबन की एकमात्र प्रणाली के रूप में कलाकार-पाठक को अतिशय विशिष्ट शक्तियों और कारगर उपकरण प्रदान करनेवाला एक क्रांतिकारी औजार माना है।

यथार्थ सौंदर्यात्मक चेतना की बनावट का मुख्य निर्णायक तत्त्व है, नियामक भी। कहा जा सकता है कि ''जब कलाकार यथार्थ का पुनरुत्पादन कृति में करता है; तो कल्पना के रूप में वह विचारात्मक और सौंदर्यात्मक यथार्थ से समतुल्य ही होते हैं। हार्वर्ड फास्ट ने यथार्थवाद रियलिज्म की जगह इस संदर्भ में सोशलिस्टिक मैथड, रियलिस्टिक सिचुयेशन्स, रिफ्लेक्शन आफ रियलिटि आदि कई शब्दों का सतर्कतापूर्वक सार्थक प्रयोग किया है। ... सारांशत: वे रियलिज्म को 'स्ट्रगल' का 'राइप फ्रूट' मानते रहे हैं।''[1]

2.11 यथार्थवाद की अवधारणा :

यथार्थ : मनुष्य अपने जीवन-यात्रा के मार्ग में जिस सच्चाई, वास्तविकता का अनुभव करता है और जिस सत्य का प्रयोग करता है; वही उसका वास्तव में यथार्थ स्वरूप माना जाता है। ''जो है वह यथार्थ है और जो होना जाहिए- वह आदर्श है।''(2) अर्थात् जीवन के सत्य का ही दूसरा नाम यथार्थ है और आदर्श मनुष्य का स्वप्न और कल्पना है। जीवन में अयथार्थ की कल्पना करना मुश्किल है; क्योंकि उसका कोई आधार नहीं होगा। बिना आधार के कोई चीज आसमानी और हवाई होगी। हवाई कल्पना से यथार्थ का दूर-दूर का नाता नहीं होता। जैसे-दोनों पैर जमीन से उठाकर खड़ा नहीं हुआ जा सकता। जमीन पर खड़ा रहने के लिए कम-से-कम एक पैर तो जमीन पर रखना ही होगा। यथार्थ का सच वस्तुनोमुखी (Objective) होता है। वस्तुनोमुखी से तात्पर्य वस्तुगत, वस्तुनिष्ठ, विषयपरक, वास्तविक यथार्थ से है। यह अपने चरित्र में सगुण है और साकार है।

यथार्थ जीवन का सत्य और वास्तविकता है। यथार्थ वह चित्रण है; जो जीवन के नजदीक हो, जो वास्तविकता का दर्पण हो। मानक हिंदी कोश के अनुसार- ''यथार्थ और वास्तविक में मुख्य अन्तर यह है कि यथार्थ में उचित और न्याय संगत होने का भाव प्रधान है और इस भाव का सूचक है कि किसी चीज या बात का प्रस्तुत या वर्तमान रूप क्या अथवा कैसा है। काल्पनिक या मिथ्या से भिन्न (रियल)''(3)

'यथार्थ' शब्द संस्कृत से आया हुआ शब्द है। हिंदी में 'यथारथ' शब्द के रूप में प्रयोग होता रहा है। नालंदा विशाल शब्द सागर के अनुसार उक्त शब्द का अर्थ है- ''ठीक, उचित, जैसा है, वैसा सत्य।''(4) मानक हिंदी कोश के अनुसार यथार्थ का अर्थ हैं- ''जो अपने अर्थ (आशय, उद्देश्य, भाव आदि) आदि के ठीक अनुरूप हो, ठीक, वाजिब तथा उचित।''(5) वेबस्टर्स II न्यू कॉलेज डिक्शनरी के अनुसार- ''नॉट इमेजिनरी, फिक्शनल, प्रिटेनटेड : एक्चुवल, जिन्यूनीयर, अथेन्टिक, ट्रू।''(6) डॉ. सर्वजीत राय के अनुसार- ''यथार्थ का संबंध प्रत्यक्ष से है। वास्तव में जो संसार में दर्शनीय है; उसका चित्रण ही यथार्थ है।''(7)

डॉ. रामलखन शुक्ल ने यथार्थ के संबंध में अपना विचार प्रकट करते हुए कहा है- ''मानव-जीवन अपने स्वाभाविक रूप में दुर्बलताओं और सबलताओं का पुंज है। जीवन का वही रूप यथार्थ है; जिसमें जीवन के दोनों पक्षों को किसी प्रकार के पूर्वग्रह के बिना प्रस्तुत किया जाता है। भौतिक जगत या वस्तु-जगत ही यथार्थ नहीं है, भाव जगत भी उतना ही यथार्थ है। मानव के सुख-दु:ख, आशा-आकांक्षा को भी उसके जीवन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका है। यथार्थ चित्रण में वस्तु-जगत के साथ ही भाव-जगत का भी समावेश चित्रण को अधिक प्रभावशाली सिद्ध करता है।''(8) यथार्थ बहुआयामी होता है, एक पक्षीय नहीं होता। अत: यथार्थ को विभिन्न-भिन्न कोणों व दृष्टिकोणों से जाँचा-परखा जाता है। ''जब भी कोई घटना व हलचल लेखक की संवेदनशीलता पर चोट करती है, उसे उद्वेलित

करती है; तो यह विचारपरक घात-प्रतिघात भाषा तथा काव्य भाषा का रूप ग्रहण कर लेता है। फलस्वरूप रचना में यथार्थ बोध विभिन्न रूपों में प्रकट होता है।''(9)

यथार्थ के संदर्भ में त्रिभुवन सिंह का मानना है- ''किसी वस्तु का ज्यों-का-त्यों ग्रहण कर लेना यथार्थ चित्रण कहलायेगा, पर साहित्यकार फोटोग्राफर नहीं होता, वह निर्माता है। निर्माण में निर्माता की मौलिक कृति रहती है; जिसमें कृतिकार की रचनात्मक शक्ति का चमत्कार दिखाई पड़ता है। वह प्रस्तुत सत्य को ज्यों-का-त्यों नहीं चित्रित कर देता; बल्कि अपनी व्यक्तिगत रुचि के अनुसार वस्तु जगत के दृश्यों को फिर से एक नए सिरे से सजाता है। ऐसा करने में वह अपनी अनुभूतियों तथा व्यक्तिगत रुचि का ही सहारा लेता है। यही कारण है कि एक ही वस्तु का चित्रण भिन्न-भिन्न लेखक भिन्न-भिन्न ढंग से करते हैं। इस प्रकार वस्तु जगत के सत्य और भाव जगत के सत्य में अंतर दिखलाई पड़ता है।''(10)

सारांशत: जीवन की सच्ची अनुभूति यथार्थ है और इसकी कलात्मक अभिव्यक्ति यथार्थवाद है। जो रचनाकार मनुष्य, समाज और जीवन का संपूर्ण वास्तविक चित्र खड़ा करता है और अपने सृजन की विषयवस्तु काल्पनिक संसार से न लेकर वास्तविक समाज और संसार से लेता है; उसे ही हम यथार्थवादी लेखक कह सकते हैं। यथार्थवादी रचनाकार अपनी प्रतिभा के बल पर विषयवस्तु का, परिवेश का तथा घटनाओं का यथातथ्य चित्र प्रस्तुत करता है। वह इन भौतिक चित्रणों के समय अपनी भावुकता, अनुभूतियों, प्रतीतियों, एवं संवेदनाओं को इस मार्ग में बाधा नहीं बनने देता है।

यथार्थवाद की परिभाषा एवं व्याख्या : 'यथार्थवाद' शब्द दो शब्दों के योग से बना है- 'यथार्थ' (Real) और 'वाद'(ism)। प्रश्न उठता है कि यथार्थ क्या है? यथार्थ वास्तविक एवं नजदीकी जीवन का वह सत्य है; जो ज्ञानेंद्रियों, मन तथा बुद्धि द्वारा प्राप्त ज्ञान, अनुभव तथा निष्कर्षों को उनके वास्तविक रूप में चित्रण करता है। अब प्रश्न उठता है कि वाद क्या है? संक्षिप्त उत्तर यह है कि वाद और कुछ नहीं; बल्कि एक सिद्धांत है- जिसके द्वारा मानव जीवन की प्रवृत्तियों एवं धारणाओं का निरूपण किया जाता है। प्राय: सिद्धांत एवं वाद में भेद समझा जाता रहा है; जबकि दोनों में तात्त्विक भेद नहीं है; लेकिन उनके रूप-विकास का भेद अवश्य है। डॉ. भगीरथ मिश्र के अनुसार ''सिद्धांत भली प्रकार सोच-विचार कर स्थिर किया हुआ सत्यान्वेष का नियमबद्ध, वह स्वरूप अथव मत है; जो विद्वानों द्वारा सत्य माना गया है। जबकि किसी पक्ष को स्थापित करनेवाला मत 'वाद' कहलाता है। विचार-विमर्श के बाद स्थापित किया हुआ किसी विषय के अज्ञात पक्ष के खोजे हुए सत्य का परिपूर्ण रूप सिद्धांत होता है; जबकि ज्ञात, या पूर्ववर्ती सिद्धांत पर मत-मतांतरों द्वारा विकसित रूप वाद कहलाता है।''(11) वाद की परिभाषा देते हुए डॉ. लल्लन मिश्र ने भी कहा है- ''जब किसी विषय या वस्तु को किसी खास दृष्टिकोण से देखा जाता है; तो वह वाद कहलाता है।''(12)

हिंदी में यथार्थवाद शब्द अंग्रेजी के Realism शब्द का हिंदी रूपांतर है। 'Real' शब्द 'Reality' से निर्मित हुआ है। 'इज्म'(ism) सिद्धांत के अर्थ में एक प्रत्यय की भाँति प्रयुक्त होता है। गीता में 'वाद' शास्त्रार्थ अथवा विवाद के अंत में प्रतिपादित (निष्कर्ष के रूप में स्थापित) सिद्धांत के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है- ''वाद: प्रवदतामहम्''(13) इस प्रकार यथार्थवाद का अर्थ हुआ यथार्थ को देखने का दर्शन या सिद्धांत। कला और साहित्य की अक्षुणता एवं महानता जीवन एवं समाज की सापेक्षता में निहित है। अत: महान कलाकार अपने कला और साहित्य में जीवन की वास्तविकता का प्रतिबिंब खोजता रहता है।

वस्तुत: यथार्थवाद का सर्वमान्य सिद्धांत आजतक नहीं बन पाया है। इसका प्रमुख कारण है युग एवं परिस्थितियों की परिवर्तनशीलता। प्रत्येक विद्वानों के समक्ष तत्कालीन युगीन परिवेश की स्थितियाँ होती हैं और वह उन्हीं के प्रकाश में अपने विषय का प्रतिपादन मात्र करता है। अत: विद्वानों ने यथार्थवाद की जो भी परिभाषाएँ प्रदान की हैं; उनमें एकरूपता नहीं आ पाई है। इस संदर्भ में कुछ पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों एवं विचारकों के मत द्रष्टव्य हैं।

यथार्थवाद साहित्य की एक विशिष्ट विचारधारा है; जो जनजीवन एवं समाज के यथार्थ अंकन पर विशेष जोर देता है। यथार्थवाद की परिभाषा देते हुए विभिन्न पाश्चात्य आलोचकों एवं विद्वानों ने इसके विभिन्न पहलुओं की व्याख्या की है। अधिकांश विद्वानों ने भ्रमवश साहित्य में यथार्थवाद को अभिव्यक्ति की एक शैली का नाम दे दिया है। पाश्चात्य विचारकों में राबर्ट लुई स्टीवेन्सन का मत है कि यथार्थवाद साहित्य में उसकी अपनी कलात्मक से संबंधित होता है; न कि साहित्य में अभिव्यंजित यथार्थ से। जबकि एक अंग्रेजी कथाकार एवं आलोचक हेनरी जेम्स ने साहित्य में विशेषकर कथात्मक विधाओं में यथार्थ को विशेष जोर देते हुए कहा कि यथार्थता का परिवेश तथा वातावरण किसी कथाकृति का ऐसा केंन्द्रीय गुण है जिस पर अन्य सभी गुण आश्रित रहते हैं।

प्रसिद्ध यूरोपीय साहित्यिक इतिहासकार कजामियाँ ने यथार्थवाद के संदर्भ में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है- ''Realism in art is not a method but a tendency''(14) यथार्थवाद कला या साहित्य में एक शैली नहीं है; बल्कि एक विचारधारा है। एक अन्य यूरोपीय साहित्यकार विद्वान जॉर्ज लुकाच ने यथार्थवाद की वस्तुपरक परिभाषा देते हुए कहा है- ''It is a condition sinquannan of great realism that the author must honestly record without fear or favour everything he sees around him,''(15) अर्थात् यथार्थवादी साहित्य वही होना चाहिए; जिसमें लेखक बिना किसी पक्षपात या भय के ईमानदारी के साथ जो कुछ अपने इर्द-गिर्द देखता है, उसका यथातथ्य चित्रण करे।

यथार्थवाद के अन्य पाश्चात्य व्याख्याताओं में हार्वर्ड फास्ट का अभिमत है- ''Realism being that literary synthesis whicg through selection and creation heightens for the reader his understanding of reality''(16) यथार्थवाद वह

साहित्यिक संयोग है; जो चुनाव तथा रचना के माध्यम से अपने वास्तविक विचारों को समुन्नत रूप में पाठकों के सामने उपस्थित करता है। विडा सला पिन्टो के अनुसार - ''यथार्थवाद कला का वह तत्त्व है; जो वास्तविकता के सच्चे अंकन, अर्थात् वह जिस रूप में सामान्य मानव-चेतना को प्रतीत होती है, उसी रूप में प्रस्तुत करने से संबद्ध होता है।''(17)

भारतीय विद्वानों में प्रेमचंद ने साहित्य में यथार्थ को अत्यधिक महत्त्व देते हुए कहा है- ''यथार्थवादी चरित्रों को पाठक के सामने उनके यथार्थ नग्न रूप में रख देता है। उसे इससे कुछ मतलब नहीं कि सच्चरित्रता का परिणाम बुरा होता है या कुचरित्रता का परिणाम अच्छा। उसके चरित्र अपनी कमजोरियाँ और खूबियाँ दिखाते हुए अपनी जीवन लीला समाप्त करते हैं... यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं, हमारी विषमताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र होता है और इस तरह यथार्थवाद हमको निराशावादी बना देता है। मानव चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है, हमको अपने चारों तरफ बुराई-ही-बुराई नजर आने लगती है।''(18)

छायावाद के प्रमुख कवि सुमित्रानंदन पंत का भी मत है - ''मेरी दृष्टि में सब वादों की कसौटी लोकमंगल में निहित है। यदि हमारे यथार्थवादी निरीक्षण-परीक्षण मानव मंगल के लिए उपयोगी सिद्ध होते हैं तो वे अभिनंदनीय हैं, अन्यथा उन्हें पारस्परिक विद्वेष पूर्वाग्रह तथा कटुता का ही विज्ञापन समझना चाहिए।''(19) तात्पर्य यह है कि कवि पंतजी की दृष्टि में यथार्थवाद जीवन की विकृतियों को दिखाकर मानव को निराश नहीं करता; वरन् उसमें लोक-मंगल की भावना को जागृत करता है। हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक नन्ददुलारे वाजपेयी का यथार्थवाद के संबंध में कहना है- ''यथार्थवाद वस्तुओं की पृथक-पृथक सत्ता का सार्थक है। वह समष्टि की अपेक्षा व्यष्टि की ओर अधिक उन्मुख रहता है। यथार्थवाद का संबंध प्रत्यक्ष वस्तु जगत से है। यथार्थवाद अपने को वैज्ञानिक दृष्टि सम्पन्न बताता है। वह सत्य का खोजी हुआ करता है और उसका सत्य वही है जिसे वह इंद्रियों की सहायता से जान पाता है।''(20) नगेंद्र की दृष्टि में ''यथार्थवाद से तात्पर्य उस दृष्टिकोण से है, जिसमें कलाकार अपने व्यक्तित्व को यथार्थ संभव तटस्थ रखते हुए वस्तु को, जैसी वह है वैसी ही देखता है और चित्रित करता है अर्थात् यथार्थवाद के लिए वस्तुगत दृष्टिकोण अनिवार्य है।''(21)

यथार्थवाद के संबंध में अपनी मान्यता प्रकट करते हुए डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने कहा है- ''भूतल पर ही स्वर्ग के कल्याणों का आवाहन सच्चा यथार्थवाद है।''(22) शिवनारायण श्रीवास्तव की धारणा है- ''यथार्थवाद न तो पूर्ण एवं निर्दोष मानव के चित्रण की आकांक्षा रखता है और न प्रेम तथा साहस के मनोरंजक क्रियाकलाप दिखाने का उत्साह ही रखता है। वह तो जीवन को उसके यथार्थ रूप में चित्रित करने का संकल्प लेकर चलता है।''(23) शिवकुमार मिश्र के अनुसार ''सच्चे तथा महान यथार्थवाद का लक्ष्य समाज, जीवन तथा मनुष्य के जीवन के यत्र-तत्र बिखरे स्फुट अंशों को ही परखने और मूर्त करने

का नहीं होता; वरन् उनकी दृष्टि इनके संपूर्ण रूप को उभारने की ओर रहती है। वह उन्हें इनकी 'संपूर्णता' में ही देखने पर बल देता है।''(24) डॉ. त्रिभुवन सिंह ने यथार्थवाद के रचनात्मक पक्ष का उद्‌घाटन करते हुए कहा है- ''यथार्थवाद का एक मात्र लक्ष्य वस्तुजगत की स्थितियों को समक्ष रखते हुए सुंदर-से-सुंदरतर स्थितियों की ओर समाज को उन्मुख करता है।''(25)

उपर्युक्त पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों की परिभाषाओं के आधार पर हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचे हैं- 1) यथार्थवाद में जगत की किसी भी ठोस एवं स्थूल वस्तु का यथातथ्य चित्रण होता है। अत: हम उसे एक ठोस वैज्ञानिक विचारधारा कह सकते हैं। 2) यथार्थवाद विषम, नग्न एवं क्रूर परिस्थितियों का चित्रण करता है। 3) यथार्थवाद समष्टिगत वेदनानुभूति से पीड़ित, लोकमंगल की भावना को जागृत करता है। 4) यथार्थवाद सत्य का अन्वेषी होता है और उस सत्य को एक वैज्ञानिक प्रक्रिया से देखने की दृष्टि अपनाता है। 5) यथार्थवाद पूर्णत: आदर्शवाद का विरोधी नहीं है। 6) यथार्थवाद में किसी सिद्धांत एवं अंतर्भावना का सन्निवेश नहीं होता है। 7) यथार्थवाद वास्तविक जीवन के वास्तविक चित्रण में विश्वास करता है। 8) यथार्थवाद में विषयाभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होती है।

यथार्थ और यथार्थवाद : यथार्थ और यथार्थवाद के अंतर की एक स्पष्ट रेखा खींचना अत्यंत दुष्कर कार्य है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि दोनों को अलगाना या उन्हें विभाजित करना आसान नहीं है। डॉ. त्रिभुवन सिंह के शब्दों में -''यद्यपि यथार्थ और यथार्थवाद एक-दूसरे के अत्यंत निकट हैं, फिर भी दोनों का अपना अलग अस्तित्व है। यथार्थवाद यथार्थता की आधार भूमि पर जीवन का नूतन चित्र है। यथार्थवाद हृदय की वस्तु है और यथार्थ उसका मूल स्त्रोत है; जो अपना विषय वस्तु जीवन की यथार्थता से ग्रहण करता है। यथार्थवाद, यथार्थ के आवरण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।''(26)

यथार्थ का कोई एक निश्चित दृष्टि नहीं होता है; क्योंकि किसी दृष्टिकोण से देखने से उसका क्षेत्र सीमित हो जाता है। लेकिन यथार्थवाद को किसी विषय या चीज को किसी खास दृष्टिकोण से देखा जाता है। यथार्थ का काम होता है कि समाज में व्याप्त समस्याओं का वास्तविक चित्रण करना और यथार्थवाद उन समस्याओं का चित्रण कर सामाजिक का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करना।

कहना न होगा कि यथार्थवादी कलाकार-रचनाकार अपनी कृतियों में सामाजिक जीवन का जो चित्रण करता है; कोई कल्पना या भावजगत से न होकर इस यथार्थ भौतिक दुनिया से होता है। यथार्थवादी साहित्यकार मानव-जीवन के विभिन्न पहलुओं का यथातथ्य चित्रण अपनी कृतियों में करता है; जो अपनी यथार्थता के कारण सजीव लगने लगता है। हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन का यथार्थ ही साहित्य में प्रविष्ट होकर यथार्थवाद का नाम ग्रहण कर लेता है। इस दृष्टि से यथार्थ और यथार्थवाद दोनों एक-दूसरे के पूरक तत्त्व के रूप में माने जा सकते हैं। यह उल्लेखनीय है कि कला साहित्य के क्षेत्र में जीवन

का सच्चा एवं वास्तविक जीता-जागता चित्र यथार्थवाद ही प्रस्तुत कर सकता है।

यदि यथार्थवाद यथार्थ का बाह्य आवरण है; तो यथार्थ उसका हृदय है। यथार्थ और यथार्थवाद के संबंध में अनेक पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों-आलोचकों ने जो विभिन्न मत अभिव्यक्त किए हैं; वे इस तथ्य की पुष्टि करते है कि ''यथार्थवाद यथार्थपरक साहित्य की एक शैली विशेषता न होकर उसमें निहित एक विशिष्ट विचारधारा है। इस विचारधारा का अनुगमनकर्ता साहित्यकार केवल एक चित्रकार की भांति साहित्य में वास्तविक जीवन का चित्रण न करके उसे एक सुसंबद्ध वैचारिक श्रृंखला में बद्ध करके प्रस्तुत करता है। सामाजिक जीवन में परिवर्तन और विकास के समानांतर ही यथार्थ के स्वरूप में भी परिवर्तन और विकास होता रहता है। यथार्थवाद भी समय के अनुरूप विभिन्न परिस्थितियों और जीवन के वास्तविक रूपों से प्रभावित होता रहता है।''(27)

2.12 यथार्थवाद का स्वरूप

यथार्थवाद यथार्थ की आधारभूमि पर जीवन का चित्र है। यथार्थवाद हृदय की चीज है। (कल्पना के तत्त्व के समावेश होने से) यथार्थ का मूल स्त्रोत जीवन की यथार्थता में निहित है। अत: यह कहना गलत नहीं होगा कि जीवन की यथार्थता से ही यथार्थवाद अपनी खुराक ग्रहण करता है। यथार्थवाद का जन्म यथार्थ के गर्भ से होता है। दूसरे शब्दों में यथार्थ का विज्ञान और उसकी अवधारणा ही यथार्थवाद है।

यथार्थवाद मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र एवं आलोचना की केंद्रीय धारणा रही है। यह सच है कि रचना के क्षेत्र में यथार्थवाद का अस्तित्व मार्क्सवादी से पुराना है। किंतु उसकी समग्र व्याख्या मार्क्सवादी सौंदर्य शास्त्र एवं आलोचना द्वारा ही संभव हुआ है। मैनेजर पांडेय के मतानुसार - ''मार्क्सवाद रचना के क्षेत्र में यथार्थवाद के विकास का प्रेरक और आलोचना में उसके विश्लेषण-मूल्यांकन का सुसंगत दृष्टिकोण है। मार्क्सवादियों के बीच यथार्थवाद के महत्त्व के बारे में कोई विशेष विवाद भले ही न हो, लेकिन उसका स्वरूप निर्विवाद नहीं है। सबसे अधिक विवाद यथार्थवाद और विचारधारा के संबंध पर है।''(28) मैनेजर पाण्डेय के अनुसार ही यथार्थवाद के स्वरूप और विचारधारा से उसके संबंध की बात उठते ही एंगेल्स का वह पत्र ध्यान में आता है; जो उन्होंने 1888 में माग्रेट हार्कनेस को लिखा था। इस पत्र में एंगेल्स ने यथार्थवाद के स्वरूप, प्रतिनिधिकता की धारणा और यथार्थवाद के विचारधारा के संबंध पर विचार करते हुए 'यथार्थवाद की विजय' की धारणा स्थापित की है। यथार्थवाद और विचारधारा के बीच विरोध को महत्त्व देनेवाले विद्वान बार-बार इस पत्र का हवाला देते हैं।

हम अपने युग के केंद्रीय बुनियादी प्रश्नों, जटिलताओं को द्वन्द्वात्मकता द्वारा यथार्थ दृष्टि के बिना नहीं पहचान सकते हैं। यह जिंदगी को जाँच-पड़ताल का एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। डॉ. राकेश कुमार के शब्दों में- ''लुकाच ने यथार्थवाद के क्षेत्र में उन तथाकथित आधुनिकतावादियों के मंतव्यों को सतर्कतापूर्वक पहचान लिया था; जो मनुष्य का कटा-पिटा 'एबसर्ड' चित्र व्यक्त करके यथार्थवाद की दुहाई देते हैं। उनका यथार्थवाद जिंदगी

की केंद्रीय समस्याओं से पूर्णतया कटा हुआ है। इस तरह वे अपनी आड़ी-तिरछी दृष्टि द्वारा मनुष्यता के केवल सतही एक पक्षीय दृष्टिकोण को निराशावादी दर्शन द्वारा ही उभारते हैं। इस प्रक्रिया में मनुष्य का जो यथार्थवादी रूप उभरा है; वह इतना बौना, निरीह, निष्क्रिय और रुग्ण है कि उससे जो यथार्थ दर्शन व्यंजित होता है- वह यथार्थ नहीं, वरन् यथार्थ का अत्यंत विकृत और छद्म रूप ही है।... यथार्थवाद संत्रास, अनास्था, अविश्वास, अकेलेपन, निरीहता जैसी मनोवृत्तियों को ही अभिव्यक्ति करता है।''(29)

एक अंग्रेजी विचारक राल्फ फाक्स के अनुसार 'यथार्थ का चित्रण व्यक्ति के उस गहरे संघर्ष की भूमि पर होना चाहिए; जो एक साथ ही उसको अंतरंग व बहिरंग दोनों स्थितियों को समेट ले।' दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि यथार्थवादी साहित्य में बाह्य जगत की घटनाओं, परिस्थितियों के साथ-साथ मानव मन की झाँकी भी होनी चाहिए। ऐसे कवि और कलाकार अवश्य हुए हैं; जिन्हें यथार्थ के नाम पर जीवन का केवल वीभत्स और कलुष रूप ही भाया है तथा अपनी रचनाओं के लिए जीवन के इसी रूप को ग्रहण किया है। बालजाक की गणना ऐसे ही साहित्यकारों में की जाती है, तथापि यथार्थवाद का यह रूप निश्चय ही एकांगी है, साथ ही, अस्वस्थ मनोवृत्तियों का परिचायक भी है। यथार्थ के इस रूप के अतिरिक्त भी जगत में बहुत कुछ बचा रहता है जिसे साहित्य का उपजीव्य बनाया जा सकता है।

यथार्थवाद जीवन का यथावत रूप प्रस्तुत करनेवाली साहित्यिक विचारधारा या प्रवृत्ति है। यथार्थवादी कलाकर का प्रयत्न हमेशा ही उन घटनाओं और पात्रों का प्रस्तुतीकरण होता है; जो वास्तविक जगत के प्रतिरूप हैं। यथार्थवाद के स्वरूप की चर्चा करते हुए जॉर्ज लुकाच का अभिमत है- ''यथार्थवाद मिथ्या वस्तुपरकता तथा मिथ्या व्यक्तिपरकता के बीच का कोई मध्य मार्ग नहीं है; वरन् इसके विपरीत वह हमारे समय की भूल-भूलैया में बिना किसी नक्शे के भटकनेवाले लोगों के द्वारा गलत रूप में प्रस्तुत प्रश्नों के फलस्वरूप उत्पन्न समस्त प्रकार के झूठे असमंजसों के विरुद्ध एक सच्चा तथा सही समाधानों तक ले जानेवाला तीसरा रास्ता है।''(30)

यथार्थवाद के संदर्भ में तरह-तरह की भ्रांतियाँ हैं। एनसाईक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार ''यथार्थवादी लेखक वह है; जो सुंदर वस्तुओं पर लिखना पसंद नहीं करता; वरन् उनके बदले गंदी, घिनौनी चीजों का ही वर्णन करता है, वह टाइप के बदले व्यक्तियों का चित्रण करता है और यथातथ्य चित्रण में विश्वास करता है।''(31) यथार्थवाद की भ्रांति के संबंध में शिवकुमार मिश्र का कहना है कि चित्रणगत एवं शैलीगत दृष्टिकोण यथार्थवाद की दूसरी भ्रांति है। उनके शब्दों में ''यथार्थवादी लेखक सत्य को ब्यौरेवार प्रस्तुत करता है; परंतु उसे मात्र फोटोग्राफिक नहीं बना देता है। यथार्थवादी रचनाकार इस अनंत रूपात्मक जगत तथा उसके समूचे विस्तार को पैनी नजरों से देखता है, व्यापक सामाजिक जीवन में प्रविष्ट होकर नाना प्रकार की स्थितियों तथा चरित्रों से साक्षात्कार करता है, अनुभवों की एक मूल्यवान समष्टि का स्वामी बनता है; किंतु सारी बातों को 'फोटोग्राफिक' शैली

में ज्यों-का-त्यों प्रस्तुत नहीं कर देता। सारी घटनाओं तथा पात्रों को सामाजिक जीवन से प्राप्त अपने यथार्थ अनुभवों की खराद पर चढ़ाता है, उन्हें तराशता है, नुकीला बनाता है और अपनी कृति के अंतर्गत उनकी कलात्मक नियोजना करता है।''(32)

यथार्थवाद के सच्चे स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए डॉ. त्रिभुवन सिंह ने कहा है - ''यथार्थवाद न तो इतिहास है कि वह किसी घटना की सूची तैयार करता चले, न तो वह कैमरा है जो वस्तु उसके सामने जिस रूप में आए उसका हू-ब-हू चित्र उपस्थित कर दे, न तो अजायबघर है कि दुनिया भर की तमाम चीजों को कागज के पन्नों पर संग्रहीत कर दे और न तो उसने मानव की जुगुप्सित तथा विलासी प्रवृत्तियों को संतुष्ट करने के लिए अज्ञेय एवं गोपनीय जघन्य स्थलों तथा घटनाओं को उपस्थित करने का ही बीड़ा उठा रखा है।'' इसके साथ ही, आपने यथार्थवाद के रचनात्मक पक्ष का उद्‌घाटन करते हुए कहा है- ''यथार्थवाद का एक मात्र लक्ष्य वस्तुजगत की स्थितियों को समक्ष रखते हुए सुंदर से असुंदर स्थितियों की ओर समाज को उन्मुख कराना है।''(33)

प्राय: कोई भी रचनाकार अनुभव और यथार्थ के धरातल पर ही कृति का निर्माण करता है। अत: हम ऐसे रचनाकारों को अनुभववादी और यथार्थवादी रचनाकार इन दो वर्गों में बाँट सकते हैं। लेकिन दोनों की दृष्टिकोणों में भिन्नता अवश्य है। अनुभववादी रचनाकार यथार्थ के अनुभव की तात्कालिकता को ही प्रमुखता देता है; जबकि यथार्थवादी रचनाकार यथार्थ के अनुभव के विस्तृत प्रसंग पर ध्यान देता है। मैनेजर पांडेय के अनुसार- ''यथार्थ के चयन की प्रक्रिया में कई बार यथार्थ के नए रूप और पक्ष लेखक के सामने आते हैं। तब लेखक को पहले के अनुभवों से बने यथार्थ संबंधी अपने पूर्वग्रहों और नए पक्षों के बीच चुनाव करना होता है। सच्चा यथार्थवादी यथार्थ के नए पक्षों पर अपने पूर्वग्रह नहीं लादता, नए उभरे पक्ष की उपेक्षा भी नहीं करता, वह यथार्थ की विकास-प्रक्रिया और विवेक सम्मत परिणति को स्वीकार करता है। यही विवेकशील यथार्थवादी दृष्टिकोण है।''(34)

सच्चा यथार्थवाद केवल 'आज को ही नहीं, आने वाले कल' को भी अपने साथ लेकर चलता है। उस यथार्थवाद की कोई भी उपयोगिता नहीं हो सकती जो कि जीवन के अभावों और दु:खों का वर्णन करके ही अपने कर्तव्य का लक्ष्य समझ लेता है। जिस यथार्थ की कल्पना में भविष्य की आशा की चिनगारी नहीं होती और जिसमें आज के वर्णन में 'कल' के सुनहरे स्वप्न नहीं होते; वह यथार्थ सचमुच ही प्रशंसनीय नहीं हो सकता। यह भी ध्यातव्य है कि यथार्थवादी कलाकार का काम फोटोग्राफर का काम नहीं होता। वह मात्र अंधानुकरण में नहीं; बल्कि नवनिर्माण में विश्वास करता है। उसका यह भी महत्त्वपूर्ण कार्य होता है कि वह मात्र संसार के गंदगी एवं वीभत्सता की ओर ही हमारा ध्यान आकृष्ट नहीं करता; किंतु 'सत्यम शिवम् सुंदरम' पर भी बल देता है।

यथार्थवाद के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए मार्क्सवादी आलोचक रामविलास शर्मा

ने ठीक ही कहा है- ''यथार्थवाद को सीमित अर्थ में लेना अनुचित है। उसमें सामाजिक समस्याओं के चित्रण के अलावा प्रकृति चित्रण भी हो सकता है, संघर्ष के चित्रण के अलावा प्रेम के मुक्तक भी लिखे जा सकते हैं। मनुष्य के सौंदर्यबोध में जो परिवर्तन होते हैं; वे प्रत्यक्ष रूप में यथार्थ चित्रण के असंबद्ध होते हुए भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं होते। उदहारण के लिए निरालाजी के काव्य में शब्दों की नई शक्ति, प्रतीकों की नई गरिमा, भावाभिव्यंजन में नए उदात्त तत्त्वों के दर्शन होते हैं। इस नए सौंदर्यबोध के कारण 'जूही की कली' या 'जागो फिर एक बार' 'भारत-भारती' से कम नहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार कीट्स की सघन इंद्रियबोधवाली रचनाएँ और शेली के दु:ख भरे प्रेम-संबंधी गीत, स्टील और ऐडीसन के निबंधों से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। साहित्य का विकास दो परस्पर संबद्ध स्तरों पर होता है। एक है विश्व प्रतीति का स्वर, सामाजिक जीवन के हमारे ज्ञान का स्तर और दूसरा है भावजगत, इंद्रियबोध, हमारे सौंदर्यबोध का स्तर। इनमें संतुलन कायम रखना आवश्यक होता है। इस संतुलन को भुलाकर न तो उच्चकोटि का साहित्य रचा जा सकता है, न यथार्थवाद का सही विवेचन किया जा सकता है।'' (35)

यथार्थवाद अपने आप में एक व्यापक विषय है। लोग प्राय: इसकी चर्चा अनेक पत्र-पत्रिकाओं में की है। समालोचक पत्रिका में काफी मात्रा में यथार्थवाद के विषय पर अनेक विद्वानों ने अपनी राय जताई है। कहने का तात्पर्य है कि इस विषय पर काफी माथा-पच्ची एवं बहस हुई है। मैनेजर पांडेय के अनुसार - ''यह बहस उपन्यास, कहानी और नाटक तक ही सीमित है। कविता बहस के बाहर है। क्या कविता यथार्थवाद के लिए वर्जित प्रदेश है? यथार्थवाद के समर्थक कविता के क्षेत्र में प्रवेश करने में हिचक रहे हैं और विरोधी खुश हैं कि उनके स्वच्छंद विचरण के लिए एक क्षेत्र छुटा हुआ है। क्या नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल आदि की कविता भी यथार्थवाद पर बहस की सही जमीन नहीं है? प्राय: यथार्थवाद पर बात करते समय कविता की उपेक्षा होती है। कविता के प्रतिमानों की खोज के दौरान भी यथार्थवाद याद नहीं आता।''(36)

2.2 यर्थाथवाद : उद्‌भव एवं विकास

2.21 यर्थाथवाद का उद्‌भव :

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यथार्थवादी विचारधारा का उद्‌भव सर्वप्रथम इ. पू. 5 वीं शताब्दी के लगभग यूनान के महान आलोचक प्लेटो के दर्शनशास्त्र से माना जाता है। डॉ. हरद्वारीलाल शर्मा के अनुसार ''यथार्थवाद की जड़ें दर्शन में मिलती हैं। पश्चिम में बहुत पहले प्लेटो के द्वारा 'अनुभूति' का द्विधाकरण हुआ। एक अनुभूति वह जिसका प्रादुर्भाव इंद्रियमार्गों से होता है; जो संस्पर्शज और आकस्मिक है तथा जिसमें भ्रांति, परिवर्तन विविधता अस्थैर्य आदि विकार देखे जाते हैं। यह ऐंद्रिय अनुभूति (sensibility) है। इसके विपरीत बुद्धि (reason) ज्ञान का निरपेक्ष स्त्रोत है, जिससे निश्चित, निर्णीत, असंदिग्ध तथा सनातन सत्यों का उद्‌घाटन होता है। बुद्धि के अनुभव में संस्पर्शज दोष नहीं होते; वरन् उसमें

अविकारी, अचल, प्रमाणीभूत, सर्वसामान्य और निरपेक्ष सिद्धांत रहते हैं। प्लेटो ने बुद्धि को परम सत्य का मूल माना। इसकी अनुभूति को उपादेय तथा सत्ता का चरम रूप स्वीकार किया तथा ऐंद्रिय अनुभूति को हेय और विकारी होने के कारण निम्न स्थान दिया।''(37) डॉ. कडू के विचारानुसार ''भारत में 'चारवाक दर्शन' यथार्थवादी दर्शन ही है; जो प्रत्यक्ष पर ही आस्था रखता है।''(38)

2.22 यथार्थवाद का विकास : यथार्थवाद एक विदेशी विचारधारा है। डॉ. त्रिभुवन सिंह के अनुसार, इसके विकास में मुख्यत: पाँच बातों की गणना आवश्यक है।

1. डार्विन का जीवविज्ञान
2. फ्रायड का मनोविश्लेषण
3. मार्क्स का अर्थविज्ञान
4. यूरोपीय यथार्थवादी उपन्यासों का प्रभाव
5. विज्ञान का प्रभाव

चार्ल्स डार्विन के अनुसार ''आरंभिक अवस्था से सभ्यता के अंतिम रूप तक जीवों का विकास भौतिक-शक्तियों के प्रभाव के कारण सूक्ष्म जीवाणुओं से हुआ है।'' अर्थात् मानव का विकास धीरे-धीरे युग-युगांतरों के परिवर्तन के पश्चात् हुआ। डॉ. त्रिभुवन सिंह के अनुसार ''यद्यपि मानव विकास के संबंध में विकासवाद का यह सिद्धांत सर्वमान्य नहीं है, फिर भी इसका एक महत्त्वपूर्ण स्थान है।''(39) डार्विन के मानव विकास के संबंध में जा. विश्वमित्र ने कहा है- ''डार्विन की मानव विकास संबंधी विकासवाद सिद्धांत की यद्यपि कुछ सीमाएँ हैं। तथापि उसकी ऐतिहासिक महत्ता है। विकासवादी सिद्धांत के कारण वैज्ञानिक दृष्टिकोण निर्मित होने से मनुष्य और प्रकृति का संबंध घनिष्ठ हो जाता है। वह चारों ओर से भी वस्तुओं से अपना संबंध निर्धारित करता है। जीव-जन्तुओं को वैज्ञानिक दृष्टि से परखता है, फलस्वरूप आधुनिक सिद्धांतों का साहित्य पर प्रभाव पड़ता है।''(40)

सिंगमंड फ्रायड ने मानव की काम-भावना को प्रमुखता दी है। उसके अनुसार मानव के अवचेतन में स्थित दमित काम-भावना पर उसके गुण-दोष संबंधी विवेक शक्ति का प्रभाव रहता है। अत: उसकी सामाजिक मर्यादा नियंत्रण में रहती है। किंतु अनेक ग्रंथियों के फलस्वरूप उसकी कामवृत्ति में विकार जन्म ले लेता है। कहना न होगा कि यथार्थ चित्रण के लिए मानव के अवचेतन में द्वन्द्व करती हुई प्रवृत्तियों का यथातथ्य चित्रण करना जरूरी हो जाता है। फ्रायड ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ''इन्टरप्रेटेशन ऑफ ड्रीम्स' में यथार्थ के दो प्रकार बताए हैं- मानसिक यथार्थ और दूसरा वास्तविक यथार्थ। सत्यकाम के अनुसार ''यदि वास्तविक यथार्थ अति कठोर या अति हताशाजनक है; तो मनोकल्पनाएँ या फंतासियाँ अधिक शक्तिशाली हो जाती हैं और मनुष्य मनोवैज्ञानिक यथार्थ में इस प्रकार जीने लगता है; मानो यह वास्तविक यथार्थ हो। इस प्रकार फ्रायड ने मनोवैज्ञानिक यथार्थ की शक्ति की पहचान कराई। उसने स्वप्नों, मनुष्य के आंतरिक जीवन और बचपन में ही मनुष्य

में काम-भावना के आरंभ हो जाने की सच्चाई का उद्‌घाटन किया।''(41)

आर्थिक एवं सामाजिक विषमता को जड़ समेत उखाड़ फेकने का काम सर्वप्रथम मार्क्सवादी विचारधारा ने किया है। इसके लिए मार्क्सवादी दर्शन से मनुष्य जाति में एक वैचारिक क्रांति उत्पन्न किया है। मार्क्सवादी रचनाकारों की पक्षधरता शोषित वर्ग के प्रति अधिक रही है। यही कारण है कि शोषितों का जीवन-संघर्ष, आर्थिक और सामाजिक विषमताओं के प्रति उनका आक्रोश यथार्थवादी साहित्य का मूलाधार बन गया है। राल्फ फाक्स ने अपनी पुस्तक 'नोवेल एण्ड पीपल' में लिखा है- ''मार्क्स ने साहित्य का आधार अर्थ को माना है। भौतिक-शक्तियाँ मनुष्य को बदल सकती हैं; लेकिन उसकी यह भी ठोस मान्यता है कि मनुष्य ही वास्तव में भौतिक शक्तियों को प्रभावित करता है। इस तरह वह अपने आपको परिवर्तित करता है।'' कार्ल मार्क्स ने इस समाज का दो वर्गों में विभाजित किया है- शोषित और शोषक वर्ग। वस्तुत: शोषित वर्ग पर जो भी रचनाएँ लिखी गईं हैं; वह यथार्थवादी रचना कहलाती है। ऐसी रचनाओं में शोषित वर्ग की समस्याओं आदि का यथार्थपरक चित्रण किया जाता है।

उन्नीसवीं शताब्दी में कला और साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवाद एक आंदोलन के रूप में उभरा। यथार्थवाद के संबंध में सबसे पहले विचार प्रकट करनेवालों में मर्क्यू फ्रांसे का नाम लिया जाता है। उन्होंने सन् 1826 में यथार्थवाद पर एक निबंध लिखकर कला और साहित्य के क्षेत्र में इसकी स्थापना की। यथार्थवादी उपन्यासकारों में बाल्जाक एवं स्तेन्दल का नाम सर्वोपरि है। 19 वीं शताब्दी के तीसरे दशक में बाल्जाक का पहला महत्त्वपूर्ण उपन्यास 'ले देर्निये शोवाँ' (Le Dernear Chauan) 1829 ई. में प्रकाशित हुआ और 20 वर्षों में उसके मृत्यु पर्यंत पूरी दुनिया में तहलका मचा दिया। स्तेन्दल बाल्जाक का समकालीन उपन्यासकार था। सत्यकाम के अनुसार - ''स्तेन्दल अपने उपन्यासों में मनुष्य के आचरण और व्यवहार के मूल में कार्यरत प्रेरणाओं का जो प्रत्यक्षत: या परोक्षत: उसके निजी स्वार्थों द्वारा अनुकूलित होती हैं, अध्ययन करता है। उसके साथ ही वह पात्रों की भावनाओं और मनोवेगों का पूर्ण रूप से विश्लेषण करता है। यदि 'डील मार' (Del' amaur) में वह तर्कपूर्ण विश्लेषण द्वारा प्रकट नितांत अबौद्धिक मनोवेग (irratinal pasion) के अंतरतम रहस्यों में प्रवेश करने की कोशिश करता है; तो अपनी परवर्ती कृतियों में वह मनुष्य की मनोवैज्ञानिक और सामाजिक स्थितियों का चित्रण संश्लिष्ट रूप में एक इकाई के रूप में करता है।''(आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचंद, पृ.55)

इन उपन्यासकारों के बाद 1855 में कूर्वे नामक एक चित्रकार ने अपनी यथार्थवादी कलाकृतियों की प्रदर्शनी का आयोजन किया था। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सन् 1855 तक फ्रांस के कला एवं साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवाद पूर्णरूप से प्रतिष्ठित हो चुका था। सन् 1856-57 के बीच फ्लाउ बर्ट द्वारा रचित 'मदाम बावरी' (madame Bovary) नामक उपन्यास का साहित्यिक यथार्थवादी आंदोलन के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उपर्युक्त कलाकृति एवं साहित्यिक रचनाकारों से लेकर एन्थनी पॉवेल, हेनरी विलियम्सन

तक यूरोपीय यथार्थवाद के अनेक रूप परिलक्षित होते हैं; जिनकों लेकर विभिन्न विद्वानों-आलोचकों में अब भी काफी मतभेद बना हुआ है। यह मतभेद व्यक्ति की अंदरूनी दुनिया के चित्रण, समाज के सही स्वरूप और उसकी समस्याओं के चित्रण, व्यक्ति एवं समाज के परस्पर संबंध के चित्रण, व्यक्ति के परिवेश के चित्रण तथा किसी भी कारण से उपन्यासकारों और साहित्य चिंतकों द्वारा इनमें से किसी एक पक्ष से प्रतिबद्ध होने के फल-स्वरूप उत्पन्न हुआ है।

19 वीं शताब्दी से लेकर आज तक यथार्थवाद के इस आंदोलन का विकास भिन्न-भिन्न देशों के साहित्य में विभिन्न रूपों में होता रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यथार्थवादी आंदोलन का प्रमुख वाहक पाश्चात्य उपन्यास रहा है। उपन्यासों के माध्यम से ही हम यथार्थवाद के विभिन्न स्वरूप- आकार ग्रहण करते रहे हैं। साहित्यिक यथार्थवाद के विकास निर्धारण में उपन्यासकारों के साथ-साथ कुछ महत्त्वपूर्ण समालोचकों का भी योगदान माना जा सकता है।

वैज्ञानिक अविष्कारों की दृष्टि से 18 वीं एवं 19 वीं शताब्दी का उल्लेख विचारणीय है। 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अनेक ऐसे वैज्ञानिक आविष्कार हुए; जिन्होंने सर्वप्रथम यूरोप में और तत्पश्चात् संपूर्ण विश्व की अर्थव्यवस्था में ऐसा क्रांतिकारी बदलाव लाया कि उसका समाज-व्यवस्था पर व्यापक एवं दूरगामी प्रभाव पड़ा। नई-नई मशीनों के आविष्कार के कारण वस्तुओं के उत्पादन एवं वितरण में अभूतपूर्व क्रांति हुई। डॉ. त्रिभुवन सिंह के अनुसार ''मानव जीवन के पुराने आदर्शों में आमूल परिवर्तन हुआ। एक सुनिश्चित आदर्श विकास के लिए आरंभ में ही नहीं मान लिया गया; बल्कि मानव समाज धीरे-धीरे अपने निचले स्तर से उठकर विकसित हुआ और आज का समाज उस विकास की चरम निष्पत्ति है, ऐसा माना जाने लगा। मुद्रण यंत्रों के आविष्कार ने गद्य साहित्य को प्रोत्साहन देकर तथा छापेखानों की सुविधाओं के कारण साहित्य को मनुष्यों के दैनिक जीवन के अत्यधिक निकट ला दिया।''[42] यहीं नहीं, सन् 1838 में फोटोग्राफी के आविष्कार ने वस्तुस्थिति को यथावत् प्रस्तुत करने की कला में पहल की। पत्रकारिता ने सामाजिक घटनाओं का व्यौरेवार वर्णन एवं सूक्ष्म-निरीक्षण कर यथार्थ का आभास दिलाया।

19 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मशीनों के अधिकाधिक प्रयोग के फलस्वरूप इंग्लैण्ड और फ्रांस विश्व की औद्योगिक शक्तियाँ बनी। इग्लैण्ड और फ्रांस में औद्योगिक क्रांति की एक लहर दौड़ पड़ी। इस क्रांति ने मशीनीकरण से समूची मानव जाति की सहायता की। उसके श्रम को कई गुना अधिक संभावनाएँ प्रदान की। इसी दौर में अमेरिका में भी एक क्रांति हुई; जिसका मुख्य लक्ष्य था कि प्रजातंत्र ही समाज संगठन का न्याय पूर्ण आधार है। कुछ वर्षों के पश्चात् फ्रांस में जो जनक्रांति हुई थी; उसका लक्ष्य राजाओं के अधिकार को मूल समेत उखाड़कर प्रजातंत्र एवं समाजवाद की निरंकुशता को नष्ट कर दिया। इसी का प्रभाव रुसी राज्य क्रांति पर पड़ा। सत्यकाम के मतानुसार - ''औद्योगिक क्रांति ने नए सामाजिक वर्गों को जन्म दिया। एक नया व्यवसायी वर्ग एक नया औद्योगिक वर्ग, और

एक नया धनी वर्ग पैदा हुआ और पुराना जमींदार वर्ग धीरे-धीरे कमजोर और कम महत्त्वपूर्ण होने लगा। ये ही नवोदित वर्ग उन्नीसवीं शताब्दी के नवोदित प्रजातंत्र के अंग और अगुवा थे।''(43)

कहना न होगा कि वैज्ञानिक अविष्कारों ने सामाजिक-धार्मिक अंधविश्वास, आर्थिक तथा राजनीतिक जगत में जो जनक्रांति लाई; उसके फलस्वरूप समाज की विचारधारा, दृष्टिकोण एवं स्वरूप में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। हमें एक नई तथा तथ्यपरक वैज्ञानिक दृष्टि का आभास होने लगा। निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि यथार्थवाद के विकास में चार्ल्स-डार्विन, सिगमंड फ्रायड और कार्ल मार्क्स के सिद्धांत तथा वैज्ञानिक आविष्कारों एवं यूरोपीय उपन्यासों में अभिव्यक्त जनक्रांति का विशेष योगदान रहा है।

2.3 यथार्थवाद की विशेषता

यथार्थवाद का लक्ष्यजीवन की समग्र परिस्थितियों के प्रति ईमानदारी का दावा प्रस्तुत करते हुए मनुष्य की कुरूपताओं एवं हीनताओं का चित्रण करना है। यथार्थवादी रचनाकारों का विश्वास यथातथ्य वर्णनों पर ही होता है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते भी है -''यथार्थवाद का मूल सिद्धांत है; वस्तु को उसके यथार्थ रूप में चित्रित करना। न तो उसको कल्पना के द्वारा विचित्र रंगों से अनुरंजित करना और न किसी धार्मिक या नैतिक आदर्श के लिए उसे काट-छाँटकर उपस्थित करना।''(44) द्विवेदी के कहने का आशय यह है कि यथार्थवाद साहित्य में एक ऐसी विचारधारा के रूप में ग्राह्य होना चाहिए; जिसमें लोगों की आस्था बनी रहे; क्योंकि उसके अभाव में यथार्थवाद का लक्ष्य पूरा नहीं हो पाता। अत: उन्होंने इस प्रसंग में अपनी यह धारणा अभिव्यक्त की है कि यथार्थवाद को जैसे हमारे लेखकों ने विश्वास के रूप में नहीं; बल्कि आजकल के आवश्यक साधन के रूप में ग्रहण कर लिया है।

जगत परिवर्तनशील है। यह परिवर्तन ही शाश्वत सत्य है। अत: यथार्थवाद का कर्तव्य होता है कि वह इस शाश्वत सत्य को अच्छी तरह जाने, समझे और पहचाने तथा उसको साहित्य के माध्यम चित्रित कर उद्‌घाटन करे। शिवदान सिंह चौहान के मतानुसार- ''जो अपनी उपयोगिता समाप्त करके मिट रहा है, वह असत्य है, और जो उभर रहा है, वही सत्य है।''(45) यथार्थवादी साहित्यकार कटु-से-कटु सत्य एवं कुत्सित चित्रों को भी अपने साहित्य में चित्रित करने में संकोच का अनुभव नहीं करता है।

यथार्थवाद की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए जयशंकर प्रसाद ने कहा है - ''यथार्थवाद की विशेषताओं में प्रधान है- लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात। उसमें स्वभावत: दु:ख की प्रधानता और वेदना की अनुभूति आवश्यक है। लघुता से मेरा तात्पर्य है साहित्य के माने हुए सिद्धांत के अनुसार महत्ता के काल्पनिक चित्रण से अतिरिक्त व्यक्तिगत जीवन के दु:ख और अभावों का वास्तविक उल्लेख... जाति में जो धार्मिक और सांप्रदायिक परिवर्तनों के स्तर आवरण स्वरूप बन जाते हैं, उन्हें हटाकर अपनी वास्तविकता

को खोजने की चेष्टा भी साहित्य में तथ्यवाद की सहायता करती है। ... उस व्यापक दु:ख संवलित मानवता को स्पर्श करनेवाला साहित्य यथार्थवादी बन जाता है। इस यथार्थवादिता में अभाव,प तन और वेदना के अंश प्रचुरता से होते हैं।... वस्तुत: यथार्थवाद का मूलभाव है वेदना। जब सामूहिक चेतना छिन्न-भिन्न होकर पीड़ित होने लगती है; तब वेदना की विवृत्ति आवश्यक हो जाती है। ... यथार्थवाद इतिहास की संपत्ति है। वह चित्रित करता है कि समाज कैसा है या था।''(46)

यथार्थवादी साहित्यकार अपनी कृतियों में अधिकांशत: यथार्थ का ही चित्रण करता है। वह यथार्थ को बल देते हुए आदर्श की सुंदर एवं मनोरम दृश्य भर उद्घाटित करता है। यथार्थ अपने प्रकृत रूप में जीवन की वास्तविकताओं का ही चित्रण है। साधारणत: यथार्थवादी साहित्यकार वैयक्ति क जीवन को सर्वप्रथम देखने का पहल करता है। तत्पश्चात् उसका अनुभव फिर उस पर चिंतन-मनन करता है। इस प्रकार वह जीवन की सत्यता और वास्तविकता को जाने-समझे बिना अपनी रचना में उसकी स्पष्टीकरण नहीं देता। उसके इस स्पष्टीकरण में न तो रोमांस की प्रधानता और न ही आदर्श की भावना रहती है। यथार्थवादी लेखक मात्र सहानुभूति की भावना उद्दीप्त करके अपना कर्तव्य समझता है। डॉ. प्रेमनारायण के अनुसार - ''साहित्यकार की कृति युग का दर्शन होती है। इस अर्थ में यथार्थवादी साहित्य इतिहास के निर्माण में सहायक होता है।'' (हिंदी साहित्य में विविध वाद, पृ.204)

राजकुमार सैनी ने यथार्थवाद की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए कहा है- ''यथार्थवादी दृष्टि वस्तु, प्रकृति, व्यक्ति, समाज, इतिहास और इतिहास की हर घटना के ऊपरी रूप तक ही सीमित नहीं रहती; वह उसकी तहों में जाकर उसकी अंतर्वस्तु का साक्षात्कार करा देती है।''(47)

यथार्थवाद मूलत: प्राणी जीवन के यथातथ्य पर विश्वास करता है। वह जीवन के सत्य और असत्य दोनों पक्षों पर चिंतन करता है। विशेषकर यथार्थ के नाम पर जीवन के जुगुप्सित-घृणित पक्ष पर ज्यादा बल देता है। राजकुमार सैनी ने यथार्थवाद के विभिन्न पहलुओं की चर्चा करते हुए कहा है- ''यथार्थवाद कलावाद का विरोधी है; लेकिन कला का विरोधी नहीं। शैली का विरोधी है; लेकिन किसी भी खास तरह की शैली से उसका विरोध नहीं है। रीतिवाद का विरोधी है; लेकिन किसी खास तरह की रीति से उसका विरोध नहीं है। प्रकृतिवाद का विरोधी है; लेकिन किसी भी प्राकृतसत्य से उसका विरोध नहीं। उदाहरण के लिए पानी नीचे की ओर बहता है, यह प्रकृति का नियम है। यदि मानव जाति के इतिहास की दिशा प्रकृतिवादी होती; तो पानी सदा नीचे की ओर ही बहता रहता लेकिन, यथार्थवादी मानव ने पानी को ऊंची-ऊंची मंजिलों तक पहुँचा दिया है; क्योंकि उसने इसका कारण जान लिया है कि पानी नीचे की ओर क्यों बहता है।''(48)

यथार्थवाद सुधारवादी साहित्य का पहला अस्त्र माना जाता है। सुधारवादी साहित्यकार किसी भी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति के प्रति विद्रोह करते

हुए उसका यथार्थवादी चित्र खड़ा करता है। यथार्थवादी साहित्यकार की सबसे बड़ी प्रवृत्ति यह है कि वह सच्चाई का जीवंत एवं सजीव चित्रण करे। तभी वह अपने पाठकों के हृदय कल्पना में स्थान पा सकता है।

2.4 यथार्थवाद के विविध रूप

यथार्थवाद की पृष्ठभूमि निराशा एवं असंतोष में देखी गई है। सुख नहीं; बल्कि दु:ख हमारी आत्मचेतना को तीव्रता एवं व्यापकता का रूप प्रदान करता है। अत: हम कह सकते हैं कि यथार्थवाद का संबंध दु:ख के इसी पक्ष से होता है। प्रकारांतर से साहित्य चिंतकों एवं कला मनीषियों ने समय-समय पर अपनी मान्यताओं द्वारा यथार्थवाद के सैद्धांतिक आधार को मजबूत करते रहे हैं। इस संदर्भ में मार्क्सवादी साहित्य एवं कला चिंतकों की अहम भूमिका रही है। इनके द्वारा यथार्थवादी साहित्य चिंतन को केवल सिद्धांतों के क्षेत्र में नहीं; बल्कि रचनात्मक निर्माण के क्षेत्र में भी एक नई क्रांतिकारी प्रस्थान बिंदु प्राप्त हुए हैं।

शिवकुमार मिश्र के शब्दों में ''देश-विदेश के मार्क्सवादी-समाजवादी आस्थावाले साहित्य एवं कला-चिंतकों के अतिरिक्त यथार्थवादी चिंतन परंपरा को पुष्ट करनेवाले साहित्यिक-दार्शनिक मनीषियों में रूस के बेलेंस्की, चर्निशवस्की, हर्जन, पिसारेव तथा दोब्रोल्युबोव का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है।... जहाँतक मार्क्सवादी साहित्य-चिंतकों तथा कला-मनीषियों का प्रश्न है उनके अंतर्गत मार्क्स, एंगेल्स तथा लेनिन के अतिरिक्त प्लेखानोव, क्रिस्टोफर, काडवेल, राल्फ फाक्स, जॉर्ज लुकाच, अर्नेट फिशर आदि अनेक चिंतकों की गणना की जा सकती है।''[49] यथार्थवाद दृष्टिगत एवं शैलीगत दोनों आयामों में अनेक नए रूपों में हमारे समक्ष उपस्थित होता है। शिवकुमार मिश्र यथार्थवाद के दो ही रूप की चर्चा की है- आलोचनात्मक यथार्थवाद तथा सामाजिक यथार्थवाद। प्रकृतवाद नाम की एक अन्य प्रवृत्ति को यथार्थवाद का अंग मानने अथवा उसमें यथार्थवादी आंदोलन के विकास का आयाम मानने में कुछ विचारकों को मूलभूत आपत्ति है। मार्क्सवादी साहित्य-चिंतकों ने भी प्रकृतवाद को यथार्थवाद का अंग नहीं माना है।

डॉ. त्रिभुवन सिंह ने यथार्थवाद के छ: रूप गिनाए हैं। 1) आदर्शोन्मुख यथार्थवाद 2) सामाजिक यथार्थवाद, 3) ऐतिहासिक यथार्थवाद 4) प्रकृतवाद, 5) अतियथार्थवाद 6)मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद । इस प्रकार यथार्थवाद के साथ अनेक विचारधाराएँ जुड़ी हैं। अतियथार्थवाद के संबंध में यह धारणा है कि यह यथार्थवाद का ही अतिवादी रूप है। यदि यथार्थवाद ने साहित्य एवं कला को एक नई दिशा दी है। तो अतियथार्थवाद ने व्यावसायिक क्षेत्र में उसके आरोपित संभावनाएँ प्रस्तुत की है। प्रकृतवाद भी यथार्थवाद से भौतिक दृष्टि से साम्य रखता है। समाजवाद (मार्क्सवादी) ने भी यथार्थवाद के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। मनोविज्ञान ने तो यथार्थवाद के चरित्र एवं रूप को सुधारने में एक अनिर्वचनीय कार्य किया है। प्रत्येक साहित्य का संबंध जीवन से होता है और जीवन का संबंध मनोविकारों पर आधारित है तथा मनोविकार का आधार मनोविज्ञान होता है। इस

अध्याय में यथार्थवाद के रूपों को संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास किया गया है।

2.41 सामाजिक यथार्थवाद एवं समाजवादी यथार्थवाद (Socialistic Realism) : प्राय: विभिन्न आलोचकों ने सामाजिक यथार्थवाद एवं समाजवादी यथार्थवाद का विवेचन अलग-अलग ढंग करने का प्रयास किया है। जबकि दोनों में विशेष अंतर नहीं है। डॉ. एस. एस.गणेशन ने दोनों में भिन्नता मानते हुए कहा है कि- ''सामाजिक यथार्थवाद और समाजवादी यथार्थवाद (Socialistic Realism) दोनों बिल्कुल भिन्न हैं। समाजवादी यथार्थ में समाजवाद की ओर प्रयाण करनेवाले एक समाज की गतिविधियों का निरीक्षण रहता है और वह ऐसे समाज की स्थापना को प्रोत्साहन देता है। एक तरह से यह आदर्शवाद ही है; पर सामाजिक यथार्थवाद का ऐसा कोई ध्येय नहीं होता।''(50)

डॉ. सुरेश सिंहा का विचार है कि ''सामाजिक यथार्थवाद समष्टि को मान्यता देता है व्यष्टि को नहीं। समाजवादी यथार्थवाद साहित्य और कला में यथार्थवादी चित्रण पर बल देता है। वह मानवीय शक्तियों के प्रति आग्रहशील है। वह मानवीय प्रगति की अवरोधक शक्तियों का रहस्योद्घाटन करता है। उसका कार्य अतीतकाल का व्याख्यात्मक चित्रांकन मात्र ही नहीं; अपितु वर्तमान की क्रांतिकारी सफलताओं को एक सूत्र में आबद्ध करने में सहायक होना एवं भविष्य के लिए महान समाजवादी उद्देश्यों का स्पष्टीकरण करना भी है। समाजवादी यथार्थवाद व्यापक दृष्टिकोण अपनाता है और इसकी क्षमता उन्हीं लेखकों में व्याप्त हो सकती है, जो वर्तमान को भविष्य के संदर्भ में मूल्यांकित कर सकने में समर्थ हैं। यही दृष्टिकोण वास्तव में समाजवादी यथार्थवाद की आधारशिला होनी चाहिए।''(51)

उपर्युक्त उद्धरणों का अध्ययन करने के पश्चात् आवश्यक हो जाता कि सामाजिक यथार्थवाद और समाजवादी यथार्थवाद की विवेचना अलग-अलग होनी चाहिए; तभी दोनों में एक स्पष्ट रेखा खिंचा जा सकता है। सामाजिक यथार्थवाद से प्रभावित रचनाओं में यथासम्भव समाज के वास्तविक चित्रण का प्रयत्न किया जाता है। सामाजिक यथार्थवादी लेखक अपनी रचनाओं में मुख्य रूप से सामाजिक विषमताओं, कुंठाओं एवं हीनताओं का यथार्थ चित्रण करने को विवश होता है। डॉ. त्रिभुवन सिंह ने सामाजिक यथार्थवाद को स्पष्ट करते हुए कहा है- ''सामाजिक यथार्थवाद का अर्थ होता है समाज की वास्तविक अवस्था का यथार्थ चित्रण।''(52)

सामाजिक यथार्थवाद जीवन के क्रमिक विकास एवं व्यक्ति तथा समाज के भाग्यरेखाओं का मिश्रित एक ऐसा दृश्य उभारना चाहता है; जो विस्तृत ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की विपरीत दिशा की ओर उन्मुख हो। सामाजिक यथार्थवाद समाज की विषमताओं के मूल कारण को पहचान कर उन्हें समाप्त करने का प्रतीकात्मक हल प्रस्तुत करता है। इसके अधीन ऐसे समाजों का चित्र उपस्थित किया जाता है; जो उपेक्षित निम्न श्रेणी के हो तथा जीवनयापन के लिए प्रस्तुत अपनी विषम परिस्थितियों से संघर्ष कर रहे हों। अर्थात् सामाजिक यथार्थवादी साहित्य के अंतर्गत मुख्यत: समाज के बिगड़े-भोंडे पक्षों को उजागर किया जाता

है। समाज के आर्थिक एवं नैतिक परिवर्तन तथा प्रभावों का सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विश्लेषण किया जाता है।

वस्तुतः सामाजिक यथार्थवाद का केंद्र बिंदु मार्क्सवादी विचारधारा ही है; जो हम सीधे समाजवादी यथार्थवाद से जोड़ते हैं। समाज में दो महत्त्वपूर्ण वर्ग होते हैं - शोषक और शोषित। इनका विभाजन अर्थ के आधार पर ही किया जाता है। स्वयं कार्ल मार्क्स ने अर्थ को ही मानव समाज की क्रियाकलापों का मुख्य आधार माना है तथा यंत्र व्यवस्था समर्थक है। समाज के विभिन्न परतों को खोलते हुए यथातथ्य का चित्रण करना सामाजिक चित्रण कहा जाता है। सामाजिक यथार्थवाद को 'विकासोन्मुख यथार्थवाद' भी कहा जाता है। समाजवादी यथार्थवाद की परिभाषा देते हुए डॉ. एस. एन. गणेशन ने कहा है-''समाजवाद की प्राप्ति अथवा समाजवाद की ओर अग्रसर होनेवाले समाज की विविध प्रवृत्तियों को यथार्थवादी शिल्प-विधान द्वारा प्रस्तुत करने की प्रणाली को समाजवादी यथार्थवाद कहते हैं।''(53) डॉ. सुरेश सिंहा ने समाजवादी यथार्थवाद की सटीक परिभाषा देते हुए कहा है- ''यथार्थवाद का चित्रण जब लेखक समाजवादी दृष्टिकोण से करता है, तो वह समाजवादी यथार्थवाद (Socialistic Realism) कहलाता है।''(54)

एक सोवियत लेखक निकोलीगी के अनुसार ''समाजवादी यथार्थवाद का उद्‌भव तब होता है जबकि मानव जाति को बुर्जुआ समाज के भयंकर अंतर्विरोधों का सामना करना पड़ता है। जबकि वर्गयुक्त से वर्गहीन समाज की ओर संक्रमण(Agenda) कार्यावली में होता है; जबकि आमलोग (Masses) समाजवाद के लक्ष्य के प्रति प्रयत्नशील होते हैं और उसे प्राप्त करने के लिए संघर्ष का आरंभ हो जाता है।''

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में फ्राँस में प्रथम समाजवादी यथार्थवाद का उदय हुआ और ल कोंत द सँट सीमों (Le conte de saint simen) उसका प्रणेता था (1760-1723 ई.)। व्यापक और स्वतंत्र बुद्धिमत्ता उनकी विशेषता थी और राष्ट्रमंडल की (League of Nations) प्रथम कल्पना सँ सीमों की थी। उस समय के समाजवाद को सँ सीमोनीज़्म (Saint Simonisme) कहते थे। सँटसीमों के समाजवादी विचारों से प्रभावित उसके शिष्य और सहायक आँफॉतं (Enfantin) पीएर लरू (Pierre Leroux) प्रसिद्ध इतिहासकार ओग्युस्तँ तिएरी (Augustin Thierry), ओग्यूस्त कोंत जैसे महत्वपूर्ण व्यक्ति थे। दूसरा समाजवादी यथार्थवादी लेखक फूरियेर (Forrier) था; किंतु सबसे महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली समाजवादी प्रूदों (Proudhon) (1709-1755) ने बहुत प्रसिद्धी पाई जिसके शिष्य कार्ल मार्क्स और फ्रेडेरिक एंगेल्स थे। इनके समाजवादी विचार उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में निरंतर बढ़ने लगे।

समाजवादी यथार्थवाद का उदय एवं विकास सन् 1917 में रुसी क्रांति के बाद माना जाता है। इस क्रांति के फलस्वरूप सर्वहारा वर्ग मुक्ति के लक्षण दिखने लगे। अर्थात् नए समाज का निर्माण हुआ। तब रुसी विचारकों एवं समर्थकों ने एक नए 'वाद' की घोषणा की। वह वाद था समाजवादी यथार्थवाद। तत्कालीन मार्क्स से प्रभावित लेखकों-विचारकों

ने अपने साहित्य में सर्वहारा वर्ग की पुष्टि करने लगे। निर्मला जैन के अनुसार- ''साहित्य के कुछ इतिहासकार सर्वहारा साहित्य को समाजवादी यथार्थवाद के उदय की दिशा में पहला कदम मानते हैं। इस नई कलात्मक पद्धति की शुरुआत को मार्क्सवादी विचारधारा के आविर्भाव से जोड़ते हैं। समाजवादी यथार्थवाद के जन्म का सूत्र इस प्रकार 1848 के क्रांतिकारी दौर के साहित्य के साथ, पेरिस कम्यून के कवियों की रचनाओं के साथ जुड़ जाता है।''(55)

अधिकांश विद्वानों ने इस दृष्टिकोण को भ्रामक माना है। उदाहरण स्वरूप रुसी साहित्यकार याकोब एलस्वर्ग ने कहा है- ''समाजवादी यथार्थवाद और मार्क्सवाद के उदय को अभिन्न मानने के प्रयत्न सहज रूप में भ्रामक हैं।... उस समय सर्वहारा की आगे होने वाली विजय का पूर्वानुमान कर लेना तो संभव था; किंतु वास्तविकता की ऐसी व्यापक और गंभीर यथार्थवादी अभिव्यक्ति कर पाना संभव नहीं था; जिससे इस प्रकार के निष्कर्षों को पुष्ट किया जा सके।''(56) समाजवादी यथार्थवाद के जन्म की धरती सोवियत रुस को ही ले; तो मैक्सिम गोर्की के अलावा फादयेव, माईकोवस्की, कांस्तेतिन फेदिन, अलैस्की टालस्टॉय, इलिया, एहरैन वुर्ग शोलोखोव, निकोलाई आगावस्की आदि के नाम प्रमुख हैं। लुई आरागो, पाब्लो नेरुदा तथा लैटिन, अमेरिका तथा अफ्रीका देशों के ऐसे अनेक कवि कथाकार हैं; जिनके कृतित्व ने समाजवादी यथार्थवाद की आकृति के प्रति लोगों में सम्मान तथा निष्ठा की भावना को जन्म दिया।

समाजवादी यथार्थवाद की मान्यता है कि लेखक समाज विकास की द्वन्द्वात्मक भूमिका को अपना कर ही यथार्थ चित्रण कर सकता है। शिवकुमार मिश्र ने समाजवादी यथार्थवाद की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए कहा है- ''समाजवादी यथार्थवाद, यथार्थवाद के समूचे विकास क्रम में सर्वाधिक प्रगतिशील तथा जीवंत धारणा है; जो एक ओर उस प्रकृतवाद (Naturalism) से भिन्न है; जो मनुष्य को मूलत: आदिम वृत्तियों से अनुशाषित तथा परिचालित मानते हुए उसके अब तक के समूचे बौद्धिक तथा भावात्मक विकास की अवमानना करता है, उसकी एकदम एकांगी तस्वीर पेश करता है, दूसरी ओर उस आलोचनात्मक यथार्थवाद से भी भिन्न है जो अपनी जीवंत कला, वस्तुगत यथार्थ के ईमानदार चित्रण, उसकी अंतर्विरोधी, व्हासशील तथा कुत्सित भूमिका के प्रति कड़ा आलोचनात्मक रुख अपनाने एवं जन सामान्य के प्रति संवेदनशील होने के बावजूद उस क्रांतिकारी, रचनात्मक समाजवादी समझ से शून्य है; जो वर्तमान विकृत यथार्थ को बदलने का न केवल रास्ता सुझाती है, उस परिवर्तन को मूर्त भी करती है।''(57)

समाजवादी यथार्थवाद यथार्थ की एक विस्तृत एवं व्यापक दृष्टि है; जो ऐतिहासिक संदर्भ में वस्तुगत यथार्थ को व्यापकता में देखने के साथ-साथ उस भविष्य का रूप भी परिलक्षित करती है ; जिसका बीज एवं उदय वर्तमान व्यवस्था में ही छिपा है। समाजवादी यथार्थवाद की यह भविष्य दृष्टि उसकी प्रमुख विशेषता मानी जाती है। उसकी यही विशेषता स्वच्छंदतावादियों के कल्पना-स्वप्नों एवं हवाई बातों से भिन्न है कि उसकी जड़ें वस्तुगत

यथार्थ में गहराई से गड़ी हैं। समाजवादी यथार्थवाद का विकास 1917 मे रुसी क्रांति (सर्वहारा वर्ग की मुक्ति) के बाद माना जाता है। जॉर्ज लुकाच का मानना है- ''यथार्थवाद के साथ समाजवाद की इस संधि की जड़े सर्वहारा वर्ग के क्रांतिकारी संघर्ष में जमी हुई हैं। इस संधि की अनिवार्यता इस बात में भी परखी जा सकती है कि जन सामान्य के शोषण और दमन पर टिकी हुई हर शासन व्यवस्था और उसके कर्णधार मूलत: यथार्थ विरोधी होते हैं, जन सामान्य के साथ-साथ यथार्थ का दमन भी उनकी केंद्रीय वृत्ति होती है। हिटलर, मुसोलिनी तथा मेकार्थी जैसे युद्धोन्मत्तियों का उदाहरण इस तथ्य का साक्षी है।''(58)

समाजवादी यथार्थवाद के वस्तुगत यथार्थ पर दृष्टिपात करते हुए डॉ. शिवकुमार मिश्र ने कहा है- ''समाजवादी यथार्थवाद जहाँ वस्तुगत यथार्थ को उसकी सारी सजीवता, सच्चाई तथा तीव्रता में चित्रित करने के बीच सक्रिय मनुष्य का चित्र, उसकी संपूर्ण भूमिका में उभरे। लेखक केवल सतह पर उतराती हुई वास्तविकता का अंकन मात्र करके न रह जाए। सतह के भीतर की अधिक गहरी भूमिकाओं को प्रत्यक्ष करे, केवल समाज की गंदगी, भ्रष्टाचार, शोषण, अराजकता और अंधकार को ही दत्तचित्र होकर न उभारे; इस वास्तविकता से संघर्ष करती हुई नई प्रगतिशील शक्ति को भी उतनी ही तीव्रता से मूर्त करे; बल्कि उस पर अधिक जोर दे; और इस प्रकार भविष्य के उस Vision की सृष्टि करे; जो विरोधी परिस्थितियों के इस संघर्ष की एक आवश्यक और अनिवार्य परिणति प्रतीत हो; जिसका सम्बन्ध आस्ता, विश्वास तथा सृजन की नई भूमिकाओं से हो, जो कृति में चित्रित समस्त प्रकार की वास्तविकता से अधिक प्रखर तथा भास्वर हो, उसकी अपेक्षा अधिक जीवित सत्य हो। वस्तुत: यह Vision ही है; जो विरोधी परिस्थितियों के संघर्ष के बीच से उभर कर सामने आता है और इसी में समाजवादी-यथार्थवाद की वास्तविक सिद्धि है।''(59)

डॉ. शिवकुमार मिश्र ने 'आलोचना' अक्टूबर 1963 में छपे अपने लेखक 'समाजवादी यथार्थवाद' शीर्षक में समाजवादी यथार्थवाद के छ: आधारभूत तत्त्वों का उल्लेख इस प्रकार किया है - 1) वस्तुगत यथार्थ का उसके क्रांतिकारी विकास की भूमिका में समाजवादी दृष्टि के आधार पर चित्रण। 2) समाज-विकास की द्वन्द्वमूलक प्रक्रिया की भूमिका में प्रगतिशील तथा प्रगामी शक्तियों की परख। 3) ऐतिहासिक विकास की मूलभूत अंतर्धाराओं का ज्ञान, नए को सम्मान देकर जर्जर प्राचीन का बहिष्कार, ऐतिहासिक समझ, जीवन के 'पाजिटिव' पक्ष पर अधिक बल। 4) समाज में व्याप्त वर्ग संघर्ष तथा वर्गीय विसंगतियों का गहरा और अधिक विश्लेषण तथा उद्‌घाटन। 5) मनुष्य के संपूर्ण व्यक्ति त्व का अंकन, जीवित, सक्रिय तथा सामाजिक मनुष्य की प्रतिष्ठा, 'पाजिटिव हीरों' की सृष्टि। 6) भविष्य के एक क्रांतिकारी, रचनात्मक तथा वैज्ञानिक दृष्टि सम्मत तर्कसम्मत Vision का मूर्तिकरण।

समाजवादी यथार्थवाद साहित्य और कला के क्षेत्र में एक उपयोगितावादी दृष्टिकोण है। समाजवादी यथार्थवाद साहित्य का आधार आर्थिक मानता है। इसका लक्ष्य पूंजीवाद के विनाश एवं समाजवाद के विकास में योगदान देना है। अत: इस विचारधारा में विश्वास रखनेवाला यथार्थवादी लेखक समाज की उन शक्तियों का आह्‌वान करता है; जो यथार्थ

की पृष्ठभूमि पर आर्थिक साम्यता के निदर्शक वर्गहीन समाज की स्थापना के लिए संघर्ष कर सके। विजय शंकर मल्ल के विचारानुसार- ''यह स्पष्ट है कि समाजवादी पहले समाजवादी और तब यथार्थवादी। वह अर्थ को समाजवादी दृष्टि से देखता है। वह प्रकृतवादियों (नेचुरलिस्ट) की तरह संपूर्ण बाह्य जगत को ज्यों-का-त्यों स्वीकर करके जीवन की ऊपरी सतह पर दिखलाई देनेवाली स्थूल व्यवस्थाओं को चित्रित मात्र नहीं करता, बल्कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर जीवन और जगत की परिस्थितियों का विश्लेषण करके समाज के भीतर छिपी भविष्य की नियामक शक्तियों की अभिव्यक्ति करनेवाली सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण करता है।'' (60)

स्पष्ट है कि समाजवादी यथार्थवाद जीवन एवं जगत की यथार्थता का वस्तुमूलक ठोस आधार प्रस्तुत करता है तथा क्रांतिकारी विकास को भी प्रस्तुत करता है। कला के क्षेत्र में सामाजिक यथार्थवाद को विशेष महत्त्व देते हुए अलेक्सी एस.बुश्मिन ने कहा है- ''समाजवादी यथार्थवाद कला के क्षेत्र में केवल एक अतिरिक्त सृजन-पद्धति या प्रवृत्ति मात्र नहीं है। यह और किसी बात की अपेक्षा समग्रता में कला की वास्तविक प्रकृति को अधिक पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करता है - विकास की उस अवस्था में जहाँ वह अभी तक पहुँच गई है। साथ ही वह भविष्य में उसके विकास की संभावनाओं में भी भागीदार है।''(61) यह कथन सर्वाधिक संगत है तथा समाजवादी यथार्थवाद की कलात्मक व्याप्ति के वस्तुनिष्ठ और वैज्ञानिक प्रकाशन के लिए प्रस्थान-बिंदु प्रदान कर सकता है।

डॉ. सुरेश सिंहा ने एक स्थान कहा है- ''समाजवादी यथार्थवाद समाज और उसकी समष्टिगत चेतना से संबंधित है।'' उन्होंने यह भी कहा है कि ''समाजवादी यथार्थवाद साहित्य और कला में यथार्थवादी चित्रण पर बल देता है। वह मानवीय शक्तियों के विकास के प्रति आग्रहशील है। वह मानवीय प्रगति की अवरोधक शक्तियों का रहस्योद्घाटन करता है। उसका कार्य अतीतकाल की व्याख्यात्मक चित्रांकन मात्र ही नहीं; अपितु वर्तमान की क्रांतिकारी सफलताओं को एक सूत्र में आबद्ध करने में सहायक होना एवं भविष्य के लिए महान समाजवादी उद्देश्यों का स्पष्टीकरण करना भी है। समाजवादी यथार्थवाद व्यापक दृष्टिकोण को अपनाता है और इसकी क्षमता उन्हीं लेखकों में व्याप्त हो सकती है; जो वर्तमान को भविष्य के संदर्भ में मूल्यांकित कर सकने में समर्थ हैं। यही दृष्टिकोण वास्तव में समाजवादी यथार्थवाद की आधारशिला होनी चाहिए।''(62)

समाजवादी यथार्थवाद के मूल में मार्क्स, एंगेल्स तथा लेनिन द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक समाजवाद तथा द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की वह विकास मूलक धारणा है। समाजवादी यथार्थवाद के अंतर्गत जिस यथार्थ पर बल दिया गया है; वह सामाजिक व्यक्ति का यथार्थ है। समाज सापेक्ष व्यक्ति का यथार्थ ही अंतर्मुखी तथा बहिर्मुखी यथार्थ के कृत्रिम विभाजन को मिटा देने में सफलता प्राप्त किया है। समाजवादी यथार्थवाद एक ओर तो समाज की वास्तविकता के चित्रण पर बल देता है, दूसरी ओर वस्तुगत यथार्थ को समाजवादी दृष्टि के आधार पर पहचान करने तथा उसे अभिव्यक्ति देने की माँग करता है।

समाजवादी यथार्थवाद के संदर्भ में राल्फ फाक्स ने अपना विचार प्रकट करते हुए कहा है- ''आज मानव हमारी समाज व्यवस्था के मरमराकर ढह जाने के साथ उत्पन्न होनेवाली बाधा को वस्तुगत विभीषिकाओं के खिलाफ मशीन के प्रभुत्व के खिलाफ लड़ने पर बाध्य है। उसे लड़ना है दुनिया को बदलने के लिए, सभ्यता को बचाने के लिए और साथ ही उसे मानव आत्मा में पूंजीवादी अराजकता को समाप्त करने के लिए भी संघर्ष करना है। इस संघर्ष में ही जिसमें प्रत्येक पक्ष बारी-बारी से एक-दूसरे को प्रभावित करता है और दूसरे से प्रभावित होता है, इसी रूप में अंतर्मुखी और बहिर्मुखी यथार्थवाद के पुराने तथा कृत्रिम विभाजन का अंत होगा।''(63)

2.42 साम्यवादी यथार्थवाद (Communist Realism) : साम्यवाद की परिभाषा देते हुए डॉ. म.मा.कडू ने कहा है- ''साम्यवाद का अर्थ है; समाज में समानता लाना। वह समाज के एक रूप की कल्पना है। समाजवाद शब्द समाज की एक व्यवस्था को प्रकट करने के साथ ही इस व्यवस्था के साधन की ओर भी इशारा करता है। साम्यवाद का अर्थ है; समाज में सब समान हों। समाजवाद का अर्थ है; समाज स्वामी हो। समाजवाद का अनुवाद अंग्रेजी में सोशलिज्म सोसाइटी को प्रधानता समझना ठीक है; परन्तु साम्यवादी का अंग्रेजी अनुवाद सोशलिज्म न होकर 'इक्वेलिटीरियनिज्म' इक्वेलिटी (समानता) की प्रधानता होगी।'' साम्यवाद के प्रणेता कार्ल-मार्क्स माने जाते हैं। उन्होंने 1848 ई. में अपने 'कम्यूनिस्ट मॅनिफेस्टो' में साम्यवाद की स्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत की है। मार्क्स के मतानुसार साम्यवाद के दो आधारभूत सिद्धांत हैं- 1) द्वंद्वात्मक भौतिकवाद तथा 2) ऐतिहासिक भौतिकवाद। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद सिद्धांत द्वारा मार्क्स यह सिद्ध करना चाहते हैं कि समस्त विश्व का आधार एक ऐसी शक्ति है; जो कि भौतिक है, जड़ है। ऐसा कहकर मार्क्स हेगेल के निरपेक्ष चैतन्यवाद का खण्डन करना चाहते हैं। मार्क्स हेगेल के इस सिद्धांत से बिल्कुल संतुष्ट नहीं कि समस्त विश्व किसी अवास्तव चैतन्य की उपज है। उसके मतानुसार विश्व की समस्त भौतिक आधार की जो शक्ति है; वह गतिमान तथा विकासशील है। भौतिक आधार की जो शक्ति है; उसकी गति द्वन्द्वात्मक होती है और जब इस भौतिक शक्ति का विकास होता है तब वह एक स्थिति से चलकर उसकी विरोधी स्थिति का सामना करना पड़ता है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद सिद्धांत द्वारा मार्क्स ने यह धारणा प्रस्तुत की है कि मानव समाज का विकास वर्ग-संघर्ष द्वारा ही संभव है। आदिम मानव के पश्चात् समाज में जितनी भी अवस्थाएँ उत्पन्न हुई हैं; वे वर्ग-संघर्ष द्वारा ही। कार्ल मार्क्स का मानना है कि मानव समाज का विकास पाँच अवस्थाओं से गुजरते हुए हुआ है - 1. आदिम साम्यवाद। 2. स्वामी एवं दासों के संघर्ष की अवस्था। 3. सामंत एवं काश्तकारों के संघर्ष की अवस्था। 4. पूंजीपति एवं मजदूरों के संघर्ष की अवस्था। 5. मजदूर वर्ग की वह अंतिम अवस्था; जो अपनी संगठित शक्ति द्वारा पूंजीवाद का नाश एवं अपना आधिपत्य स्थापित करता है । इस अंतिम अवस्था में डॉ. नारायण विष्णु जोशी के मतानुसार- सर्वप्रथम उत्पादन के साधन शोषकों के वर्ग

के हाथ से छिन लिए जाते हैं और वे सर्वहारा वर्ग के अर्थात् समाज के स्वामित्व में लाए जाते हैं। इसी को समाजवाद कहते हैं। जब यही समाजवाद जागतिक स्तर पर प्रस्थापित हो जाता है; तब ऐसे समाज की निर्मिती हो जाती है जो कि वर्ग विहीन हो तथा जिसमें किसी प्रकार की विषमता न हो। ऐसे ही समाज को साम्यवादी समाज कहते हैं।''(64)

राहुल सांकृत्यायन ने साम्यवाद के ध्येय पर प्रकाश डालते हुए कहा है - ''साम्यवाद का ध्येय है, सारे देश या विश्व को एक सम्मलित परिवार बना देना और देश की सारी संपत्ति को उस परिवार की संपत्ति करार देना। भारत जैसे देश में जहाँ जीवन की सभी आवश्यक चीजें उत्पन्न की जा सकती हैं काम है; वार्षिक आवश्यकता का अंदाजा लगाकर उत्पादन के लिए परिवार के आदमियों में काम बाँट देना है और फिर उत्पन्न चीजों को भी आवश्यकतानुसार दे देना है। स्वस्थ आदमी को खाना-कपड़ा, स्वच्छ मकान, बीमार के लिए दवा और पथ्य भी और लड़कों की शिक्षा का भी प्रबंध हो गया बस काम खतम। नफा तो दूसरे की मेहनत की चोरी का प्रतिष्ठित नाम है। उसके लिए साम्यवाद में स्थान नहीं है।''(65) समाज में संपत्ति का विभाजन बहुत ही विषम है। किसी के पास आवश्यकता से अधिक धन है; तो किसी के पास आवश्यकता से कम। कोई धन कुबेर है; तो कोई कौड़ी-कौड़ी को मुहताज। साम्यवादी यथार्थवाद इसी असमानता को दूर करना चाहता है।

कहना न होगा कि जब कोई भी रचनाकार समाज के यथार्थ का चित्रण साम्यवादी दृष्ठिकोण से करता है; तो वह साम्यवादी यथार्थवाद कहलाता है । जो लोग वर्तमान राजनैतिक और औद्योगिक वस्तुस्थिति में आवश्यक परिवर्तन द्वारा आर्थिक असमानता को दूर करना चाहते हैं वे साम्यवादी कहलाते हैं।

2.43 ऐतिहासिक यथार्थवाद (Historical Realism) : परिनिश्चित तथ्यों को सुसंबद्ध एवं कालक्रमानुसार श्रृंखलाबद्ध करना इतिहास कहलाता है। डॉ. म. मा. कडू के शब्द में- ''ऐतिहासिक यथार्थ सामाजिक यथार्थ से संबंधित होता है। इसे हम अतीत का यथार्थ कह सकते हैं। इसका उद्देश्य सिर्फ इतिहास का चित्रण नहीं होता। सिर्फ तिथि, घटना और नतीजों का यथातथ्य चित्रण इसका उद्देश्य नहीं; बल्कि तत्कालीन सामाजिक राष्ट्रीय एवं धार्मिक अवस्थाओं पर बल दिया जाता है। ऐतिहासिक यथार्थ का अपना एक विशिष्ट उद्देश्य या अभिप्राय होता है। समाज के लिए प्रेरणादायक चरित्र निर्माण तथा विगत काल की त्रुटियों से वर्तमान की रक्षा उसका उद्देश्य होता है।'' (यशपाल के उपन्यास साहित्य का अनुशीलन पृ. 62)

डॉ. सुरेश सिंहा पे ऐतिहासिक यथार्थवाद के संदर्भ में अपना मंतव्य प्रकट करते हुए कहा है- ''ऐतिहासिक यथार्थवाद, तिथियों, नामों एवं घटनाओं की सत्यता के प्रति उतना आग्रहशील नहीं रहता; जितना तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन के यथार्थ चित्रण पर बल देता है।''(66) कहना न होगा कि ऐतिहासिक यथार्थवाद प्रत्येक युग के तत्कालीन वास्तविकता को निष्पक्ष होकर समाज के संबंधों को उजागर करना होता है। डॉ. त्रिभुवन सिंह के शब्दों में, ''ऐतिहासिक यथार्थवादी साहित्य तो वही होगा; जो

तत्कालीन समाज एवं राष्ट्र का सजीव चित्र उपस्थित करने के साथ-साथ अपनी कला तथा कल्पनात्मक गुणों के द्वारा समस्याओं का हल प्रस्तुत करता चले।''(67)

यथार्थवादी रचनाकार समसामयिक जीवन की आशा एवं निराशा से संबंध बनाकर ही गतिशील हुआ है। कुछ पाश्चात्य (टॉलस्टाय आदि) तथा कुछ भारतीय (वृन्दावनलाल वर्मा आदि) ने ऐतिहासिक समस्याओं को लेकर रचनाएँ की हैं; जिसमें तत्कालीन युगीन सत्य को जीवित रखा। वस्तुतः तत्कालीन युगीन सत्य को जीवित रखना ही ऐतिहासिक यथार्थवाद का प्रमुख उद्देश्य रहा है। डॉ. सुरेश सिंहा ने यथार्थवाद और ऐतिहासिक यथार्थवाद की सीमा रेखा खींचते हुए कहा है- ''यथार्थवाद व्यापक परिवेश में ही पलता और विकसित होता है तथा नित्य नवीन आयामों की स्थापना कर मानवीय संवेदना एवं मानव स्तर का मूल्यान्वेषण करने और सत्यान्वेषण करने का प्रयत्न करता है। यथार्थवाद जितना हमारे समकालीन जीवन में महत्त्व रखता है; उतना ही अतीतकालीन जीवन में। समकालीन जीवन का सत्यानुभूति से प्रेरित जीवन यथार्थवाद है। अतीतकालीन जीवन का वही चित्रण ऐतिहासिक यथार्थवाद है। जितना अंतर हमारे समकालीन जीवन और अतीतकालीन जीवन में है, उतना ही अंतर ऐतिहासिक यथार्थवाद और यथार्थवाद में हैं।'' (उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियाँ, पृ.164)

ऐतिहासिक यथार्थवाद रचनाकार की सबसे बड़ी विशेषता होती है कि वह अपनी कृति में वह तटस्थ एवं निरपेक्ष ऐतिहासिक दृष्टिकोण अपनाएँ। किसी भी अतीतकालीन वास्तविकता को परख लेना ही सच्चा ऐतिहासिक यथार्थवाद है। हमारे अतीतकालीन इतिहास में सत्य पर आधारित तमाम सामग्री भरी पड़ी हुई हैं। ऐतिहासिक यथार्थवादी रचनाकार इन पर दृष्टि गड़ाने से पहले डॉ. सुरेश सिंहा के मतानुसार ''वह समकालीन जीवन की ओर दृष्टिपात करता है। उसकी समस्याओं का, मानवीय जीवन का और प्रवृत्तियों का अध्ययन करता है। फिर उसी संदर्भ की घटना वह इतिहास का गहन अध्ययन करके चुनता है तथा उसका यथार्थ चित्रण कर वर्तमान जीवन पर प्रेरणादायक प्रभाव डालने का प्रयत्न करता है। इससे उपन्यासकार एक ही पत्थर से दो शिकार करता है, उसके दो उद्देश्य सिद्ध हो जाते हैं। एक तो यह कि अतीतकाल के स्वर्णिम चित्र साहित्य के माध्यम से सजीव अभिव्यक्ति पाते हैं। दूसरे यह कि अतीतकाल के गौरव एवं जीवन की मर्यादाओं से लेखक समकालीन जीवन को प्रभावित कर उचित मार्ग में दिशोन्मुख करना चाहता है।''

साहित्य में ऐतिहासिक यथार्थवाद की भूमिका सोद्देश्यपूर्ण होती है। भले ही यथार्थवादी रचनाकार इतिहास के साथ-साथ कल्पना का भी समावेश करें। कल्पना के सहारे ही वह वर्तमान तथा अतीत की घटनाओं का वर्णन कर पाता है। प्रश्न उठता है कि ऐतिहासिक यथार्थ का जन्म कैसे संभव है? इस संदर्भ में डॉ. त्रिभुवन सिंह ने कहा है- ''वर्तमान से अतीत को सुंदर समझने की भावना तथा प्रस्तुत परिस्थितियों से असंतुष्ट अथवा वर्तमान से पराजित होने के कारण अतीत की शरण में जाने की प्रवृत्ति ऐतिहासिक यथार्थ को जन्म देती है। वर्तमान की दुर्बलताओं को अतीत के वैभवों से शक्ति शाली बनाने, कुछ

ऐतिहासिक पात्रों, जिनके प्रति इतिहासकार न्याय नहीं कर सके हैं के प्रति न्याय करने, इतिहास के प्रति सहज आकर्षण होने, जाति गौरव, राष्ट्रप्रेम तथा वीर पूजा की भावना रखने तथा जीवन की किसी नवीन व्याख्या को प्रस्तुत करने की सबल प्रेरणा उपन्यासकार को ऐतिहासिक यथार्थ की सृष्टि करने के लिए बाध्य करती है।''

डॉ. त्रिभुवन सिंह ने ऐतिहासिक यथार्थवाद के विषय में बताते हुए यह भी कहा है- ''प्रत्येक युग में कैसे-कैसे परिवर्तन होते हैं और उनमें परिवर्तन लानेवाली कौन-कौन-सी शक्तियाँ हुआ करती हैं तथा प्रत्येक युग की सामाजिक रूप-रेखा क्या थी, आदि सभी ऐतिहासिक यथार्थवाद के ही विषय हैं। मानवता के आरंभ में स्त्री समाज की अप्सरा थी जो स्वेच्छाचारिणी थी; उस समय स्त्री पर किसी प्रकार का यौन प्रतिबंध नहीं था; परंतु आज की परिस्थिति में पहले की अपेक्षा महान अंतर हो गया है। इन सभी समस्याओं को सजीव रूप में ऐतिहासिक यथार्थवाद के अंदर चित्रित किया जाता है।''(68)

2.44 आलोचनात्मक यथार्थवाद (Critical Realism) : आलोचनात्मक यथार्थवाद यथार्थवाद के विकास की अगली कड़ी है। यथार्थवाद और आलोचनात्मक यथार्थवाद इन दोनों में मूलभूत अंतर नहीं है। दोनों में पर्याप्त मात्रा में समानता दिखाई देती है। आलोचनात्मक यथार्थवाद और यथार्थवाद को पारिभाषित करते हुए डॉ. सुरेश सिंहा ने कहा है - ''आलोचनात्मक यथार्थवाद बस यथार्थवाद का अगला कदम ही है.... यथार्थवाद के लिए तटस्थ एवं निरपेक्ष दृष्टि की अपेक्षा होनी चाहिए। आलोचनात्मक यथार्थवाद का चित्रण करनेवाला लेखक भी यथार्थवाद की ही सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है और अपनी दृष्टि भी तटस्थ एवं निरपेक्ष रखता है। पर तटस्थ एवं निरपेक्ष दृष्टि से जीवन और समाज की समस्याओं का यथार्थ चित्रण करके ही वह संतोष नहीं कर लेता; वरन् समाज की विकृतियों, विषमताओं एवं असमानताओं पर तीव्र प्रहार कर, वह उनकी कटु आलोचना करता।''(69) तात्पर्य यह है कि दोनों ही प्रकार के लेखक समाज में व्याप्त सभी प्रकार की बुराइयों को देखते हैं। यथार्थवादी लेखक उन सामाजिक बुराइयों एवं कुरीतियों-विकृतियों का वर्णन भर कर देता है; उस पर अपनी राय नहीं बताता। जबकि आलोचनात्मक यथार्थवादी लेखक उसका वर्णन करने के साथ-साथ उसकी स्पष्ट आलोचनाएँ भी प्रस्तुत करता है। दोनों प्रकार के लेखकों में मूलभूत यही सूक्ष्म अंतर माना जा सकता है।

कहना न होगा कि आलोचनात्मक यथार्थवाद यथार्थवाद के विकास की सही एवं मूल विचारधारा है। समकालीन साहित्य समीक्षा में 19 वीं शताब्दी के आस-पास एक शक्तिशाली रचना दृष्टि तथा चित्रण पद्धति के रूप में यथार्थवाद का जो रूप उभरा, उसे आलोचनात्मक यथार्थवाद 'क्रिटिकल रियलिज्म' का नाम दिया गया है। सत्य के प्रति निष्कपट निष्ठा तथा ज्ञान की अनुपम पिपासा इसकी आधारभूत विशेषता मानी जा सकती है। डॉ. शिवकुमार मिश्र के मतानुसार- ''यथार्थ के उद्‌भव के साथ 19 वीं और 20 वीं शताब्दी में प्रकृतवादी दृष्टिकोण से भिन्न वास्तविक जिंदगी को उसकी वस्तुपरकता में, और सच्चाई के साथ देखने, परखने और चित्रित करनेवाले जिस साहित्य का जन्म और

विकास हुआ; मार्क्सवादी आलोचकों ने उसे 'आलोचनात्मक यथार्थवादी साहित्य' तथा उसमें निहित यथार्थ दृष्टि को 'आलोचनात्मक यथार्थ दृष्टि' के नाम से संबोधित किया है।''(70)

आलोचनात्मक यथार्थवाद के प्रणेता बाल्ज़ाक एवं स्तेन्दल माने जाते हैं। इनकी परंपरा को विकसित करनेवाले रचनाकारों में पुश्किन लार्मोण्टोव, गोगोल, डिकेन्स, एन्थनी ट्रोलोप, थैकरे, जॉर्ज इलियट, तुगनेव, टोल्स्टॉय, जॉर्जमूर आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं। इन्होंने अपने औपन्यासिक कृतियों में आलोचनात्मक यथार्थवाद की अभिव्यक्ति विभिन्न रूपों में दी है। डॉ. राकेश कुमार का अभिमत है- ''आलोचनात्मक यथार्थवाद मूलत: साहित्यिक समीक्षा शास्त्रियों द्वारा प्रदान किया गया प्रश्न है। आलोचनात्मक यथार्थवाद के पक्षधर साहित्यकारों, आलोचकों ने इस दृष्टि से पूँजीवादी संस्कृति की असंगतियों, अतार्किकताओं, अंतर्विरोधों को अपने आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य द्वारा यथार्थ दृष्टि को मूर्त किया है। इसका मूर्त कारण यह है कि टालस्टॉय जैसे रचनाकारों-समीक्षकों ने अपनी विवेकशील आलोचनात्मक यथार्थ दृष्टि द्वारा जिस सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक स्थितियों की आलोचना की है; उनसे इनका यथार्थ दर्शन समृद्ध होता चला गया है।''(71) जॉर्ज लुकाच ने इस आलोचनात्मक यथार्थवाद की अहमियत पर भी बराबर बल दिया है। जॉर्ज लुकाच के विचारानुसार- ''आलोचनात्मक यथार्थवाद के साथ समाजवादी यथार्थवाद आलोचनात्मक केवल इस कारण ही अलग नहीं है कि वह एक ठोस समाजवादी परिप्रेक्ष्य पर आधारित है; वरन् इसलिए भी कि वह समाजवादी स्थापना के लिए संघर्षरत शक्तियों का चित्रण करने के लिए इस परिप्रेक्ष्य का इस्तेमाल एक भीतरी व्यक्ति के रूप में भीतर से करता है। उसके लिए समाजवादी समाज पूँजीवादी समाज से जुड़ा न रह कर अपने में एक स्वतंत्र सत्ता रखता है; पर आलोचनात्मक यथार्थवादियों की भाँति, पूँजीवादी उलझनों से मुक्ति पाने का शरण स्थल न होकर उसके अपने जीवन की सच्चाई होता है।''(72)

आलोचनात्मक यथार्थवाद की विशाल परंपरा में समसामयिक पाश्विक प्रवृत्तियों, भ्रष्टाचार, अमानवीयता व खोखले आदर्शों की भर्त्सना है। डॉ.रोहिताश्व के विचारानुसार- ''आलोचनात्मक यथार्थवाद के गौरवमय इतिहास तथा जीवंत उपलब्धियों के बावजूद समाजवादी कला-चिंतकों का मत था कि अलोचनात्मक यथार्थवादी दृष्टि नई वास्तविकता के चित्रण के हेतु नई रचनाशील पीढ़ी के लिए इस कारण प्रेरणा का स्त्रोत नहीं बन सकती कि नई वास्तविकता को कलात्मक अभिव्यक्ति देने के लिए जिस 'पाजिटिव' सक्रिय तथा रचनात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता है, उसका आलोचनात्मक यथार्थवाद में सर्वथा अभाव है, अतएव विरासत के रूप में उसकी सार्थक प्रेरणा को स्वीकार करते हुए भी उसका अनुगमन संभव नहीं है।''(73)

आलोचनात्मक यथार्थवाद जिसके अंतर्गत शोषण का विरोध, वह शोषण इनको जहाँ भी दिखाई पड़ता है, चाहे वह सामाजिक स्तर पर हो, परिवार के स्तर पर हो हर

जगह उसका विरोध किया है। आलोचनात्मक दृष्टि अपनाकर उन पर करारा व्यंग्य किया है। शिवकुमार मिश्र इसकी ओर इशारा करते हुए कहा है- ''आलोचनात्मक यथार्थवाद... अपनी जीवन कला, वस्तुगत यथार्थ के ईमानदार चित्रण, उसकी अंतर्विरोधी, व्हासशील तथा कुत्सित भूमिका के प्रति कड़ा आलोचनात्मक रुख अपनाने एवं जन सामान्य के प्रति संवेदनशील होने के बावजूद उस क्रांतिकारी रचनात्मक, समाजवादी समझ से शून्य है; जो वर्तमान विकृत यथार्थ को बदलने का न केवल रास्ता सुझाती है, उस परिवर्तन को मूर्त भी करती है।''(74)

कहना न होगा कि उन्नीवसवीं शताब्दी के बाल्जाक, स्तन्देल तथा टोल्स्टॉय आदि साहित्यकार नए पूंजीवादी संबंधों में जो सामन्तवाद के खंडहर में पनप रहे थे, व्याप्त अंतर्विरोधों का उद्घाटन तथा विश्लेषण करने की वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान की। इन रचनाकारों ने समकालीन पूँजीवादी व्यवस्था के अंतर्विरोधों के उद्घाटन तथा जीवन के चित्रण और अनुसंधान में बुर्जुआ समाज के प्रति आलोचनात्मक रुख अपनाया। इसी विशेषता के आधार पर उन्हें हम आलोचनात्मक यथार्थवादी लेखक की संज्ञा दे सके हैं। शिवकुमार मिश्र के मतानुसार- ''बाल्जाक के समय तक पूंजीवाद का शोषण चक्र अधिक निर्मम न था। उभरता हुआ पूँजीवादी वर्ग अपने पैर जमा रहा था और स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुत्व (Equality, Liberty and Fraternity) के उसके नारे लोगों को भुलावे में रखने में सक्षम थे। बाल्जाक का युग सामंतवाद के ह्रास का युग था। पूंजीवादी समाज व्यवस्था उसकी तुलना में अधिक प्रगतिशील थी और सामंतवाद की शोषण मूलक नीतियों से परिचित लोगों के लिए स्वागत की ही वस्तु बनी हुई थी। लोग अपने मन में नई संभावनाओं तथा समृद्धियों के रंगीन स्वप्नों को ही बसाए हुए थे। किंतु सन् 1848 ई. तक आते-आते पूँजीवादी सभ्यता के दावों का खोखलापन बहुत कुछ स्पष्ट हो चुका था और लोग उसके चरित्र शोषक चरित्र से परिचित होने लगे थे। यह एक जबर्दस्त मोहभंग था जिसके सबसे निर्मम शिकार ईमानदार व संवेदनशील लेख ही बने। बाल्जाक ने अपनी लास्ट इल्यूजन (Last Illusion) शीर्षक कृति में पूँजीवादी सभ्यता की असलियत और दावों के खोखलेपन को भली-भाँति उजागर किया है।''(75)

वस्तुत: पूँजीवादी सभ्यता के प्रति आलोचनात्मक यथार्थवादी दृष्टि के कारण ही ये साहित्यकार उन विकृतियों को तार-तार करते चले गए। उस सभ्यता, संस्कृति से उन्हें बेहद नफरत और निराशा थी; जिससे उन्होंने उस जर्जरित खोखली यथार्थ दृष्टि से साक्षात्कार किया। पूँजीवादी विकृतियों ने साहित्यकारों में बेचैनी, छटपटाहट, क्रोध की भावनाएँ पैदा कर दीं। इनमें अकेलापन, बेचैनी पैदा हुई। इस दृष्टि से अर्नेस्ट फिशर की यह टिप्पणी अत्याधिक महत्त्वपूर्ण है- ''आलोचनात्मक यथार्थवाद पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ इसी अकेले अहं के रोमानी विद्रोह तथा बुर्जुआ मूल्यों के प्रति ऐसे विलक्षण अस्वीकार का प्रतिफल है; जिसमें अभिजात तथा गंवारू या सामान्य (Aristocratic and Plebeian) दोनों प्रकार की मानसिकता जुड़ी है।(76)

बुर्जुआ समाज और जीवन जगत् को आलोचनात्मक यथार्थ का शिल्प-विषय एवं

शिल्प रूप माना जाता रहा है। अर्थात् इस यथार्थ के माध्यम से बुर्जुआ सभ्यता की सम्यक अभिव्यक्ति हुई है। अत: आलोचनात्मक यथार्थवाद को कुछ आलोचक 'बुर्जुआ यथार्थवाद' भी कहते हैं। इस दृष्टि से शिवकुमार मिश्र का कथन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है- ''समाजवादी यथार्थवादी से भिन्न इस आलोचनात्मक यथार्थवाद नाम के लिए एक आधार तो यह बताया गया है कि इसके अंतर्गत समाजवादी दृष्टि की सक्रियता नहीं है और दूसरे कि यह युग, जीवन तथा समाज की विकृतियों तथा विरूपताओं के प्रति सहज ही एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण ही रखता है, किंही रचनात्मक संभावनाओं को उजागर नहीं करता। मार्क्सवादी साहित्य चिंतक इस आलोचनात्मक यथार्थवाद को बुर्जुआ यथार्थवाद (Bourgeoise Realism) के नाम से भी पुकारते हैं।''(77)

पाठकीय दृष्टि से प्रश्न किया जा सकता है कि- ''इस आलोचनात्मक यथार्थवाद को बुर्जुआ यथार्थवाद क्यों कहा गया है? क्या आलोचनात्मक यथार्थ दृष्टि जिंदगी की बुनियादी समस्याओं से मुठभेड़ नहीं कर सकती? क्या सही अर्थों में आलोचनात्मक यथार्थ से जुड़े रचनाकार जिंदगी की वास्तविकता की समग्रता में नहीं पकड़ पाता है? क्या टोल्स्टॉय, बाल्जाक इसी परिप्रेक्ष्य में अपने समय की नब्ज को नहीं पहचान पाए थे? क्या वे रचनाकार अपनी चेतना को अपने वर्ग चरित्र, स्वार्थों से मुक्त होकर (डी-क्लास) नहीं कर पाए थे? ऐसे ही लेखकों को जॉर्ज लुकाच ने आलोचनात्मक यथार्थ की संज्ञा दी है, इसे ही मैक्सिम गोर्की ने 'क्रांतिकारी स्वच्छंदतावाद' का नाम दिया है।''(78) शिवकुमार मिश्र के अनुसार- ''बुर्जुआ यथार्थवाद के अंतर्गत भी गोर्की ने दो प्रकार के लेखकों की चर्चा की है। एक वे लेखक जो हैं; अपने वर्ग-चरित्र को न छोड़ सकने के कारण अपने वर्ग हितों से जुड़े रहे हैं और जिन्होंने अपने कृतित्व में अपने वर्ग का गौरवमान किया है। दूसरे प्रकार के बुर्जुआ लेखक वे हैं; जिन्होंने अपने वर्ग-स्वार्थ तथा वर्ग-हितों का अतिक्रमण करते हुए अपने वर्ग की खरी आलोचना की है। ऐसे ही लेखकों को गोर्की ने 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' तथा 'क्रांतिकारी स्वच्छंदतावाद का स्त्रष्टा' कहा है और उनकी असाधारण प्रतिभा को अपनी स्वीकृति दी है।'' (यथार्थवाद, पृ. 100-01)

डॉ. राकेश कुमारने आलोचनात्मक यथार्थवादी लेखकों की पक्षधरता करते हुए कहा है-''लुकाच निरंतर इसके समर्थक रहे हैं कि आलोचनात्मक यथार्थवाद के पक्षधर लेखक और आलोचक अंतत: समाजवादी यथार्थवाद के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है; क्योंकि दोनों ही पद्धतियाँ पूँजीवादी संस्कृति और उनमें पनपनेवाली कलाओं की विकृतियों को तोड़ती हैं और बेहतर साहित्य के निर्माण हेतु संकल्पित रहती हैं। लुकाच ने इसे एक संधि का रूप दिया है; जो तथाकथित कट्टर मार्क्सवादियों के लिए स्वीकार्य नहीं हैं।'' (जॉर्ज लुकाच का यथार्थ दर्शन, पृ.99) कर्णसिंह चौहान ने आलोचनात्मक यथार्थवाद पर बल देते हुए कहा है- ''आलोचनात्मक यथार्थवाद इसलिए महत्त्वपूर्ण; है क्योंकि वह नए समाज के प्रति गैर समाजवाद की प्रतिक्रिया का ब्यौरा दे सकता है; वह उसकी रूपांतरित शक्ति और उसमें निहित समृद्ध जटिलता का चित्रण कर सकता है। इस

प्रकार वर्तमान साहित्य में आलोचनात्मक यथार्थवाद को एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी है और वह उभरते समाज का एक महत्त्वपूर्ण सहयोगी है।''(79)

2.45 वैज्ञानिक यथार्थवाद (Scientific Realism) :

यह सत्य है कि विज्ञान का संबंध भौतिक जगत् से है। अत: कहा जा सकता है कि भौतिकवाद एक यथार्थवादी सत्य है; जो आदर्शवाद के सर्वथा विरुद्ध रहा है। आदर्शवाद का एक निश्चित अपना मानदंड होता है। वह उन काल्पनिक मूल्यों एवं सत्यों में विश्वास करता है; जिनका अस्तित्व इस भौतिक जगत् से नहीं है। जबकि भौतिकवाद केवल उन्हीं मूल्यों एवं सत्यों में विश्वास करता है जो इस समूचे संसार में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में विद्यमान है। विज्ञान के लगातार विकास एवं प्रगति के फलस्वरूप इस वैज्ञानिक यथार्थवाद के युग में आदर्शवाद के प्रति मानव की आस्था धीरे-धीरे कम होती रही। वैज्ञानिक यथार्थवाद स्वर्ग-नरक, कल्पना एवं हवाई बातों में विश्वास करके अपना समय नष्ट नहीं करना चाहता है; क्योंकि विज्ञान की प्रक्रिया कार्य-कारण की श्रृंखला पर आधारित होती है। विज्ञान सदैव प्रयोगात्मक पक्ष पर ही बल देता है।

विज्ञान के कार्यकारण के संबंध में विचार करते हुए बुद्धिनाथ मिश्र ने कहा है- ''वह उन्हीं बातों में विश्वास करता है; जो भौतिक दृष्टि से कार्य-कारण की श्रृंखला से जुड़ी होती हैं। इसी कारण जो बात प्रमाणों और प्रयोगों से सिद्ध नहीं हो पाती, उसे वह असत्य और अंधविश्वास मानता है। इसी प्रवृत्ति को वैज्ञानिक दृष्टिबोध कहा जाता है।''(80) भौतिक तथ्य (Fact) विज्ञान का आधार होता है। यथार्थवाद की दृष्टि भी तथ्य का अनुसंधान करती है। 'तथ्य' एक स्वतंत्र, निरपेक्ष प्राकृतिक घटना है जिसे हम निष्पक्ष होकर अन्वीक्षण द्वारा ग्रहण करते हैं। विश्लेषण द्वारा तथ्य के स्वरूप का बोध होता है। यथार्थवाद ने विज्ञान से उसकी तथ्यात्मक दृष्टि और विश्लेषण प्रधान प्रणाली ग्रहण की है।

जैसे-जैसे विज्ञान का विकास होता गया, उसका प्रभाव जन-मानस पर पड़ता गया। हिंदी साहित्य के छायावाद युग में जो आदर्शवादी प्रवृत्तियाँ विद्यमान थीं; वह धीरे-धीरे छायावादोत्तर काल में शिथिल पड़ने लगीं। उनके स्थान पर वैज्ञानिक यथार्थवाद अपना प्रभुत्व जमाने लगा। आज के इस वैज्ञानिक युग ने अपने वैज्ञानिक आविष्कारों से साधारण-से-साधारण मानव को भी प्रभावित किए बिना नहीं रहा है। अत: कहा जा सकता है कि आज विज्ञान सारे संसार में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है। यही कारण है कि आज का वैज्ञानिक यथार्थवादी लेखक ऐसी किसी भी बात को प्रमुखता नहीं देता; जो विज्ञान सम्मत नहीं। वैज्ञानिक यथार्थवाद के प्रवर्तक जर्मनी-ऑस्ट्रिया के दार्शनिक माईनांग (Meinong) माने जातेहैं।

वैज्ञानिक यथार्थवाद मानव समाज के प्रति प्रतिबद्ध होता है। अब यहाँ प्रश्न उठता है कि यथार्थवाद किसके प्रति प्रतिबद्ध होता है? उत्तर यह है कि वैज्ञानिक यथार्थवाद और यथार्थवाद दोनों ही समाज के प्रति प्रतिबद्ध होते हैं। यथार्थवाद की प्रतिबद्धता शोषित वर्ग के प्रति अधिक होती है। शोषित वर्ग संघर्ष से जुड़ा हुआ हर रचनाकार अपने आपको

विचाराधारा के स्तर पर वैज्ञानिक यथार्थवादी भूमिका के तहत प्रतिबद्ध रचनाकार स्वीकारता है। यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक है कि 'प्रतिबद्धता' क्या है? डॉ. रोहिताश्व के विचारानुसार - ''प्रतिबद्धता की अपनी त्रिआयामी भूमिका होती है। प्रतिबद्धता सामाजिक यथार्थ की द्वन्द्वात्मक प्रक्रियाओं, यानी उनकी क्रिया-प्रतिक्रियाओं, अंत:संबन्धों और अंतर्विरोधों को समझने, सुलझाने, आत्मसात करने और कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करने में सहायक होती है। वैसे भी मार्क्सवाद ने इतिहास की त्रिआयामी 'भूत, वर्तमान, भविष्य' की व्याख्या की है जिसकी परिणति वर्ग-विहीन वैज्ञानिक यथार्थवाद के कलात्मक रूप में हमें हासिल हुई है।''(81) अत: यह भी वर्ग-विचारधारा से सामाजिक यथार्थ की त्रिआयामी दृष्टि से है।

मेक्सिम गोर्की ने वैज्ञानिक यथार्थवाद के संबंध में विचार प्रकट करते हुए कहा है- ''वैज्ञानिक यथार्थवादी भूमिका ही प्रतिबद्धता की भूमिका है। अत: प्रतिबद्ध कलाकार की दृष्टि पुराने यथार्थवादियों की तरह या दूसरे यथातथ्यवादियों की तरह केवल वर्तमान की आलोचना प्रत्यालोचना तक ही संकुचित और सीमित नहीं रहती। वह अतीत का मिथ और ऐतिहासिक घटित तथ्यों के रूपों में तथा भविष्य का स्वप्न और फेंटेसी के रूपों में भी साक्षात्कार करती है।''(82) गोर्की भविष्य की इस पूर्व कल्पना को 'तीसरी वास्तविकता' (Third reality) कह कर पुकारते हैं।

2.46 मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद (Psychological Realism) : मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद यथार्थवाद का ही एक विकसित रूप है; जिसका विकास आधुनिक हिंदी साहित्य में मनोविश्लेषणात्मक विचारधारा के रूप में हुआ है। डॉ. कृपाशंकर पांडेय के शब्दों में ''मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद मनुष्य के अंतर के समस्त भावात्मक उतार-चढ़ावों का विश्वसनीय चित्रण साहित्य में उपस्थित करता है; जो साहित्यकार उसके व्यापक अर्थ को मान्यता देते हैं वे मानव मन की निवृत्ति के साहित्य में अनुगामी हैं और उसके निर्वाण चित्रण पर बल देते हैं।''(83)

मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के प्रणेता फ्रायड माने जाते हैं। इसी परंपरा में एडलर एवं जुंग भी आते हैं। फ्रायड ने मनोविज्ञान के माध्यम से यह स्थापित कर दिया है कि मानव की संपूर्ण क्रिया-कलापों एवं गतिविधियों का मूल जड़ उसके अंतश्चेतन मन में छिपी रहती है। फ्रायड द्वारा मानव की अंतश्चेतना की जो व्याख्या दी गई है; वह मनुष्य के अवचेतन एवं अचेतन के महत्त्व की असाधारणता प्रतिपादित करती है। फ्रायड के मतानुसार ''मानव की वास्तविक परिस्थितियों का ज्ञान कर लेना ही वास्तविक ज्ञान नहीं है। यथार्थ ज्ञान का प्रारंभ तो मानव मन के अंदर पलनेवाले क्रिया-कलापों के अध्ययन से प्रारंभ होता है। फ्रायड मनुष्य के अन्दर काम-प्रवृत्ति और उसके अवचेतन में दमन को विशेष महत्त्व प्रदान करते थे। वे इसे 'लिविडो' के नाम से अभिहित करते हैं। मानव मन को फ्रायड ने चेतन, अवचेतन तथा अर्द्धचेतन- तीन विभाग किए हैं। कुछ समय बाद इस सिद्धांत को और प्रभावशाली बनाने के लिए उन्होंने इदं अहं और आदर्श अहं के रूप में नया विभाजन किया।

मानव के जन्मजात नैसर्गिक पक्ष को वह इदम् कहते हैं। यह लिविडो कामशक्ति का कोष है। इदं व्यक्ति के अस्तित्व की प्रेरक शक्तियों या मूल प्रेरक प्रेरणाओं का भंडार है। ये प्रवृत्तियाँ विशेष इच्छाओं का स्वरूप लेकर परिवेश की ओर उन्मुख होती हैं और इस प्रकार चेतन मन को प्रभावित करती हैं।''(84) ''फ्रायड के मनोविज्ञान में कामवृत्ति, संघर्ष, दमन और अवरोध महत्त्वपूर्ण हैं। अहं संसार और इदं के बीच मध्यस्थ का कार्य करता है। यह इदं की मौलिक प्रवृत्तियाँ और संसार के यथार्थ के अनुरूप और संसार का इदं की वासनाओं के अनुकूल बनाने का प्रयास करता है।... आदर्श इदं(सुपर इगो) को फ्रायड अंतर्बोध और अंतरात्मा का प्रति रूप कहते हैं। उचित अनुचित की नैतिक मान्यताएँ इसी अंश द्वारा निर्मित होती हैं। यह अहं और इदं दोनों पर नियंत्रण रखती है।''(85) फ्रायड के चेतन, अर्द्धचेतन, का महत्व भी विशेष रूप से है। अर्द्धचेतन मन अवचेतन और चेतनमन की कड़ी है।

मानव मन की तीन परते होती हैं- चेतन, अर्द्धचेतन एवं अचेतना। इनमें अचेतन ही प्रबलतम है। इसी अचेतन में मानव की तीन-चौथाई विचारों एवं रुचियों का संसार अंतर्हित रहता है। फ्रायड ने मन के इसी त्रिसूत्री विश्लेषण के साथ लिबिडो (कामभावना) की भी स्थापना की। लिबिडो के मुताबिक मानव के प्रत्येक कार्य में कामचेतना अनिवार्य रूप से रहती है।

फ्रायड के अनुसार मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी रचनाकार मानव के गुह्य अंगों, अप्रत्यक्ष, दुर्लभ एवं असंभव जैसी प्रवृत्तियों की खोज अपनी रचना में करता है, पात्र के क्रिया-कलाप उसके व्यक्तित्व के अनुसार ही होता है। यदि व्यक्तित्व अंतर्मुखी है, तो उसका अवचेतन मन उसके क्रिया-कलाप का कारण बनता है। यदि पात्र का व्यक्तित्व बहिर्मुखी है; तो उसके अवचेतन के स्थान पर चेतन मन का बहुत बड़ा हाथ होता है। कुछ पात्र सीधे स्वभाव के होते हैं; तो कुछ कम्पलीकेटेड स्वभाव के। सीधे स्वभाववाले पात्रों का चित्रण प्रतीकात्मक रूप से किया जाता है; जबकि कम्पलीकेटेड (जटिल) स्वभाव के पात्रों का चित्रण उनकी दमित भावनाओं के आधार होता है। मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के अनुसार दमित काम के उपचेतन से बाहर न निकल पाने के कारण निम्नलिखित विकार उत्पन्न होते हैं- 1) स्नायविक तनाव एवं मानसिक विक्षेप। 2) कुंठा तथा मानसिक ग्रंथियाँ। 3) व्यक्तित्व विघटन। 4) अपराधी मनोवृत्ति ।

डॉ. सुरेश सिंहा ने मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद पर प्रकाश डालते हुए कहा है- ''मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद (psychogical Realism) यद्यपि बाह्य जगत् की सत्ता को अस्वीकार नहीं करता, तथापि मानवीय अंतर्जगत, उसकी बौद्धिकता एवं भावनात्मकता को ही अधिक बल प्रदान करता है। वह व्यष्टि चेतना की गहनता की माप एवं चेतन मन के आधारभूत उपचेतन एवं अवचेतन मन का रहस्योद्घाटन करता है। मानवीय चेतन मन दुर्बल एवं शक्ति हीन है। वह प्रगतिशील जीवन के परिस्थितिजन्य बंधनों की श्रृंखलाओं को विच्छिन्न करना चाहता है और अवचेतन मन की अतृप्त कामनाओं, कुंठाओं एवं वर्जनाओं से प्रेरणा ग्रहण कर तृप्ति के अन्वेषण के प्रति गतिशील होता है। यह अवचेतन मन चेतन

मन की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होता है और प्रत्येक नियंत्रण एवं सीमाओं को अस्वीकृत कर देता है; पर मनुष्य को जीवन जीने के लिए मर्यादाओं एवं अनुशासन का पालन करना होता है। अवचेतन मन के लिए सभ्यता, संस्कृति एवं श्लीलता अर्थहीन होते हैं; पर चेतन मन के लिए यही प्रवृत्तियाँ अनिवार्य होती हैं। इस प्रकार एक विरोधाभास एवं कटुता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है; जिसका प्रकाशन मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद करता है।''(86)

मनोवैज्ञानिक विचारक एडलर के अनुसार फ्रायड की काम-प्रवृत्ति अतिरंजित होती है। ये आत्म स्थापन को विशेष महत्त्व देते हैं। जुंग भी फ्रायड के विचारों से सहमत नहीं है। उसके मतानुसार लिविडो का व्यापक अर्थ ग्रहण किया गया है, जिसमें फ्रायड की काम-प्रवृत्ति एवं एडलर की आत्म स्थापन की प्रवृत्ति का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। गेस्टाल्य के मनोविश्लेषण ने भी साहित्य को प्रभावित किए बिना नहीं रहा है। कृपाशंकर पांडेय के शब्दों में- ''इनके अनुसार किसी भी परिस्थिति का पूर्णता के साथ दर्शन इसका आरंभ में किसी आदर्श अथवा विग्रह के रूप में दर्शन का मुखापेक्षी है। इससे मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का जो रूप दृष्टिगत होता है, उसके अंतर्गत फ्रायड के मनोविश्लेषण और स्वप्न सिद्धांत दोनों का समावेश हुआ है। इस प्रकार मनोविज्ञान यथार्थवाद का प्रमुख अंग है।''(87)

2.4.7 अतियथार्थवाद (Sur Realism) : अतियथार्थवाद का जन्म भी विभिन्न साहित्यिक कलावादों की तरह सन् 1922 ई. में फ्रांस में हुआ। इस वाद के प्रवर्तक डाडा माने जाते हैं। सर्वप्रथम इस शब्द का प्रयोग सन् 1924 ई. में आपोलिनैर ने किया था; पर इसको एक सही अर्थ देने एवं व्याख्या देने का श्रेय आंद्रे ब्रेतो को है। अतियथार्थवाद की एक दार्शनिक पृष्ठभूमि भी है; जिसके अंतर्गत फ्रायड के अचेतन मन, हीगेल की द्वन्द्वात्मक प्रणाली एवं मार्क्स के इतिहास की व्याख्या के सिद्धांतों एवं तत्वों का परिष्कृत रूप दृष्टिगत होता है। अतियथार्थवाद कला और साहित्य में बौद्धिकता के स्थान पर कल्पना को तथा चेतना के स्थान पर अवचेतन मन को विशेष महत्त्व देता है। वह प्रचलित मान्यताओं को खोखला मानता है और अभिव्यक्ति की स्वच्छंदता की माँग करता है। अतियथार्थवाद की सरल परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है कि ''जब यथार्थवाद समाज की मर्यादा और परंपरा की सीमाओं का अतिक्रमण कर अत्यंत नग्न रूप धारण करने लगा; तो उसे अतियथार्थवाद कहा गया।''

डॉ. सुरेश सिंहा ने अतियथार्थवाद को अवचेतन से संबंधित बताया है। उनके विचारानुसार - ''अतियथार्थवाद ने असंतुलन एवं असंगति के ऐसे वीभत्स एवं घृणास्पद चित्र उपस्थित किए कि मानव मात्र विकृतियों का पुतला बन गया। फलस्वरूप अतियथार्थवादी स्कूल पर अनेक दोषारोपण किए जाने लगे और उनके उत्तर भी दिए गए। पर सबसे भीषण आरोप यह किया गया कि अतियथार्थवाद हिंसा और न्युरोमांटिक प्रवृत्तियों को प्रश्रय देता है। वह वर्तमान नैतिकता को तिरस्कृत करता है; क्योंकि उसके विचार से वह रूढ़ और आडंबरयुक्त है। वह प्रेम और स्वतंत्रता पर आधारित नैतिकता को प्रमुखता प्रदान करता है।'' (88) इसी प्रसंग में आगे चलकर डॉ. सुरेश सिंहा ने अतियथार्थवाद की मनोवैज्ञानिकता

का विश्लेषण करते हुए कहा है- ''अतियथार्थ किसी भावुक मानवतावाद से संबंधित नहीं है। वह अत्यंत कठोर ढंग से नियंत्रित मनोवैज्ञानिक है। यदि वह 'प्रेम' और 'सहानुभूति' जैसे दो शब्दों का प्रयोग करता है, तो इसीलिए कि व्यक्ति के आर्थिक एवं वासनात्मक जीवन को उसके विश्लेषण ने उसे इन शब्दों के शालीनतापूर्वक प्रयोग करने का अधिकार दिया है और इस प्रयोग में किंचित् मात्र भी भावुकता का स्थान नहीं होता। अतियथार्थवाद जो ज्ञान की एक प्रणाली है, फलस्वरूप विजय और सुरक्षा की भी प्रणाली है; मनुष्य की चेतनशीलता का रहस्योद्घाटन करता है।'' (नई कहानी की मूल संवेदना, पृ.182)

अतियथार्थवादी साहित्य में विशेष रूप से मानव मन की अचेतन सत्ता की अभिव्यक्ति की जाती है। डॉ. त्रिभुवन सिंह के विचार से- ''अतियथार्थवादी साहित्यकार गोपनीय एवं मन के गहन प्रदेशों का यथातथ्य चित्रण अनावृत्त रूप में पाठकों के सामने उपस्थित करने का प्रयत्न करता है, जिससे उसकी जिज्ञासाएँ शांत हो जाए और वह नारी को केवल विलास एवं आकर्षण की ही वस्तु न समझे। ...मनोविश्लेषणात्मक यथार्थवाद के अंदर मनुष्य के स्वाभाविक अवगुणों को चित्रित करके उनसे घृणा उत्पन्न करने का प्रयास किया जाता है, परन्तु अतियथार्थवाद के अंदर गोपनीय एवं रहस्यपूर्ण स्थलों को चित्र द्वारा सामने लाकर मानव की जिज्ञासाओं को निर्मूल रहने का प्रयत्न किया जाता है।''(89) इस प्रकार के मतों से यह साफ हो जाता है कि यथार्थवाद की मूल भावना ही अतियथार्थवादी विचारधारा की पृष्ठभूमि में विद्यमान रही है।

अतियथार्थवाद का किसी नैतिक परंपरा के प्रति झुकाव नहीं है। वह पूंजीवादी परंपराओं को तो बिल्कुल तिरस्कृत भावना की दृष्टि से देखता है। डेवीज के शब्दों में ''अतियथार्थवाद की जड़ें पूंजीवादी व्यवस्था के विरोध में सभी मंचों पर उसके द्वारा श्रमिकों के प्रति विद्रोह किया जानेवाले निर्दयतापूर्ण तथा पाश्विक व्यवहार में और उसके द्वारा उन्हें निम्नतम स्तर के वैश्यागमन, बुर्जुआ विवाह के समर्थक बना देने में फैली हुई हैं और इसके अस्त्र अब भी काव्य तथा प्रत्यक्ष राजनीतिक क्रियाएँ हैं; जो कि एक साध्य के लिए दो मार्ग नहीं वरन् एक ही मार्ग है।''(90) अतियथार्थवाद की यह पूंजीवादी प्रवृत्ति इस बात को स्पष्ट करती है कि लुई, पाल तथा एलुआर जैसे पाश्चात्य विद्वान पहले अतियथार्थवादी होने के बाद ही कम्युनिस्ट हुए।

अतियथार्थवाद का मुख्य उद्देश्य व्यक्तित्व का चित्रण एवं भाव का प्रकाशन करना होता है। वह प्रचलित परंपरिक, नैतिक मान्यताओं को ठुकराता है। उसके अनुसार उसकी नैतिकता खोखली एवं थोथी है। डॉ. सुरेश सिंहा के शब्दों में- ''अतियथार्थवाद की मान्यता के अनुसार चित्रण में कथाकार को पूर्ण स्वतंत्रता हो, उस पर मर्यादाओं एवं नैतिकता का कोई बंधन न हो। अतियथार्थवाद हृदय की भावनात्मक गति करता है। यह बौद्धिकता के विरुद्ध है; किंतु साथ ही भावुकता के प्रति भी आग्रहशील नहीं है। यदि अतियथार्थवाद को उसके आधार बिंदु तक ले जाना चाहें; तो वे मूलभूत तत्त्व प्राप्त होंगे जिस पर किसी

भी उपयोगी भित्ति का निर्माण किया जा सकता है।''(91)

क्रिस्टोफर कॉडवेल के विचारानुसार- ''अतियथार्थवादी कुछ हद तक उस शिल्पी के समान है; जो अपने कौशल का अभ्यास करने के लिए अपने खाली समय में मामूली किस्म के मॉडल और खिलौने बनाता है। इस तरह वह सायास रूप में कोई ऐसी चीज जो अपनी प्रकृति से ही अनुपयोगी और इसलिए बड़े पैमाने पर किए जानेवाले उत्पादन की निरी शिल्पहीनता के विपरीत है, गढ़कर अपने विद्रोह को प्रकट करता है और अपने शिल्प के लिए कुछ मुक्त निकास पाता है।''(92)

सामाजिक व्यवस्था में जो कुछ परंपरागत एवं रूढ़ियों का बंधन होता है, उन सबको जड़ कर नष्ट कर देना अतियथार्थवाद का मुख्य लक्ष्य होता है। यथार्थवाद अतियथार्थवाद की तरह परंपरा विरोधी नहीं है। वह विरोध तो उन्हीं परंपराओं का करता है जो मानव के सुख-शांति एवं प्रगति पथ पर बाधक बनकर रोड़ा अटकाती है। यथार्थवाद एवं अतियथार्थवाद दोनों का मूलत: एक ही उद्देश्य है कि मानव समाज के विकास में बाधक तत्त्वों को जड़ समेत उखाड फेतना। अत: कहा जा सकता हैं कि दोनों में समानता भी है।

मानव का चेतनमन उसकी चेतनावस्था में वर्जनाओं, सामाजिक मान्यताओं तथा बौद्धिकता के नियमों का अंकुश लगाए रहता है; जिससे मानव कुछ भी करने या कहने के पूर्व भ्रमित रहता है कि उसकी कोई भी बात अनुचित, असंगत तथा हास्यास्पद न बन जाए। अत: वह बहुत-सी अनुचित बातों को छिपा कर, औचित्यपूर्ण बातों पर ज्यादा ध्यान देता है। उसकी छिपी हुई बातें उसके उपचेतन में दबी रह जाती हैं। मानव की उपचेतन में दमित वासनाएँ स्वप्नावस्था अथवा दिवास्वप्न की अवस्था में प्रतीकों एवं बिम्बों के रूप में धाराप्रवाह ढंग से अभिव्यक्ति होती रहती हैं। यही कारण है कि वे तार्किक बुद्धि को असंगत एवं निरर्थक जान पड़ती हैं। अत: उनकी श्रृंखला बीच-बीच में खंडित रहती हैं। परिणाम स्वरूप चेतना प्रवाह के बिंबों में असंबद्धता होती है तथा उनकी कोई अर्थ बोध नहीं हो पाता है। यदि उन बिंबों का प्रतीकार्थता का बोध हो जाए; तो उनके मध्य में खंडित श्रृंखलाओं को जोड़ पाना संभव है। बिंबों का अर्थ पूर्वनिश्चित नहीं होता। अत: व्यंजना अथवा संकेत के द्वारा ही उनके अभिधार्थ तक पहुँचा जा सकता है। बुद्धिनाथ मिश्र के शब्दों में- ''इस तरह कविता और चित्रकला में चेतना प्रवाह एक शिल्प मात्र है; जो स्वप्न के चेतना प्रवाह जैसा होता है और जिसमें खंडित और प्रतीकात्मक बिंबों की ही योजना होती है।''(93)

2.48 प्रकृतवादी यथार्थवाद (Naturalistic Realism) : प्रकृतवादी यथार्थवाद यथार्थवाद के परवर्ती विचारधाराओं में एक नवीन वाद है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से 19वीं शताब्दी में प्रकृतवादी यथार्थवाद का प्रणेता फ्रांसीसी आलोचक इमाइल जोला को माना जाता है। सर्वप्रथम उन्होंने ही अपने साहित्य में प्रकृतवादी सिद्धांत को यथार्थवादी शैली

में प्रस्तुत किया है। इसके अंतर्गत फ्लावेयर एवं मोपासां का साहित्य भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। प्रकृतवादी यथार्थवाद की दृष्टि से मोपासां का उपन्यास 'Pieare et Jean' तथा इमाइल जोला की पुस्तक 'Le Roman experiemental' प्रसिद्ध है। जोला ने अपनी पुस्तक की भूमिका में लिखा है- ''प्रकृतवाद उन परिस्थितियों एवं वातावरण के अनुसार जन्मा था; जो व्यक्ति की पूर्णता एवं सत्ता निश्चित करती है। उपन्यासकार का काम केवल वर्णन करना ही नहीं; संसार की अव्यवस्था को ठीक करना भी है।''

प्रकृतवादी यथार्थवाद में जीवन को यथार्थ रूप में चित्रित किया जाता है। इसमें किसी भी गोपनीय बातों का स्थान नहीं रहता। प्रकृतवादी साहित्य भौतिक विज्ञान की देन माना जाता है। इसमें व्यक्ति की आदिम वासनाओं एवं उसकी शारीरिक चेष्टाओं के प्रति विशेष आग्रह रहता है। कुछ लोग इसे यथार्थवाद से पलायन भी मानते हैं। हिंदी साहित्य कोश के अनुसार- ''सैद्धांतिक दृष्टिकोण से प्रकृतवाद का शाब्दिक अर्थ प्रकृति संबंधी काव्य अथवा साहित्य है। इस विचारांदोलन का विकास मूलरूप से फ्रांस में साहित्य और कला के क्षेत्र में हुआ था। यह विचारधारा भौतिकवाद पर अधिक बल देती है और इसमें आध्यात्मिकता के लिए जरा भी स्थान नहीं है। बहुत से विद्वानों का यह भी अनुमान है कि प्रकृतवाद फ्रांसीसी यथार्थवाद का ही विकसित रूप है।''(94)

यथार्थवादी साहित्य में मानव जीवन का नग्न यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है; और प्रकृतवादी यथार्थवाद मनुष्य को प्रकृति का अंग मानता है। वह साहित्य को जीवन के निकट लाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है। प्रकृतवादी यथार्थवाद श्लीलता, धर्म, सुरुचि अथवा नैतिकता के बंधन को स्वीकार नहीं करता है। स्वयं इमाइल जोला की मान्यता थी कि साहित्यकार का कर्तव्य है कि वह जीवन का यथातथ्य चित्र प्रस्तुत करे; चाहे वह नैतिकता की दृष्टि से कितना ही दूषित तथा गर्हित हो। जोसेफ चियारी के अनुसार- ''सामान्यत: प्रकृतवाद के अंतर्गत वे रचनाएँ आती थीं; जो प्रकृति के साथ प्रत्यक्ष संपर्क रखने की चेष्टा करके यथार्थवाद का रूप प्रस्तुत करती हों। विशेष रूप से प्रकृतवाद उन्नीसवीं शताब्दी के उन कलाकारों द्वारा प्रतिपादित मत है; जो मानव को प्रकृत रूप में अंकित करना चाहते थे, मानववादी अथवा धार्मिक रूप नहीं।''(95)

साहित्य समीक्षा के क्षेत्र में यथार्थवादी और प्रकृतवादी लेखकों को पर्याप्त सीमा तक एक-दूसरे के पर्यायवाची अर्थ में ग्रहण किया जाता रहा है। जबकि दोनों में अंतर है। यथार्थवादी लेखक जहाँ मानव के आदर्श एवं हीन पक्षों का वास्तविक चित्रण करता है; वहाँ प्रकृतवादी लेखक मानव के हीन पक्ष एवं उसकी पाशविक वृत्तियों के आधार पर ही अपनी विषयवस्तु का महल खड़ा करता है।

साहित्य समीक्षा के क्षेत्र में 'प्रकृतवाद' शब्द का जो प्रयोग होता है; उसका एक निश्चित अर्थ के रूप में नहीं हुआ; बल्कि उसका विभिन्न अर्थों में प्रयोग किया गया है। प्रो. तारकनाथ बाली ने साहित्यिक पारिभाषिक शब्दकोश में प्रकृतवाद का प्रयोग तीन अर्थों में ग्रहण करते हुए कहा है- 1. जिन कृतियों में प्रकृति एवं प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति रुचि

प्रदर्शित हो, उन्हें तथा उनके स्रष्ट को 'प्रकृतवादी' कहा जाता है। इस अर्थ में सुमित्रानंदन पंत की कविता को प्रकृतवादी कहा जा सकता है। 2. उन कृतियों के लिए इसका प्रयोग होता है, जिनमें जीवन के सभी वस्तु व्यापारों का यथावत् चित्रण होता है। इस अर्थ में 'प्रकृतवाद' यथार्थवाद का पर्याय है। 3. अन्यान्य लेखक मानव को प्राकृत जगत् से श्रेष्ठ एवं भिन्न न मानकर उसे इसी का अभिन्न अंग मानते हैं।(साहित्य पारिभाषिक शब्द कोश पृ.234)

डॉ. त्रिभुवन सिंह ने प्रकृतवाद के संदर्भ में बताया है कि प्रकृतवाद साहित्य में जीवन को उसके वास्तविक रूप में चित्रित करता है और साहित्य के लिए किसी भी विषय को गोपनीय नहीं समझता। उन्होंने प्रकृतवाद के स्वरूप की व्याख्या करते हुए लिखा है ''जब आदर्शवाद कल्पना के नाम पर काव्य को इस लोक से बहुत दूर खींच ले गया तो यही प्रवृत्ति भौतिक विज्ञान का बल लेकर यूरोपीय साहित्य में 'प्रकृतवाद' के नाम से प्रकट हुई। यह वाद कार्यत: किसी प्रकार के साहित्यिक अलंकारों का अथवा वस्तुओं या भावों में किस प्रकार के आदर्शीकरण का विरोधी है और इस बात का समर्थक है कि मनुष्य सभी बातों में पशु के समान है, विशेषकर रति के संबंध में यह अत्यंत निम्न और पतित श्रेणी के लोगों के जीवन को अपना सर्वोत्तम विषय समझता है। इसे हम यथार्थ की पराकाष्ठा कह सकते हैं।''(96)

कहना न होगा कि प्रकृतवादी साहित्य मानव जीवन को उसके वास्तविक नग्न रूप में चित्रित करता है। वह किसी भी वस्तु को साहित्य समीक्षा के लिए गोपनीय नहीं समझता।

2.49 आदर्शोन्मुख यथार्थवाद (Ideological Realism) : साहित्य समीक्षा के क्षेत्र में दो विचारधाराओं का द्वन्द्व हमेशा रहा है। ये दो विचारधाराएँ हैं- आदर्शवाद और यथार्थवाद। इन्हीं दो शब्दों के युग्म से 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' शब्द की उत्पत्ति हुई है। राजनाथ शर्मा के अनुसार- ''इसका अर्थ है आदर्श के प्रति उन्मुख यथार्थवाद। अर्थात् ऐसा यथार्थवाद जो किसी विशिष्ट आदर्श की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होता है।''(97) यह वाद मूलत: भारतीय है। इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम मुंशी प्रेमचंद ने उपन्यास साहित्य का विश्लेषण एवं मूल्यांकन करते हुए किया था।

आदर्शवाद और यथार्थवाद ये दोनों बहुत प्राचीन विचारधाराएँ हैं। आदर्शवाद का संबंध 'आइडिया' (विचार) से लिया जाता है जबकि यथार्थवाद का संबंध 'रियल'(यथार्थ) से। इन दोनों का प्रयोग साहित्य जगत् में पहले से ही होता आ रहा है; किंतु दोनों में पर्याप्त अंतर यह है कि यथार्थ चित्रण में बहुधा आदर्श का अभाव भी हो सकता है और आदर्श प्रत्येक परिस्थिति में आदर्श ही रहता है। अत: यथार्थवाद का संबंध भौतिकता तथा आदर्शवाद का आध्यात्मिकता से माना जाता रहा है। डॉ. रामलखन शुक्ल के अनुसार- ''आदर्शवाद भौतिकता की उपेक्षा आध्यात्मिकता को अधिक महत्त्व देता है। इसमें जीवन के सूक्ष्तम मूल्यों को स्वीकार किया जाता है। आस-पास के भौतिक जगत् के परे वह किसी

चेतन सत्ता को विशेष महत्त्व प्रदान करता है, जो दृश्यमान जगत् का सृष्टा है। समस्त आदर्शवादी दार्शनिक किसी-न-किसी रूप में उस चेतन सत्ता के महत्त्व को स्वीकार करते हैं।''(98) अत: कहा जा सकता है कि आदर्शवाद जीवन के प्रति एक प्रकार का दृष्टिकोण है, जिसकी सहायता से यथार्थ जीवन एवं जगत् का मूल्यांकन किया जाता है।

सामान्यत: यथार्थ की पृष्ठभूमि पर आदर्श का निर्माण किया जाता है। यथार्थ का वह रूप घातक होता है; जो किसी आदर्श को सामने न रख केवल यथार्थ चित्रण तक ही सीमित होकर रह जाता है। यथार्थवादी साहित्य का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि सम-सामयिक जीवन की विषमताओं का उन्मूलन कर एक ऐसे समाज का निर्माण करना होता है; जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का जीवन सुख एवं शांति से व्यतीत हो। वस्तुत: आदर्श और यथार्थ का उचित समन्वय करने में रचनाकार को वहीं सफलता की मंजिल मिल सकती है; जहाँ उसका आदर्श उसके यथार्थ से गहरे रूप से संबद्ध बना रहता है। यही यथार्थवाद है और इसी को मुंशी प्रेमचंद ने 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' की संज्ञा प्रदान की।

प्रेमचंद ने आदर्श और यथार्थ की परस्पर तुलना करते हुए कहा है- ''यथार्थवाद यदि हमारी आँखें खोल देता है, तो आदर्शवाद हमें उठा कर किसी मनोरम स्थान पर पहुँचा देता है। लेकिन जहाँ आदर्शवाद में यह गुण है, वहाँ इस बात की भी आशंका है कि हम ऐसे चरित्रों को न चित्रित कर बैठे जो सिद्धांतों के मूर्तिमान रूप हों- जिनमें जीवन न हो। किसी देवता की कामना करना मुश्किल नहीं। लेकिन उस देवता में प्राण-प्रतिष्ठा करना मुश्किल है।.... आदर्श को सजीव बनाने के लिए ही यथार्थ का उपयोग होना चाहिए और अच्छे उपन्यास की यही विशेषता है।''(99) इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यथार्थ की पृष्ठभूमि पर आदर्श को प्रस्तुत करना आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का मुख्य उद्देश्य होता है।

डॉ. त्रिभुवन सिंह ने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की परिभाषा देते हुए कहा है- ''आदर्शोन्मुख यथार्थवाद मानव की दयनीय एवं कुरूपताओं से भरी हुई विषम परिस्थितियों की वास्तविक कठोरता में चमक जानेवाला वह काल्पनिक आलोक है; जिसके द्वारा जीवन से निराश परिस्थितियों की मार से घबराये हुए तथा रास्ते में हताश मानव के अंदर आशा और विश्वास का संचार हो जाता है।... आशा ही मानव जीवन में एक ऐसा तत्त्व है जो उसे गतिशील रखता है, नहीं तो वह कभी भी अपनी परिस्थितियों से संघर्ष करने का नाम भी न लेता।''(100)

आदर्शवाद और यथार्थवाद को परस्पर विरोधी विचारधारा माननेवाले विचारक आदर्शवाद के विरुद्ध यह दोष लगाते हैं कि आदर्शवाद यथार्थ जीवन से विमुख होता है और भावनात्मक तथा कल्पनात्मक तत्त्वों पर आधारित होता है। वास्तव में यह बात तर्क संगत नहीं लगती है; क्योंकि आदर्श की स्थापना यथार्थ की नींव पर ही होती है। अत: दोनों विचारधाराओं के योग से जो एक नई विचारधारा का जन्म हुआ है; उसका नामकरण 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' किया जा सकता है।

2.410 नव्य यथार्थवाद (Neo Realism): नव्य यथार्थवाद संपूर्णता में विश्वास करता है। नव्य यथार्थवाद का प्रभाव विश्व के समस्त नए एवं पुराने यथार्थवादी विचारकों, कला एवं साहित्य समीक्षकों पर गहराई से पड़ा है। यह विचारधारा आदर्श का विरोधी नहीं है। वह यथार्थ एवं आदर्श के सामंजस्य एवं संघर्ष में विश्वास करता है। कभी-कभी वह इसका विरोध भी करता है। यानि कि नव्य यथार्थवाद की प्रणाली द्वंद्वात्मक है। अत: इसे 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी यथार्थवाद' की संज्ञा भी दी जा सकती है।

नव्य यथार्थवाद यथार्थवाद का ही एक परवर्ती रूप है; लेकिन दोनों में भिन्नता है। यथार्थवाद की एक सीमा है। वह जो है, हो रहा है तथा जो जनसाधारण की उपलब्धि बन गई हैं- यहीं तक केंद्रित रहता है। जबकि नव्य यथार्थवाद इन सबके साथ-साथ जो कल होगा, जिसके लिए आम जनता रात-दिन बेचैन रहती है, श्रम एवं संघर्ष करती रहती है, उस सब का लेखाजोखा करता है। राजकुमार सैनी के शब्दों में- ''यह बहुआयामी यथार्थवाद है जो भूत, वर्तमान और भविष्य को संप्रेषित करता है। जो यथार्थ लोक से स्वप्नलोक और स्वप्नलोक से यथार्थ लोक की कभी न खत्म होनेवाली यात्रा का एक अनवरत और यकायक सिलसिला है।''(101) अत: नव्य यथार्थवाद सत्य, फंटेसी एवं स्वप्नों का कलात्मक अभिव्यक्ति करता है। वह वर्तमान के साथ-साथ भूत एवं भविष्य का लेखाजोखा की दूर दृष्टि रखता है। नव्य यथार्थवाद आदर्शवाद, रहस्यवाद, भाववाद, बुद्धिवाद, विचारवाद, कलावाद, अनुभववाद रीतिवाद जैसे वादों से अलग है। वह इनका विरोध गुण-दोष की मात्रा के आधार पर ही करता है। किंतु आदर्श, रहस्य, भाव, बुद्धि, विचार, कला, अनुभव तथा रीति के प्रति सहृदय है। इसका आशय स्पष्ट करते हुए राजकुमार सैनी का मत है - ''नया यथार्थवाद कला और जीवन संबंधी इन सभी अवयवों को यथोचित महत्त्व तो देता है पर किसी भी एक अवयव को पूरे व्यक्तित्व और कृतित्व पर चर्चा कर देने के हठ या दुराग्रह का विरोध करता है।''(102)

नव्य यथार्थवाद का जन्म गोर्की के 'माँ' शीर्षक उपन्यास से माना जाता है। अत: नव्य यथार्थवाद का प्रणेता रुसी उपन्यासकार गोर्की हैं। धीरे-धीरे इसका विकास अन्य यथार्थवादी रूपों की तरह संपूर्ण विश्व साहित्य एवं कला जगत के क्षेत्र में होने लगा। डॉ. मीनाक्षी के शब्दों में- ''सन् 1967-68 के बाद हिंदी कविता में न्यू रियलिज्म या नव यथार्थवाद का दौर आता है।''(103)

2.411 जादुई यथार्थवाद (Magical Realism) :

साहित्य में यथार्थवाद की तरह जादुई यथार्थवाद भी एक शैली है। गिरीश मिश्र ने इसकी परिभाषा देते हुए कहा है- ''वह किस्सागोई का एक तरीका है जिसमें जादुई तत्त्वों का इस्तेमाल ऐसे किया जाता है कि वह विश्वसनीय या युक्ति युक्ति लगें। यह ऐसी लेखन-शैली है; जो दिन-प्रतिदिन जीवन के दुनियावी स्वरूप को बहुत कुछ असाधारण बनाकर पेश करती है।''(104)

सन् 1925 ई. में 'जादुई यथार्थवाद' का प्रयोग सर्वप्रथम जर्मन के कला समीक्षक

फ्रांजरोह (Franz Roh) ने अभिव्यंजनावादी शैली के रूप में किया था। बाद में सन्1954 में न्यूयार्क के क्वींस कॉलेज के लेक्चरर एंजेल फ्लोर्स (Angal Flores) ने अपने एक लेख में 'जादुई यथार्थवाद' का प्रयोग स्पेनिश एवं अमरीकी लेखन शैली के लिए किया था। इसका संबंध लोक साहित्य से है। इस दृष्टि से गैब्रियल गार्सिया मार्खेस का उपन्यास 'वन हेडरेड इयर्स सॉलिट्यूड' जादुई यथार्थवाद शैली का ही एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। 'मार्जिन' के संपादक केई सेलमैन (Kaye Sellman) का कहना है कि जादुई यथार्थवाद फैंटेसी या वैज्ञानिक गल्प से बिल्कुल अलग है। वह कल्पना के पंख लगाकर उड़ान भरने के अलावा आम जनता के तजुर्बे पर आधारित होता है।

जादुई यथार्थवाद का मुख्य केंद्र बिंदु जनसमूह है। जनसमूह ही उसका परिदृश्य है; जिसमें कहानी अंकुर लेकर विकसित होती है। यह जनसमूह अपने भीतर दमित इतिहास को मौखिक रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। केई सेलमैन के अनुसार- ''उत्तर-औपनिवेशक लेखक बहुधा जादुई यथार्थवाद को आधार बनाकर अपनी कहानियों का तानाबाना बुनते हैं। ये कहानियाँ अक्सर राजनीतिक और सांस्कृतिक अंत:स्वर, प्रतीक कथाओं और रूपकों के माध्यम से प्रतिबिंबित होती हैं।'' इस प्रकार के रचनाकार लैटिन, अमरीकी एवं भारत जैसे देशों में पाए जाते हैं। जादुई यथार्थवादी रचनाकारों का मानना है कि इस संसार में जहाँ रात-दिन व्यक्तियों का संबंध उन सबसे होता है जो अप्राकृतिक, कृत्रिम, विनिर्मित, प्रतीयमान और निरिंद्रय हैं, ऐसी परिस्थिति में पलनेवाले व्यक्तियों की चाह जैव वस्तुओं के लिए स्वाभाविक है। वे चाहते हैं कि किसी अजूबा(चमत्कार) के माध्यम से वे प्राकृतिक वातावरण में वापस चले जाएँ तथा उनके नष्ट किए हुए तार प्रकृति से जुड़ जाएँ। इस कदर जादुई यथार्थवाद से अनुप्राणित साहित्य में प्रकृति चालन-शक्ति का काम करती है।

जादुई यथार्थवाद से अनुप्राणित कथा साहित्य का जो नायक होता है उसकी उम्र बहुत लंबी होती है। कहा जाता है भूत-प्रेत जीवित प्राणियों से संवाद कर सकते हैं। रामायण में राम का सेवक हनुमान और महाभारत में यक्ष-युधिष्ठिर संवाद, अश्वत्थामा की दशा जादुई यथार्थवाद की ओर ही इशारा करते हैं।

अब तक हमने यथार्थवाद के जितने प्रकार की चर्चा की है सभी का अपना-अपना एक उद्देश्य है। जादुई यथार्थवाद का भी अपना उद्देश्य है। इस संदर्भ में प्रकाश डालते हुए गिरिश मिश्र ने कहा है- ''जादुई यथार्थवाद, समाज में हाशिए पर फेंक दिए गए लोगों, वर्गों और समूहों की आवाज को दुनिया भर में शक्ति और प्रतिष्ठा प्रदान करने की कोशिश करता है। इनमें वे लोग शामिल हैं; जो भाषा, धर्म, नस्ल, लिंग, राजनीति, क्षेत्र और रोजी-रोटी के सवालों को लेकर शोषित-उत्पीड़ित हैं। जादुई यथार्थ का उद्देश्य ही परस्पर प्रतिकूल तत्त्वों या स्थितियों के सम्मिलन से उत्पन्न विरोधाभास को प्रस्तुत करना होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो जादुई यथार्थवाद की चारित्रिक विशेषता आपस में टकरानेवाले दो परिप्रेक्ष्यों को प्रस्तुत करना है। एक परिप्रेक्ष्य यथार्थ के तर्क संगत दृष्टिकोण और दूसरा अलौकिक को नीरस यथार्थ के रूप में स्वीकारने से संबद्ध होता है। जादुई यथार्थवाद विशुद्ध

स्वप्नचित्र और फैंटेसी नहीं है; क्योंकि वह एक सामान्य, आधुनिक विश्व में जन्म लेता है जहाँ-जहाँ लोगों और समाज के विषय में प्रामाणिक विवरण दिए जाते है। एंजेल्स फ्लोर्स के अनुसार जादुई यथार्थवाद वास्तविकता और स्वप्नचित्र का संयोजन होता है।''(105)

जादुई यथार्थवाद का जिस कथा-साहित्य से संबंध रहता है; वह सामान्यत: दो प्रकार का हो सकता है। पहला कहानी का आरंभ किसी जादुई घटना से होना और उसके पात्र साधारण व्यवहार करनेवाले जैसे लगते हो। दूसरा कहानी का शुभारंभ साधारण ढंग से होते हुए भी असाधारण लगना।

×-×-×

संदर्भ-सूची

1.	प्रदीप सक्सेना	: सौंदर्यबोध की मार्क्सवादी अभिधारणायें मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र	पृ.257
2.	राजेश्वर गुरु	: (सं.) गोदान	पृ.19
3.	मानक हिंदी कोश	: पाँचवा खंड	पृ.43
4.	नालंदा विशाल शब्द सागर		पृ.1135
5.	मानक हिंदी कोश	: चौथा खंड	पृ.435
6.	वेबस्टर्स II न्यू कॉलेज डिक्शनरी		पृ.921
7.	सर्वजीत राय	: हिंदी उपन्यास साहित्य में आदर्शवाद	पृ.67
8.	रामलखन शुक्ल	: हिंदी उपन्यास कला	पृ.82
9.	रमाशंकर	: भारतवाणी पत्रिका, दिसम्बर 2002	पृ.12
10.	त्रिभुवन सिंह	: हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद	पृ.8
11.	भगीरथ मिश्र	: पाश्चात्य काव्यशास्त्र : इतिहास, सिद्धांत और वाद	पृ.143
12.	लल्लन मिश्र	: (सं) वाद और सिद्धांत	पृ.29
13.	गीता	: 10/32	
14.	कजामिया	: ए हिस्ट्री ऑफ इंग्लिश लिटरेचर	
15.	जॉर्ज लुकाच	: स्टडीज इन यूरोपियन रियलिज्म	पृ.137-138
16.	हार्वर्ड फास्ट	: लिटरेचर एण्ड रियलिटी,	पृ.17
17.	विडा सला पिंटो	: प्रिंस्टन इन साइक्लोपीडिया ऑफ पोएट्री एंड पोएटिक्स,	पृ.685
18.	प्रेमचंद	: गद्य तरंगिणी	पृ.52
19.	सुमित्रानंदन पंत	: समालोचक पत्रिका, फरवरी 1959	पृ.1
20.	नन्ददुलारे वाजपेयी	: आधुनिक साहित्य	पृ.445
21.	नगेन्द्र	: विचार और विवेचन	पृ.97
22.	वासुदेवशरण अग्रवाल	: समालोचक पत्रिका, फरवरी 1959	पृ.78
23.	शिवनारायण श्रीवास्तव	: हिंदी उपन्यास	पृ.472
24.	शिवकुमार मिश्र	: यथार्थवाद	पृ.13
25.	त्रिभुवन सिंह	: हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद	पृ.25
26.	त्रिभुवन सिंह	: हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद	पृ.7
27.	नूरजहाँ	: हिंदी कहानी में यथार्थवाद	पृ.7
28.	मैनेजर पांडेय	: प्रस्ताव पत्रिका, अंक 10 मार्च 1984	पृ.30
29.	राकेश कुमार	: जॉर्ज लुकाच का यथार्थ दर्शन	पृ.75-76
30.	जॉर्ज लुकाच	: स्टडीज इन यूरोपियन रियलिज्म	पृ.6

31.	संपादित एनसाईक्लोपीडिया ब्रिटैनिका		पृ.19
32.	शिवकुमार मिश्र	: यथार्थवाद	पृ.16-17
33.	त्रिभुवन सिंह	: हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद	पृ.25
34.	मैनेजर पांडेय	: प्रस्ताव पत्रिका, अंक-10 मार्च 1984	पृ.38
35.	रामविलास शर्मा	: आस्था और सौंदर्य	पृ.23-24
36.	मैनेजर पांडेय	: प्रस्ताव पत्रिका, अंक-6 मार्च 1984	पृ.22
37.	हरद्वारीलाल शर्मा	: समालोचक पत्रिका, फरवरी 1959	पृ.41
38.	म. मा. कडू	: यशपाल के उपन्यास साहित्य का अनुशीलन	पृ.56-57
39.	त्रिभुवन सिंह	: हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद	पृ.29
40	जा. विश्वमित्र	: उपन्यास कला	पृ.92
41.	सत्यकाम	: आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचंद	पृ.33
42.	त्रिभुवन सिंह	: हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद	पृ.34
43.	सत्यकाम	: आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचंद	पृ.25
44.	हजारीप्रसाद द्विवेदी	: हिंदी साहित्य	पृ.27
45.	शिवदान सिंह चौहान	: आलोचना पत्रिका, संपादकीय, 1952	
46.	जयशंकर प्रसाद	: काव्य और कला तथा अन्य निबंध	पृ.44
47.	राजकुमार सैनी	: यथार्थवाद और सौंदर्यशास्त्र	पृ.71
48.	राजकुमार सैनी	: यथार्थवाद और सौंदर्यशास्त्र	पृ.71
49.	शिवकुमार मिश्र	: यथार्थवाद	पृ.8
50.	एस. एन. गणेशन	: हिंदी उपन्यास साहित्य का अध्ययन	पृ.351
51.	सुरेश सिंहा	: नई कहानी की संवेदना	पृ.175-76
52.	त्रिभुवन सिंह	: हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद	पृ.97
53.	एस. एन. गणेशन	: हिंदी उपन्यास साहित्य का अध्ययन	पृ.351
54.	सुरेश सिंहा	: उपन्यास शिल्प और प्रकृतियाँ	पृ.149
55.	निर्मला जैन	: समाजवादी साहित्य के विकास की समस्याएँ (दमित्री मार्कोव)	पृ.19
56.	याकोब एलवार्ग	: विवादास्पद और अविवादास्पद के विषय में,	पृ.83-84
57.	शिवकुमार मिश्र	: मार्क्सवादी साहित्य चिंतन इतिहास तथा सिद्धांत	पृ.382
58.	जॉर्ज लुकाच	: दी मीनिंग आफ कंटेमपरेरी रियलिज्म	पृ.101-2
59.	शिवकुमार मिश्र	: आलोचना पत्रिका, अक्तूबर 1963	पृ.29
60.	विजयशंकर मल्ल	: हिंदी काव्य में प्रगतिवाद	पृ.118-19
61.	ए. एस. बुश्मिन	: साहित्यिक अध्ययन की प्रविधिगत समस्याएँ	पृ. 195
62.	सुरेश सिंहा	: नई कहानी की मूलसंवेदना	पृ.175-76

63.	राल्फ फाक्स	: दि नावेल एंड दि पीपुल	पृ.137
64.	नारायण विष्णु जोशी	: सं.रतनलाल सुराना, वाद और सिद्धांत	पृ.14
65.	राहुल सांकृत्यायन	: साम्यवाद ही क्यों?	पृ.35-36
66.	सुरेश सिंहा	: उपन्यास शिल्प एवं प्रवृत्तियाँ	पृ.163
67.	त्रिभुवन सिंह	: हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद	पृ.139-40
68.	त्रिभुवन सिंह	: हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद	पृ.143
69.	सुरेश सिंहा	: उपन्यास शिल्प एवं प्रवृत्तियाँ	पृ.159
70.	शिवकुमार मिश्र	: यथार्थवाद	पृ.98
71.	राकेश कुमार	: जॉर्ज लुकाच का यथार्थ दर्शन	पृ.91
72.	जॉर्ज लुकाच	: दी मीनिंग आफ कंटेम्परेरी रियलिज्म	पृ.93
73.	रोहिताश्व	: समकालीन कविता : मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में	पृ.117
74.	शिवकुमार मिश्र	: मार्क्सवादी साहित्य चिंतन इतिहास तथा सिद्धांत	पृ.382
75.	शिवकुमार मिश्र	: यथार्थवाद	पृ.102
76.	अर्नेस्ट फिशर	: दि नेसेसीटी ऑफ आर्ट	पृ.103
77.	शिवकुमार मिश्र	: यथार्थवाद	पृ.100
78.	राकेश कुमार	: जॉर्ज लुकाच का यथार्थ दर्शन	पृ.97
79.	कर्णसिंह चौहान(अनु)	: जॉर्ज लुकाच- समकालीन यथार्थवाद	पृ.119
80.	बुद्धिनाथ मिश्र	: शोध प्रबंध- यथार्थवाद और हिंदी नवगीत	पृ.164
81.	रोहिताश्व	: समकालीन कविता : मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में	पृ.96-97
82.	मेक्सिम गोर्की	: लेनिन एंड प्राब्लंस ऑफ लिटरेचर	पृ.73
83.	कृपाशंकर पांडेय	: यथार्थवाद और यथार्थ के विविध रूप	पृ.25
84.	हिंदी साहित्य कोश	: सं. धीरेंद्र वर्मा	पृ.123
85.	हिंदी साहित्य कोश	: सं. धीरेंद्र वर्मा	पृ.26
86.	सुरेश सिंहा	: उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियाँ	पृ.170
87.	कृपाशंकर पांडेय	: यथार्थवाद और यथार्थ के विविध रूप	पृ.26
88.	सुरेश सिंहा	: नई कहानी की मूलसंवेदना	पृ.182
89.	त्रिभुवन सिंह	: हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद	पृ.192-93
90.	डेवीज	: पाश्चात्य आलोचना की अर्वाचीन प्रवृत्तियाँ	पृ.96
91.	सुरेश सिंहा	: हिंदी कहानी का उद्‌भव और विकास	पृ.96
92.	किस्टोफर कॉडवेल	: (अनु.) भगवान सिंह- विभ्रम और यथार्थ	पृ.111
93.	बुद्धिनाथ मिश्र	: शोध प्रबंध-यथार्थवाद और हिंदी नवगीत	पृ.185

94.	धीरेंद्र वर्मा (सं)	: हिंदी साहित्य कोश भाग-1	पृ.496
95.	जोसेफ चियारी	: रियलिज्म एंड इमेजिनेशन	पृ77-78
96.	त्रिभुवन सिंह	: हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद	पृ.182
97.	राजनाथ शर्मा	: साहित्यिक निबंध	पृ.484
98.	रामलखन शुक्ल	: हिंदी उपन्यास कला,	पृ.80
99.	प्रेमचंद	: कुछ विचार	पृ.40-41
100.	त्रिभुवन सिंह	: हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद	पृ.88
101.	राजकुमार सैनी	: यथार्थवाद और सौंदर्यशास्त्र	पृ.21
102.	राजकुमार सैनी	: यथार्थवाद और सौंदर्यशास्त्र	पृ.24
103.	मीनाक्षी व्यास	: कवि सर्वेश्वर : सृजन के नए आयाम,	पृ.18
104.	गिरीश मिश्र	: आलोचना पत्रिका, अप्रैल-जून 2002	पृ.83
105.	गिरीश मिश्र	: आलोचना पत्रिका, अप्रैल-जून 2002	पृ.84

×-×-×

3. यथार्थवाद और धूमिल का काव्य

साहित्य में यथार्थवाद जीवन के सत्य को चित्रित करता है और जीवन का सत्य है सामाजिक विद्रूपता, मनुष्य की चारित्रिक दुर्बलता, भ्रष्टाचार व्यक्ति की स्वार्थी-मनोवृत्ति, जिजीविषा और प्रगति की कामना आदि। वास्तव में जीवन का सत्य मनुष्य का भौतिक सुख के लिए संघर्ष है और चारित्रिक तथा हृदय के विकास का संघर्ष भी। यथार्थवाद जीवन के इस सत्य के दोनों पहलुओं को समान रूप से देखता है।

जिजीविषा और प्रगति की कमानवाला मानवीय सत्य का चित्रण जिस रचना में होता है; वही सही अर्थों में यथार्थवादी रचना है। अर्थात् यथार्थवादी रचना उद्देश्यहीन या आदर्शविहीन नहीं होती। यथातथ्य चित्रणों को प्रस्तुत करनेवाली रचनाएँ; जिनमें मनुष्य की विकृतियों को चित्रित किया जाता है, चाहे वह समाजवादी यथार्थवाद के नाम पर हो या मनोवैज्ञानिक अथवा वैज्ञानिक यथार्थवाद के नाम पर हो। ऐसी प्रकृतवादी रचनाओं में दु:ख, निराशा व जघन्य अपराधों एवं पाशविक प्रवृत्तियों आदि का चित्रण होता है। पर यथार्थवादी रचनाओं से मनुष्य में जीने की लालसा व जीवन के सकारात्मक पक्ष के प्रति अटूट विश्वास होना चाहिए।

यथार्थवादी रचना का उद्देश्य केवल विचारों में परिवर्तन करना नहीं है; बल्कि मनुष्य की समग्र भावनात्मक सत्ता का परिवर्तन करना है। इस महान कार्य के लिए वैश्विक

स्तर का यथार्थवादी साहित्य अब भी हमारे लिए आदर्श हैं। टॉलस्टॉय और गोर्की की परंपरा में शोलोखव (इलिया एहरेनबर्ग) हमारे लिए आज भी अनुकरणीय हैं। लुकाच के अनुसार राजनैतिक और सामाजिक आजादी मिल जाने पर भी अधिकतर जनता प्रतिक्रियावादी विचारधारा एवं भावनाओं से पीड़ित रहती है। इसीलिए एकदम स्पष्ट देख नहीं पाती। आलोचकों एवं कलाकारों का यह महान् उत्तरदायित्व है कि वे साहित्य की रचना और उसकी व्याख्या द्वारा सामाजिक और वास्तविक यथार्थ को जनता के सम्मुख रखें तथा उसके प्रति जनता में हमदर्दी उत्पन्न करें।

आधुनिक हिंदी साहित्य में यथार्थवाद का विकास देश के स्वातंत्र्य संघर्ष से जुड़कर ही हुआ है। हंसराज रहबर ने लिखा है कि जाने-अनजाने में साहित्य की यथार्थवादी विचारधारा और हमारा स्वाधीनता आंदोलन एक-दूसरे से संबंधित हो गए और यह संबंध अनिवार्य था। यथार्थवादी साहित्य ने स्वाधीनता आंदोलन को आगे बढ़ाया और स्वाधीनता संग्राम ने हमारे यथार्थवादी चिंतन को निखारा। भारतेंदु युग से प्रगतिशील आंदोलन तक विकसित यथार्थवाद का मुख्य प्रेरणा-स्त्रोत स्वाधीनता आंदोलन ही था।

निराला की यथार्थवादी परंपरा को प्रगतिशील आंदोलन के जिन कवियों ने आगे बढ़ाया वे हैं- मुक्तिबोध, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन आदि। मुक्तिबोध ने सामाजिक यथार्थ को जितने व्यापक और सार्थक ढंग से व्यक्त किया; वह भारतीय कविता में एक अद्‌भुत घटना है। उन्होंने कविता को किस तरह क्रांति की आंतरिक प्रक्रिया से जोड़ा यह उनकी 'अंधेरे में' शीर्षक कविता से स्पष्ट है। मुक्तिबोध के इस पक्ष को नामवर सिंह ने बहुत विस्तार से प्रस्तुत किया है। नागार्जुन अपनी रचनाओं में यथार्थ को बड़े व्यापक स्तर पर व्यक्त करते रहे हैं। त्रिलोचन और केदारनाथ अग्रवाल भी उसी काव्य चेतना को आगे विकसित करने में लगे है, जिनका प्रारंभ 1936 में प्रगतिवादी काव्य-आंदोलन से हुआ था। युवा कवियों के आज भी वे अनुकरणीय और प्रेरणा स्त्रोत रहे हैं।

समकालीन कविता किसी काव्येतर उपकरण के सहारे नहीं; बल्कि अपनी काव्य सत्ता के सहारे ही खड़ी है। वह सभी गैर जरूरी प्रसाधनों को त्याग चुकी है और वह एकदम जिंदगी के रू-ब-रू है। कविता के लिए यह बहुत बड़ा जोखिम होकर भी रचना की अप्रतिम उपलब्धि है। निराला, मुक्तिबोध और त्रिलोचन आदि की काव्य परंपरा को धूमिल ने आगे बढ़ाया है। समकालीन कविता में यथार्थवादी रचनाकार के रूप में धूमिल का स्थान अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। अधिकांश आलोचकों एवं शोधार्थियों ने उनकी रचना-प्रक्रिया और यथार्थ बोध पर अधिक ध्यान दिया है और इसी के आलोक में उनके काव्य को मूल्यांकित करने का प्रयत्न किया है। धूमिल पर लिखे गए लेखों व शोध-प्रबंधों में सामान्यतः यही प्रवृत्ति प्राप्त होती है; परंतु उनके संपूर्ण काव्य की पीठिका का एक ऐसा आधार बिंदु है जिसकी ओर आलोचकों ने 'कम' ही ध्यान दिया है और कवि के प्रति पूरा न्याय नहीं किया है। इसी आधार बिंदु एवं पृष्ठभूमि धूमिल के काव्य में यथार्थवादी अवधारणा, का

विवेचन शोधकार्य के दौरान किया जा रहा है।

धूमिल की प्रारंभिक कविताएँ रोमांटिक एवं भावना प्रधान हुआ करती थीं। सन्1960 के आस-पास जब वे काशी के अस्सी पर डॉ. रामचन्द्र शुक्ल और डॉ नामवर सिंह जैसे विद्वानों के संपर्क में आए। उन्होंने अपनी सूक्ष्य दृष्टि से उस समय की समस्याओं के विविध पक्षों को अच्छी तरह से देखा तथा समझा था। वे स्वयं भुक्त भोगी थे। उन्होंने जीवन की सच्चाई को भोगा तथा उसे यथार्थवादी ढंग से परखने का प्रयास किया। धूमिल ने समाज की विशेषताओं को भी देखा था तथा समाज की विषमताओं को भी परखा था; पर इसमें उनकी संतुलित दृष्टि एवं निस्संगता का अभाव मिलता है; जो एक यथार्थवादी लेखक के लिए आवश्यक है। सामान्यत: यथार्थवादी रचनाकार की दृष्टि पैनी एवं तेज-तर्रार होती है। उसमें व्यंग्यात्मकता अधिक होती है। सामाजिक जीवन की विषमताओं तथा विद्रूपताओं को धूमिल ने अपने काव्य साहित्य में बड़े जीवंत रूप में उभारा और उनके नैतिक समाधान देने की कोशिश भी की है। 'संसद से सड़क तक', 'कल सुनना मुझे', तथा 'सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र' इन तीनों काव्य संग्रहों में निश्चय ही वे यथार्थवादी कवि समादृत होते हैं।

यथार्थवाद की अवधारणा और विभिन्न प्रकार : यथार्थवाद मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र की केंद्रीय अवधारणा तथा मार्क्सवादी साहित्यालोचना और समाजशास्त्रीय मूल्यांकन पद्धति का मूलाधार है। डॉ. रोहिताश्व के मतानुसार ''मार्क्स और एंगेल्स ने यथार्थवादी सिद्धांत को विभिन्न कालावधियों के विभिन्न साहित्यिक सुझावों या कलात्मक दृष्टिकोणों में से एक नहीं; बल्कि जीवन-यथार्थ के प्रतिबिंबन की एक मात्र प्रणाली के रूप में कलाकार पाठक को अतिशय विशिष्ट शक्तियों और कारगर उपकरण प्रदान करनेवाला एक क्रांतिकारी औजार माना है।''(1)

यथार्थ सौंदर्यात्मक चेतना की बनावट का मुख्य निर्णायक तत्त्व है, नियामक भी। कहा जा सकता है कि ''जब कलाकार यथार्थ का पुनरुत्पादन कृति में करता है; तो कल्पना के रूप में वह विचारात्मक और सौंदर्यात्मक यथार्थ से समतुल्य ही होता है। हार्वर्ड फास्ट ने यथार्थवाद रियलिज्म की जगह इस संदर्भ में सोशलिस्टिक मैथड, रियलिस्टिक सिचुयेशन्स, रिफ्लेक्शन आफ रियलिटी आदि कई शब्दों का सतर्कतापूर्वक एवं सार्थक प्रयोग किया है।... सारांशत: वे रियलिज्म को 'स्ट्रगल का राइप फ्रूट' मानते रहे हैं।''(2)

सामान्यत: यथार्थवाद के तीन प्रकार माने जाते हैं- प्रकृतवादी यथार्थवाद (Naturalistic Realism) समाजवादी यथार्थवाद (Socialistic Realism) और साम्यवादी यथार्थवाद (Communist Realism)। बाल्जाक, जोला, शिवमंगल सिंह 'सुमन', मुन्नुलाल शर्मा 'शील' आदि की रचनाएँ प्रकृतवादी यथार्थवाद के अंतर्गत विवेच्य हैं। कारण वे सामाजिक विकृतियों की चर्चा यथावत और फोटोग्राफिक चित्रण के रूप में करते हैं। जबकि समाजवादी यथार्थवाद सामाजिक विकृतियों एवं पतनशील प्रवृत्तियों-स्थितियों की चर्चा करते

हुए मानवीय जिजीविषा और मूल्य चेतना को उत्कीर्ण करता है। भारतवर्ष में प्रजातंत्र के खोखलेपन की चर्चा इसी समाजवादी यथार्थवाद के एक अनुषंग आलोचनात्मक यथार्थवाद के अंतर्गत की जा सकती है। यथाप्रसंग जिसका विवेचन अगले अनुच्छेद में किया जाएगा।

3.1 प्रकृतवादी यथार्थवाद एवं धूमिल का काव्य

यथार्थवाद और प्रकृतवादी यथार्थवाद इन दोनों में मौलिक अंतर होता है। यथार्थवाद की दृष्टि तथ्यात्मक होती है। जबकि प्रकृतवादी यथार्थवाद का संबंध प्राकृतिक घटनाओं से माना जाता है। प्रकृति को नित नए रूप में देखना, उसमें नया अर्थ पाना और पाते रहने का प्रयत्न करना, उसके लिए नई दृष्टि अपनाना और उसमें नया उन्मेष पाना ही प्रकृतवादी यथार्थवाद से जुड़ने और समझने की सही प्रक्रिया मानी जाती है।

कवि-धूमिल के काव्य में जो प्रकृतवादी यथार्थ का चित्रण पाया जाता है; वह मानव-जीवन के संदर्भों में ही अभिव्यक्त है। यह कहना गलत होगा कि वे अधिकांशत: प्रकृतवादी यथार्थ का चित्रण करते हैं; बल्कि वे प्राकृतिक उपादानों का प्रतीक रूप में प्रयोग समाज तथा जीवन की विसंगतियों एवं तनावों को उजागर करने के लिए करते हैं। धूमिल की कुछ कविताओं में गाँवों को लेकर अतिरिक्त भावुकता है; लेकिन उनकी अधिकांश कविताओं में लोक यथार्थ अपनी संपूर्ण जटिलताओं, त्रासद विसंगतियों और अंतर्विरोधों के साथ उभरा है। यह लोकतत्त्व धूमिल के काव्य-संसार का एक अनिवार्य एवं महत्त्वपूर्ण अंग है।

कवि धूमिल ने ग्रामीण जीवन के विश्वसनीय यथार्थपरक चित्र प्रस्तुत किए हैं। इस प्रस्तुतीकरण तथा उसके सही व सहज संप्रेषण के लिए कवि ने वैसी ही यथार्थपरक ग्रामीण या लोकजीवन से उद्‌भूत वास्तविकता तथा शब्दावली का चयन किया है। डॉ. चमनलाल गुप्त के अनुसार- "गाँव, धूमिल के लिए एक कठोर वास्तविकता है; जहाँ पर निपट निर्धनता है, भुखमरी है, सूखा है, जमीनों के झगड़े हैं, बैलों का मरना है, किसान की निराशा है, लेखपाल की चालाकी है, पुलिस का दमन है, नेताओं की साजिश है। एक ओर धूमिल की सारी खीझ, आक्रोश, घुटन और टूटन गांव को लेकर है; तो दूसरी ओर उनका सारा प्यार, उत्साह, साहस और कविता भी गाँव के लिए है। गाँव धूमिल की कविता को उसका सही मुहावरा देता है, उसे विशिष्ट पहचान देता है।"(3)

कवि धूमिल ने ग्रामीण जीवन के प्रकृतवादी चित्रण से न केवल उस परिवेश को शब्द- बद्ध किया है; बल्कि उससे स्वयं को पूरे इनवाल्वमेंट सहभागी भावना के साथ संबद्ध भी किया है। लोग जीवन से गहराई से संबद्ध होने के कारण ग्रामीण बोलियों के शब्द अपनी पूरी सहजता, आत्मीयता और सादगी के साथ उनकी काव्य-भाषा में आए हैं। इन ग्रामीण शब्दों का चयन अपनी अपार सर्जनात्मक शक्ति के कारण कविता के कथ्य को अर्थ की दोहरी क्षमता प्रदान करता है। डॉ. शुकदेव सिंह का मंतव्य है- "वे सही अर्थों में एक अल्प शिक्षित गाँव में पूरी तरह से धँसे हुए, किसान जीवन की कठोरताओं, व्यंग्यों और मुहावरों को अपनी ग्रामीण भाषा-संपदा में जीनेवाले सशक्त किसान कवि थे। किसान

अर्थात् जिसके आस-पास पड़ोसी, दोस्त, संबंधी और आत्मीय काका, भइया, चाचा, दादा, बुढ़ऊ, भौजी और बुआ बनकर रहते हैं। चाहे वे बनिहार, कुम्हार, तेली, लुहार, हलवाहें हों। यहाँ मेहनत से टकराकर शब्द बजते हैं और पसीने से नहाकर मुहावरे कविता की तरह तीखे और हथियार की तरह चुटीले हो जाते हैं। कबीर के बाद धूमिल शायद दूसरे आदमी थे; जिन्होंने अपने आस-पास की श्रमिक शब्दावली को कविता की ओर बढ़ाकर कविता तक पहुँचा दिया था।''(4)

3.11 प्राकृतिक उपादान के रूप में यथार्थ चित्रण : कवि धूमिल की काव्य-रचना की मूल शक्ति एवं प्रेरणा ग्रामीण प्राकृतिक यथार्थ परिवेश रहा है। उनका मानना है कि ग्रामीण प्राकृतिक उपादान-उपकरण अपने मनमोहक सौंदर्यजाल में मनुष्यों को फँसाकर उन्हें वास्तविकता की पहचान कराने से दूर रखता है; लेकिन कवि ने प्रकृति के इस चाल का पर्दाफाश किया है। प्राकृतिक सौंदर्य मनुष्य को अभिभूत कर देता है; किंतु आर्थिक विवशता से लाचार कवि धूमिल के लिए इस सामाजिक व्यवस्था के समान ही प्रकृति भी एक चाल के सादृश्य प्रतीत होती हुई दिखाई देती है-

''लहलहाती हुई फसलें.../ बहती हुई नदी / उड़ती हुई
चिड़ियाँ.../ यह सब सिर्फ तुम्हें गूँगा करने की चाल है।''(5)

धूमिल यथार्थ की भूमि पर खड़े होकर दुनिया को किसान की दृष्टि से देखते हैं तथा किसानी भाषा का जो तेवर है उसे वह प्रयोग करते हैं। जिनका स्पष्ट उदाहरण मैं उनकी कविताओं के माध्यम से आपके सामने प्रस्तुत करना चाहूँगा। दूसरी वस्तुस्थिति यह है कि गाँव का सीधा-सादा किसान झूठा-धोखेबाज एवं कल्पनाजीवी नहीं होता। वह सत्य का अनुयायी होता है; जो कठोर-से-कठोर वज्राघात को सहन करके भी सौम्य एवं उदारता का परिचय देता है। यहीं से धूमिल की कविताएँ उत्पन्न होती हैं; जो हमें सत्य से दूर नहीं रखती; बल्कि यथार्थ जीवन से सीधा साक्षात्कार कराती हुई प्रतीत होती है। उनके यहाँ करछुल बटलोही से बतियाती है और चिमटा तवे से मचल उठता है; जो आर्थिक लाचारी को दर्शाए बिना नहीं रह सकते हैं। कवि धूमिल ने एक स्थान पर लिखते हुए कहा है-

''सानी उलचते हुए भाई को/ मैंने अपने पास बुलाया/और
एक सीधा सवाल किया/ आखिर कब तक खेत की मेंड़ की
तरह/दोनों तरफ से कटते रहोगे।''

स्पष्ट है कि धूमिल की कविता में प्रकृतवादी यथार्थ का चित्रण पर्याप्त मात्रा में देखने को मिलता है। गाँव के खेत की मेड़ जो दो व्यक्तियों के खेतों की विभाजक मानी जाती है, उसे काटकर दोनों पक्ष अपने खेत को बढ़ाते हैं। ठीक उसी प्रकार सामाजिक व्यवस्था के कुचक्र एवं परंपरागत मान्यताओं के बीच किसान का अस्तित्व मिटता जा रहा है। किसान के पास अपने जीविकोपार्जन का एक मात्र सहारा उनके खेत होते हैं; लेकिन व्यवस्था की गलत नीति में खेतिहार किसानों की उपेक्षा कर दी जाती है। खेत को कर्ज-कर, ऋण की

महंगाई एवं सिंचाई से किसान इस तरह बरबाद हो जाता है कि खेत का उत्पादन एवं उत्पादन में लगा खर्च दोनों बराबर हो जाता है। इस बरबादी की ओर संकेत करते हुए कवि धूमिल ने कहा है-

''इसकी वजह वह खेत है/ जो तुम्हारी भूख का दलाल है।''(6)

प्रकृतवादी उपादान ग्रामीण किसानों के लिए बड़े ही सुविधाजनक होते हैं। सूरज उनके लिए जेब की घड़ी का काम करता है। पशुओं की हरकतों से उन्हें आनेवाले खतरों की गंध मिलती है; किंतु कवि धूमिल कहते हैं इतने से ही मनुष्य को संतुष्ट नहीं होना चाहिए; क्योंकि उनके जीवन-निर्माण के लिए केवल प्रकृतवादी यथा रूप तथा चित्रणवाला स्वरूप ही काफी नहीं है-

''यद्यपि यह सही है कि सूरज / तुम्हारी जेब घड़ी है/ तुम्हारी
पसलियों पर/ मौसम की लटकती हुई जंजीर/हवा में हिलती
है और/ पशुओं की हरकतों से/तुम्हें आनेवाले खतरों की
गंध/ मिलती है/लेकिन इतना ही काफी नहीं है।''(7)

डॉ. बी. डी. मिश्र के विचारानुसार ''धूमिल मूलत: प्रकृतवादी यथार्थवाद के कवि रहे हैं। वह जनता की भयावह स्थिति एवं शोषण को अपनी नग्न आँखों से देखते हैं। कवि सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक दुर्व्यवस्था से बुरी तरह आहत हैं; जहाँ यह आदमी अपने भयावह शोषण को चुपचाप सहते हैं। लगातार दमन की शिकार हो रही जनता अब पस्त हो चुकी है।''(8) अब वह जनता पक्ष या विपक्ष में किसी तरह का वक्तव्य न देकर तटस्थ हो गई है। कवि धूमिल ने ठीक ही कहा है-

''वे चुपचाप सुनते हैं/ उनकी आँखों में विरक्ति है/ पछतावा
है/ संकोच है/ या क्या है कुछ पता नहीं चलता/ वे इस
कदर पस्त हैं/ कि तटस्थ हैं।''(9)

यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक है कि जनता की जड़ता का प्रमुख कारण क्या है? जिस भयानक शोषण ने उसे पस्त मजबूर बना डाला है, उसके प्रति वह इतना तटस्थ क्यों है? कवि धूमिल के पास उसका एक ही समाधान है कि वह सुविधा तथा विरोध दोनों के साथ है, जो कि नामुमकीन है। कवि के शब्दों में-

''क्योंकि हर बार/ चन्द टुच्ची सुविधाओं के लालच के
सामने/ अभियोग की भाषा चुक जाती है।''(10)

धूमिल की कविता के केंद्र में मुख्य रूप से भूख और भाषा, जनतंत्र और जनता है। पूँजीपति सत्तावर्ग भाषा का जाल बराबर बुनता रहता है अथवा भाषा को ही व्यंजन में तब्दील कर देता है। वह जनता के चरित्र को बखूबी समझता है, इसीलिए जनता की कमजोरियों का फायदा उठाता है। इस संदर्भ में कवि की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

''बहस के लिए/ भूख की जगह/भाषा को रख दिया है/
उन्हें मालूम है कि भूख से/ भागा हुआ आदमी/ भाषा की
ओर जाएगा/ एक भुक्खड़ जब गुस्सा करेगा/अपनी ही
अँगुलिया/ चबाएगा'' (संसद से सड़क तक पृ.88)

भाषा सामाजिक होने की पहली शर्त है; जिसकी पीड़ा इन पंक्तियों में कवि धूमिल ने महसूसते हुए कहा है-

''रिश्ते हैं; लेकिन खुलते नहीं है/ और हम अपने खून में
इतना भी लोहा नहीं पाते/ कि हम उससे एक ताली बनवाते/
और भाषा के भुन्ना-से ताले को खोलते''(11)

कवि धूमिल ने अपनी अधिकांश कविताओं में भाषा के साथ- साथ रोटी की यानि की भूख की समस्या को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। उनकी कविताओं में अभिव्यक्त भूख का वर्णन कई संदर्भों में आया है। कवि ने भूख संबंधी सभी विचारों-तर्कों का एक ही आधार मानते हुए कहा है-

''आज मैं तुम्हें वह सत्य बतलाता हूँ / जिसके आगे हर
सच्चाई छोटी है/ इस दुनिया में/ भूखे आदमी का सबसे बड़ा
तर्क रोटी है।''(12)

कवि धूमिल का यह आर्थिक यथार्थबोध किसी सुनी-सुनाई भूख से पीड़ितों की व्यथा कथाओं की उपज नहीं है; बल्कि भुक्तभोगियों का नग्न यथार्थवाद है। कवि ने उनकी पीड़ा को प्राय: अपने ही अंत:साक्ष्य के रूप लिखते हुए कहा है-

''बच्चे भूखे हैं/ माँ के चेहरे पत्थर/ पिता जैसे काठ; अपनी
ही आग में/ जले है ज्यों सारा घर''(13)

कहना न होगा कि भूख की व्यथा की अग्नि तब और अधिक उग्र हो जाती है, जब यह हमें पता चल जाता है कि ये पूँजीपति भुक्तभोगी बड़े मजे से मुर्ग-मुस्सलम व महीन चावल प्लेट का स्वाद ले रहे हों। ऐसे लोगों की धज्जियाँ उड़ाते हुए कवि ने कहा है-

''और जो चरित्र हीन है/ उसकी रसोई में पकनेवाला चावल/
कितना महीन है।''

कवि धूमिल कहते हैं कि मानव का दर्द कविता का विषय बनता है और शब्द अपने प्रभाव से भूख को भाई-चारे की जमीन पर विद्रोह के लिए उकसाते हैं, तभी मनुष्य अस्तित्व संभव है। चुनमुन चिरैया, जंगल की शाख और तितके के माध्यम से कवि धूमिल प्रकृतवादी अभिव्यक्ति रचते हुए कहते हैं-

''मेरे पड़ोस की चुनमुन चिरैया/ अपना घोंसला लोहे की जलियों
से बुनने लगी है और मेरी छप्पर का/ एक नन्हा तिनका/
जंगल की शाख होने का सपना/ देखने लगा है।''(14)

प्रकृतवादी यथार्थवाद में संपूर्ण जीवन एवं मानवीय विकास की ऐतिहासिक प्रक्रिया को जानने-समझने तथा उसके आधार पर संपूर्ण मानवीय भविष्य का निर्धारण करने की कोशिश की जाती है। कवि धूमिल चिड़िया को इस मानवीय सच्चाई के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि चिड़िया के गीतों में ही अमन एवं शांति की सच्चाई छिपी हुई है; जो जिंदगी के लिए जीने का माध्यम बन जाती है-

> ''कहीं ऐसा न हो कि वापस लौटकर/ न आए वह जंगली चिड़िया/ जो हत्यारे चाकू पर/ अपना गीत पैनाती है/ और गाती है अमन की उस सच्चाई को/ जो जिंदगियों के लिए/ जीने का नुस्खा बन जाती है।''(15)

'गाँव मे कीर्तन' नामक कविता में धूमिल की ग्रामीण जन-जीवन का यथार्थ चित्रण स्पष्ट रूप से उभरा है। गाँव में कुरूपताओं एवं शोषण का अधिक बोलबाला है। गाँव की ग्राम सभा की लालटेन के शीशे का टूट जाना इसका स्पष्ट प्रमाण है। गाँव में आपसी वैमनस्य अपनी चरम-सीमा पार कर चुका है। इसी ओर संकेत करते हुए कवि ने कहा है-

> ''नलकूपों की नालियाँ झरना हो गई हैं/ उनमें अब लाठियाँ बहती हैं। और पानी की जगह/ आदमी का खून रिसता है।''(16)

समकालीन परिस्थितियों में गाँव के लोगों में अपने-अपने खेत की सिंचाई के लिए भारी वाद-विवाद उठ खड़ा होता है; जिसका रूप उग्र एवं भयानक होता है। यह परिस्थितिवश खून-खराबा में परिवर्तन हो जाता है। उसके लिए विनाश-लीला प्रारंभ हो जाती है, जब वह गाँव का अनपढ़ किसान थाने-कचहरी का चक्कर लगाता है। ऐसे में पैसे की बरबादी तो होती ही है, खेती-बारी का काम भी ठीक से नहीं कर पाता है। यह पीड़ा कवि धूमिल को भी है। अत: वे कहते हैं-

> ''गाँव की सरहद/ पार करके कुछ लोग/ बगल में बस्ता दबाकर/ कचहरी जाते हैं/ और न्याय के नाम पर/ पूरे परिवार की बरबादी उठा लाते हैं।''(17)

कवि धूमिल की काव्य-रचना का एक उदाहरण यह भी लिया जा सकता है, जिसका बिंब ग्रामीण सभ्यता एवं संस्कृति से परिचित व्यक्ति अधिक समझ सकता है, जहाँ कवि धूमिल कहते हैं-

> मैंने देखा कि हर तरफ/ मूढ़ता की हरी-हरी घास लहरा रही है /जिसे कुछ जंगली पशु/ खूँद रहे हैं/ लीद रहे हैं/ चर रहे हैं।''(18)

स्पष्ट है कि घास का उगना एवं राजनीतिज्ञ पूँजीपति रूपी जंगली पशुओं द्वारा

उनका उपयोग अपने स्वार्थों के लिए करना, कवि धूमिल के ग्रामीण सभ्यता का यथातथ्य रूपी चित्रण है; जो प्रकृतवादी रूप का ही विवेचन है। जब कवि देश में चारों तरफ बढ़ते हुए अपराध, खून, चोरी-डकैती को देखते हैं; तो खाद पर उगनेवाले सुंदर फूल (गुलाब) के पौधे का रूप उन्हें याद आता है और लिखते हुए कह उठते हैं

"अपराध एक सदा बहार फूल है/ जो आत्मीयता की खाद
पर/ लाल भड़क फूलता है।"(19)

कवि धूमिल की कविताओं में जो प्राकृतिक उपादानों एवं जस-के-तस रूप के चित्रण की बहुलता पाई जाती है। उसे लक्ष्य करके हमें उन्हें प्रकृतवादी यथार्थवादी कवि घोषित करने में कोई संकोच नहीं है। उनका अधिकांश समय ग्रामीण-प्राकृतिक परिवेश में ही व्यतीत हुआ है। उनका जन्म ही ग्रामीण किसान परिवार में हुआ है। संभवत: नामवर सिंह उन्हें किसानी संस्कार का कवि कहकर उनकी कमजोरी को नहीं; बल्कि उनके उन महान् गुणों की ओर संकेत किया है; जहाँ वे ग्रामीण जिंदगी को प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से हू-ब-हू चित्रांकन करने में सफल रहे हैं। कवि ने प्राकृतिक परिवेश और ग्रामीण मानवीय जीवन के इस घनिष्ठ रिश्ते के कारण ही प्रकृति के प्रति ही नहीं, समग्र जीवन के प्रति उसकी संवेदना के स्वरूप एवं उसकी जीवन दृष्टि को पहचानने का मात्र प्रयास ही किया है।

धूमिल की कविता में अभिव्यक्त प्रकृतवादी चित्रण की ओर संकेत करते हुए डॉ.चमनलाल गुप्त ने लिखा है- "धूमिल की कविता में 'खेत हथकड़ी पहने खड़े हैं', राजनीति 'थूहर की तरह नेताओं के दिमाग में उपजी है', बैल हैं जिनकी पीठ धूमिल थपथपाता है, चिड़ियाँ हैं जिनकी यह चहचहाहट से भाव-विभोर हो जाता है। उसकी कविता में करछुल बटलोही से बतियाती है, चिमटा तवे से मचलता है, औरत गवे-गवे उठकर गगरी से आटा निकालती हैं, कठवत में आटा झाड़ती हैं, बच्चे आंगड-बांगड खेलते हैं, झाड़ी आकाश गंगा के पास जुगनुओं से इशारे भेजती है, पेड़ किसी खोटे सिक्के -सा उछलकर घाटी की हथेली पर गिरता है। धूमिल की कविता में शब्दों को बाँधने का प्रयास जुआ तोड़कर भागते बैलों को बाँधने का प्रयास है, झुर्रियों से अटे चेहरे सूखे में दरकी जमीन जैसे लगते हैं, नलकूपों की नलियाँ झरना बन गई हैं जिनमें लाठियाँ बहती हैं और आदमी का खून रिसता है, कवि की पीड़ा धनुष टंकार झेलते बछड़े की पीड़ा बन जाती है, ठेलू की लोहसांय चलती है तो खेतिहार मजदूर आ जुटते हैं, "हंसुये पर ताव जरा ठीक तरी देना" की बात सुनाई पड़ती है, मिल की सीटी के नीचे फनकती हुई फसलों का चित्र उभर आता है, 'खेतों से फसलों की लोथ लेकर"आए भाइयों की निराशा दिखती है। धूमिल की कविता का मूल मुहावरा ग्रामीण संस्कार एवं ग्रामीण अनुभव का है।"(20)

3.12 नारी के यौनगत वीभत्स रूप का यथार्थ चित्रण : धूमिल के यहाँ नारी उनकी कविता का प्रेरणास्त्रोत रही है। जबकि अधिकांश विद्वानों में नारी की स्थिति को

लेकर प्राय: विवाद का मुद्दा खड़ा रहा है। उसका कारण यह हो सकता है कि राजकमल चौधरी की तरह धूमिल की काव्य अभिव्यंजना में प्राकृतिक प्रतीक, बिंब, उपमा, अश्लील शब्दों का योग, यौन क्रियाओं से संबंधित शब्दावली का नग्न चित्रण पाया जाता है।

समकालीन कविता में धूमिल ही अकेले कवि हैं; जिनकी कविताओं में अभिव्यक्त नारी के यौनगत वीभत्स पर आलोचकों ने खूब आक्षेप लगाया है। उनका कहना है कि नारी संबंधी उनकी कविताएँ राजकमल चौधरी और गिन्स्बर्ग जैसे कवियों की उपज रही है। डॉ. शुकदेव सिंह के अनुसार- ''धूमिल की रचनाशीलता के साथ सबसे बड़ा खतरा यह है कि जब वे प्रसिद्ध हो रहे थे; तब उन पर राजकमल और गिन्सबर्ग के असर देखे जाते थे और जब उनका विरोध होने लगा; तो उनकी कविता को ही लक्ष्य बनाकर उन कविताओं को सामने किया गया; जो अपने लेखन-काल में या आज भी कविता की तरह स्वीकृत नहीं है।''(21)

कहना न होगा कि ऐसे विद्वानों ने राजकमल चौधरी व गिन्सबर्ग जैसे कवि के साथ धूमिल की तुलना करके उनकी प्रतिभा को संदेह की निगाह से देखने का प्रयास किया है। उनकी कविताओं में नारी संबंधी नितंब, जाँघ, स्तन, योनि, वीर्य, लिंग, गांड़, उत्तेजित चमड़ा जैसे गुह्य अंग यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। उनका नग्न यथार्थवादी ढंग से चित्रण कर समाज की विकृतियाँ एवं वीभत्स रूप को हमारे समक्ष लाने की कोशिश की गई है।

नारी के प्रति धूमिल का दृष्टिकोण बहुत स्पष्ट है। वास्तव में धूमिल के ऐसे शाब्दिक चयन का कारण मात्र इतना है कि वह अपनी अभिव्यक्ति के लिए सार्थक शब्दों की तलाश में रहते थे। वह जिस विसंगति या विद्रूपता-कुरूपता का अपने समकालीन परिवेश में महसूस कर रहे थे, उसे अभिव्यक्ति देने के लिए उन्हें सभ्यजनों की शब्दावली अपर्याप्त लगती थी। अत: असभ्यता को व्यक्त करने के लिए सभ्यता की दृष्टि से वर्जनीय शब्दावली का प्रयोग धूमिल को प्रिय था; जिन्हें ग्रामीण-भदेस शब्द भी कहा जाता है। धूमिल की कविताओं में अभिव्यक्त नारी के वीभत्स शब्दावली का अधिकांश प्रयोग तथा उनकी किसानी ग्रामीण संस्कार एवं परिवेश की ओर संकेत करते हुए डॉ. ग. तु. अष्टेकर ने कहा है- ''धूमिल अश्लील और श्लील का ख्याल रखनेवाला कवि था। उसकी दृष्टि सदा सार्थक शब्दों पर रहती थी। सार्थक शब्द उन्हें देहाती परिवेश में मिले और हमारी नगरी दृष्टि में उन शब्दों में कुछ अशिष्टता दिखाई दे तो वह दृष्टि दोष नहीं दृष्टि भेद हो सकता है।''(22)

यह कहना गलत न होगा कि आजादी के बाद भी वस्तुस्थिति में अधिक बदलाव नहीं आया। यह सच है कि आज नारी का स्थान पुरुष से कम नहीं है। पुरुष की भाँति उसे भी सरकारी व गैर सरकारी नौकरियों में वही अधिकार उपलब्ध है; किंतु सामंती सामाजिक मान्यताओं के चलते वे मानसिक रूप से स्वतंत्र नहीं हो पाई हैं। यह समस्या धूमिल की निम्नलिखित कविता में मुखर हो उठी है-

''युवती अभी प्यार के चोंचले की / वर्नाक्यूलर सीख रही है /
इसका एक पैर लाज और दूसरा ललक पर है / लेकिन फूले

पेटवाली औरत का चेहरा/ उसकी हथेली की तरह सपाट
है/ वह जानती है कि बच्चे के साथ/ दुनिया में क्या आता
है।''(23)

वर्तमान पूँजीवादी परिवेश में नौकरीपेशा नारी के लिए अनेक समस्याएँ बढ़ गई हैं। संयुक्त परिवार का टूटकर बिखरना, बच्चों की देख रेख की जिम्मेदारी आदि सब उसके कंधों पर है। यों कह सकते हैं पुरुष के साथ-साथ चलनेवाली यह नारी शोषण से मुक्त नहीं हो पाई है। इसका अहसास कवि धूमिल को बखूबी रहा है।

युवा आलोचक अशोक वाजपेयी धूमिल की कविताओं में आत्म-प्रदर्शन और आत्मस्फीति की संभावना देखते हुए भी कहते हैं- ''धूमिल का काव्य-संसार अकवियों की तरह कल्पना-विलास में रचाया गया ऐसा संदर्भच्युत लोक नहीं है; जिसका हमारे रोजमर्रा के जीने से संगति और जीवन प्रासंगिकता स्पष्ट न हो और जिसमें कोई गहरी पहचान या खोज तो न उभरती हो।''(24) धूमिल की कविता पर अकविताई का कहीं-न-कहीं अवश्य प्रभाव पड़ा दिखाई देता है। अकवितावादी कवि ने नारी-यौन संबंधी कविता जरूर की है लेकिन उनकी यथार्थवादी दृष्टि साफ रही है। राजकमल चौधरी का कहना है- ''स्त्री शरीर बहुत स्वास्थ्यप्रद वस्तु है- लेकिन कविता के लिए नहीं, संभोग के लिए- कविता में स्त्री-शरीर अन्य सभी विषयों की तरह मात्र एक विषय है- कविता का कारण यह प्रतिफल नहीं ऐसा मैं मानता हूँ।... अब कविता के लिए हमारी राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक मान्यताएँ अधिक आवश्यक हैं। स्त्री-शरीर को राजनीतिज्ञों, सेठों, बनियों और इनके प्रचारकों ने अपना हथियार बनाया है- हम लोगों को अपना क्रीतदास बनाए रखने के लिए। बेहतर हो, हम पत्रिकाओं के कवर पर छपी हुई, कैलेंडरों पर छपी हुई अधनंगी स्त्रियों और अपने पब्लिक सेक्टर और प्राइवेट सेक्टर के मालिकों के लिए हमारा ईमान, हमारा जहन, हमारी ताकत खरीदकर हमें नपुंसक बनानेवाली अधनंगी स्त्रियों को अब अपने साहित्य में उसी प्रकार प्रश्रय नहीं दे, न आत्मरति के लिए और न पर पीड़ा के लिए। मैं श्लील-अश्लील नहीं मानता हूँ, लेकिन हम कवि हैं, हमें न तो नपुंसक और न स्त्री-अंगों का वकील बनना चाहिए।''(25)

प्रकृतवादी यथार्थवाद के अनुरूप कवि धूमिल की कविताओं में स्त्री-विषयक जो बिंब उभरते हैं प्रकृतवादी यथार्थवाद के वे वास्तविक जमीन पर खरी प्रतिमा-सी मालूम होते हैं। स्त्री-विषयक बिंब उभारते हुए कवि धूमिल ने ठीक ही कहा है-

''एक संपूर्ण स्त्री होने के पहले ही/ गर्भाधान की क्रिया से
गुजरते हुए/उसने जाना कि प्यार/ घनी आबादीवाली बस्तियों
में/ मकान की तलाश है/ लगातार बारिश में भीगते हुए/
उसने जाना कि हर लड़की/ तीसरे गर्भपात के बाद/ धर्मशाला
हो जाती है और कविता/ हर तीसरे पाठ के बाद''(26)

उपर्युक्त कविता की टिप्पणी करते हुए नंदकिशोर नवल ने कहा है- ''कवि का लक्ष्य कविता है, और या प्यार नहीं, औरत इन दोनों चीजों को यह कविता में इसलिए लाया है कि उससे कविता के लोक-विच्छिन्न हो जाने के भयावह दुष्परिणाम का एहसास वह पूरी शक्ति से करा सके। जो हाल प्यार के नाम पर एक पढ़े-लिखे व्यक्ति के साथ गाँव से शहर भगा लाई जानेवाली कम उम्र की लड़की का होता है; वही हाल आधुनिक युग में कविता का हुआ। यह सामंती मानसिकता का इजहार है या क्रांतिकारी मानसिकता का?''(27) देश की दुर्भाग्यवश स्थिति के खोखलेपन, निष्क्रिय भाव एवं घिनौनेपन पर व्यंग्य एवं क्षोभ प्रकट करते हुए कवि धूमिल ने कहा है-

''शहर की समूची/ पशुता के खिलाफ/ गलियों में नंगी
घूमती हुई/ पागल औरत के 'गाभिन पेट' की तरह/ सड़क
के पिछले हिस्से में/ छाया रहेगा पीला अंधकार''(28)

स्पष्ट है कि यहाँ नारी-अंग की उपमा के माध्यम से जनतांत्रिक व्यवस्था पर चोट किया गया है। शहर की समूची नागरिकता में पीछे जो पशुता, भयावह शोषण, स्वार्थपरता तथा शारीरिक सुख की कामुक लोलुपता छिपी रहती है; उसका विरोध कवि धूमिल ने अपनी रचनाओं में किया है। पूरे देश ने पशुता के गिरफ्त में आकर सच्ची मानवता को नष्ट कर दिया है। इससे कहीं अधिक नारी के वीभत्स रूप 'शांतिपाठ' शीर्षक कविता में परिलक्षित होता है। कवि ने विदेश-नीति एवं गृह-नीति के खोखले रूप का पर्दाफाश करते हुए कहा है-

''जरायमपेशा औरतों की सावधानी और संकट कालीन क्रूरता/
मेरी रक्षा कर रही है/ गर्भ-गद्‌गद् औरतों में अजवाइन का
सत्त और मिस्सी/ बाँट रहा हूँ।''(29)

कवि धूमिल की उपर्युक्त कविता में दो तरह की नारी का जिक्र है- एक वह जो जरायमपेशा होने के कारण गर्भ के प्रति अतिशय सावधानी बरतती है और गर्भधान होने पर बड़ी क्रूरता से गर्भ निरोधक गोलियाँ खाकर गर्भपात करा देती हैं। दूसरी उस प्रकार की नारी है जो गर्भ से अत्यंत प्रसन्न हैं। यहाँ कवि ने नारी के दो प्रकार की उपमाएँ देकर देश एवं विदेशी-नीति को उजागर किया है; जो सावधानी, क्रूरता और सहयोग के साथ संतुलन बनाए चल रही है। धूमिल की कविताओं में जहाँ कहीं नारी के यौनगत उपमाओं की अधिकता पाई जाती है; वहाँ उसका रूप कहीं भी कुरूप नहीं परिलक्षित होता है। ऐसे उपमाओं-प्रसंगों में उन्होंने प्रेमी-प्रेमिका का आलिंगन-चुंबन ढूँढने की कभी भी कोशिश नहीं की; बल्कि उसके माध्यम से किसी विशिष्ट तथ्य को उजागर करते हैं।

3.13 शहर की घिनौनी एवं विद्रूप व्यवस्था का यथार्थ चित्रण : कुछ विद्वान मानते हैं कि धूमिल की कविता कहीं-न-कहीं अकविता आंदोलन से प्रभावित है। जिसका लक्ष्य था शहरी जीवन का यथार्थ चित्रण करना। डॉ. नामवर सिंह ने धूमिल का शहरी

जीवन अकविता के शहरी जीवन से भिन्न मानते हुए कहा है- ''यह शहर अकवितावादियों के शहर या महानगर से भिन्न है और इस शहर से धूमिल का रिश्ता भी भिन्न प्रकार का है। धूमिल के शहर में केवल बेमानी, भीड़, रतिक्रांत महिलाएँ और काफी हाउस नहीं है; बल्कि उसमें मोचीराम है, हल्ला-गाड़ी और बनिया सच्चाई है।... धूमिल का यह शहर बहुत कुछ अपने गाँव जैसा है।(30) कवि धूमिल को ऐसी शहरी व्यवस्था कभी नहीं रास आई; जहाँ समस्या का कोई समाधान नहीं है। जहाँ संवेदना नहीं है, वहाँ की घिनौनी एवं विद्रूप व्यवस्ता पर चोट करते हुए कवि ने कहा है-

''अब हर चीज का नाम है/ लोगों की सुविधा के लिए/
बनिया सच्चाई है/ यह महँगाई है/''(31)

कवि का मानना है कि ऐसी शहरी व्यवस्था विश्वास योग्य नहीं है; जहाँ ''लाखों कसमें खाने के बाद भी बनिया वस्तुओं में मिलावट करता है, कम तौलता है एवं ज्यादा कीमत वसूलता है।'' ऐसे स्वार्थी लोग दिखावा एवं बाह्याडंबर को सब कुछ मान लेते हैं। ऐसे लोगों की ओर धूमिल नजर दौड़ाते हुए कहते हैं-

''उसकी आँखों में लालच है/ हाथों में घड़ी है/ उसे कहीं
जाना नहीं है/ मगर चेहरे पर/ बड़ी हड़बड़ी है/ वह कोई
बनिया है/ या बिसाती/ मगर रोब ऐसा कि हिटलर का नाती
है/ ×× ×× घंटे भर खटवाता है/ मगर दाम देते वक्त/
साफ 'नट' जाता है/''(32)

इस सभ्यता में कोमल भावना से युक्त मानवीय संवेदनाएँ वीभत्स एवं घिनौनी हो चली हैं। किसी से भी प्यार एवं हमदर्दी जतलाकर, धोखे से उसकी पीठ में छुरा भोंक देता है। यहाँ के लोगों में मानवीय गुण नष्ट होता जा रहा है। ऐसा क्यों हो रहा है? इसकी वजह कवि धूमिल को मालूम है और वह कहते भी हैं-

''मैंने अपनी थाली के एक किनारे बैठकर/ बहुत साधारण
जीवन जिया है/ जेल के बगल की नागरिकता/ और बूचड़खाने
के सामने की सज्जनना/ मुझे विरासत में मिली थी/ मैंने
उन्हें अपनी सहूलियत के साथ जोड़कर/ दो कदम आगे बढ़ाया
है/''(33)

स्पष्ट है कि कवि ने यहाँ आम आदमी के साथ हो रहे दुर्व्यवहार की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। किस तरह लोगों का मुँह बंदकर के न्याय का गला घोंट कर एक मिथ्या नागरिकता का स्वांग करते हैं और बूचड़खाने में पूरी पाशविकता के साथ मूक निरीह पशुओं का गला काटने वाले सज्जनता का दम भरते हैं। यानि कि व्यवस्था एवं प्रशासन (पुलिस एवं दंडाधिकारी) जनता को डरा धमका कर उसे मौत के घाट उतार देता है। बाद में लोगों के बीच सज्जन बने रहने का डींग भरता रहता है।

यह सच है कि जीवन यापन करने के लिए मकान की बुनियाद बहुत आवश्यक है। आज कमसीन लड़कियों को संपूर्ण स्त्री होने के पूर्व प्यार-मुहब्बत के जाल में पड़कर महानगरीय जीवन बिताते हुए बार-बार गर्भधान की प्रक्रिया से गुजरना पड़ा है। जहाँ कोई अर्थ नहीं है; क्योंकि शहरों में मकान के बजाय कुछ पैसे देकर लोग धर्मशाला में आसानी से शरण पा लेते हैं। ठीक उसी प्रकार आज शहरी व्यवस्था में अनैतिकता, भ्रष्टाचार, भोग-हविश, बुभुक्षा का नग्न नृत्य जारी है; जिसमें मकान रूपी स्त्री धर्मशाला हो गई है। उसी तरह कविता तीसरे पाठ के बाद अपनी अर्थवत्ता को खोकर धर्मशाला हो जाती है। कवि धूमिल के शब्दों में

> ''लगातार बारिश में भीगते हुए/ उसने जाना कि हर लड़की/
> तीसरे गर्भपात के बाद/ धर्मशाला हो जाती है/ और कविता/
> हर तीसरे पाठ के बाद/''××× हाँ, हो सके तो बगल से
> गुजरते हुए आदमी से कहो/ लो यह रहा तुम्हारा चेहरा/
> यह जुलूस के पीछे गिर पड़ा था।''(34)

धूमिल आज के यथार्थ को शब्द के स्तर पर, स्त्री के स्तर पर और कविता के स्तर पर अभिव्यक्ति करते हुए बनावट के समक्ष सारी वास्तविकता और सब कुछ खो देने के भय से विचलित होकर विक्षुब्ध हो जाते हैं। शब्द, स्त्री और कविता ये सब आज की व्यावसायिकता में सब कुछ गवाँ बैठे हैं लोग आचरणहीन मुखौटे की जिंदगी में जीने के लिए लोगों को मजबूर कर रहा है। भूल का निस्तारण और व्याधि का विस्तारण हो रहा है। इसलिए आज का परिवेशगत सामाजिक यथार्थ शब्द, स्त्री और कविता मनोहर धर्मशाला के पर्याय बन चुके हैं। कवि धूमिल ने अपनी कविताओं में परिवेशगत सारी विसंगतियों को वर्तमान जीवन में समेटकर एक स्थान पर आजादी का चित्र उभारते हुए कहा है-

> ''आजादी इस दरिद्र परिवार की बीससाला 'बिटिया' मासिक
> धर्म में डूबे हुए क्वाँरेपन की आग से/अंधे अतीत और लँगड़े
> भविष्य की/ चिलम भर रही है/''(35)

3.14 सामाजिक कुरूपताओं का यथार्थ वर्णन : धूमिल एक ईमानदार और यथार्थवादी कवि रहे हैं। इसीलिए उन्होंने समाज में व्याप्त वास्तविक कुरूपताओं का अपनी कविताओं में सटीक चित्रण किया है। उनके काव्य में सामाजिक कुरूपताओं के यथार्थ दृश्य को देखकर, डॉ. रतनकुमार पांडेय ने टिप्पणी करते हुए कहा है- ''कवि धूमिल का काव्य कुरूपता, वीभत्सता, गंदगी, फूहड़पन से भरा पड़ा है; किंतु उनमें नया अर्थ भरकर प्राण फूँका गया है। गंदगी और कुरूपता के बीच सुगंध और स्वच्छता की खोज द्वारा उसे अर्थवान बनाया गया है।'' (36) इस कथन की पुष्टि करते हुए मृणाल पांडेय ने कहा है ''धूमिल की कविताओं के भावनात्मक एवं भौतिक संसार एक बेतरह नंगे और खुरदुरे भदेसपन को सामने ला रखते हैं और उनके कुरूप विस्तार को नर्म दिल पाठकों के हित ढाँपने या कम-

से-कम नजरअंदाज करने का प्रयास करते वे कभी नहीं पाए जाते, पर वह सोद्देश्य हुआ है।''

सामान्यत: सामाजिक कुरूपताओं के अंतर्गत आम आदमी की विवशता का चित्रण होता है। धूमिल की कविताओं में स्थान-स्थान पर इसी आम आदमी की विवशता का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है। 'वसंत' नामक कविता में आम आदमी की ऊब और खोखलेपन की ओर इशारा करते हुए वे कहते हैं कि उसके रात और दिन रिक्तता में बीत रहे हैं। इसके लिए उन्होंने व्यंग्यात्मक यथार्थ चित्रण किया है। मासिक धर्म से डूबे हुए लत्ते-सा खड़खड़ाता हुआ दिन और जाड़े के दिनों में जले हुए कुत्ते का घाव सूखने लगा है। इन संदर्भों के द्वारा वे आम आदमी के जीवन की व्यथा, रिक्तता और बेबसी का दृश्य प्रस्तुत करते हैं। आम आदमी की विसंगतियों का जो रूखापन है; उसमें उसकी दयनीय स्थिति नि:स्वाद हो रही है।

धूमिल एक संवेदनशील कवि रहे हैं। आम आदमी के दु:ख-दर्द को अपने हृदय में छिपाए रहते हैं। जब उनका कवि-कर्म उन्हें उत्साहित करता है; तो इस आम-आदमी की व्यथा की कथा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपनी कविताओं में कह देता हैं। क्योंकि ऐसे मूल्यहीन परिवेश में सांस लेते हुए उसका दम घुटता रहता है। उसको वहाँ से निकलकर भागने का कोई रास्ता नजर ही नहीं आता है। उस मूल्यहीन समाज में जीवन बिताते हुए उसका ईमान भी मूल्यहीन हो जाता है। इस संदर्भ में धूमिल ने ठीक ही कहा है-

> ''आदतों और विज्ञापनों से दबे हुए आदमी का / सबसे अमूल्य
> क्षण संदेहों में / तुलता है / हर ईमान का चोर दरवाजा होता
> है / जो संडास की बगल में खुलता है।''(37)

धूमिल की कविता में चित्रित आम-आदमी अनेक रूपों में आया है। कहीं वह एक मजदूर है; जो दु:ख-दर्द झेलता हुआ अकेले ही जिंदगी को ढो रहा है। कहीं वह ग्रामीण किसान है; जो महाजनों एवं ठेकेदारों का शिकार हो रहा है। कहीं वह मोचीराम है, जिसके एक हाथ में जूता है और दूसरे हाथ में रॉपी है। कवि धूमिल की यथार्थवादी दृष्टि यहीं तक सीमित नहीं है; बल्कि शहर के दफ्तर में काम करनेवाले कर्मचारियों की ओर भी जाती है; जो अनेक प्रकार से अपना शोषण करवाते हुए हिचकते नहीं। धूमिल की कविता में वह आम आदमी भी मौजूद है; जो भ्रष्ट राजनेताओं की षडयंत्रकारी नीतियों का शिकार बना रहता है; जो सामाजिक परिवेश से ग्रस्त होते हुए भी अपनी पहचान के लिए एक अंधी दौड़ में भाग ले रहा है। जिसका कोई लक्ष्य नहीं है। सिर्फ उसके सामने उसकी मृत्यु ही दिखाई देती है। कवि धूमिल ने एक स्थान पर ठीक ही कहा है-

> ''यह आदमी किंतु मजदूर है यह / थकी हुई जिंदगी, दर्द से
> चूर है ये / बढ़ता जा रहा दूर राही अकेला / कोई नहीं गैर
> मजदूर हैं ये।''

आर्थिक अभाव के कारण भूख की समस्या निरंतर बढ़ती ही जा रही है। मनुष्य तो मनुष्य हैं, कुत्ते जैसे वहशी जीव को भी भूख के आगे लाचार होना पड़ता है। भूख बेशर्म और बेह्या होकर जीने पर विवश कर देती है। रोटी देनेवालों के प्रति ईमान के नाम पर व्यवहार में प्यार, लचक और लोच भरने पर मजबूर कर देती है। अत: कवि धूमिल ने सचेत करते हुए कहा है-

"मगर मत भूलो कि इन सबसे बड़ी चीज/ वह बेशर्मी है/
जो अंत में/ तुम्हें भी उसी रास्ते पर लाती है/ जहाँ भूख/
उस वह-शी को/ पालतू बनाती है।"(38)

सारांशत: कहा जा सकता है कि धूमिल के काव्य में प्रकृतवादी यथार्थ का चित्रण यथेष्ट मात्रा में उपलब्ध है।

3.2 समाजवादी यथार्थवाद और धूमिल का काव्य-संसार

मार्क्सवादी विचार दर्शन के अनुरूप समाजवाद एक यूटोपिया है, काल्पनिक विचार जगत् है। समाजवाद की यह परिकल्पना है कि किसी भी देशकाल समाज के सभी व्यक्तियों को उपभोग, उत्पादन, विनिमय और वितरण में समान रूप से भागीदारी मिले। समाजवाद समानता-एकता एवं बंधुत्व का दर्शन है। मार्क्सवादी विचार दर्शन के अंतर्गत समाजवादी यथार्थवाद का लक्ष्य विभिन्न रचनाकारों की साहित्यिक कृतियों के माध्यम से एक समान संबंधो के सैद्धांतिक और क्रियारूपी दर्शन है। लेकिन भारतवर्ष के शासन व्यवस्था में समाजवाद के नाम पर सिद्धांत और व्यवहार में अंतर रहा है। मार्क्सवाद Theory and practices थ्योरी एण्ड प्रॅक्टिसस का दर्शन है; पर हमारे देश में कांग्रेस दल भी समाजवाद का राग अलापता है। जयप्रकाश नारायण और लोहिया ने भी समाजवादी व्यवस्था का स्वप्न रचा है; जो धूमिल के शब्दों में 'घोड़े' और 'घास' को समान रूप से छूट वाली व्यवस्था है।

यथार्थवादी रचनाकार की तरह समाज व्यवस्था के जीर्ण-शीर्ण, अनुपयोगी तथा लोकहित-विरोधी तत्त्वों का प्रतिरोध करने के साथ-साथ कवि धूमिल ने एक अच्छे समाज तथा सुखी भविष्य की कल्पना की थी। सही मायने में कवि धूमिल एक 'सोशल इंजीनियर' थे। अच्छे समाज की सच्ची तस्वीर उनके मन-मस्तिष्क में थी। उनके मस्तिष्क में विराजमान, उनका कुशल सामाजिक अभियंता जब समतामूलक समाज की कल्पना को साकारता प्रदान करता है: तब स्वत: ही एक उदात्त, एक श्रेष्ठ तथा सब प्रकार के शोषण-विहीन समाज का स्वरूप हमारे सामने उपस्थित हो जाता है।

कहना न होगा कि समाजवादी यथार्थवाद का बृहत रूप कवि धूमिल के काव्य-कृतियों में यत्र-तत्र-सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने अपनी कविताओं में भारतीय समाज के प्रत्येक पहलू का चित्रण किया है। भारतीय सामाजिक जीवन का कोई भी ऐसा पहलू नहीं है; जो उनकी कविताओं में स्थान न पाया हो। ग्रामीण एवं नागरिक, शोषक एवं शोषित,

शिक्षित एवं राजनीतिक, कृषक एवं श्रमिक, अछूत एवं सवर्ण आदि वर्गों के जीवन का उन्होंने विशद तथा यथार्थ चित्रण किया है। धूमिल की कविताओं में समाजवादी यथार्थवाद का प्रभावशाली रूप उपलब्ध होता है। सच तो यह है कि धूमिल के आर्विभाव के साथ ही समकालीन हिंदी कविता कल्पना से हटकर समाजवादी यथार्थ की ओर उन्मुख हुई। उन्होंने कविता को यथार्थ जीवन से जोड़ा।

कहना न होगा कि समकालीन हिंदी कविता में कवि धूमिल समाजवादी यथार्थवाद के लिए सीधे संघर्ष करते हुए प्रतीत होते हुए दिखाई देते हैं। धूमिल की कविताओं में यथार्थ युगीन परिवेश जीवित हो उठा है। डॉ. वीरेंद्र सिंह ने ठीक ही कहा है- ''यथार्थ-बोध में परिवेश-बोध अवश्य रहता है और इस 'परिवेश' में जहाँ एक ओर सामाजिक, आर्थिक, और राजनैतिक परिस्थितियाँ गतिशील रहती हैं; वहीं इन परिस्थितियों की गतिशीलता में 'ज्ञान-संवेदन' का गहरा संस्पर्श रहता है; जो रचनाकार को एक दृष्टि देता है; जो स्वयं उसकी संवेदनशीलता का प्रमाण है- उसकी विस्तृत यथार्थ दृष्टि का परिचायक है।''(39) इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि धूमिल का काव्य-संसार 'ज्ञान-संवेदन का काव्य-संसार है, जिसमें उपर्युक्त विस्तृत 'परिवेश' की पहचान है। यह पहचान ही कवि की 'दृष्टि-विकास' को रेखांकित करता है।

सैद्धांतिक आधार की दृष्टि से धूमिल समाजवादी एवं प्रगतिशील चिंतक रहे हैं। व्यक्ति गत जीवन की कठिन परिस्थितियाँ तथा बाह्य जीवन में व्यक्त सच्चाईयों के कटुतम घूँट पीकर धूमिल को आम आदमी के लिए चिंता होती रहती थी। धूमिल की दृष्टि में गाँव के महाजन शोषण के रूप हैं। उनका शिकार गाँव का खेतिहर किसान है; जो दिन-भर खून-पसीना एक करके शाम के वक्त जमींदार की गालियों की बौछारें सहता है। किसान अपनी भूमि से लगाव, गाँव की अवस्था, पिछड़ी हुई संस्कृति के कारण परिवर्तन एवं क्रांति का इच्छुक होते हुए भी जागरूक नहीं दिखता है। कवि धूमिल ने ठीक ही कहा है-

'असलियत और अनुभव के बीच/ खून के किसी कमजात
मौके पर कायर है।''(40)

3.21 आम आदमी के खोखलेपन का यथार्थ वर्णन : धूमिल ने अपनी रचनाओं में आम-आदमी की पहचान रची है कि 'कविता आदमी होने की तमीज है।' वे अपनी कविता का शुभारंभ आम आदमी से करते हैं और उसका अंत इसी आदमी से किया है। 'संसद से सड़क तक', 'कल सुनना मुझे', 'सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र' उनके इन तीनों काव्य संग्रह की कविताएँ इस कथन की गवाह हैं। धूमिल की ये कविताएँ आदमी की असलियत मालूम करने की एक ऐतिहासिक दस्तावेज हैं। एक आदमी वह है; जो 'शासन' के नाम पर 'राशन' पाने का इच्छुक है। दूसरा वह है; जो अनाज की आड़ में अनाज का सारा रस चूस रहा है। कवि ने 'अकाल-दर्शन' शीर्षक कविता में इसका समाजवादी यथार्थवाद का आलोचनात्मक चित्रण करते हुएकहा है-

'लोग बिलबिला रहे हैं। पेड़ों को नंगा करते हुए/पत्ते और
छाल खा रहे हैं/ जलसों-जुलूसों में भीड़ की पूरी ईमानदारी
से/ हिस्सा ले रहे हैं और/ अकाल की तरह गा रहे हैं /
×× × अक्सर, वे मुझे अपराध के असली मुकाम पर/अंगुली
रखने से मना करते हैं/ जिनका आधे से ज्यादा शरीर/भेड़िये
ने खा लिया है / वे इस जंगल की सराहना करते हैं/ मगर
वे हैं कि असलियत नहीं समझते/ अनाज में छिपे उस आदमी
की नीयत नहीं समझते/ जो पूरे समुदाय से/ अपनी गिजा
वसूल करते हैं/ कभी 'गाय' से/ और कभी 'हाय' से/(41)

कवि धूमिल ने व्यवस्था को बदलने के लिए क्रांति न करने पर आलोचनात्मक व्यंग्य प्रहार किया है। उनका मानना है कि जनता के सामने अनेक ऐसी स्थितियाँ आई हैं कि क्रांति के द्वारा वह व्यवस्था को बदलने में सफल हो सकता है, किंतु जनता हाथ-पर-हाथ धरे बैठी रही। यहाँ की भ्रष्ट व्यवस्था के जिम्मेदार मात्र शासनवर्ग ही नहीं; बल्कि आम जनता भी है; क्योंकि जनता क्रांति के अर्थ को नहीं समझ पाई है। अत: कवि ने ठीक ही कहा है-

''क्रांति / यहाँ के असंग लोगों के लिए/किसी अबोध बच्चे
के/ हाथों की जूजी है।''(42)

समग्र रूप से धूमिल की कविताओं का विवेचन करने से पता चलता है कि उन्होंने आम आदमी के खोखलेपन, निराशा, कुंठा, विवशता तथा उदासी आदि का यथार्थ चित्रण ही नहीं किया है; बल्कि उसके अस्तित्व को समझने-बूझने का भी प्रयत्न किया है। अत: उनको किसी सीमित क्षेत्र में रखना उनके साथ बेईमानी होगा। धूमिल की कविता आम आदमी को पस्त हो जाने के लिए नहीं; बल्कि क्रांति का स्वर फूँककर आदमी आदमी से मधुर संबंध बनाने का प्रयास करती है। इस संदर्भ में कवि धूमिल ने एक स्थान पर कहा है-

''अब वक्त आ गया है कि तुम उठो/ और अपनी ऊब को
आकार दो।''(43)

समाजवादी यथार्थ के अंतर्गत दो आधार रूप उपलब्ध होते हैं। एक आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद, और दूसरा आलोचनात्मक यथार्थवाद जिसमें समाज के नग्न यथार्थ का चित्रण करते हुए एक ''सकारात्मक प्रवृत्ति'' पाठकों के सामने जाहिर की जा रही है। धूमिल ने अपनी कविताओं में शहरी मानसिकता के दिखावटी चेहरे दिखाए हैं। साथ ही धोखाधड़ी एवं दगाबाजी, अकर्मण्यता तथा पाशविक प्रवृत्ति आदि का यथार्थ अंकन भी किया है। यह सब इसलिए संभव हो पाया है कि उन्होंने स्वयं ग्रामीण एवं शहरी परिवेश में भी अपना संघर्षमय जीवन व्यतीत किया था। वैसे कोई भी रचनाकार अपने वर्तमान परिवेश से अछूता

रहकर, अनुभव किए बिना किसी भी कृति का निर्माण नहीं कर सकता है।

वर्तमान शहरी परिवेश में जीनेवाले आम व्यक्ति को उसकी दिशा का ज्ञान ही नहीं होता है; क्योंकि विडंबनाग्रस्त मनुष्य में अस्तित्व के विनाश और असुरक्षा का भय बराबर बना रहता है। उसकी बुद्धि कुंठित हो जाती है। अलगाव बोध में जीनेवाला शहरी आदमी हो या ग्रामीण जीव, वह साधारण जनता है; जिसका आक्रोश जनमत की चढ़ि हुई नदी में सड़े हुए काठ के बराबर होता है। शहरी आदमी के उपेक्षित जिंदगी का यथार्थ व्यक्त करते हुए कवि ने कहा है-

> "न मैं कमंद हूँ/ न कवच हूँ/ न छंद हूँ/मैं बीचोबीच से
> दब गया हूँ/ मैं चारों तरफ से बंद हूँ/मैं जनता हूँ कि इससे
> न तो कुर्सी बन सकती है/और न बैसाखी/ मेरा गुस्सा-
> /जनमत की चढ़ी हुई नदी में/ सड़ा हुआ काठ है।"(44)

औद्योगिकरण की इस दुनिया में व्यक्ति और व्यक्ति के मध्य अकेलेपन एवं अलगावबोध की खाई बन गई है; जिसमें वह घुटन भरी जिंदगी महसूस करते हुए अपने अस्तित्व के प्रति संशकित हो उठा है। वह शहर में सशंकित तथा दु:खी जीवन जीते हुए अकेलेपन की चरम सीमा को पार कर चुका होता है। इस संदर्भ में कवि धूमिल का कहना है-

> "कहीं देखकर बलात्कार की कोई घटना/ उतनी देर तड़पती
> रहती नहीं धमनियाँ/ जितनी उस क्षण/जब दो परिचित-
> सी आकृतियाँ/ नीचे आँखें किए, परस्पर/ बिना कहे कुछ/
> पास-पास से गुजर गई हों।"(45)

ऐसी स्थिति में जब आदमी की संवेदनाएँ मर जाती हैं। वह अनजानपन व अकेलापन महसूस करता है। ऐसी हालत में यदि दो व्यक्ति पास से बिना कुछ कहे आगे बढ़ जाते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि उनकी संवेदनाएँ मर चुकी हैं। ऐसे व्यक्ति को देखकर कवि धूमिल को अत्यंत दु:ख होता है। उन्हें ऐसा लगता है कि वह स्थिति बलात्कार की प्रत्यक्ष घटना से कहीं अधिक भयावह है। इस तरह का जिक्र अकवितावादी कवियों में अधिक मिलता है।

उपर्युक्त कथन के पीछे धूमिल का यह कहना था कि उनकी कविता में अभिव्यक्त उक्तियों को स्वतंत्र रूप में नही, बल्कि उनकी संपूर्ण कविता को यथार्थवादी ढंग से ग्रहण किया जाए। जहाँ तक उनमें भदेसपन, फूहड़पन का प्रश्न आता है; उन्होंने स्वयं 'कवि 1970' शीर्षक कविता में कहा है- "हाँ-हाँ, मैं कवि हूँ/ कवि याने भाषा में/ भदेस हूँ"(46) कविता की इन पंक्तियों को गहराई से अध्ययन करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है 'भदेस' वे अपनी विद्रोह भावना के कारण हुए थे, जब वे हर तरह से हार गए थे।

3.22 मूल्यविहीन परिवेश का यथार्थ चित्रण : समाजवादी यथार्थवाद के अंतर्गत आलोचना के स्तर पर परिवेशगत मूल्यहीनता का विवेचन किया जाता है। समान्यत: धूमिल सामाजिक क्रूरता के मध्य मानव-मूल्यों के लिए हमेशा संघर्षरत रहे हैं। अकेलेपन की पीड़ा एवं अलगावबोध के दर्द से हटकर वे देश, समाज, संसद, लोकतंत्र, वर्ग-भेद व जीवन के खोखले मुखौटों को उतार फेंकने की कोशिश करते रहें ; किंतु आम जनता के दु:खद अनुभवों को वे भूल नहीं पाए। अत: उन्होंने अपनी कविता में मूल्यविहीन परिवेश की अभिव्यक्ति खुलकर की है। कवि धूमिल एक स्थान पर व्यक्ति के नैतिक पतन को देखकर व्यंग्य किया है-

> "मगर यह वक्त घबराए हुए लोगों की शर्म / आँकने का
> नहीं/ और न यह पूछने का/ कि संत और सिपाही में/
> देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य कौन है !"(47)

आज हमारी ऐसी मानसिकता बन गई है कि सामने हो रहे अत्याचार, आतंक को रोक पाने में हम सक्षम नहीं हैं। इस तरह की मानसिकता पैदा करनेवाला कौन है? चिंतनशील लोग या फिर शस्त्रधर्मी कर्मठ सिपाही; जिसको देश की सुरक्षा के लिए तैनात किया गया है। देश में इतने बड़े-बड़े बुद्धिजीवी लोग और कर्मठ सिपाहियों के होने बाद भी हमारे देश में घबराहट, आतंक भरा माहौल कैसे फैल गया?

हमारे देश व समाज के अंतर्गत असामाजिक तत्त्व की उपस्थिति, उथले आदर्शों व प्रवंचित परंपराओं की विभीषिका संबंधी कालिमा मानवीय मूल्यों का ह्रास कर रही हैं। अत: विघटित भ्रष्टहीन मूल्य बढ़ रहे हैं, उन्हें कवि धूमिल ने अपनी कविताओं में बेनकाब कर दिया है। सामाजिक क्रूरता में व्यथित व्यक्ति के लिए कवि मात्र सहानुभूति का प्रदर्शन ही नहीं करते; परंतु वह स्वयं उसके साथ अपना कंधा देते हुए कहा है-

> "यद्यपि/ उनकी जरूरतों के लिए मैं अपना पूरा कंधा दे देना
> चाहता हूँ/ मगर टूटते हुए परिवार में/धनुष-टंकार झेलते
> हुए बछड़े-सा कराहता है।"(48)

कवि धूमिल ने एक संयुक्त परिवार में जीवन बिताया था। आज भी गाँवों में यह संयुक्त परिवार प्रथा चली आ रही है; जो एक आदर्श व्यवस्था मानी जाती रही है। उस व्यवस्था को चलायमान बनाए रखने के लिए कवि धूमिल को कठिन तपस्या एवं कष्ट उठाना पड़ा है।आज कितने लोग हैं; जो इस तरह की व्यवस्था में विश्वास रखते हैं? आजादी के पश्चात् इस तरह का जो मानवमूल्य है उसका ह्रास ही हुआ है। शहरों में इसका अधिक भ्रष्ट रूप देखने को मिलता है। मानव अपनापन, अपनत्व व मानवीय गरिमा भूलकर मात्र आर्थिक लाभ पाने हेतु घृणित-से-घृणित कार्य करने को तैयार हो गया है। तभी तो कवि धूमिल "जीने के लिए पालतू होना जरूरी है" की बात कहते हैं। उन्होंने देश में बढ़ती अनैतिकता तथा मानवीय संबंधों में हो रहे अवमूल्यन की स्थिति को उजागर करते हुए

कहा है-

"बलात्कार के बाद की आत्मीयता/ मुझे शोक से भर गई
है/मेरी शालीनता, मेरी जरूरत है/ जो अक्सर मुझे नंगा
कर गई है।"(49)

स्पष्ट है कि यहाँ कवि ने नारी संसर्ग की उपमा के माध्यम से उस मानवीय स्थिति को बेनकाब किया है। जिस प्रकार किसी भी नारी के साथ जबरदस्ती बलात्कार किया जाए और आत्मीयता की गहराई में उतरने के पश्चात् कुछ नहीं कर पाती है; ठीक उसीप्रकार जब कानून के ठेकेदार या नेता लोग या उसके अन्य भाई बंधु अपने तरीके से आम आदमी के जबरन बदसलूकी करते हैं या उसके अरमानों के साथ खिलवाड़ करते हैं। व्यक्ति को व्यक्ति का शोषण करने में बड़ा मजा आता है और शोषित व्यक्ति बड़ी शालीनता (खामोशी) से अपना गर्दन उसके सामने झुका देता है तथा अत्याचार-पर-अत्याचार को चुपचाप सहन करने का आदी हो जाता है।

आजादी के पश्चात् सारा देश मानवीय मूल्यहीनता के परिवेश से भर उठा है। भाई बंधु का प्रेम, सहानुभूति आदि मानवीय गुण छल-प्रपंच में बिखर गए हैं। हर व्यक्ति स्वार्थ में अंधा हो गया है। ऐसी घिनौनी एवं भ्रष्ट व्यवस्था में कवि धूमिल अपने आप को बीमार होते हुए पाते हैं। यहाँ जीवधारी हर व्यक्ति अपने-आपको रोग से पीड़ित पाता है। आज मानवीय मूल्य इतने कठोर हो गए हैं कि कवि को यकीन हो जाता है-

"लगता है कि हर चीज/ झूठ है/आदमी/ देश/ आजादी/
और प्यार सिर्फ नफरत सही है।"(50)

आज देशभक्ति के नाम पर लोग देश को लूट रहे हैं। विदेशी हाथों में देश को गिरवी रख रहे हैं। घूसखोर बनकर देश की नीति को अनैतिक हाथों मे सौंप रहे हैं। एक जमाना था; जब हमारे देशभक्तों ने देश के लिए आहुतियाँ दी हैं, बलिदान दिए हैं। उनके लिए माता-पिता, भाई-बहन व पत्नी-बच्चो से बढ़कर देशभक्ति थी। देशभक्ति ही एक बहुत बड़ी मानवीय मूल्य हुआ करती थी; लेकिन आज इसका महत्त्व ही घट गया। जो सबसे अधिक हेर-फेर करनेवाला दलाल होता है, उसी के चेहरे देश-विदेश के टी. वी. के पर्दे पर दिखाई देते हैं। कवि धूमिल इस चीज को अच्छी तरह भाँप गए थे। अत: वे कहते हैं-

"रोटी के टुकड़े पर/ किसी भी भाषा में देश का नाम लिखकर/
खिला देने से/ कोई देशभक्त नहीं होता।"(51)

स्पष्ट है कि रोटी की लालच में की गई देशभक्ति एक धोखाधड़ी है। जो लोग पेट से तालुक रखकर देशभक्ति का स्वांग रचते हैं; वे चालाक होते हैं। देशभक्ति की आड़ में खूब लूटते हैं। इसीलिए भूख की आड़ में जो देशभक्ति के गीत गुनगुनाते हैं; उन्हें कवि सच्चा देशभक्त नहीं कहता है। उनके अनुसार देशभक्त तो वह है; जो अपने देश

की मिट्टी को आँख की पुतली समझता है।

सुधी विद्वान जानते हैं कि ''यथार्थवाद यथार्थता का यथावत् चित्रण नहीं होता है; बल्कि कला का एक झुकाव ट्रेण्ड है जो यथार्थता के प्रस्तुतीकरण के साथ-साथ अनुभव करनेवाले कृति के मस्तिष्क को भी पेश करता है। यह ऐसी 'मानवीय क्रिया' है जिसके अंतर्गत संपूर्ण मनुष्य द्वारा अपने सर्वांगीण अस्तित्व का सर्वांगीण ढंग से ग्रहण करता होता है।''(52) संपूर्ण मनुष्य की धारणा वस्तुगत यथार्थता को सामूहिक प्रत्यक्षीकरण एवं सामाजिक चेतना से जोड़ देती है और उसे झुकावपरक बना देती है। भारतवर्ष में भूख, बेरोजगारी वितृष्णा और स्वार्थांधता यथार्थ परिवेश के अनुषंग हैं; जिसका कलात्मक चित्रण धूमिल के काव्य में उपलब्ध होता है।

कहना न होगा कि धूमिल ने अपने काव्य की रचना मानवीय स्वतंत्रता के लिए की है और उसका हक दिलाने के लिए संसदीय नीतियों, समाजवाद तथा प्रजातंत्र आदि सबको अपने व्यंग्य बाणों से बेधा है। व्यक्ति गत स्वतंत्रता, भूख एवं बेरोजगारी की समस्या की समाप्ति होने पर ही आ सकती है। स्वतंत्रता के पश्चात् लोगों को यह आशा थी कि सबको अपनी योग्यतानुसार रोजगार मिलेगा; लेकिन सरकार की गलत नीतियों ने इस समस्या को और भड़का दिया। इस संदर्भ में कवि धूमिल ने ठीक ही कहा है-

> ''युवकों को आत्महत्या के लिए रोजगार दफ्तर भेजकर/
> पंचवर्षीय योजनाओं की सख्त चट्टान को/ कागज से काट
> रहा हूँ।''(53)

बेकारी से भूख उपजती है जिसने मानवीय मूल्यों को नष्ट कर दिया है। बेकारी की चक्की में पिसता हुआ मानव देशप्रेम की बात क्या समझ सकता है? आज का पढ़ा-लिखा नौजवान अपने परिश्रम का सुख इस देश की मिट्टी में तलाश पाने में असमर्थ हैं-

> ''मैंने रोजगार दफ्तर से गुजरते हुए- एक नौजवान को/ यह
> साफ-साफ कहते सुना है/ इस देश की मिट्टी में/ अपने
> जांगर का सुख तलाशना/ अंधी लड़की की आँखों में/ उससे
> सहवास का सुख तलाशना है''(54)

मनुष्य की स्वतंत्रता एवं रोजगार अन्योन्याश्रित हैं। रोजगार से आर्थिक स्वतंत्रता और आर्थिक स्वतंत्रता से व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्राप्त होती है और इसी से मानव अपने अस्तित्व को इस दुनिया में कायम रख सकता है; लेकिन कवि धूमिल की मुख्य समस्या बेरोजगारी की समस्या है। इस समस्या का समाधान प्रजातांत्रिक व्यवस्था के पास है; जिससे कवि को बार-बार संघर्ष करना पड़ा है। उनके अनुसार ऐसी जीर्ण-शीर्ण व्यवस्था टूटनी चाहिए। वे हमें ऐसी व्यवस्था के विरुद्ध लड़ने के लिए आगाह तो करते हैं; लेकिन स्वयं भयभीत होते हुए कहते हैं-

"हाँ, मैं भी भयभीत हूँ। व्यवस्था की खोह में/ हर तरफ/
बूढ़े और रक्तलोलुप मशालची/घूम रहे हैं/ इतिहास की
ताजगी/ बनाए रखने के लिए/ नौजवान और सफल/ मौतों
की टोह में/ उन्हें हमारी तलाश है।"(55)

'संसद से सड़क तक' की 'मोचीराम' शीर्षक कविता में धूमिल मानवीय जीवन मूल्यों की झड़ी लगा देते हैं। मोचीराम अपने पेशे के प्रति ईमानदार रहना चाहता है; लेकिन उसे अपने परिश्रम का जब उचित दाम नहीं मिलता है तो उसे बहुत कष्ट होता है और महसूस करता है कि सिद्धांतविहीन आदर्शों एवं जीवन मूल्यों से गिरकर तो कोई व्यक्ति अपना पेशा चुन लेता है, तब उसका विवेक भी उसे धिक्कारता नहीं है। इसी बात को कवि धूमिल ने इशारा करते हुए कहा है-

"जिंदा रहने के पीछे/ अगर सही तर्क नहीं है / तो रामनामी
बेचकर या रंडियों की/ दलाली करके रोजी कमाने में/ कोई
फर्क नहीं है।"(56)

स्पष्ट है कि हर आदमी के जीने का तरीका भिन्न-भिन्न होता है। उनका अपना मकसद होता है। कुछ मानवीय जीवनमूल्य व आदर्श तथा लक्षण होते हैं; जिन्हें लेकर उसे चलना पड़ता है। जब तक वह उनका पालन करता है; तब तक जीवित रहने के पीछे एक सही तर्क उसके समक्ष होता है। लेकिन मानवीय मूल्यों के अपने स्थान से लुप्त होते ही वह भटक जाता है। ऐसा जीवन जीने के लिए कमाने के साधन के रूप में, अपनाया गया कोई भी पेशा हो सकता है। चाहे वह पेशा रामनामी चादर ओढ़कर जीविका चलाने का हो या रंडियों की दलाली कर कमीशन में प्राप्त किया गया धन हो। दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि सही जीवन जीने के लिए ही सही पेशे को अपनाना जरूरी होता है। जहाँ जीने का कोई मकसद न हो; वहाँ धन कमाने का जरिया कुछ भी हो सकता है। यथार्थ में जीना एक और बात है तथा सही जीवन शैली या सौद्देश्यता से जीना एक अन्य बात है। प्रसंगवश रमेश कुंतल मेघ के विचारानुसार "यथार्थता कभी भी तटस्थ या असंपृक्त नहीं हो सकती है। विशेषकर वर्गीय समाज में तो यह और भी जटिल तथा भ्रामक हो जाती है। अतः सामाजिक यथार्थता ऐतिहासिक दृष्टि से पूर्ण सत्य से पूर्ण सत्य का प्रदर्शन तथा असत्य का उन्मूलन करती है अर्थात् यह सत्य की अचल तथा तटस्थ न मानकर उसे इतिहास-प्रवाह में गतिमान तथा पक्षधरता से काव्य में जीवन संघर्षी रागात्मकता को कल्पना, रूप-प्रयोगों, बिंबों आदि का भी प्रयोग करता है।"(57) कहना न होगा कि धूमिल के काव्य में कल्पना का यथार्थपरक स्वरूप भी प्राप्त होता है।

अधिकांश लोग यह महसूस करते हैं कि आज हर तरफ मानवीय मूल्यों का हनन हो रहा है। लोग व्यावहारिक कम; बल्कि पुस्तकीय ज्ञान पर ज्यादा भरोसा करते हैं। इससे सामाजिक रहन-सहन आदि से वे इतने परे हो जाते हैं कि उनमें सही मूल्य की पहचान

नहीं रह जाती है। इसी की ओर कवि धूमिल ने संकेत करते हुए कहा है-

> ''जो जिंदगी को किताब से नापता है/ जो असलियत और अनुभव के बीच/ खून के किसी कमजात मौके पर कायर है।''(58)

आगे कवि ने यह भी कहा है कि ऐसा ही व्यक्ति और भी आप को देखने को मिलेगा; जो भाषा व जाति का विभाजन करके वर्गभेद निर्माण करता है और अपने आपको उच्चवर्ग घोषित करना चाहता है-

> ''जो यह सोचता है कि पेशा एक जाति है/ और भाषा पर/ आदमी का नहीं, किसी जाति का अधिकार है/जबकि असलियत यह है कि आग/ सबको जलाती है सच्चाई/ सबसे होकर गुजरती है/ कुछ हैं जिन्हें शब्द मिल चुके हैं/ कुछ हैं जो अक्षरों के आगे अंधे हैं/ वे हर अन्याय को चुपचाप सहते हैं/ और पेट की आग से डरते हैं।''(59)

स्पष्ट है कि किसी भाषा पर किसी एक जाति का अधिकार नहीं हो सकता। यह सत्य उसी प्रकार है, जैसे 'आग' मृत्यु हो जाने पर सबको भस्म करत देती है तथा सच्चाई सबके अंदर से होकर जाती है। यह दूसरी बात है कि कुछ लोगों ने शब्द अर्जित कर लिए हैं; तो कुछ अपढ़ हैं; जो अक्षरों के आगे स्वयं अंधे कहे जाते हैं। ऐसे लोग हर अत्याचार- अन्याय-शोषण चुपचाप सहते रहते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि उन्हें भय है, भूखे पेट के लिए। यदि कहीं भी उन्होंने अपने शोषण के विरुद्ध आवाज की तो उन्हें रोटी के लाले पड़ सकते हैं। यह कैसी मानवीय मूल्य की विडंबना है। एक आदमी दूसरे आदमी का शोषण करने पर तुला है। उसकी मानवता एवं संवेदना मर गई है क्या? कवि धूमिल ने ऐसे लोगों को कभी नहीं माफ किया। वे हमेशा गरीबों एवं कंगालों को उचित स्थान दिलाने के आग्रही रहे हैं; जिन्हें आज की शोषित व्यवस्ता ने पशु के समान बना दिया है। कवि धूमिल इस बात को अच्छी तरह पहचान गए हैं कि ऐसा आदमी मजबूरी में सब कुछ सहन करता है। अत: उसकी पक्षधरता करते हुए उन्होंने कहा है-

> ''तुम पशु बनने को तैयार नहीं हो/ तुम्हारे चेहरे से आज भी/ आदमियत की गंध आती है।''(60)

धूमिल इस आदमीयत की पहचान हम सभी को करा देना ही अपना कर्तव्य समझते हैं। कवि ने 'खून के बारे में कविता' शीर्षक कविता में मानवीय मूल्यों का यथार्थ बोध कराया है। डॉ. रतनकुमार पांडेय के शब्दों में- ''खून को कवि कंगालों की पसलियों के चोर दरवाजे पर देखता है। वहाँ से वह गायब हो जाता है। ऐसा क्यों है कि आखिरी बार वही खून मौत के खिलाफ एक लंबी नली से नीचे सरकता है? इसका कारण यह है कि आहार के अभाव में कंगाल के चोर दरवाजे से खून गायब होता है और वह मौत की क्रोड़

में आ जाता है। इसी मौत से बचाने के लिए कवि खून की अलग-अलग स्थितियों का रहस्योद्घाटन करता है।''(61)

समाजवादी आशंसा के लिए अनेक रचनाकारों ने अपनी अभिव्यक्ति रची है। वे देशकाल समाज व्यवस्था में बदलाव की इच्छा रखते हैं; लेकिन राजनीति ही, देश-व्यवस्था की राजनीतिक सत्ता ही बदलाव की जिम्मेदार होती है। अत: धूमिल के काव्य में राजनीतिक व्यवस्था की आलोचना समाजवादी आस्था के अंतर्गत ही रची गई है।

3.23 राजनीतिक परिदृश्य और धूमिल का काव्य : वास्तव में राजनीति एक सामाजिक विचारधारा है; जिसका लक्ष्य व्यक्ति और व्यक्ति के बीच, व्यक्ति और जाति, जाति और वर्ग, वर्ग और समाज, समाज और राजनीति के पारस्परिक संबंध सूत्रों को परिपक्व करना है। राजनीति का दायित्व हमारे समाज के ढाँचे को सुचारु ढंग से संचालित करना होता है। धूमिल ने अपने समय व काल को एक पर्यवेक्षक की दृष्टि से ही नहीं; बल्कि एक आलोचक एवं क्रांतिकारी होकर भी देखा है। फलस्वरूप सम-सामयिक जीवन का यथार्थ चित्रण उनकी कविताओं में सर्वत्र विद्यमान है। वर्तमान भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था के प्रति गहरी खीझ, आक्रोश एवं व्यंग्य उसकी यथार्थ चेतना के विभिन्न आयाम हैं।

धूमिल ने देश के प्रजातंत्र पर तीखे प्रहार किए हैं; क्योंकि आम जनता ने देश की आजादी के पश्चात् जिस प्रजातंत्र का सपना देखा था; उसमें भ्रष्ट एवं खोखलेपन का चरित्र ही दिखाई देता है। इस भ्रष्ट एवं खोखले प्रजातंत्र(व्यवस्था) के लिए सरकार और जनता दोनों ही जिम्मेदार हैं। अपनी कविताओं के माध्यम से राजनीति के विविध पक्षों पर बात करते हुए धूमिल ने समकालीन कविता के क्षेत्र में एक बड़े अभाव की पूर्ति की है।

राजनीतिक क्षेत्र में धूमिल का यह कथन ध्यातव्य है- ''युवा लेखन के लिए राजनीतिक समझदारी जरूरी है। बिना इस राजनीतिक समझदारी के आज का लेखन संभव नहीं। यह वर्गों की समझदारी है। क्या बराबरी का दर्जा और आत्म-हीनता से मुक्ति का रास्ता एक नहीं है? यह आता कहाँ से है? आर्थिक मुक्ति से ! और इसी को सब टुकड़खोर और हरामखोर शब्दों के कुहासे से ढकने की व्यर्थ कोशिश करते रहे हैं। क्या युवा लेखक भी इसी में शरीक हो जाए? नहीं, वह तो इस षड्यंत्र के खिलाफ भीषण प्रतिशोध में लगा है। वह आफेंसिव है। सहता नहीं, अब वह प्रत्याक्रमण में भी पहल कर रहा है। ऐसे में टुकड़खोर भाषाई गुलाम फिर बहकावे में एक जुट हो रहे हैं और अपने भड़ौवे अंदाज में भटक रहे हैं। 'युवा' होने और समकालीन समझ रखने की ताव के लिहाज से ऐसे में तुम्हें दुबारा सोचना है कि तुम लोग क्या करोगे?''(62)

धूमिल की 'पटकथा' शीर्षक कविता में पूरे देश की राजनीतिक स्थिति का तरोताजा रूप उभरकर सामने प्रस्तुत हुआ है। डॉ. शिवकुमार मिश्र का कथन है- ''अपनी सारी आक्रामकता के बावजूद धूमिल की कविताएँ युवा-पीढ़ी के इसी वर्ग की रचनात्मक क्षमताओं

का प्रतिनिधित्व करती हैं। 'पटकथा' आक्रोश, विक्षोभ एवं विद्रोह की शब्दावली नहीं, एक ऐतिहासिक 'फर्दे जुर्म' है; जिसे समूची युवा-पीढ़ी के प्रतिनिधि के रूप में कवि ने आजादी के बीस वर्षों की नंगी वास्तविकता से साक्षात्कार करते हुए समय के हाथों सौंपा है कि वह निर्णय ले और इस वास्तविकता की जिम्मेदार शक्तियों के खिलाफ उसे कार्यान्वित करें। वह एक चुनौती है, सत्ता की शीर्ष पर बैठी, अतिचारी व्यवस्था का जाल बुनती हुई उस पीढ़ी को, जिसने नौजवानों के हाथों से उनका भविष्य छीन कर अपने वर्तमान को सँवारा है, जिसने उनके देश को उन्हीं के लिए कारागार बना दिया है।''(63)

समकालीन कविता में संभवत: सबसे पहले कवि-धूमिल ने ही राजनीतिक एवं सामाजिक यथार्थ से सीधे साक्षात्कार किया है। इस संदर्भ में प्रो. मंजु अग्रवाल का कथन ध्यातव्य है कि उनके लिए राजनीति एक जीवंत एवं कठोर सत्य बनकर आई है। वस्तुत: राजनीति ने जीवन के हर पहलू को आक्रांत कर रखा है। यही कारण है कि धूमिल का काव्य ऐतिहासिक और सामाजिक यथार्थ का सही दस्तावेज है; जो झिंझोड़ता है, कोंचता है और तिलमिलाता है। राजनैतिक विसंगतियों का ये ऐसा व्यंग्यपरक खाका है; जो मन को छीलता है, तरासता है।

कहना न होगा कि कवि धूमिल ने अपनी कविताओं में आजादी के पश्चात् देश की कुरूप-विद्रूप राजनीति गतिविधियों का यथार्थ अंकन किया है। देश की इस राजनीति में उन्होंने प्रजातंत्र के खोखले चरित्र, चरित्रहीन एवं भ्रष्ट राजनेता, तथा राजनीतिक चुनाव का यथार्थ चित्रण किया है; जिनका अध्ययन करने की कोशिश की गई।

प्रजातंत्र के खोखले चरित्र : कवि धूमिल लोकतांत्रिक यथार्थ की जाँच-पड़ताल अपनी कविता में खुलकर करते हैं। आजादी के पश्चात् देश की आम जनता को सुनहरे वादे कर लोकनायक पं. नेहरू ने उन्हें अपनी ओर आकर्षित करते रहे और बार-बार प्रजातंत्र की कुर्सी पर बैठते रहे। देश में जनतंत्र, त्याग, स्वतंत्रता, संस्कृति, शांति तथा मनुष्यता के उदात्त मूल्यों की स्थापना होगी। उसी के अनुकूल एक दिन पंचशील एवं विश्वशांति; जो भारतीय इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हैं, इस प्रजातंत्र में कायम हो जाएगी। इस तरह पं. नेहरू के आश्वासनों से जनता का मोह बना रहा। कवि ने इस प्रजातांत्रिक व्यवस्था पर हल्का-सा कटाक्ष व्यंग्य एवं उपहास करते हुए कहा है-

> ''लोग अपने-अपने हिस्से का अनाज/ खाकर-निरापद भाव
> से/ बच्चे जनते रहे/ योजनाएँ चलती रहीं/ बंदूकों के
> कारखानों में/ जूते बनते रहे/''(64)

स्पष्ट है कि कवि ने इस प्रजातंत्र में व्याप्त अंधीआस्था का उपहास आम जनता एवं नेहरू सरकार दोनों के संदर्भ में किया है। कवि-धूमिल के इस प्रजातंत्र में राजनेता, रोगी, भोगी, हिजड़े, जोगी, अंधे-बहरे-गूँगे, दलाल-कंगाल हर प्रकार के लोग रहते हैं। इन्हीं की एकता से यह प्रजातंत्र संचालित होता है. ग. तु. अष्टेकर के शब्दों में- ''जनतंत्र

की आत्मा संसद का निर्माण करती हैं; जो आत्मा अपने वजूद में जाने के बाद जनता की शिकायतों पर बहरी, अत्याचारों पर अंधी और समस्याओं पर गूंगी बनकर 'संविधान' से मिली हुई सुविधाओं को भोगती रहती है। वे निर्वाचित लोग एक ऐसे आदर्श जनतंत्र का निर्माण करते हैं; जो अपनी सम-समान दृष्टि के लिए विख्यात हैं। ऐसा जनतंत्र यहाँ बनता है जिसमें हरामखोरों को और श्रमजीवियों को समान अवसर उपलब्ध होते हैं। ऐसा जनतंत्र जो अपनी जनहित कारिणी-योजनाओं, नीतियों के आकर्षक उद्घोषों पर जीवित रहता है। जैसे खेल तमाशा दिखानेवाला मदारी अपनी आकर्षक भाषा शैली से भीड़ को बाँध रखता है और उसी से जीवित रहने का आधार खोजा करता है।''(65) कवि धूमिल ने प्रजातंत्र की परिभाषा ही बदल दी है। उन्होंने उसे मदारी की भाषा के समान बताते हुए कहा है-

''अपने यहाँ जनतंत्र/ एक ऐसा तमाशा है/जिसकी जान/
मदारी की भाषा है/''(66)

यहाँ स्पष्ट है- 'मदारी की भाषा' के प्रतिकार्थ में 'जनतंत्र' को लिया गया है। जिस प्रकार मदारी तंत्र-मंत्र की विद्या या चिकनी-चुपड़ी बातें करके लोगों को अपनी तरफ आकर्षित कर लेता है; ठीक उसी प्रकार भारतीय जनतंत्र है; जिसमें से रोजाना नई-नई चमत्कारिक बातें उभर कर आती हैं। मदारी के थैले में मात्र शाब्दिक तौर पर जादुई वस्तुएँ भरी रहती हैं; जो अर्थहीन होती हैं, जिनका वास्तविक जीवन से कोई संबंध नहीं रहता है। ठीक मदारी की भाषा की तरह यह प्रजातंत्र अपने लच्छेदार भाषा से लोगों को मूर्ख बनाती है।

कवि धूमिल की दृष्टि में देश की प्रजातंत्र में हिंसा व दमन का कोई महत्त्व नहीं होना चाहिए; क्योंकि हिंसा व दमन की राजनीति निरंकुश सत्ताधारियों की होती है। धूमिल अच्छी तरह भाँप गए हैं कि हमारे देश में प्रजातंत्र की जो स्थिति है; वह निरंकुश सत्ताधारियों के भयंकर दमन चक्र का प्रतीक बनकर उभरी है। यदि कहीं पर हत्या हो रही है तो देश की प्रजातंत्रिक व्यवस्था में कहीं-न-कहीं गड़बड़ी है: जो नित्य प्रतिदिन हड़तालें, हत्याएँ, मारकाट, कर्फ्यू आदि के घिनौने दृश्य देखने को मिलते हैं। इस प्रजातंत्र में हो रही हत्याएँ तथा लाशों का गायब हो जाने पर कवि ने चिंता प्रकट करते हुए प्रश्न करता है-

''गोली कांड के बाद/ लड़कों का गायब होना नई बात नहीं
है/यह शांति का मसला है/ लेकिन खबरों के मलबे के नीचे/
सच्चाई का पता कब चला है?''(67)

राजनीति में प्रजातांत्रिक व्यवस्था के नाम पर राजनैतिक पार्टियाँ सत्ता को सुचारु रूप से बनाए रखने के लिए लोगों की हत्याएँ कर शांति का मसला ढूँढती हैं। इससे देश की प्रगति नहीं; बल्कि वे इसे अधोगति की ओर ले जा रही हैं। कवि धूमिल इनकी नीतियों को जान गए हैं और कहते हैं-

"हवा में एक चमकदार गोल शब्द/ फेंक दिया है-'जनतंत्र'
जिसकी रोज सैकड़ों बार हत्या होती है/ और हर बार/
वह भेड़ियों की जुबान पर जिंदा है !"(68)

भ्रष्ट एवं चरित्रहीन राजनेता : आज इस प्रजातंत्र की कोई अपनी पहचान नहीं रह गई इसकी आड़ में समाज के भ्रष्ट एवं चरित्रहीन अधिकारी वर्ग जनता की भावना से खेल रहे हैं। कवि धूमिल के प्रजातांत्रिक व्यवस्था पर डॉ. रतनकुमार पांडेय ने टिप्पणी करते हुए कहा है- "ऐसा नहीं कि धूमिल को भारतीय प्रजातंत्र में आस्था या विश्वास नहीं है; बल्कि उसे वह श्रद्धा की नजर से देखता है। किंतु श्रद्धा या आस्था का यह अर्थ नहीं है कि विश्वास के नाम पर अंधत्व स्वीकार किया जाए। अन्याय, शोषण, अनाचार, भ्रष्टाचार को कायर बन, मौन होकर सहते रहने के लिए कभी भी धूमिल तैयार नहीं थे। परिणामत: निर्भीकता और विद्रोह की मुद्रा में वे राजनीतिज्ञों का चिट्ठा खोलते हैं।"(69)

धूमिल ने आजादी के पश्चात् देश के कर्णधारों द्वारा दिखाए गए सपने को टूटते हुए देखा है। अधिकार-लिप्सा, कुर्सी प्राप्ति आदि प्रजातंत्र के नाम पर मनमानी लूट-खसोट एवं सिद्धांतविहीन राजनीति का यथार्थ चित्रण धूमिल की कविता में हुआ है। देश के राजनीतिज्ञों को कवि ने सुराजिया, षड्यंत्रकारी, चालबाज आदि अनेक नाम दिए हैं; जिनकी समाज में सर्वत्र अंतर्विरोधी नीतियाँ व्याप्त हैं। इसका खुलासा करते हुए धूमिल ने कहा है-

"मैंने अहिंसा को/ एक सत्ता रूढ़ शब्द का गला काटते हुए
देखा/ मैंने ईमानदारी को अपनी चोर जेबे/ भरते हुए देखा/
मैंने विवेक को/ चापलूसों के तलवे चाटते देखा।"(70)

देश के राजनीतिज्ञों की चालाकी से देश की प्रजातांत्रिक व्यवस्था पतन के कगार पर पहुँच गई है। साधारण जनता की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति इस प्रजातंत्र में संभव होते हुए नहीं दिख रही है। ऐसी स्थितियों में उनका अंतर्विरोध पैदा हो जाना स्वाभाविक है। ऐसी अंतर्विरोधी परिस्थितियों के संदर्भ में धूमिल सार्थक व्यवस्था प्रणाली के लिए संघर्षशील होते हुए दिखाई पड़ते हैं-

"मुझे अपनी कविताओं के लिए/ दूसरे प्रजातंत्र की तलाश
है।"(71)

आज देश की जो प्रजातांत्रिक दुर्व्यवस्था है, इसके जिम्मेदार मात्र ये राजनीतिज्ञ नहीं हैं; बल्कि देश की आम जनता भी है। अगर इसमें व्यवस्था के खिलाफ लोहा लेने की ताकत होती तो आज यह नौबत हमारे समक्ष कभी नहीं होती। ऐसी व्यवस्था पर कवि धूमिल ने बार-बार व्यंग्य प्रहार किए हैं। डॉ. चमनलाल गुप्त ने भी कहा है कि "धूमिल सामान्यत: भारतीय प्रजातंत्र की आलोचना करता है; क्योंकि उसे लगता है कि जिस तरह

की प्रजातांत्रिक व्यवस्था हमें मिली है उसकी कामना हमने नहीं की थी। भ्रष्ट व्यवस्था के लिए वह जहाँ पर सरकार को दोषी ठहराता है; वहाँ पर जनता को भी दोषमुक्त नहीं करता। विश्व राजनीति के कुछ पहलुओं पर, विशेषकर दक्षिण पंथी, पूँजीवादी शक्तियों के षड्यंत्र पर भी धूमिल ने लिखा है। राजनीतिक यथार्थ को अपनी कविता का विषय बनाकर धूमिल ने हिंदी कविता को समृद्ध किया है।''(72) प्रसंगवश 'हत्यारे दो' शीर्षक कविता में कवि धूमिल ने आज के राजनेताओं की चालाकी को पर्दाफाश करते हुए कहा है-

''कितने ही अनुचर और बोलियाँ/ एक-से-एक आधुनिक
सभ्य और निरापद तरीके/ ज्यादातर वे हथियार की जगह
तुम्हें/विचार से मारते हैं/ वे तुम्हारे भीतर एक दूभाषिया
पैदा कर/ देते हैं''(73)

स्पष्ट है ये राजनेता अपने शब्दों की मायाजाल में आम आदमी को उलझा देते हैं। उन्हें जब सच्चाई का पता चलता है; तो वे उसके खिलाफत क्रांति एवं बगावत पर उतर आते हैं। जनता का यह रुख उन्हें पसंद नहीं है। अतः वे भी दमनकारी नीति पर उतर आते हैं। ऐसे में कवि धूमिल कह उठते हैं-

''हवाएँ खौलती हैं- तेजाब की तरह/हर जुबान पर जलता
है एक मारक-शब्द/ 'क्रांति'/लेकिन तब शब्दों की कलई
उतरते ही/स्वस्तिक करुणा/ खूँख्वार जबड़े में तबदील होने
लगती है/अब वे बिल्कुल नंगे हैं/ हत्यारों ने फेंक दिए हैं /
सारे शब्द और विचार/ उन्होंने हथियार उठा लिए हैं इस
वक्त/इस वक्त तुम्हें तय करना है कि तुम/ क्या करोगे?''(74)

उपर्युक्त पंक्तियों में उठाया गया प्रश्न आम आदमी के लिए है ; क्योंकि यह जनता हमेशा निर्णायक क्षणों में चुप रहती है। जब इनकी ओर से राजनेताओं के खिलाफ विरोध होता है; तो बड़ी ही आसानी से वे इनका (आम आदमी का) मुँह बंद कर देते हैं।

कहना न होगा कि देश की आम जनता ऐसे राजनेताओं को मसीहा के रूप में पूजती रही है। उन्हें अपना प्रतिनिधि बनाकर संसद में भेजती रही है; लेकिन ये अपनी ही सुख-सुविधा में लिप्त रहे। कवि ने ऐसे नेताओं की पोल खोलते हुए कहा है-

''मगर चालाक 'सुराजिए'/ आजादी के बाद के अंधेरे में/
अपने पुरखों का रंगीन बलगम/ और गलत इरादों का मौसम
जी रहे थे/ अपने-अपने दराजों की भाषा में बैठकर/ 'गर्म
कुत्ता' खा रहे थे/ 'सफेद घोड़ा' पी रहे थे।''(75)

इन भ्रष्ट राजनेताओं का लक्ष्य जनहित एवं राष्ट्र निर्माण न होकर अपने लिए सुख-सुविधाओं को येन-केन प्रकार से प्राप्त करना था। कवि धूमिल ने उनकी मानसिकता

को खोलकर रखते हुए कहा है-

"हाँ यह सही है कि कुर्सियाँ वही हैं/ सिर्फ टोपियाँ बदल
गयी हैं और-/ सच्चे मतभेद के अभाव में/ लोग उछल-
उछलकर/ अपनी जगहें बदल रहे हैं"(76)

स्पष्ट हैं 'टोपियों का बदलना' एक प्रतीकात्मक ध्वनि उभरती है। इन नेताओं की मनोवृत्ति में कोई बदलाव नहीं आया है। हाँ टोपियाँ जरूर बदल गई हैं। सत्ता वही है। यों कह सकते हैं कि सारा भ्रष्टाचार मंत्रियों की कुर्सियों में बदल गया।

राजनीतिक चुनाव : कवि धूमिल के विचारानुसार भारतीय व्यवस्था हमारे प्रजातांत्रिक स्वरूप में एक दोषभरी व्यवस्था है। चुनाव और कुछ नहीं; बल्कि एक अधमरा पशु के समान है, जिसकी नाभि में एक सड़ा हुआ घाव है, जिसमें से असहनीय बदबूदार मवाद बह रहा है। यही नहीं; बल्कि उसके शरीर में जाति, धर्म तथा संप्रदाय आदि अनेक कीड़े बिलबिला रहे हैं। जनता को अच्छी तरह मालूम है कि वे जिनको चुन रहे हैं, सबके सब भ्रष्ट एवं चरित्रहीन है, बेईमान हैं। 'चुनाव' शीर्षक कविता में कवि ने चुनाव संबंधी मान्यता का यथार्थवादी चित्रण करते हुए कहा है-

"यह आखिरी भ्रम है/ दस्ते पर हाथ फेरते हुए मैंने कहा/
तब तक इसी तरह/ बातों में चलते रहो/ इसके बाद-/
वादों की दुनिया में/ धोखा खाने के लिए/कुछ भी नहीं
होगा"(77)

स्पष्ट है कि यह जनता शासन व्यवस्था में परिवर्तन की आशा से नेताओं को चुनती रही है। ये नेता मात्र चुनावों के दिनों में ही इस जनता के प्रति आत्मीयता प्रकट करते हुए दिखाई देते हैं; लेकिन जब चुनावों में नेता जीत जाते हैं; तो अपने द्वारा दिए गए वायदों को भूल जाते हैं। ऐसे राजनेताओं के झूठे वायदों एवं होनेवाली धांधलियों को बेनकाब करते हुए धूमिल ने ठीक ही लिखा है-

"मंत्री जब प्रजा के सामने आता है/ तो पहले से/कुछ ज्यादा
मुस्कराता है/ नये-नये वादे करता है/और यह सब सिर्फ
घास के/ सामने होने की मजबूरी है"(78)

कवि धूमिल को इनकी चालाकी समझ में आ जाती है। अत: उन्होंने आम जनता को संबोधित करते हुए कहा है-

"सुनो!/ तुम चाहे जिसे चुनो/मगर इसे नहीं/ इसे
बदलो"(79)

जब कवि का स्वर आम जनता तक नहीं पहुँच पाया; तब उनकी काव्य-दृष्टि उनके अपने गाँव की ओर जाती है, जहाँ ग्राम सभा के चुनाव हो रहे हैं। इस संदर्भ में

राहुल ने ठीक ही कहा है- ''चुनाव के प्रति अपूर्व उत्साह दिखानेवाले धूमिल अपने गाँव के चुनाव में खुद को तिरस्कृत और उपेक्षित-सा पाते रहे।''(80) संभवत: उन्होंने 'मेरा गाँव' शीर्षक कविता में ग्रामीण सभा के चुनावों में अपने को उपेक्षित पाते हुए महसूस किया है-

''सारा माहौल जब एक चुनाव की/ तैयारी में मशगूल है/
वहाँ जीवन/ अब भी/ संसद को कार्रवाही से बाहर निकाले
गए/ वाक्य की तरह/ तिरस्कृत है।''(81)

यह कहना गलत न होगा कि देश के चुनाव किंही आदर्शों तथा नीतियों पर आधारित नहीं लड़े जाते हैं; बल्कि तुच्छ सुख-सुविधाओं की पूर्ति के लिए ही लोग चुनाव के मैदान में कूदते हैं। डॉ. चमनलाल गुप्त के शब्दों में ''चुनाव लोगों के लिए अपने ही पड़ोसियों को नीचा दिखाने का अवसर बन जाता है। जनता हरी घास की तरह नेताओं के स्वागत में बिछी रहती है और वे जंगली पशु की तरह उसे चरते रहते हैं। चुनाव की राजनीति भारत में असफल होती देखकर ही धूमिल क्रांति मार्ग की ओर झुकते हैं।''(82)

3.24 राजनीतिक व्यवस्था और समाजवादी यथार्थवाद : प्रत्येक रचनाकार अपने सम-सामयिक यथार्थ परिवेश से जितना अधिक जुड़ा होगा, उतनी ही विसंगतियाँ एवं विडंबनाएँ उसकी रचनाओं में अभिव्यक्त होंगी। स्वाधीनता के पश्चात् शासकों की नीयत एवं चरित्र में कोई विचारणीय एवं लक्षणार्थ बदलाव नहीं आया। इस विडंबना को कवि धूमिल अच्छी तरह पहचान गए थे। इस संदर्भ में डॉ. रतनकुमार पांडेय का कथन विचारणीय है- ''कवि धूमिल ने स्वतंत्रता का स्वाद नहीं चखा; किंतु स्वतंत्रता का स्वांग अवश्य देखा। इसलिए साहस के साथ, उन्होंने उन विसंगतियों को केवल स्वीकार ही नहीं किया; वरन् उन्हें उखाड़ देने में उनका साहस भी नहीं डगमगाया। धूमिल के काव्य में जो काव्य-नायक जन्मा है; वह विसंगतियों एवं विडंबनाओं में ही सांस लेना शुरू करता है।''(83)

कहना न होगा कि कवि धूमिल ने समकालीन राजनीतिक विडंबनाओं को ही अपनी कविताओं में स्थान दिया है। समकालीन राजनीतिक स्थिति की विचित्रता उनकी आस्था को उपजाने, बढ़ाने और अभिव्यक्ति के लिए विवश करनेवाली थी। धूमिल विसंगतियों से जूझनेवाले कवि रहे हैं। विसंगतियों से जूझते हुए उन्होंने एक स्थान पर कहा है-

''एक ही संविधान के नीचे/ भूख से रिरियाती फैली हुई
हथेली का नाम/ 'गया'है/ और भूख में/ तनी हुई मुट्ठी
का नाम/ नक्सलबाड़ी है''(84)

स्पष्ट है कि एक ही प्रजातांत्रिक व्यवस्था में दो तरह की भ्रष्ट स्थिति पैदा हो जाती है। एक तरफ बिहार में अकाल से पीड़ित जनता भीख माँग रही है तथा दूसरी ओर

बिहार से ही सटा हुआ एक दूसरा प्रांत हैं बंगाल, जहाँ अकाल से पीड़ित भूखी जनता पूँजीपतियों-सेठ-साहूकारों को मारकर उनकी पूँजी लूट लेती है। यह इस देश की विसंगति नहीं है तो और क्या है? डॉ. ग. तु. अष्टेकर का कथन है कि "समाजवाद की जैसी दुर्गति हमने, हमारे शासकों ने बना डाली है उसके लिए समाजवाद के चिंतन और क्रियान्वयन के इतिहास में कोई मिसाल नहीं मिल सकती। धूमिल इससे बहुत ही अच्छा परिचित था। समाजवाद के नाम पर चली यहाँ की आर्थिक नीतियों का प्रभाव शोषक पूँजीपतियों के अपरिमित लाभ और निर्धनों के अकल्पित शोषण में प्रकट हुआ।"(85)

समकालीन राजनीति में व्याप्त सिद्धांतहीनता, सत्ता के प्रति अपार मोह, खोखले नारेबाजी, दिशाहीनता, एवं लोकतंत्रीय व्यवस्था के नाम पर किया जानेवाला वर्ग और वर्ण विशेष की सत्ता बनाए रखने का प्रच्छन्न प्रयास सभी मिलकर देश को प्रगति की बजाय अवगति की ओर ले जा रहे थे। आजादी के पश्चात् स्वस्थ राजनीति और आदर्श राजनेता का जो चरित्र उभरने की आशा थी; वह पूरी न हो पाई। संपूर्ण राजनीति का ही चरित्र बदलता रहा। आजादी के पूर्व राजनीति में कदम रखने का अपना विशिष्ट अर्थ होता था त्याग की भावना; किंतु आजादी के पश्चात् राजनीति में प्रवेश करने का अर्थ होने लगा सत्ता के प्रति भोग का अधिकार स्थापित करना; जिसका कवि धूमिल ने खुलकर अपनी कविताओं के माध्यम से चित्रण किया है। डॉ. गुरचरण सिंह का यह कथन ध्यातव्य है- "समकालीन भ्रष्ट राजनीति का धूमिल ने अपनी कविताओं में खुलकर चित्रण किया है। जितनी साफ-सुथरी समझ धूमिल को आज की राजनीति की थी, उतनी अन्य किसी विषय की शायद नहीं थी। राजनीतिक विडंबना उनकी कविता में अभिव्यक्त हुई है। आज की राजनीतिक स्थिति, उसकी विचित्रता ने धूमिल के मन में अनास्था को उपजाया और उसे अभिव्यक्ति के लिए विवश किया। समकालीन राजनीतिक चेतना का स्वर उसकी कविता में मुखर हुआ है।"(86)

आजादी से लेकर आज तक ऐसे ही राजनेता जनता के सामने प्रस्तुत होते रहे, मात्र वोट हथियाने के लिए। ये जनकल्याण के नाम नए-नए आश्वासन देते हैं; किंतु इनकी कथनी और करनी में काफी अंतर होता है। जैसे ही उन्हें अपनी कुर्सी मिल जाती है, सड़क यानी जनता से उनका नाता ही टूट जाता है। कवि धूमिल की दृष्टि में ऐसे ही कुछ महान व्यक्तित्त्ववाले नेता हुए; जिनका प्रयास मात्र जनहित के लिए रहा है। किंतु देश की विडंबना एवं दुर्भाग्य यह है कि ऐसे जन हितैषी व्यक्तित्ववाले नेता संसार से शीघ्र कालग्रस्त हो जाते हैं। यहाँ कवि ने लाल बहादुर शास्त्री की मृत्यु की ओर संकेत करते हुए कहा है-

> "मुझे झेलनी पड़ी थी-सबसे बड़ी ट्रैजडी/ अपने इतिहास
> की/ जब दुनिया के स्याह और सफेद चेहरों ने/ विस्मय से
> देखा कि ताशकंद में/ समझौते की सफेद चादर के नीचे/
> एक शांति-यात्री की लाश थी।"(87)

स्पष्ट है कि लाल बहादुर शास्त्री जैसे विशिष्ट व्यक्तित्ववाले नेता के इस दुनिया से ओझल होते ही जितने भी राजनेता आए, किसी ने भी सच्चे मन से जनकल्याण की बात नहीं सोची। वह स्वहित एवं कुर्सी के ही मोह में फँसा रहा। डॉ. एस. गंभीर के शब्दों में- ''कुर्सी का महत्त्व आज इतना अधिक बढ़ गया है कि युगीन राजनीतिज्ञ को अपने चारों ओर कुर्सी-ही-कुर्सी दिखाई देती है। उसका पहनावा, ओढ़ना, बिछौना, खाना सब कुछ कुर्सी ही है। अर्थात् वह कुर्सीमय हो जाता है। परंतु कुर्सी से जुड़े कर्तव्यों की उसे कोई चिंता नहीं।''(88) धूमिल ने ऐसे नेताओं की दोहरी नीतियों का पर्दाफाश करते हुए कहा है-

> ''मैं हर रोज देखता हूँ कि व्यवस्था की मशीन का/ एक पुर्जा गरम होकर/ अलग छिटक गया है/ और ठंडा होते ही/ फिर कुर्सी से चिपक गया हो/ उसमें न हया है/ न दया है।''(89)

देश के राजनीतिज्ञ 'स्वहित पूर्ति हेतु' दलबदल की दोहरी नीतियाँ अपनाते हैं। कभी ये नेता लोग विपक्षी पार्टियों पर कीचड़ उछालते हैं; तो कभी कुर्सी हथियाने के लिए अपनी एड़ी-चोटी एक कर देते हैं। ऐसे लोगों में कोई शर्म-हया का भाव नहीं होता। ये ही जनता द्वारा निर्वाचित होते हुए भी उनसे कोई सरोकार नहीं रखते। कवि धूमिल को भारतीय विद्यालयों में भी कुर्सी मोह संक्रामक रोग की भाँति फैला हुआ दिखाई देता है। देश के कर्णधार कहलानेवाले नेता किश्तियों की खोज में भटकते हुए नजर आते हैं। राजनीतिक षड्यंत्रों ने आज मनुष्य की चेतना को इतना विवश और असहाय कर दिया है कि वह दीवारों पर टंगा हुआ महसूस कर रहा है; क्योंकि आज आत्म-संकट और परिवेश-संकट उसको भयभीत एवं खोखला बना रहे हैं और वह ऐसी नारकीय जिंदगी में निर्जीव-सा पड़ा हुआ है। ऐसे में कवि ने व्यंग्य करते हुए कहा है-

> ''मैंने दरवाजे के बाहर/ एक पौधा लगाया और कहा/वन महोत्सव....''(90)

उपर्युक्त कविता में राजनीतिक व्यंग्य है, आज की शासन व्यवस्था और आदमी की निजता पर। आज आदमी अपने दिल के जंगलों को नहीं साफ कर रहा है। उसका हृदय ही जंगल हो गया है। स्वार्थपरता, निजता, द्वेष, भोगवृत्ति ये सब हृदय के जंगल हैं, जिनको वह साफ नहीं करना चाहता तथा दूसरी ओर शासन व्यवस्था की यह स्थिति है कि वन महोत्सव को लेकर सरकार ने जितने आंकड़े प्रस्तुत किए हैं; अगर सबकी संख्या को जोड़ दिया जाए तो पूरा भारतवर्ष पेड़ों का जंगल कहा जायेगा। कवि धूमिल की व्यंग्य की विशेषता बताते हुए डॉ. हुकुमचंद राजपाल ने कहा है- ''व्यंग्य में बहुत कुछ कवि कहना चाहकर भी नहीं कहता। वस्तुत: धूमिल का सारा काव्य समस्याओं का काव्यात्मक लेखा है; जिसमें आदमी, परिवार, समाज तथा देश की विवशताओं को प्रस्तुत करता हुआ

वह आँसू और हाथ की स्थिति तक पहुँचता है और व्यंग्य करता हुआ 'आग' की प्रेरणा देता है।''

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि कवि धूमिल की चिंता का केंद्रीय विषय समकालीन भ्रष्ट राजनीति है। स्थापित व्यवस्था के प्रति विद्रोह उनका मूल स्वर है। समकालीन राजनीतिक विडंबनाओं का उन्होंने पर्दाफाश किया है। उनका राजनीतिक बोध तीक्ष्ण व्यंग्य के स्वर में फूटा है। वे मानते हैं कि देश की दुर्दशा राजनेताओं की चरित्रहीनता के कारण हुई है। उनकी सुविधालोलुपता और भ्रष्ट आचरण का उन्होंने अत्यंत आक्रोश और विक्षोभ के साथ भंडा फोड़ किया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वे समकालीन राजनीति के सजग पर्यवेक्षक तथा जनता के सावधान प्रहरी थे। इसके अतिरिक्त न्याय की समस्या, भाषा-विवाद, तोड़-फोड़वाले हिंसक प्रदर्शनों की समस्या तथा भूख की समस्या से भी कवि धूमिल क्षुब्ध होते हैं। भूख की समस्या तो बार-बार विभिन्न रूपों में कवि की चेतना को झनझनाती रही है।

3.3 आलोचनात्मक यथार्थवाद और धूमिल का काव्य

आलोचनात्मक यथार्थवाद दरअसल यथार्थवादी रुझानों का अगला कदम ही माना जाता है। सुरेश सिंहा के अनुसार ''यथार्थवाद के लिए तटस्थ एवं निरपेक्ष दृष्टि की अपेक्षा होनी चाहिए। आलोचनात्मक यथार्थवाद का चित्रण करनेवाला लेखक ही यथार्थवाद की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है और अपनी दृष्टि भी तटस्थ एवं निरपेक्ष रख सकता है। पर तटस्थ एवं निरपेक्ष दृष्टि से जीवन और समाज की समस्याओं का यथार्थ चित्रण करके ही वह संतोष नहीं कर लेता; वरन् समाज की विकृतियों, विषमताओं एवं असमानताओं पर तीव्र प्रहार कर वह उनकी कटु आलोचना भी करता है।''(91) तात्पर्य यह है कि प्रकृतवादी और आलोचनात्मक यथार्थवाद के लेखक समाज में व्याप्त सभी प्रकार की बुराइयों को देखते हैं। प्रकृतवादी लेखक उन सामाजिक-राजनीतिक बुराइयों एवं कुरीतियों-विकृतियों का वर्णन भर कर देता है। उस पर अपनी राय नहीं बताता। जब कि आलोचनात्मक यथार्थवादी लेखक उसका वर्णन करने के साथ-साथ उसकी स्पष्ट आलोचनाएँ भी प्रस्तुत करता है। दोनों लेखकों में मूलभूत यही सूक्ष्म अंतर कहा जा सकता है।

आलोचनात्मक यथार्थवाद पर प्रकाश डालते हुए शिवकुमार मिश्र ने कहा है-''आज मार्क्सवादी विद्वानों ने आलोचनात्मक यथार्थवाद को 'बुर्जुआ यथार्थवाद' (Bourgeoise Realism) के नाम से भी पहचानने लगे हैं। 'बुर्जुआ यथार्थवाद' के अंतर्गत भी गोर्की ने दो प्रकार के लेखकों की चर्चा की है। एक वे लेखक जो अपने वर्गचरित्र को न छोड़ सकने के कारण अपने वर्ग हितों से जुड़े हैं और जिन्होंने अपने कृतित्व में अपने वर्ग का गौरवमान किया है। दूसरे प्रकार के बुर्जुआ लेखक वे हैं; जिन्होंने अपने वर्ग-स्वार्थ तथा वर्ग-हितों का अतिक्रम करते हुए अपने वर्ग की खरी आलोचना की है। ऐसे ही लेखकों को गोर्की ने 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' तथा क्रांतिकारी स्वच्छंदतावाद का स्त्रष्टा कहा है।''(92)

स्वातंत्र्योत्तर काव्य साहित्य में नागार्जुन, धूमिल, शमशेर, केदारनाथ सिंह आदि आलोचनात्मक यथार्थवाद के समर्थ कवि माने गए हैं; किंतु कवि धूमिल की रचनाओं(कविता) में आलोचनात्मक यथार्थवाद के दर्शन का आधिक्य है। वे सातवें दशक के प्रारंभ में आम जनता में से उभरे हुए ऐसे सशक्त यथार्थवादी कवि हैं; जिन्होंने समसामयिक आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक यथार्थवादी जीवन की मुसीबतों, संघर्षों एवं संवेदनाओं का ईमानदारी के साथ यथार्थ चित्रण किया है। धूमिल मार्क्सवादी एवं प्रगतिशील कवि रहे हैं। वह युगीन संक्रमण एवं परिस्थितियों का डटकर विरोध किया है। उन्होंने अपने सिद्धांतों, विचारों एवं मान्यताओं के अनुरूप विपरीत परिस्थितियों का वर्णन कर, उन्हें बदलने की कोशिश की है। इस कोशिश में उनकी आलोचनात्मक दृष्टि सक्रिय रही है।

धूमिल आलोचनात्मक यथार्थवाद के सशक्त कवि माने जाते हैं। जिनकी नजर विसंगतियों पर हमेशा पड़ती रही। इससे जन विरोधी शक्तियों का चरित्र जनता के प्रति स्पष्ट हो सका। ऐसा तभी संभव हुआ है; जब वे असंगति तथा संगति की पहचान के लिए जीवन की गहराई में उतरे। क्योंकि यथार्थ जीवन के प्रति एक जुट होना आलोचनात्मक यथार्थवाद के लिए बहुत आवश्यक होता है।

धूमिल का व्यंग्य आलोचनात्मक यथार्थवादी दृष्टि का परिणाम है। यथार्थ को वे धारदार बनाने के लिए व्यंग्य का आश्रय बार-बार लेते हैं। उनके काव्य में व्यंग्य के माध्यम से युगीन जीवन तथा सामाजिक विकृतियों, विद्रूपताओं, अभिशापों एवं असमानताओं की कटु आलोचना की गई है। समसामयिक, राजनीतिक, पाशविक प्रवृत्तियों, भ्रष्टाचार, अमानवीय व खोखले आदर्शों की भर्त्सना तथा पूँजीवादी संस्कृति की असंगतियों व उसके अंतर्विरोधों की ओर आलोचनात्मक दृष्टि से उन्होंने महसूस किया है कि यह एक ऐसी दुनिया है; जहाँ व्यक्ति की महत्ता, सभ्यता, न्यायपरायणता इत्यादि का मापदंड सिर्फ पैसा है। यही कारण है कि धूमिल की संवेदना करुण होकर आलोचनात्मक दृष्टि में परिवर्तित हो जाता है। यह आलोचनात्मक दृष्टि विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त हुई है।

3.31 पूँजीवादी व्यवस्था एवं शोषण

पूँजीवादी व्यवस्था को बदलने की शक्ति किसी एक अकेले में या फिर पाँच-दस लोगों की वश में नहीं है। यदि शासन सरकार चाहे; तो इस काम में कुछ सफलता हासिल कर सकती है। लेकिन कवि धूमिल शासन से भी क्षुब्ध हैं। उनका कहना है कि यदि देश के शासन को चलानेवाली संसद ही व्यवस्था को यथावत् बनाए रखने के पक्ष में हो जाए; तो परिवर्तन की आशा बेमानी होगी। संसद का यही चरित्र कवि को 'संसद से सड़क तक' आने के लिए विवश करता-सा लगता है। वर्तमान व्यवस्था को बनाए रखने में यदि संसद की ही रुचि हो; तो देश के साधारण लोग भला क्या कर सकते हैं? संसद के प्रति कवि धूमिल के कहे गए ये शब्द सार्थक एवं सटीक अभिव्यक्ति लिए हुए हैं; जो संसद के चरित्र को उसकी संपूर्णता के साथ उजागर करने वाले हैं-

''और वह सड़क / समझौता बन गई है / जिस पर खड़े होकर /
कल तुमने संसद को / बाहर आने के लिए आवाज दी थी /
नही, अब वहाँ कोई नही है / मतलब की इबारत से होकर /
सब के सब व्यवस्था के पक्ष में चले गए हैं।''(93)

कहना न होगा कि जब तक वर्तमान व्यवस्था के प्रति व्यक्ति के मन में कटुता जन्म नहीं लेगी; तब तक परिवर्तन करने के लिए हम कटिबद्ध हो ही नहीं सकते। धूमिल ने अपनी कविता में व्यक्ति और व्यवस्था के रिक्ततापन को स्पष्ट करते हुए कहा है-

''ऐसे में / जबकि खरगोश की छलाँगें और उदासी / चन्द्रलोक
की यात्राएँ और नीग्रो समस्याएँ / एक ही लकीर पर खड़ी
हों / बड़ी मुश्किल से अपना हो पाता है / धूप में टूटता हुआ
एक दिन'' (कल सुनना मुझे, पृ.13)

प्रसंगवश धूमिल ने देश की कानून व्यवस्था पर आलोचनात्मक दृष्टिपात करते हुए कहा है-

''देश डूबता है तो डूबे / लोग ऊबते हैं तो ऊबे / जनता लट्टू
हो / चाहे तटस्थ रहे / बहरहाल, वह सिर्फ यह चाहता है /
कि उसका 'स्वस्तिक' / स्वस्थ रहे।''(94)

स्पष्ट है कि देश की कानून व्यवस्था में बिखराव आ गया है। आज का राजनीतिज्ञ 'बनिया' बन गया है। उसे सिर्फ लाभ से मतलब है। उन्हें अपने कर्तव्यों के प्रति एहसास नहीं है। उनकी नजर में देश डूबने का कोई मतलब नहीं है। यह आम जनता शासन-व्यवस्था के दुष्परिणामों से ऊबकर निष्क्रिय हो रही है तो हो जाए। यह जनता व्यवस्था के परिवर्तन में चूर है या तटस्थ इससे भी कोई मतलब नहीं। यह व्यावसायिक राजनीतिज्ञ यही चाहता है कि उसका 'स्वस्तिक स्वस्थ रहे' अर्थात् उसे लाभ बराबर मिलता रहे।

वर्तमान भारतीय समाज दो वर्गों में बँटा हुआ है। एक ओर मजदूर वर्ग हैं जिसके पास रोटी, वस्त्र और छत नहीं है, जो दिनभर परिश्रम करके भी बदबूदार काली कोठरियों में रहने के लिए विवश हैं। दूसरी ओर ऐसे पूँजीपति भी हैं; जो मजदूर की कमाई पर ऐशोआराम की जिंदगी बसर कर रहे हैं। उन दोनों के बीच है मध्यवर्ग, जो टूटकर बिखर चुका है। कवि धूमिल ने ऐसे मध्यवर्ग की पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए कहा है- ''अक्सर तुम्हें देखा / (सोचा है देख-देख) अंतर्मन तुम्हारा एक खड़िये का टुकड़ा है।''(95)

कवि धूमिल की कविता अपने देश में फैले हुए व्यापक भ्रष्टाचार, चोरी-बाजारी, पाखंड तथा आपाधापी खासकर पूँजीपति सत्ताधारियों के धोखे के प्रति तीव्र आक्रोश एवं असंतोष अभिव्यक्त करती है। नेमिचंद जैन का मानना है-''उसमें आम तौर से इस स्थिति के लिए जिम्मेदार व्यक्तियों और वर्गों के प्रति नफ़रत और गुस्सा है और उसके अधिकार के लिए हमदर्दी; बल्कि उनके साथ तादात्म्य भी। वह एक ऐसे संवेदनशील कवि के मन

की यातना को सूचित करती है; जो आत्मलीन नहीं है, जिसका भावतंत्र अपने चारों ओर की जिंदगी के प्रति खुला और जागरूक है और इसीलिए उसकी करवटों और बेचैनी की गई लहरों को अंकित करता है।''(96)

पूँजीपति वर्ग नेताओं एवं अफसरों का संरक्षण प्राप्तकर आम जनता का शोषण कर रहा है और इन सबके कुचक्र में देश का आम आदमी पिसता रहा है। शोषण की प्रक्रिया इतनी तीव्र एवं भयावह है कि उसे पता ही नहीं चल पाता कि उसका शोषण किस भाँति हो रहा है। इसी भयावह शोषण व्यवस्था का अनावरण कवि ने अभिव्यक्त करते हुए कहा है-

''मैंने जब भी उनसे कहा है देश, शासन और राशन/
उन्होंने मुझे रोक दिया है/ अक्सर, वे मुझे अपराध के सही
मुकाम पर/ अँगुली रखने से मना करते हैं /
गोदाम अनाज से भरे पड़े थे और लोग /भूखों मर रहे थे।''(97)

भूख से पीड़ित आम आदमी की गर्दन इस पूँजीपतियों के पावों तले दबी हैं। कवि ने पूँजीवादी कानून व्यवस्था पर चोट करते हुए कहा है- ''जिंदा रहने के लिए/ घोड़े और घास को/ एक जैसी छूट है।''(98)

स्पष्ट है कि यहाँ घोड़ा और घास यानि शोषक और शोषित दोनों पर व्यंग्य किया गया है। विश्वनाथ त्रिपाठी के शब्दों में ''व्यंग्य विषमता या विरूपता से उत्पन्न होता है। विषमता सुषमा या औचित्य की विरोधी है। जो होना चाहिए वह न होने पर या जो नहीं होना चाहिए, उसके होने पर विरूपता होती है। विरूपता एक प्रकार की विकलांगता है। कुछ लोग मोटी तोंद पर, छोटी नाक पर ही हँसना जानते हैं।... शारीरिक विरूपता की तरह सामाजिक विरूपता होती है। शोषक और शोषित का वर्ग-विभाजन मानव-समाज की सबसे बड़ी विषमता और विरूपता है।''(99)

देश की कानून व्यवस्था में तीन वर्ग उत्पन्न हुए हैं; जहाँ एक रोटी के लिए प्रयत्नशील है , परिश्रम करता है। एक रोटी खाता है और तीसरा रोटी से खेलता है। दरअसल यही वर्ग संसद में बैठा है। इसी को आम जनता अपनी हितैषी समझती रही है। लेकिन वास्तविकता इसके विपरीत है। ऐसे में कवि धूमिल ने संसद पर आलोचनात्मक प्रहार करते हुए कहा है-

''संसद/ देश की धड़कन को/ प्रतिबिंबित करनेवाला दर्पण
है/ ×××अपने यहाँ संसद/ तेली की वह घानी है/जिसमें
आधा तेल है/ और आधा पानी।''(100)

धूमिल की आलोचनात्मक दृष्टि सिर्फ वामपंथी पूँजीवाद तक ही सीमित नहीं है; बल्कि अमेरिका जैसे दक्षिण-पंथी-पूँजीवादी देशों की अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक फैली हुई

है। ऐसे पूँजीवादी देशों ने दक्षिण-पूर्व-एशिया महाद्वीप के देशों का बँटवारा कर अशांति का माहौल बना दिया है। कवि धूमिल ने ऐसे दक्षिणपंथी नैतिकता पर कटु आलोचना करते हुए कहा है-

> यह एक खुला हुआ सच है कि आदमी / दायें हाथ की नैतिकता
> से / इस कदर मजबूर होता है / कि तमाम उम्र गुजर जाती
> है मगर गाँड़ / सिर्फ बायाँ हाथ धोता है।''(101)

धूमिल अच्छी तरह भाँप गए थे कि ये दक्षिण पंथी पूँजीवादी ताकतों ने अपने पुराने उपनिवेशों को आजादी तो दी; परंतु उनका शोषण करने के लिए सांस्कृतिक एवं आर्थिक साम्राज्यवाद को बढ़ावा दिया है। धूमिल की कविताओं में मूलरूप से जो बात दिखलाई पड़ती है, वह है आलोचनात्मक यथार्थवाद; जिसके अंतर्गत शोषण का विरोध प्रमुख है। चाहे वह राजनीतिक तथा सामाजिक स्तर पर हो, चाहे परिवार के स्तर पर हो, हर जगह उसका विरोध किया है और उन सबके विरोध में स्थितियों के समाधान के रूप में संघर्ष को उन्होंने प्रस्तुत किया है। सामंतवाद के स्वरूप, उनकी वृत्तियों व उनके टूटते हुए रूप का चित्रण व शोषण के विविध प्रयासों का आलोचनात्मक रूप उन्होंने प्रस्तुत किया है।

अरुण महेश्वरी ने आलोचनात्मक यथार्थवाद के तहत पूँजीवादी समाज पर प्रकाश डालते हुए कहा है- ''साहित्य की यथार्थवादी दृष्टि अपने मूल रूप में साहित्य को जिंदगी के ठोस यथार्थ से जुड़ा देखने की दृष्टि है। आलोचनात्मक यथार्थवाद इसे पूँजीवादी समाज की विकृतियों के संदर्भ में उसकी खुली आलोचना करने की दृष्टि देता है और समाजवादी यथार्थवाद आलोचना की इस दृष्टि को समाज के विकास की वैज्ञानिक समझ से जोड़कर उसे पूँजीवादी समाज की आलोचना के साथ ही भविष्य के निर्माण की परियोजना से जुड़ने का अर्थ प्रदान करता है।''(102)

3.32 पंचवर्षीय योजना की विफलता : धूमिल ने पूँजीवादी व्यवस्था की भष्ट राजनीति, नौकरशाही, राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय वितंडावाद पर आलोचना की है। पूँजीवादी व्यवस्था के राजनीतिज्ञों, श्रीमंतों, साहुकारों, धर्माचार्यों तथा सत्ताधीशों की दुष्ट प्रवृत्तियों को उजागर करते हुए धूमिल ने कहा है कि ये सभी नेहरूवादी नेता हैं; जो नवयुवक को रोजगार पाने के लिए दफ्तर-दफ्तर भटकने के लिए मजबूर कर देते हैं। रोजगार दफ्तर के माध्यम से ये नवयुवक रोजगार पाने की आशा-आकांक्षा लिए हुए, वर्षों तक लंबी प्रक्रिया से होते हुए, अंत में असहाय हो जाते हैं। परिणाम स्वरूप आत्महत्या करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। इन लोगों ने जो पंचवर्षीय योजनाएँ बनाई हैं, उसका सही नैतिकतापूर्ण क्रियान्वयन नहीं किया गया। अत: धूमिल ने पंचवर्षीय योजना पर आलोचनात्मक रुख अपनाते हुए कहा है-

> पंचवर्षीय योजनाओं की सख्त चट्टान को / कागज से काट

रहा हूँ/ बूढ़ों को बीते हुए का दर्प और बच्चों को विरोधी/
चमड़े का मुहावरा सिखा रहा हूँ।''(103)

कवि धूमिल ने पंचवर्षीय योजनाओं की असफलता पर विक्षोभ प्रकट किया है तथा उसकी खूब आलोचना भी की है। नेहरूवादी नेताओं के कारण बूढ़े रिटायर हो रहे हैं, अपने दर्प अहंकार को बखान करके अपना शेष जीवन देश के पुराने गौरव का अतीत की संस्कृति का गुणगान खूब जमकर कर रहे हैं। लेकिन देश के भविष्य की ओर किसी का भी ध्यान नहीं जाता है। हमारे बच्चे गलत राह पर चलकर समय से पहले ही अपनी इस प्रजातांत्रिक व्यवस्था में जीवनी शक्ति नष्ट करने में लगे हैं।

3.33 समाजवाद एवं भ्रष्ट प्रजातंत्र :

हमारे देश में प्रजातंत्र केवल नाम मात्र के लिए है। उसकी आड़ में निरंतर शोषण की प्रक्रिया जारी है। मानवीय जीवन-मूल्य गिर चुके हैं। समाजवाद और प्रजातंत्र के नाम पर एक घिनौना-कुरूप खेल अपने स्वार्थ के लिए खेला जा रहा है। कवि की निगाह में समाजवाद मात्र दिखावा है। यह समाजवाद जनता के लिए मात्र सुरक्षा का मुहावरा बन कर रह गया है; क्योंकि धूमिल के शब्दों में-

''भूख और भूख की आड़ में/ चबाई गई चीजों का अक्स/
उनके दाँतों पर ढूँढना/ बेकार है। समाजवाद/ उनकी जुबान
पर अपनी सुरक्षा का/ एक आधुनिक मुहावरा है।''(104)

स्पष्ट है कि पढ़े-लिखे कानून के लोग, भूख की आड़ लेकर हर सामाजिक चीज को निगल गए हैं और कहीं कोई सबूत नहीं छोड़ा। कहने का तात्पर्य है कि समाजवाद एक सिद्धांत बनकर ही रह गया है; जो मात्र विचारों तक ही सीमित है। कवि धूमिल समकालीन कवियों में एक महत्त्वपूर्ण आलोचनात्मक यथार्थवादी कवि रहे हैं। डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के शब्दों में - ''उनकी कविता भी भारतीय जनतंत्र की स्थितियों का सीधा साक्षात्कार कराती हैं, राजनैतिक ढोंग, छल, पाखंड और उसकी मानव विरोधी हरकतों पर धूमिल की कविता कड़ा प्रहार करती है।''(105) कार्ल मार्क्स ने जिस समाजवाद की कल्पना की थी; ठीक उसके विपरीत भारतीय समाजवाद का रूप है। धूमिल ने अपने समाजवाद की स्थिति का उल्लेख करते हुए कहा है-

''मेरे देश का समाजवाद/ मालगोदाम में लटकी हुई/उन
बाल्टियों की तरह है जिस पर 'आग' लिखा है/और उनमें
बालू और पानी भरा है।''××× ''अपने यहां संसद/ तेली
की वह घानी है/ जिसमें आधा तेल है/और आधा पानी
है।''(106)

स्पष्ट है कि यहाँ 'आग' और 'पानी' दो परस्पर विरोधी स्थितियों का द्योतक हैं। आग के स्थान पर पानी का होना ठीक वैसा ही है जैसा समाजवाद लाने का नारा

देकर पूँजीवाद के विस्तार में योग देना, जिसका आजादी की पश्चात् देश के प्रजातंत्र में आरंभ हुआ। कवि ने देश की संसदीय प्रणाली को 'तेली की घानी' के समान निरर्थक एवं व्यर्थ बताया है।

चुनाव के समय होनेवाली धांधलियों तथा नेताओं के दिखावटी वायदों पर कवि ने कटु आलोचना की है; क्योंकि चुनाव में मात्र सत्ता परिवर्तन होता है, जबकि सत्ताधारी वही बने रहते हैं। इनका पर्दाफाश करते हुए कवि धूमिल ने कहा है-

> हाँ यह सही है कि इन दिनों/ मंत्री जब प्रजा के सामने आता है/ तो पहले से/ कुछ ज्यादा मुस्कराता है/ नए-नए वादे करता है / ×× ×× हाँ यह भी सही है कि कुर्सियाँ वही हैं/ सिर्फ टोपियाँ बदल गयी हैं।''(107)

धूमिल की कविताओं में राजनीतिक व्यवस्था तथा राजनेता उनके वैचारिक संघर्ष के प्रमुख लक्ष्य बने हैं। राजनीतिक व्यवस्था के प्रति धूमिल की आलोच्य दृष्टि अत्यंत आक्रामक एवं कटु है। उन्हें ऐसा लगता है कि भ्रष्टाचार ने ही कुर्सियों और टोपियों का रूप धारण कर लिया है। देश के नेता दिन-ब-दिन स्वार्थी एवं धूर्त बनते जा रहे हैं। ऐसे नेताओं पर आलोचनात्मक प्रहार करते हुए कवि धूमिल ने कहा है-

> ''मैंने राष्ट्र के कर्णधारों को/ सड़कों पर/ किश्तियों की खोज में/ भटकते हुए देखा है।''(108)

'पटकथा' संसद से सड़क तक काव्य संग्रह की अंतिम और लंबी कविता है जिसमें भारत की आजादी से लेकर सातवें दशक तक की दशा का चित्रण करती है। कवि ने इसमें राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक संदर्भों में जो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं उसका यथार्थवादी ढंग से चित्रण किया है। आज संपूर्ण व्यवस्था में कालाबाजारी, रिश्वतखोरी जारी है। लोग भाईचारे की भावना को भुलाकर कुर्सी की राजनीति और धोखाधड़ी जैसे जघन्य कार्यों में लिप्त हैं। इस बात का तीखा एहसास कवि धूमिल को हो गया था। अत: वे आलोचनात्मक यथार्थवाद के रुझानों से कहते भी हैं-

> उन्होंने किसी चीज को सही जगह नहीं रहने दिया/ न संज्ञा/ न विशेषण/ न सर्वनाम/ एक समूचा और सही वाक्य/ टूटकर/ बि ख र गया है।'' (संसद से सड़क तक,पृ.109)

अर्थात् इस देश की संपूर्ण संरचना बिखर गई है । राष्ट्रीय नेतृत्व खोखला हो गया है और आपसी सौहादर्य, बंधुत्व प्रेम की भावना खत्म हो चुकी है। 'पटकथा' में न केवल पंचवर्षीय योजनाओं की असफलता पर व्यंग्य है; बल्कि देश की गिरावट का तीखा एहसास भी है। साथ ही यथार्थ को 'समग्र' दृष्टि से देखने का आग्रह भी है। शिवकुमार मिश्र के विचारानुसार ''समाजवादी यथार्थवाद यथार्थ की एक समग्र दृष्टि है जो ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में वस्तुगत यथार्थ को पूरी समग्रता में देखने के साथ उस भविष्य का रूप भी उद्घाटित

करती है, जिसका जन्म वर्तमान के बीच से ही होना है, जिसके बीज वर्तमान व्यवस्था में ही छिपे हैं। समाजवादी यथार्थवाद की यह भविष्य दृष्टि (Vision) उसकी बहुत बड़ी विशेषता है, जो इस कारण रोमांटिकों के कल्पना-स्वप्नों तथा हवाई यूटोपिया से भिन्न है कि उसकी जड़ें वस्तुगत यथार्थ में गहराई से जमी है।''(109)

समकालीन आलोचकों की राय से धूमिल आलोचनात्मक यथार्थवादी विचारधारा के कवि हैं। उन्होंने हिन्दुस्तान की जनता की यातनाओं को यथार्थ के धरातल पर रूपायित करने का प्रयास किया है। आज के नेता कुर्सी से चिपके हुए हैं। लोगों को नए-नए वादे देकर उन्हें अंधेरे में रखने की कोशिश होती रही है। इन्हीं नेताओं ने विरोधी पार्टी की टोपियाँ बदल-बदल कर अपने ही नेताओं का विरोध किया है। इनमें न कोई 'हया' है और न ही 'दया'। इनकी वजह से ही पूरी राजनीतिक व्यवस्था में हलचल और शोर-शराबा मचा हुआ है। ऐसे नेताओं में मर्दानगीवाली बात कहीं नहीं स्पष्ट हो रही है। अत: धूमिल ऐसे ही नेताओं की आलोचना करते हुए कहते हैं-

''नहीं अपना कोई हमदर्द / यहाँ नहीं है / मैंने एक-एक को /
परख लिया है / मैंने हरेक को आवाज दी है / हरेक का दरवाजा
खटखटाया है / मगर बेकार.. मैंने जिसकी पूँछ / उठायी है
उसको मादा / पाया है''(110)

धूमिल समकालीन कविता के अग्रणी कवि हैं, जिन्होंने राजनीतिक चेतना को आलोचनात्मक यथार्थवाद के रूप में स्वीकार किया है। कवि गत पच्चीस वर्षों के भारत की वास्तविकता को अनेक संदर्भों-स्थितियों अथवा उल्लेखों में प्रस्तुत करते हैं।

समकालीन कविता की यही विशेषता है कि वह आदमी के अंतर्विरोधों से समाज, युग एवं देश में व्याप्त परस्पर विरोधी धारणाओं को प्रस्तुत करती है। समकालीन कवियों के संबंध में अशोक वाजपेयी का यह कथन काफी हद तक उचित ठहरता है- ''अगर कवि अपने विचारों से खासकर राजनीतिक विचारों से, जो आज की दुनिया में इतने प्रभावशील हैं, अपने को काट लिया या अलग रखा तो फिर नए कवि का यह दावा, कि वह समकालीन सच्चाई का साक्षात्कार करने की कोशिश कर रहा है, व्यर्थ हो जाएगा। राजनीति को दरकिनार रखकर समकालीन सच्चाई का साक्षात्कार सार्थक और प्रासंगिक नहीं हो सकता।(111) अशोक वाजपेयी के उपर्युक्त कथन की अभिव्यक्ति धूमिल की प्राय: सभी कविताओं में दृष्टिगोचर होती है। आदमी के विभिन्न मुखौटों का पर्दाफाश कर वे सड़क से लेकर संसद तक के सभी वर्गों से भली-भाँति परिचित थे। धूमिल का मानना है कि देश में जो कानून, धर्म, नैतिकता, कला-साहित्य- संस्कृति आदि है। वह सभी शोषक वर्ग के संकेतों पर चलाया जाता है। ये ही वर्गाश्रित समाज-व्यवस्था की तमाम कुत्साओं के लिए उत्तरदायी हैं। अत: धूमिल उनकी आलोचना करते हुए कहते हैं -

वे सबके सब तिजोरियों के / दुभाषिये हैं / वे वकील हैं /

वैज्ञानिक हैं / अध्यापक हैं / नेता हैं / दार्शनिक हैं। / लेखक
हैं। कवि हैं। कलाकार हैं।/ यानि कि/ कानून की भाषा
बोलता हुआ / अपराधियों का एक संयुक्त परिवार है।''(112)

स्पष्ट है कि यहाँ जितने भी वर्गों के व्यक्तियों का जिक्र किया गया है, वे सबके सब किसी-न-किसी माध्यम सें जनता का शोषण करते हैं। ये उच्च वर्ग पर आश्रित उच्च मध्यवर्ग की श्रेणी में आते हैं। डॉ. सुधा सिंह के शब्दों में- ''शोषण के रूप में उच्च मध्यवर्ग जो व्यावसायिक हैं, सरकारी तथा गैर सरकारी स्तर पर शोषण का काम जारी रहा है और इसी वर्ग के लोग ज्यादा उसमें फँसे हुए हैं। यह वर्ग अपने से समाज को अलग करके देखता है तथा निम्न-मध्यवर्ग का शोषण षड्यंत्र रचता है।''(113)

अत: कहा जा सकता है कि पूँजीवादी कानून व्यवस्था तथा शोषण, पंचवर्षीय योजना, समाजवाद और प्रजातंत्र, भ्रष्ट राजनेता, कुर्सी, टोपी तथा चुनाव आदि कवि धूमिल के आलोचनात्मक यथार्थवादी दृष्टि से बच नहीं पाये।

3.34 अंतर्राष्ट्रीय नीतियों का पर्दाफाश

धूमिल की काव्य-दृष्टि देश की प्रजातांत्रिक राजनीतिक स्थिति का चित्रण करने तक ही सीमित नहीं है; बल्कि उनकी दृष्टि अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक संदर्भों तक जा पहुँची है। आजादी के पश्चात् भारत विश्वशांति एवं पंचशील जैसे नीतियों पर भरोसा करता रहा है। लेकिन एक दिन अचानक पश्चिमी सीमा पर पाक के हमले ने सबको अचंभे में डाल दिया। कवि ने सीमा पर हो रहे युद्ध से चौंकते हुए कहा-

''सुलग उठा पश्चिमी सीमान्त/ ध्वस्त....ध्वस्त... ध्वान्त...
ध्वान्त.../मैं दोबारा चौककर खड़ा हो गया/ जो चेहरा
आत्महीनता की स्वीकृति में/ कंधे पर लुढ़क रहा था,''(114)

कवि धूमिल को अंतर्राष्ट्रीय राजनीतियों की कितनी गहराई से जानकारी थी, यह किसी से छिपा नहीं है। हमारा पड़ोसी पाकिस्तान घात-लगाकर अवसर की प्रतीक्षा में बैठा हुआ है और हम विश्वशांति का पैगाम लिए हुए युद्ध न करने की जैसे कसम खा ली है। उधर चीन-भारत के बीच 'मैक मोहन रेखा' एक विवादास्पद मुद्दा बनकर हमारे समक्ष सीना ताने खड़ी है, जिसमें भारत की हार होती है। कवि धूमिल ने इसकी ओर संकेत करते हुए कहा है-

''गिद्धों की आँखों के खूनी कोलाहल और ठंडे लोगों की/
आत्मीयता से बचकर/ मैक मोहन एक मुर्दे की बगल में सो
रही है/ और मैं दुनिया के शांति-दूतों और जूतों को/ परंपरा
की पालिश से चमका रहा हूँ।''(115)

स्पष्ट है कि कवि ने चीन को 'गिद्ध' और भारत को 'मरा हुआ आदमी' की

संज्ञा दी है तथा 'मैक मोहन रेखा' को देश की पराजय की संज्ञा। इसी जगह पर भारी संख्या में हमारे सैनिक नौजवान देश की गलत नीतियों के कारण भस्म हो गए। उन्हें यह भी मालूम है कि कुछ पूँजीवादी राष्ट्रों ने मात्र युद्ध-द्वारा ही नहीं; बल्कि अपने धन को भारत जैसे विकासशील देशों में लगाकर उन्हें अपना गुलाम बनाया है। इस संदर्भ में कवि धूमिल की यह पंक्तियाँ ध्यातव्य हैं-

> ''मैं देख रहा हूँ कि एशिया में दाएँ हाथ की मक्कारी ने/
> विस्फोटक सुरंगे बिछा दी हैं/ उत्तर-दक्षिण-पूरब-पश्चिम
> कोरिया, वियतनाम/ पाकिस्तान, इजरायल और कई
> नाम....''(116)

उपर्युक्त पंक्ति में 'दाएँ' से अभिप्राय अमेरिका जैसे दक्षिणपंथी-पूँजीवादी देश से है। जो दक्षिण-पूर्व एशिया महाद्वीप के देशों का बँटवारा करवा कर अशांति का माहौल बना दिया। कवि धूमिल ने ऐसे दक्षिणपंथी नैतिकता पर करारा व्यंग्य करते हुए कहा है-

> ''एक खुला हुआ सच है कि आदमी/ दाएँ हाथ की नैतिकता
> से/ इस कदर मजबूर है / कि तमाम उम्र गुजर जाती है मगर
> गाँड़/ सिर्फ, बायाँ हाथ धोता है।''(117)

कवि धूमिल अच्छी तरह भांप गए थे कि ये दक्षिणपंथी पूँजीवादी ताकतों ने अपने पुराने उपनिवेशों को आजादी तो दी है; परंतु सांस्कृतिक एवं आर्थिक तथा साम्राज्यवाद को बढ़ावा देते हुए उनका शोषण ही किया है। साम्राज्यवादी शक्तियों-नीतियों के षड्यंत्रों को पहचानकर वे अत्यंत दु:खी होते हैं और जनता को इनसे सावधान भी करना चाहते थे। इनकी पीड़ा धूमिल की पीड़ा है। उन्होंने अपनी इस व्यथा को इन पंक्तियों में दर्शाने की कोशिश की है-

> ''मैं अपनी भूखी अँतड़ियाँ हवा में फैलाकर/ पूरी नैतिकता
> के साथ अपने सड़े हुए अंगों को सह रहा हूँ/ भेड़ियों को भाई
> कह रहा हूँ।''(118)

यह सनातन सत्य है कि भेड़ियों को भाई कहने की विवशता ही हमारी आर्थिक तंगी का कारण बन गई है। धूमिल को लगता है कि 'भारत का चरित्र पारदर्शक नहीं रहा।' क्योंकि उसे लंदन एवं न्यूयार्क के संकेतों पर अपनी नीतियों का परिवर्तन करना पड़ा है-

> ''लंदन और न्यूयार्क के घुंडीदार तसमों से/ डमरू की तरह
> बजता हुआ मेरा चरित्र/ अंगरेजी का 8 है।''(119)

स्पष्ट है कि लंदन और न्यूयार्क के छुंडीदार तस्में यानी पूँजीवादी नीतियाँ भारत के डमरू पर निरंतर चोट कर रही है। हम 'अंग्रेजी के 8' (यानी पूँजीवादी व्यवस्था में) की तरह ही तटस्थ होकर उनकी नीतियों का पालन करते हुए खुश हैं। जबकि ये विदेशी नीतियाँ ही हमारी एकता को खंडित करने का ही प्रयास करती रही हैं।

कवि धूमिल ने अपनी कविताओं में सामाजिक, राजनीतिक और आम-आदमी की जिंदगी की चेतना को प्रस्तुत करते हुए आज की नियत और उसकी भोगवृत्ति की दासता आदि का अन्वेषण किया है। एक स्थान पर अपनी आंतरिकता के प्रयोगों में आनेवाले उपकरणों के बिंबों से जिंदगी की सच्चाई, ईमानदारी और आत्म-चेतना का दर्पण प्रस्तुत करते हुए कवि धूमिल ने कहा है-

> "जब मैं बाहर आया/ मेरे हाथों में/ एक कविता थी और
> दिमाग में/ आँतो का एक्स-रे/ वह काला धब्बा जो कल
> तक एक शब्द था;/ खून के अँधेरे में/ दवा की शीशी का
> ट्रेडमार्क/ बन गया था।"(120)

स्पष्ट है कि यहाँ यथार्थ से संघर्ष करते हुए अभावग्रस्त दु:खी, बीमार की विषमताओं का उल्लेख है। कवि का जीवन परिचय देखने से पता चलता है कि वे अभावों में जिंदगी बिताएँ हैं। उनका कहना है कि कविता जिंदगी को जोड़ती है। शब्द जिंदगी को जोड़ते हैं; लेकिन आज राजनीतिक प्रदूषण ऐसी नारकीय घिनौनी व्यवस्था का बेमिशाल साक्ष्य है, जो लोगों के दिमाग में बसे हुए शब्दों, जिसमें लोगों के संस्कार सुरक्षित हैं, समाज सुरक्षित है, आदमियत सुरक्षित है आदि को राजनीतिज्ञों ने प्रचार का माध्यम बनाकर दवा के शीशी का ट्रेडमार्क बना दिया है। यहाँ दवा है- लोकतंत्र, शीशी है- कांग्रेस पार्टी और ट्रेडमार्क है- झूठे नारे। प्रदूषित राजनीति ने राजनेताओं को इतना भ्रष्ट कर दिया है कि आज शब्द अपनी अर्थवत्ता को खोकर कलंक और धब्बे के रूप में दिखाई दे रहे हैं। यहीं पर कवि धूमिल यह भी स्वीकारते हुए कहा है-

> "औरतों के लिए गैर-जरूरी होने के बाद/ अपनी ऊब
> का/ दूसरा समाधान ढूँढना जरूरी है।"(121)

इन पंक्तियों के द्वारा कवि यह कहना चाहते हैं कि आज समाज की विसंगतियाँ और विडंबनाएँ इतनी अधिक भयावह और त्रासद हो गई हैं कि औरत जरूरत की वस्तु नहीं है। इसीलिए वह उपेक्षित है। उसके जीवन में संत्रास, पीड़ा, व्यथा आदि का समावेश है। कभी-कभी उनकी कविताओं का अध्ययन करते हुए विद्वानों को उनकी काम-कुंठा का आभास होने लगा है। शायद इसलिए कि कवि ने एक स्थान पर कहा है-

> "मेरी सुहाग रात/ उस सितारे की चीख थी/ जो सागर में
> चमकी और बिना किसी/ भाषा के बुझ गई।"(122)

स्पष्ट है कि यहाँ कुछ विद्वानों ने उनकी काम-कुंठा की ओर संकेत किया है। जबकि वह नहीं है। धूमिल की कुंठा एवं निराशा पर टिप्पणी करते हुए डॉ. चमनलाल गुप्त ने कहा है- "दो-चार कविताओं में ऐसे निराशा और कुंठाओं से भरे भाव व्यक्त हो जाने मात्र से धूमिल को 'निराश सिनिक' या 'दमित अहं' से ग्रस्त कवि नहीं कहा जा सकता है। उसके काव्य का मूल स्वर उत्साह एवं व्यंग्य का है।"(123)

कहा जा सकता है जो अधिकांश विद्वान सोचते हैं उससे कहीं ऊपर कवि धूमिल की दृष्टि है। कवि धूमिल का विवाह एकदम कच्ची उम्र में हो गया था। उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। उनके मन में अपनी पत्नी के प्रति अपार प्रेम था। पत्नी को वे कुछ-न-कुछ वस्तुएँ देना चाहते थे; लेकिन पारिवारिक जिम्मेदारी के कारण असमर्थ हो जाते हैं। कवि ने यहाँ उसी परिस्थिति को आलोचनात्मक ढंग से प्रस्तुत करने की कोशिश की है। कवि धूमिल ने जिन परिस्थितियों में अपना जीवन व्यतीत किया है, वहाँ की विकृतियों एवं विसंगतियों की व्यापकता देखकर वे कभी-कभी भयभीत हो जाया करते थे। कवि ने कहा भी है-

> ''मेरे गाँव में/ वही आलस्य, वही ऊब/ वही कलह, वही तटस्थता/ हर जगह और हर रोज.../ और मैं कुछ नहीं कर सकता/ मैं कुछ नहीं कर सकता''(124)

स्वतंत्रता पूर्व आम आदमी ने ब्रिटिश सरकार के न्याय व्यवस्था की क्रूर एवं अमानवीयता का घोर विरोध किया था। उन्हें विश्वास था कि हमारे देश के लोगों का शासन होगा। हमें उचित सहानुभूति एवं न्याय मिलेगा; किंतु उन्हें उससे बदतर जिंदगी मिली। वे सुख एवं समृद्धि तथा प्रगति के जो स्वप्न देखे थे, वह सब-के-सब देश में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक भ्रष्टाचार तथा नौकरशाही व लालफीताशाही के कारण चकनाचूर हो गए। देश में व्याप्त नौकरशाही ब्यूरोक्रेटिक दृष्टिकोण और घोर परेशानियों तथा विडंबनाओं पर तीखा आक्रोश व्यक्त करते हुए धूमिल ने कहा है-

> ''फड़कती भुजाओं और/ सिसकती हुई आँखों के एक साथ/ लालफीतों में लपेटकर/ वे रख देंगे/ काले दराजों के निश्चल एकांत में/ जहाँ रात में/ संविधान की धाराएँ/ नाराज आदमी की परछाई को/ देश के नक्शे में बदल देती है''(125)

कवि धूमिल ने 'बीस साल बाद' शीर्षक कविता में इस देश में हो रहे भयावहता एवं अमानवीयता का ऐतिहासिक यथार्थ का चित्रण किया है। आजादी के पश्चात् देश की आम जनता ने जो खुशहाली की कल्पना की थी, आज उसी का नक्शा फड़फड़ाता हुआ जमीन पर गिर पड़ा है। यही नहीं, उस पर गाय का गोबर भी पड़ा है। जो वीभत्स एवं कुरुप लग रहा है। धूमिल का आशय है कि इस नक्शे की हिफाजत के लिए तन-मन अर्पित करना चाहिए। लेकिन नहीं। ऐसा क्यों है? इसीलिए कि आम जनता ने जो सपने देखे थे, वे पूरे नहीं हुए। उनका मोहभंग हो जाता है। जब उनका मोहभंग हो जाएगा तो देश के नक्शे को कौन संभालेगा? डॉ. चमनलाल गुप्त ने ठीक ही लिखा है- ''आजादी का लाभ आम आदमी तक नहीं पहुँचा और न ही भविष्य में इसकी आशा की जा सकती है।''(126) ऐसे में कवि धूमिल ने आम जनता की पक्षधरता करते हुए आजादी की वास्तविकता की ओर संकेत करते हुए कहा है-

"क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है/ जिन्हें
एक पहिया ढोता है/ या इसका कोई खास मतलब होता
है?"(127)

प्रत्येक रचनाकार समाज में सकारात्मक परिवर्तन की कामना चाहता है और वह अपनी रचनाधर्मिता के द्वारा सामाजिक रूढ़ियों को उसमें व्याप्त विद्रूपताओं एवं विसंगतियों को दूर भी करना चाहता है। इस परिवर्तन के कुछ निश्चित मानदण्ड एवं विचारधाराएँ भी हमारे समक्ष उपस्थित हैं; जैसे सुधारवादी आंदोलन की वैचारिकता, प्रगतिशील (मार्क्सवाद), गांधीवाद आदि। मोटे रूप में किसी 'वाद' एवं 'विचारधारा' के प्रवाह में बहकर धूमिल ने कविताएँ नहीं लिखी है। उनकी कविताओं में जो भी विचारधारा आई है वह अनायस या जानबूझकर नहीं लाई गई है।

कवि धूमिल की कविता में अभिव्यक्त आम आदमी की उदासीपन, भूख की समस्या, उनके दब्बूपन की स्थितियों का यथार्थपरक चित्रण तथा उस चालाक आदमी की चालाकी भरी भाषा और व्यवस्था के विरुद्ध की गहरी प्रतिक्रिया के रहते हुए भी उनकी यथार्थवादी दृष्टि की वस्तुपरकता और निहित मंतव्य के जनवादी रुख को देखते हुए यह स्पष्ट है कि कवि भौतिक पक्ष में द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया के पक्षधर हैं। यह पक्षधरता निश्चित ही यथार्थ के शोषित-उपेक्षित पटल पर नई क्रियाशीलता पर नई संभावनाओं को उभारते हुए 'परिवर्तन की गति' को वैचारिक धरातल पर तेज करने में सहायक सिद्ध हुई है। वैसे भी, वस्तुस्थिति को क्रियाशीलता की ओर उन्मुख करने के लिए द्वंद्वात्मक दृष्टिकोण के अतिरिक्त कोई अन्य वैचारिक मार्ग भी नहीं है। इसी दृष्टिकोण को मार्क्स ने "मानवीय चिंतन के गति-नियमों का विज्ञान"(128) कहा है।

कवि धूमिल की समूची रचनाधर्मिता तत्कालीन युगीन संदर्भ में, समस्त अमानवीय स्थिति एवं शोषण जनित संकट के बीच व्यवस्था को बदलने की कोशिश रही है। फिर भी वे किसी मतवाद या द्वन्द्वात्मकता के सिद्धांत को मुखर करनेवाले 'बढ़गुमान काइयां' व बड़बोलेपन के कवि नहीं हैं। डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी के मतानुसार "वे प्रत्यक्ष यथार्थ के संवेदनशील चितेरे हैं। संवेदनशीलता ही उनके भीषण आक्रोश की जननी है। धूमिल ने अत्याचार से त्रस्त अवाम की स्थितियों-गतियों को भी अपनी सतर्क समझ से परखा है।(129) उनकी चिंता युवक ऊर्जा के अभावग्रस्त होने और आदमी के 'भूख' से पीड़ित होने तथा चालाक व्यवस्था के छद्म की प्रतिक्रिया से उभरी है। उनकी क्रांति चेतना न तो हिंसक है न अहिंसक; वे तो पूरे शहर और गाँव को अपनी ओर मिलाने के प्रयत्न में रहे हैं। इसके लिए वे कविता द्वारा विरक्ति, ऊब, उदासीपनता एवं सहनशीलता को ध्वस्त करने की बात करते हैं। एक स्थान पर कवि धूमिल ने नैतिकता से उत्पन्न सहनशीलता को परिवर्तन में बाधक बताते हुए कहा है-

"मगर मैं अपनी भूखी अँतड़ियाँ हवा में फैलाकर/पूरी नैतिकता

के साथ अपने सड़े हुए अंगों को सह रहा हूँ /भेड़िये को भाई
कह रहा हूँ''(130)

सामाजिक बदलाव के लिए कविता को शस्त्र समझनेवाले धूमिल अपने आलोचनात्मक दृष्टि एवं व्यंग्यात्मक वाणी का निशाना भ्रष्ट व्यवस्था, राजनेता, साहित्यिक, बौद्धिक, पूँजीपति आदि को बनाते रहे हैं। जहाँ उनकी आलोचना प्रक्रिया तीखी एवं कोंचनेवाली होती है; वहाँ सहानुभूति या करुणा के लिए कोई स्थान नहीं है। धूमिल के काव्य में व्यंग्य प्राय: वक्तव्य बनकर आते हैं। इसका आधार मूल तत्व आलोचनात्मक दृष्टि है। 'मोचीराम' कविता के माध्यम से समाज में व्याप्त अंतर्विरोधों पर कटु आलोचना करते हुए कवि का मोचीराम कहता है-

''बाबूजी ! सच कहूँ मेरी निगाह में/ न कोई छोटा है/ न
कोई बड़ा है/ मेरे लिए, हर आदमी एक जोड़ी जूता है /
जो मेरे सामने/ मरम्मत के लिए खड़ा है।''(131)

सामाजिक खंडन आलोचना, हास्य एवं आक्रामकता व्यंग्य के आधारभूत तत्त्व हैं। कवि धूमिल की कविता में अभिव्यक्त व्यंग्य का कथ्य भले ही सीमित हो, पर उस कथ्य के माध्यम से व्यंजित होनेवाला फलक बहुत विराट है। उसकी तुलना बूंद में छिपे सागर के आभास से की जा सकती है। धूमिल का काव्योद्देश्य राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक विसंगतियों को प्रकट करना है। अत: धूमिल की भाषा आलोचनात्मक बन गई है। वे समाज की विकृति को प्रकट करने के लिए ही गर्भपात, जूजी, चोली, कोकशास्त्र आदि शब्दों का प्रयोग बहुत धड़ल्ले से करते हैं। इन शब्दों के द्वारा उन्होंने समाज की विकृति, व्यक्ति व समाज के दुराचरण आदि को अभिव्यक्त किया है। उनके इस तरह के आलोचनात्मक व्यंग्यपूर्ण शब्दों में कहीं भी करुणा नहीं है।

कहना न होगा कि व्यक्ति और समाज भी विसंगतियों एवं विडंबनाओं का केंद्र है। समाज की सारी व्यवस्थाओं को व्यक्ति झेलता रहा, पर परिवर्तन की दशा नजर नहीं आई । उसका कारण बताते हुए कवि धूमिल ने कहा है-

''कुछ इस तरह की चीजों की शालीनता/ बनी रहे/कुछ
इस तरह की काँख भी ढकी रहे/ और विरोध में उठे हुए हाथ
की/मुट्ठी भी तनी रहे.../और यही वजह है कि बात/
फैलने की हद तक/ आते-आते रुक जाती है/ क्योंकि हर
बार/ चन्द टुच्ची सुविधाओं के लालच के सामने/ अभियोग
की भाषा-चुक जाती है।(132)

डॉ. रमेशचंद्र शाह ने कवि धूमिल की कविता में अभिव्यक्त सामाजिक अनुभव को दर्शाते हुए कहा है- ''धूमिल प्रखर सामाजिक अनुभवों के कवि थे। हमारे सामाजिक अस्तित्व की डरावनी सच्चाइयों का जैसा यथातथ्य प्रतिबिंब उनकी कविता में मिलता है;

वैसा कहीं अन्यत्र नहीं मिलेगा। यह भी सच है कि इस अस्तित्व की मानव- द्रोही और अंतत: काव्यद्रोही परिस्थितियों से मौलिक प्रतिशोध लेने की जैसे तड़प और जुझारू एकाग्रता उनमें थी, वैसी अन्य समकालीन कवि में नहीं है। कवि के रूप में धूमिल का एक स्मरणीय विशेषता यह भी थी कि उनमें सच्ची एकाग्रता के साथ सच्चा खुलापन भी था। इसी कारण वे राजकमल चौधरी के व्यक्तित्व और कृतित्व को एक ऐसी आवेगपूर्ण कल्पनाशील सहानुभूति के साथ स्वीकार और सराह सके, जो उनके 'मूल्यांकन' को किसी भी आलोचकीय मूल्यांकन से अधिक खरा और विश्वसनीय बनाता है।''(133)

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि धूमिल की कविता में जहाँ आधुनिक, सामाजिक एवं आर्थिक विकृति, विसंगति-विडंबना तथा विरूपता आदि के लक्षण दिखाई देते हैं। सब-के-सब आलोचनात्मक व्यंग्य के माध्यम से आए हैं। प्रो. मंजु अग्रवाल ने ठीक ही कहा है- ''धूमिल का काव्यात्मक संसार आधुनिक जीवन का यथार्थवादी संसार है। इस संसार में विसंगतियों, एवं विडंबनाएँ बहुत अधिक हैं। इस विसंगति एवं विडंबनामय यथार्थ को व्यक्त करने के लिए भाषात्मक स्तर को प्राप्तकर सही कविता की रचना तभी हो सकती है जब वह सार्थक वक्तव्य का रूप धारण कर ले।''(134) कवि धूमिल ने अपने 'संसद से सड़क तक' काव्य-संग्रह के आमुख में इसी को वाणी देते हुए कहा है-

''एक सही कविता/पहले /सार्थक वक्तव्य होती है।''

समग्रता में देखे तो धूमिल के काव्य में उनकी आलोचनात्मक यथार्थवादी दृष्टि विविध रूपों तथा विभिन्न माध्यमों में प्रकट हुई है। उसका रूप बहुआयामी है। वह जन-जन की पीड़ा को, विवशता को, शोषण, शोषक के कारणों की तलाश ही नहीं करती; बल्कि समाधान भी प्रस्तुत करती हुई प्रतीत होती है।

समसामयिक राजनीतिक-सामाजिक व्यवस्था, घुटन-पीड़ा, सामाजिक अत्याचार, असमानता एवं कुंठाओं की धूमिल ने बहुत ही यथार्थ आलोचनाएँ प्रस्तुत की हैं। उन्होंने अपनी पैनी आलोच्य दृष्टि से जो व्यंग्य पूर्ण चित्रण किया है, जो तीक्ष्णताएँ उभारी हैं और जिन स्थितियों का उद्‌घाटन किया है, वे आलोचनात्मक यथार्थवाद के सफल उदाहरण कहे जा सकते हैं। आज हिंदी कविता में आलोचनात्मक यथार्थवाद की जो परंपरा चल रही है। उसके विकास में सुदामा पाण्डेय धूमिल का विशेष महत्त्व है।

3.4 साम्यवादी यथार्थवाद और धूमिल का काव्य

यथार्थवाद के वर्तमान और भविष्य के बारे में जार्ज लुकाच का कथन रहा है - ''इस समय हमारी संस्कृति अंधियारे के बीच से गुजर रही है; परंतु इतिहास-दर्शन के ऊपर यह दायित्व है कि यह इस बात का निर्णय ले कि जो अंधियारा इस समय छाया हुआ है, वही हमारे संस्कृति की और हमारी अंतिम नियति है, अथवा भले हम तथा हमारी संस्कृति एक लंबी-अंधेरी सुरंग के बीच से गुजर रहे हों, अंतत: हम उससे बाहर आएँगे और प्रकाश के साथ हमारा साक्षात्कार एक बार फिर होगा। बुर्जुआ सौंदर्य शास्त्रियों का विचार है

कि इस अंधियारे के चंगुल से उबरने का कोई भी रास्ता शेष नहीं बचा, जबकि मार्क्सवादी इतिहास-दर्शन मनुष्यता के विकास की व्याख्या के क्रम में, हमें यह निष्कर्ष देता है कि ऐसा हो ही नहीं सकता कि मनुष्यता की यह विकास-यात्रा निरुद्देश्यता या निरर्थकता में ही समाप्त हो जाए। वह एक निश्चित, सार्थक गंतव्य तक अवश्य पहुँचेगी।''(135)

पाश्चात्य विद्वान क्रिस्टोफर कॉडवेल के अनुसार वर्तमान दौर में ''वर्ग विभाजन के कारण एक ओर तो एक शोषक वर्ग उत्पन्न होता है; जो यथार्थ से अधिकाधिक कटता जाता है। चिंतन, आनंद और संस्कृति से अधिक-से-अधिक वास्ता रखता है और दूसरी ओर एक शोषित वर्ग उत्पन्न होता है, जो चिंतन से अधिकाधिक कटता जाता है, अधिक-से-अधिक श्रम करता है और परिस्थितियों का अधिक-से-अधिक गुलाम होता है।''(136)

धूमिल इसी श्रमिक शोषित वर्ग के प्रति अपार सहानुभूति एवं श्रद्धा रखते हैं। राकेश कुमार के शब्दों मे कवि धूमिल ''मूलत: एवं समग्रता.... तिरस्कृत वर्ग का पक्षधर्मी वकील है; जो व्यवस्थारूपी न्यायाधीशों के समक्ष पूँजीपतियों एवं मध्यवर्गीय अंतर्विरोधी नीतियों के विरुद्ध सर्वहारा के मंगल हेतु प्रतिबद्ध है।''(137) कवि पूँजीवादी व्यवस्था से घृणा करते हैं। ऐसी व्यवस्था पर चोट करते हुए कवि धूमिल ने कहा है-

> ''एक आदमी रोटी बेलता है/ एक आदमी रोटी खाता है/
> एक तीसरा आदमी भी है/ जो न रोटी बेलता है, न रोटी
> खाता है/ वह सिर्फ रोटी से खेलता है।''(138)

स्पष्ट है कि आज सर्वहारा वर्ग मिलों-खेतों में दिन-रात खून-पसीना बहाकर अधिकाधिक उत्पादन में विश्वास करते हैं। इस उत्पादन से देश की प्रगति जुड़ी हुई है। देश की इस प्रगति की आड़ में यह तीसरा आदमी (पूँजीपति वर्ग) ही अपना स्वार्थ साधता है। वही अपनी जेबे भरता है। उपर्युक्त पंक्तियों में 'रोटी' शब्द सर्वहारा वर्ग के पेट से जुड़ा है। यह तीसरा आदमी न रोटी बेलता है, न खाता है- वह सिर्फ रोटी को बरबाद करता है। सर्वहारा वर्ग की जिंदगी से खेलता है। समाज में जहाँ-जहाँ इनका आधिपत्य है, वहाँ-वहाँ सामाजिक विषमता व्याप्त है। साम्यवादी विचारधारा का काम ही है कि इस विषमता को खत्म करना।

वास्तविकता तो यह है कि इन दोनों वर्गों का काम एक-दूसरे के बगैर नहीं चल सकता। पूँजीपति वर्ग की दृष्टि अधिक-से-अधिक मुनाफा कमाने की होती है। इसलिए वह मजदूरों को कम मजदूरी देना चाहता है और मजदूर वर्ग किए गए श्रम के मुताविक मजदूरी चाहता है। जबं उसको उचित मजदूरी नहीं मिल पाती है तो दोनों वर्गों में संघर्ष आरंभ हो जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि उत्पादन संबंधों पर आधारित, समाज के वर्गों में विभाजन परस्पर वर्ग प्रतिद्वन्द्विता का रूप धारण करके वर्ग-संघर्ष का कारण बना है। वस्तुत: कम्युनिस्ट मार्क्सवाद का आधार ही वर्ग-संघर्ष है।

क्रिस्टोफर कॉडवेल ने श्रमिक वर्ग की पक्षधरता करते हुए कहा है- ''यह एक

ऐसा आदमी है जो नीरस, एकरस और खून-पसीने की मजदूरी पर काम करता है; जो मशीन में एक पेंच मात्र है। यह सही अर्थों में सर्वहारा है, पूँजीवाद की अनूठी सृष्टि है। पूँजीपति के खिलाफ इसकी लड़ाई सबसे कड़वी और अटल है; क्योंकि उसका काम अपनी प्रकृति से ही इस किस्म का है जिसे पसंद करना असंभव है और इसलिए इसका विद्रोह फुरसत के लिए लड़ाई के रूप में व्यक्त होता है, अपने मालिक के अनिच्छुक हाथों से फैक्टरी के बाहर सुधरे मानवीय अस्तित्व के प्रत्येक अतिरिक्त घंटे को छीनने की कोशिश में व्यक्त होता है। यह लड़ाई अधिक ऊँची मजदूरी के लिए संघर्ष के साथ चलती रहती है, ताकि वह अपनी फुरसत के चंद लमहों को जहाँ तक संभव हो पूर्ण और निर्बंध बना सके।''(139)

साम्यवादी विचारधारा के रचनाकार वर्ग-संघर्ष को मिटा देने का पक्षधर होता है। वह सर्वहारा वर्ग और उच्च धनाढ्य पूँजीपति वर्ग की पारंपरिक सामाजिक खाई को पाटना चाहता है। सर्वहारा वर्ग जो वर्षों से दिन-रात कड़ी मेहनत करके अनाज व मिलों, कारखानों में उत्पादन करते आ रहे हैं। उन्हें दो वक्त की रोटी नसीब नहीं होती। साम्यवादी यथार्थवादी रचनाकार ऐसे सर्वहारा शोषित वर्ग में क्रांति का स्वर फूँकने का काम करता है। वह उम्मीद करता है कि इस वर्ग का साथ निम्न-मध्यवर्ग देगा, लेकिन उसकी स्वार्थ प्रवृत्ति ने उसकी कतई मदद नहीं करता। ओम प्रकाश ग्रेवाल के शब्दों में ''यदि-निम्न-मध्यवर्गीय व्यक्ति अपनी निजबद्धता को त्यागकर मेहनत कश जनता के करीब आ जाए, उनकी नियति से अपनी नियति को जोड़ दे, उनके संघर्षों में हिस्सा लेने लगे तो निश्चित रूप से उसके विरोध में कहीं अधिक गंभीरता और शक्ति आ जाएगी। उसका दृष्टिकोण भी तब अधिक वैज्ञानिक और तर्कसम्मत हो जाएगा तथा उसकी पीड़ा का मानवीय आधार मजबूत हो जाएगा। उसका आक्रोश उस समय केवल नकारात्मक न रह कर रचनात्मक हो जाएगा।''(140)

दूसरी तरफ निम्न-मध्यवर्ग से बढ़कर मध्यवर्गीय व्यक्ति की बात ही निराली है। ऐसे वर्ग के लोग कड़ी मेहनत तो करवाते हैं; लेकिन मजदूरी देते उनकी नियती बदल जाती है। निष्ठा, ईमानदारी एवं विश्वास से किया गया कोई भी काम व्यर्थ नहीं जाता। हर व्यक्ति को तर्कसंगत होना चाहिए। कवि धूमिल ने एक जगह कहा है-

> ''जिंदा रहने के पीछे/ अगर सही तर्क नहीं है/तो रामनामी
> बेचकर या रंडियों की/दलाली करके ले रोजी कमाने में कोई
> फर्क नहीं। है।''(141)

यह मध्यवर्गीय व्यक्ति यदि सर्वहारा वर्ग का सही रूप से मदद करे तो उनका संगठन मजबूत हो सकता है; किंतु वह मध्यवर्ग के खिलाफ षड्यंत्र रचता है। कवि धूमिल के शब्दों में पूँजीपतियों को यह यकीन हो गया है-

> ''एक भुक्खड़ जब गुस्सा करेगा/ अपनी ही/ अंगुलियाँ
> चबाएगा।''(142)

सर्वहारा वर्ग का इतना शोषण हो जाता है कि वह उच्चवर्ग के खिलाफ लड़ने के लिए खड़ा नहीं हो सकता। ऐसी शोषित जनता स्वयं भूखी एवं नंगी रह लेगी; लेकिन पूँजीपतियों की जेब भरती रहेगी। यह देखकर कवि धूमिल कह उठते हैं-

"यह जनता एक भेड़ है/ जो अपनी पीठ पर/ दूसरों के
लिए/ ऊन की फसल ढो रही है।"(143)

पाश्चात्य माक्सर्ववादी विद्वान फ्रेडरिक एंगेल्स के मतानुसार- "समाज का हर रूप उत्पीड़क और उत्पीड़ित वर्गों के विरोध पर आधारित रहा है। लेकिन किसी भी वर्ग का उत्पीड़न करने के लिए कुछेक अवस्थाएँ सुनिश्चित करना आवश्यक है, जिनमें वह कम-से-कम अपने दासवत अस्तित्व को बनाए रख सके। भूदासता के युग में भूदास ने अपने को कम्यून के सदस्य की स्थिति तक उठा लिया, ठीक जैसे निम्न बुर्जुआ सामंती निरंकुशता के जूए के नीचे बुर्जआ में विकसित होने में कामयाब हो गया था। इसके विपरीत, आधुनिक मजदूर उद्योग की प्रगति के साथ ऊपर उठने के बजाय स्वयं अपने वर्ग के अस्तित्व के लिए आवश्यक अवस्थाओं के स्तर के अधिकाधिक नीचे ही गिरता जाता है। वह कंगाल हो जाता है और कंगाली आबादी और दौलत से भी ज्यादा तेजी से बढ़ती है।"(144)

उपर्युक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि शोषित सर्वहारा वर्ग का जन्म तथा मरण इन्हीं बुर्जुआ उच्च वर्ग पूँजीपतियों के हाथों में होता है। वे बेझिझक उस मूक भेड़ की तरह अपना सब कुछ न्यौछावर कर देते हैं। राकेश कुमार के शब्दों में "यह वर्ग भूस्वामियों की हरियाली का साधन है; परंतु इनके निजी जीवन में कभी भी बसन्त नहीं आया। इसे प्राप्ति में वर्ष भर शोषण और आधा पेट भोजन ही मिलता है।"(145) धूमिल यह सब अपने जीवनकाल में भोग चुके थे। अत: वे ऐसे वर्ग की ओर इशारा करते हुए कहते हैं-

"कुल रोटी तीन/खाने से पहले मुँह दुब्बर/ पेट भर पानी
पीता है/ और लजाता है/ कुल रोटी तीन/ पहले उसे थाली
खाती है/ फिर वह रोटी खाता है।"(146)

सर्वहारा वर्ग की अपनी मजबूरी हो सकती है; लेकिन धूमिल की ऐसी कोई मजबूरी नहीं है। डॉ. हुकुमचंद राजपाल के अनुसार- "विरोधी, विपरीत अथवा प्रतिकूल स्थितियों के प्रकाशन से वह सही और सार्थक की तलाश करता है। यही कारण है वह ऐसे पात्रों, संदर्भों को लेता है जिनसे युग बोध की वास्तविकता का सहज अनुमान लगाया जा सकता है।"(147) कवि धूमिल ने वास्तविक स्थिति पर चोट करते हुए कहा है-

"यद्यपि यह सही है कि मैं/ कोई ठंडा आदमी नहीं हूँ/मुझमें
भी आग है/ मगर वह/ भभक कर बाहर नहीं आती/क्योंकि
उसके चारों तरफ चक्कर काटता हुआ/ एक 'पूँजीवादी'
दिमाग है/ जो परिवर्तन तो चाहता है/ मगर आहिस्ता-
आहिस्ता।"(148)

सर्वहारा वर्ग की लड़ाई पूँजीपतियों के प्रति है। चूँकि धूमिल साम्यवादी यथार्थवादी विचारधारा के कवि रहे हैं, यह लड़ाई उनकी भी रही है। वे सर्वहारा वर्ग से भली-भाँति परिचित थे। इस वर्ग की पीड़ा उनकी पीड़ा रही है। उनकी भूख कवि धूमिल की भूख बन गई थी। यह भूख ही आदमी को जानवर से बदतर बना देती है। उनकी मनोदशा का चित्रण करते हुए कवि ने कहा है-

> ''भूख ने उन्हें जानवर कर दिया है/ संशय ने उन्हें आग्रहों से भर दिया है/ फिर भी वे अपने हैं ×××/ जीवित भविष्य के सुंदरतम सपने हैं।''(149)

राहुल ने उपर्युक्त कविता की टिप्पणी करते हुए कहा है कि 'अस्तित्व का यह संघर्ष व्यक्ति के रूप में मात्र धूमिल का ही नहीं, बीसवीं शताब्दी के सृजनशील, शोषित, उत्पीड़ित, मेहनतकश, जनता का अपना इतिहास है।' आज पूँजीवादी व्यवस्था के कारण ग्रामीण सर्वहारा वर्ग का शोषण हो रहा है। इस व्यवस्था में उसका समूचा परिवार पिसता रहता है। वह बस देखता रहता है, कुछ नहीं कर पाता है। इस शोषित व्यवस्था से संघर्ष करते हुए धूमिल कह उठते हैं-

> ''कभी न थकनेवाले तीन भाई/ खेत से फसलों की लोथ लेकर लौट रहे हैं/ और खटिया पर लहास हो गए हैं/ पहली बार मैं पढ़ता हूँ उनके चेहरों पर/ कि झुर्रियों में खेत में हलाल होने का हाल।''(150)

ऐसी व्यवस्था से छुटकारा पाने के लिए यह सर्वहारा वर्ग शहर की तरफ कूच करता है; लेकिन वहाँ उसे शहरी महाजनी सभ्यता से संघर्ष करना पड़ जाता है। इसके अलावा और कोई विकल्प उसके सामने नहीं आता है। ऐसे में सर्वहारा वर्ग की पक्षधरता करते हुए धूमिल कहते हैं-

> ''सचमूच मजबूरी है/ मगर जिंदा रहने के लिए/ पालतू होना जरूरी है।'' (संसद से सड़क तक, पृ.57)

इस तरह सर्वहारा वर्ग पूँजीपति वर्गों के हथकंडों के सामने अपने घुटने टेक देता है।

> ''सहानुभूति और प्यार/ अब ऐसा छलावा है जिसके जरिए/ एक आदमी दूसरे को अकेले/ अंधेरे में ले जाता है और/ उसकी पीठ में छुरा घोंप देता है/ ठीक उसी मोची की तरह जो चौंक से/ गुजरते हुए देहाती को/ प्यार से बुलाता है और मरम्मत के नाम पर/ रबर के तल्ले में/ लोहे की तीन दर्जन फुल्लियाँ/ ठोक देता है।''(151)

कवि धूमिल इन पूँजीपतियों के घृणित व्यवहार से भली भाँति परिचित हैं। जो

भी सर्वहारा वर्ग का व्यक्ति इनकी बनाई व्यवस्था से टक्कर लेता है उसे खत्म कर देते हैं। कवि ने इनके क्रूर व्यवहार को इंगित करते हुए कहा है-

''एक अजीब-सी प्यार भरी गुर्राहट / जैसा कोई मादा भेड़िया /
छौंने को दूध पिला रही है और / साथ ही किसी मेमने का
सिर चबा रही है।''(152)

यहाँ 'भेड़िया' शब्द पूँजीपतियों के प्रतीकार्थ में प्रयुक्त हुआ है; जो सर्वहारा वर्गीय समाज को मेमने की तरह चबा रहे हैं। जिस तरह भेड़िया के मुँह में आते ही मेमना शांत हो जाता है, ठीक उसी प्रकार यह सर्वहारा वर्ग इन्हीं पूँजीपतियों के पंजे में आते ही विवश हो जाता है, उसमें लोहा लेने की ताकत नहीं रह जाती है। मध्यवर्गीय चेतना को भी मौका मिलने पर अपने पंजे के गिरफ्त में कर लेता है। जो भी इनका (छौना) पक्षधरता करता है, उनको दूध-मलाई खिलाता है, वह उसकी पीठ सहलाता है।

पाश्चात्य विद्वान क्रिस्टोफर कॉडवेल के शब्दों में- ''एक वर्ग समाज में कामगार से उसके पर्यवेक्षक जिस तरह काम करने को कहते हैं, वे आँख मूँदकर उसी तरह काम करते हैं। वे बनाते तो पिरामिड हैं; पर उनमें से प्रत्येक व्यक्ति का अंशदान महज एक पत्थर होता है। सिर्फ शासक को मालूम होता है कि एक पिरामिड बनाया जा रहा है। दायित्व की मात्रा से ही यथार्थ की अधिक प्रखर चेतना संभव होती है, मगर यह चेतना केवल शासक वर्ग के छोर पर ही संचित होती है। शासित अंध भाव से आज्ञापालन करते हैं और परतंत्र बने रहते हैं।''(153) सर्वहारा वर्ग की दयनीय स्थिति का जिम्मेदार कौन है? और कोई नहीं है; बल्कि वह है जिसका वह वर्षों से मालगोदाम भरता आ रहा है। एक स्थान पर कवि धूमिल ने इसकी ओर संकेत करते हुए कहा है-

''कंकालों की नुमाईश कर रहे थे / गोदाम अनाज से भरे थे /
और लोग भूखे मर रहे थे।'' (संसद से सड़क तक, पृ.108)

आज का बुर्जुआ समाज संपत्ति को ही अधिक महत्त्व देता है। यह संपत्ति कहाँ से आती है? इसका उत्पादक कौन है? यह मजदूर के 'उजरती श्रम' से ही संभव होता है। साम्यवादी यथार्थवादी विचारक फ्रेडरिक एंगेल्स का अभिमत है- ''पूँजीपति का होना केवल शुद्धतः व्यक्तिगत ही नहीं, बल्कि उत्पादन में एक सामाजिक हैसियत रखना है। पूँजी एक सामूहिक उत्पाद है, और केवल समाज के बहुत से सदस्यों के संयुक्त कार्यकलाप से ही; बल्कि अंततोगत्वा समाज के सभी सदस्यों के संयुक्त कार्यकलाप से ही उसे गतिशील किया जा सकता है। इसप्रकार, पूँजी निजी नहीं, एक सामाजिक शक्ति है।''(154)

सर्वहारा वर्ग सारी उम्र अनाज, संपत्ति उत्पादन में लगा देता है। स्वयं जमींदारों एवं पूँजीपतियों के गोदाम भरता रहा, उनकी जेबे और तिजोरियाँ भरने का साधन बनता रहा। अकाल पड़ जाने के बाद वे संपत्ति के बल पर बाजार में उपलब्ध अनाज को दुगुने दाम में खरीद लेते हैं। फिर तिगुने-चौगुने दाम में इन्हीं सर्वहारा वर्ग की जिंदगी से खेलने

में उन्हें बड़ा मजा आता है।

कवि धूमिल के साम्यवादी यथार्थवादी दृष्टिकोण का विकास वर्ग-जागरूकता की भावना तथा वर्ग-संघर्ष की चेतना के आधार पर हुआ है। बदरुद्दीन उमर के शब्दों में- ''शोषक वर्ग जानते हैं कि जनता पर शोषण-शासन का क्रम बनाए रखने के लिए उसकी सोच पर नियंत्रण रखना सबसे पहले जरूरी होता है। जनता की सोच पर नियंत्रण रखने की उनकी शक्ति जिस दिन समाप्त हो जाएगी, उसी दिन उनका वर्ग भी समाप्त हो जाएगा, इस तथ्य को शोषक-शासक वर्ग बहुत अच्छी तरह जानते हैं, और इसीलिए एक षड्यंत्र के तहत सांस्कृतिक कर्मकांडों को वे आयोजित करते हैं जो दरअसल आम जनता के खिलाफ उनके वर्ग-संघर्ष का ही एक हिस्सा है।''(155)

वर्ग-संघर्ष का मूल उद्देश्य वर्गहीन समाज का निर्माण करना है। क्रांति ही एक मात्र अंतिम विकल्प है, जिसके द्वारा वर्गहीन समाज का स्वप्न साकार हो सकता है। इसी क्रांति के द्वारा शोषित, उत्पीड़ित, सर्वहारा वर्ग अपने विरोधी वर्ग का अन्त कर सकता है। मार्क्स ने ठीक ही कहा है- ''क्रांतियाँ इतिहास की इंजन होती हैं।''(156) एंगेल्स के शब्दानुसार- ''क्रांतिकारी बल वह औजार है, जिसकी मदद से सामाजिक गति मृत, अश्मीभूत राजनीतिक रूपों को तोड़कर अपने लिए रास्ता बनाती है।''(157) पूँजीवादी समाज में वर्ग-संघर्ष सदैव रहा है और आज भी है। पूँजीवादी उच्चवर्ग एवं शोषित निम्नवर्ग के संघर्ष को ही शोषित वर्ग की प्रगति मानते हुए एंगेल्स ने लिखा है- ''जितना अधिक वर्ग-संघर्ष होगा, उतना ही पुराने मूल्यों के बीच नए मूल्य (वैल्यूज) स्थापित होंगे और इस प्रकार समाज की व्यवस्था में प्रगति आएगी।''(158)

भारतीय पूँजीवादी व्यवस्था ने यहाँ के सर्वहारा वर्ग को काफी प्रभावित किया है। राकेश कुमार ने ठीक ही कहा है- ''राजनीतिक तंत्र और सामाजिक षड्यंत्र दोनों पाटों के मध्य यह वर्ग असुरक्षित शोषित जीवन व्यतीत कर रहा है। इस वर्ग का व्यवस्थित और असभ्य ढंग से रक्तपान किया जाता है। निम्नवर्ग की क्रांति को शमित करने के लिए व्यवस्था इन्हें निरन्तर झूठे आश्वासन देती है।''(159)

कहना न होगा कि झूठे आश्वासन के फेर में पड़कर वह अधिकार तक खो बैठता है। धीरे-धीरे इस सर्वहारा वर्ग की क्रांति की भावना को पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था द्वारा दबा दिया जाता है। कवि धूमिल ने एक स्थान पर सच ही कहा है-

> ''रक्तपात/ कहीं नहीं होगा/सिर्फ एक पत्ती टूटेगी/ एक
> कंधा झुक जाएगा/ फड़कती भुजाओं/ और सिसकती हुई
> आँखों को/ एक साथ लालफीतों में लपेट कर/ रख देंगे/
> काले दराजों के निश्चल एकांत में।''(160)

सर्वहारा मजदूर वर्ग शोषित जीवन से मुक्ति पाने के लिए संघर्ष करता है। इस

संदर्भ में फ्रेडरिक एंगेल्स ने ठीक ही कहा है- ''मजदूर बुर्जुआओं के विरुद्ध अपने संगठन (ट्रेड-यूनियनें) बनाने लगते हैं, मजदूरी की दर को कायम रखने के लिए वे संघबद्ध होते हैं; समय-समय पर होनेवाले इन विद्रोहों के लिए पहले से तैयार रहने के निमित्त वे स्थायी संघों की स्थापना करते हैं, जहाँ-तहाँ उनकी लड़ाई बलवों का रूप धारण कर लेती है।''(161) पर उनका संघर्ष सामूहिक धरातल पर नहीं हो पाता; क्योंकि उन्हें भली-भाँति ज्ञान है कि उनकी गर्दनें इस पूँजीपति वर्ग के पावों तले दबी हैं, जरा भी हिलने की कोशिश की कि उनकी गर्दनें कसाई की तरह मरोड़ दी जाएगी। इतिहास गवाह है कि जब-जब उसने हरकतें करने की कोशिश की है, उसके पीठ में छुरा भोंक दिया गया है। उन्हें कुचल दिया गया है। इस जनतांत्रिक देश में उनकी विवशता को इंगित करते हुए धूमिल ने कहा है-

''एक ऐसा जनतंत्र है/ जिन्दा रहने के लिए/घोड़े और घास
को/ एक जैसी छूट है।''(162)

स्पष्ट है कि 'घोड़ा' और 'घास' ये दोनों शब्द शोषक और शोषित संबंधों की यथार्थ प्रतीति कराते हैं। कुछ इसी तरह प्रतीकात्मक बिंब लिए हुए कवि धूमिल कहते हैं-

''लोहे का स्वाद/ लोहार से मत पूछो/ उस घोड़े से पूछो/
जिसके मुँह में लगाम है।''(163)

उपर्युक्त पंक्तियों का स्पष्टीकरण करते हुए राकेश कुमार ने कहा है- ''आज निम्न वर्ग के मुँह में आर्थिक-शोषण की लगाम है। 'घोड़ा' यहाँ शोषित जनता का प्रतीक है जिसके मुँह में लोहे की निर्मम लगाम है। धूमिल जैसा व्यक्तित्व ही अपने अनुभूत सत्यों और भोगे हुए यथार्थ की कटु अनुभूतियों को हमारे समक्ष जबरदस्त प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति से स्पष्ट कर पाया है। लोहे का स्वाद (अनुभव) लोहार क्या जानेगा? लोहे (निर्ममता, क्रूरता, शोषण) का स्वाद (अनुभव) तो वही शोषित व्यक्ति बता सकता है जिसके मुँह में शोषण की क्रूर लगाम है।''(164)

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि कवि धूमिल ने अपने काव्य-संग्रह 'संसद से सड़क तक' और 'कल सुनना मुझे' में समाज के निम्न-मध्य जन-जीवन वर्ग तथा उच्च वर्ग का समग्र चित्र अंकित करने में अद्‌भुत सफलता प्राप्त की है, फिर भी समाज के अन्य वर्गों की तुलना में सर्वहारा किसान वर्ग के अंकन में सर्वाधिक सफलता मिली है। वे किसान जीवन के कोने-कोने से अच्छी तरह परिचित थे। विभिन्न आर्थिक स्तरोंवाले किसानों के विचारधाराओं तथा उनकी शक्तियों एवं दुर्बलताओं को भी वे बखूबी जानते-पहचानते थे। जिन मजदूर सर्वहारा वर्गीय जीवन से वे थोड़ा बहुत परिचित थे, उनके साथ अपनी हमदर्दी प्रकट करते हुए वे बार-बार अपनी कविता में स्पष्ट रुप से दिखाई देते हैं।

धूमिल की आस्था मार्क्सवाद में रही है। वे वर्ग-संघर्ष की हिमायत करते हैं और वर्गसंघर्ष का सजीव चित्रण अंकित करते हैं। पूँजीपतियों के खिलाफ मजदूरों के संघर्ष का समर्थन करते हैं। पूँजीपति वर्ग की कुटिलताओं का पर्दाफाश करते हैं। डॉ. मैनेजर पांडेय

के शब्दानुसार- ''धूमिल की कविता में पूँजीवादी व्यवस्था और उसके लोकतंत्र की पहचान है, उससे स्पष्ट विरोध का बोध भी है और उसके खिलाफ संघर्ष करने की आकांक्षा भी है; लेकिन इतिहास की गति और प्रक्रिया की समय के अभाव में वे इस व्यवस्था और इसके लोकतंत्र की भावी परिणतियों को नहीं देख पाते।''(165)

धूमिल एक साम्यवादी यथार्थवादी विचारधारा के प्रतिबद्ध कवि हैं। वे यह चाहते हैं कि वह राज्य प्रणाली न रहे; जिससे कि उद्योग-धंधों का स्वामित्व व्यक्ति या व्यक्तियों के हाथ में रहता है और मालिकों को ही सारा नफा मिलता है। इसके विपरीत वे चाहते हैं कि जीविकोपार्जन के उपायों का पूर्ण प्रबंध और स्वामित्व जनता के हाथ में रहे और सच्ची और पूर्ण प्रजातंत्र शासन प्रणाली के अंदर उद्योग-धंधों की उन्नति होकर उसका नफा बराबर-बराबर बाँट दिया जाया करे। वह नहीं चाहते हैं कि वह शासन प्रणाली रहे, जिसमें कि शासन की बागडोर उच्च वर्ग यानि की बड़े-बड़े धनिकों एवं महाजनों के हाथ में रहती है। जहाँ अधिकारी वर्ग इनके हाथ की कठपुतली हो जाते हैं। यह शासन प्रणाली ही नहीं रहेगी तो देश में साम्यवाद की स्थापना सहज ही हो जाएगी। कारण साम्यवाद ही वर्ग-विहिन समाज की परिकल्पना सहेजता है, सिरजता है और सभी मानवों के सुखी और संपन्न होने की कामना व्यक्त करता है।

x-x-x

संदर्भ-सूची

1. रोहिताश्व : समकालीन कविता- मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में पृ.108
2. प्रदीप सक्सेना : सौंदर्यबोध की मार्क्सवादी अभिधारणाएँ- मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र पृ.257
3. चमनलाल गुप्त : सुदामा पांडेय धूमिल की कविता में यथार्थ बोध, पृ.59-60
4. शुकदेव सिंह : (सं) धूमिल की कविताएँ पृ.12-13
5. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.47
6. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.47
7. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.48
8. बी.डी.मिश्र : शोधकर्ता की निजी वार्ता, गोवा 16 फरवरी 2004
9. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.18
10. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.116
11. धूमिल : सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र पृ.37
12. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.114
13. धूमिल : कल सुनना मुझे पृ.88
14. धूमिल : कल सुनना मुझे पृ.40
15. धूमिल : सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र पृ.54
16. धूमिल : कल सुनना मुझे पृ.75
17. धूमिल : कल सुनना मुझे पृ.76
18. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.119
19. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.109
20. चमनलाल गुप्त : सुदामा पांडेय धूमिल की कविता में यथार्थ बोध पृ.61-62
21. शुकदेव सिंह : (सं) धूमिल की कविताएँ पृ.15
22. ग. तु. अष्टेकर : कटघरे का कवि धूमिल पृ.140
23. धूमिल : सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र पृ.31
24. अशोक वाजपेयी : फिलहाल पृ.26
25. राजकमल चौधरी : युयुत्सा पत्रिका, अगस्त 1967 पृ.187-88
26. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.7
27. नंदकिशोर नवल : समकालीन काव्ययात्रा पृ.252

28.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.12
29.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.24
30.	नामवर सिंह	: गॅवई अनुभव और किसानी संस्कार का कवि धूमिल, आजकल पत्रिका 1980	
31.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.57
32.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.39
33.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.74
34.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.28
35.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.31
36.	रतनकुमार पांडेय	: साठोत्तरी हिंदी कविता	पृ.131
37.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.76
38.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.72
39.	वीरेंद्र सिंह	: मुक्तिबोध- काव्य बोध का नया परिप्रेक्ष्य	पृ.98
40.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.41
41.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.17
42.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.18
43.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.113
44.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.25-26
45.	धूमिल	: कल सुनना मुझे	पृ.52
46.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.65
47.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.10
48.	धूमिल	: कल सुनना मुझे	पृ.76
49.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.22
50.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.87-88
51.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.97
52.	कार्ल मार्क्स	: इकनामिक एण्ड फिलासफिक मेनुस्क्रिप्ट्स आफ 1844 (मास्को 1961)	पृ.105
53.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.24-25
54.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.60
55.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.92
56.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.40
57.	रमेश कुंतल मेघ	: साक्षी है सौंदर्य प्राश्निक	पृ.271
58.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.41

59.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.41
60.	धूमिल	: कल सुनना मुझे	पृ.46
61.	रतनकुमार पांडेय	: साठोत्तरी हिंदी कविता	पृ.148
62.	धूमिल	: भाषा की रात, कल सुनना मुझे	पृ. 4
63.	शिवकुमार मिश्र	: कल्पना पत्रिका, अगस्त-सितम्बर, 1969	
64.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.102
65.	ग. तु. अष्टेकर	: कटघरे का कवि धूमिल	पृ.117
66.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.105
67.	धूमिल	: सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र	पृ.35
68.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.44
69.	रतनकुमार पांडेय	: साठोत्तरी हिंदी कविता	पृ.145
70.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.120
71.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.66
72.	चमनलाल गुप्त	: सुदामा पांडेय धूमिल की कविता में यथार्थ बोध	पृ.94
73.	धूमिल	: सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र	पृ.70
74.	धूमिल	: सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र	पृ.71-72
75.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.46-47
76.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.125
77.	धूमिल	: सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र	पृ.61
78.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.124
79	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.112
80.	राहुल	: विपक्ष का कवि- धूमिल	पृ.45
81.	धूमिल	: सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र	पृ.48
82.	चमनलाल गुप्त	: सुदामा पांडेय धूमिल की कविता में यथार्थबोध	पृ.101
83.	रतनकुमार पांडेय	: साठोत्तरी हिंदी कविता	पृ.138
84.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.127
85.	ग. तु. अष्टेकर	: कटघरे का कवि - धूमिल	पृ.118
86.	गुरचरण सिंह	: समकालीन कविता का मूल्यांकन	पृ.105
87.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.107-8
88.	एस. गंभीर	: साठोत्तर हिंदी कविता में राजनीतिक चेतना	पृ.71

89. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.125-26
90. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.100
91. सुरेश सिंहा : उपन्यास शिल्प एवं प्रवृत्तियाँ पृ.159
92. शिवकुमार मिश्र : मार्क्सवादी साहित्य चिंतन, इतिहास तथा सिद्धांत पृ.10
93. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.67
94. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.95-96
95. धूमिल : कल सुनना मुझे पृ.78
96. नेमिचंद जैन : पूर्वग्रह पत्रिका, अंक 7 मार्च-अप्रैल 1975 पृ.4
97. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.108
98. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.105
99. विश्वनाथ त्रिपाठी : आलोचना पत्रिका, जुलाई-सितम्बर 1987 पृ.68
100. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.127
101. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.67
102. अरुण महेश्वरी : साहित्य में यथार्थ सिद्धांत और व्यवहार पृ.16
103. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.24-25
104. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.126
105. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी: समकालीन हिंदी कविता पृ.198
106. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.127
107. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.124-25
108. धूमिल : कल सुनना मुझे पृ.29
109. शिवकुमार मिश्र : मार्क्सवादी साहित्य चिंतन, इतिहास तथा सिद्धांत पृ.382
110. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.126
111. अशोक वाजपेयी : फिलहाल पृ.114
112. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.126
113. सुधा सिंह : अमृतराय कथा साहित्य मध्यवर्गीय जीवन पृ.104
114. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.107
115. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.25
116. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.25
117. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.67
118. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.25
119. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.26
120. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.98

121. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.98
122. धूमिल : सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र पृ.90
123. चमनलाल गुप्त : सुदामा पांडेय धूमिल की कविता में यथार्थबोध पृ.131
124. धूमिल : कल सुनना मुझे पृ.76
125. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.11
126. चमनलाल गुप्त : सुदामा पांडेय धूमिल की कविता में यथार्थबोध पृ.97
127. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.10
128. लेनिन : मार्क्स एंगिल्स माक्सिज्म पृ.24
129. सत्यदेव त्रिपाठी : समकालीन कविता 2002, प्रगतिशील आकल्प पत्रिका पृ.25
130. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.25
131. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.37
132. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.116
133. रमेश चंद्र शाह : पूर्वग्रह पत्रिका अंक-7, मार्च-अप्रैल 1975 पृ.13
134. मंजु अग्रवाल : धूमिल की काव्य-यात्रा पृ.143
135. शिवकुमार मिश्र : यथार्थवाद पृ.133
136. क्रिस्टोफर कॉडवेल : विभ्रम और यथार्थ (अनु. भगवान सिंह) पृ.38
137. राकेश कुमार : धूमिल की काव्य चेतना-विविध आयाम पृ.60
138. धूमिल : कल सुनना मुझे पृ.33
139. क्रिस्टोफर कॉडवेल : विभ्रम और यथार्थ (अनु. भगवान सिंह) पृ.106
140. ओमप्रकाश ग्रेवाल : साहित्य और विचारधारा पृ.160
141. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.40
142. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.88
143. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.104
144. फ्रेडरिक एंगेल्स : कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र पृ.44
145. राकेश कुमार : धूमिल की काव्यचेतना-विविध आयाम पृ.56
146. धूमिल : कल सुनना मुझे पृ.17
147. हुकुमचंद राजपाल : समकालीन बोध और धूमिल का काव्य पृ.25
148. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.115
149. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.121
150. धूमिल : सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र पृ.27

151.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.108
152.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.42
153.	क्रिस्टोफर कॉडवेल	: विभ्रम और यथार्थ (अनु. भगवान सिंह)	पृ.42
154.	फ्रेडरिक एंगेल्स	: कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र	पृ.48
155.	बदरुद्दीन उमर	: पहल पत्रिका, जन-जून 1990	
156.	व. केल्ले और म. कोवाल जॉन	: ऐतिहासिक भौतिकवाद	पृ.223
157.	फ्रेडरिक एंगेल्स	: ड्यूहरिंग मत खंडन	पृ.306
158.	फ्रेडरिक एंगेल्स	: ड्यूहरिंग मत खंडन	पृ.32
159.	राकेश कुमार	: धूमिल की काव्य चेतना-विविध आयाम	पृ.53
160.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.11
161.	फ्रेडरिक एंगेल्स	: कम्यूनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र	पृ.41
162.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.105
163.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.80
164.	राकेश कुमार	: धूमिल की काव्य-चेतना- विविध आयाम	पृ.53
165.	मैनेजर पांडेय	: शब्द और कर्म	पृ.84

×-×-×

4.यथार्थवाद और धूमिल की काव्य कला

यथार्थवाद साहित्य का एक ट्रेण्ड है, झुकाव है और रचनाकार की अभिरुचि एवं प्रवृत्ति का विचारधारात्मक प्रतिरूप है। यह गत्यात्मक इतिहास और मनुष्य समाज के प्रति भौतिकवादी नजरिये से देखने की पेशकश करता है। कुँवरपाल सिंह के विचारानुसार भी ''इतिहास, मनुष्य और यथार्थ के प्रति यही सुसंगत, संपूर्ण और वस्तुगत दृष्टिकोण यथार्थवादी की विशेषता है। एक यथार्थवादी लेखक यथार्थ का सतही रूप देखने की बजाय उसकी गहराई में उतरता है, उसे विकृत करने की बजाय उसके प्रति सच्चा होता है, उसके फोटोग्रैफिक या फूहड़ चित्रण की बजाय उसके अंतर्विरोधों में सब कुछ को विसर्जित के साथ उन्हें प्रस्तुत करता है। इसके साथ ही अर्थहीनता में सब कुछ को विसर्जित करने की बजाय सच्चा होना एक परिवर्तन और निर्माण का संकेत देता है। ऐसा करके वह कला को ध्वंस करने की बजाय उसे सार्थक और सक्षम गतिविधि बनाता है।[1]

यथार्थवादी रचनाकार जन समाज के सरोकारों का आग्रही विचारक होता है। राजकुमार सैनी के मतानुसार- ''यथार्थवादी रचनाकार इस संसार में अंतर्ग्रस्त तो होता है लेकिन अनुलिप्त नहीं। यथार्थवादी रचनाकार अंतर्ग्रस्तता और अनुलिप्तता (Involvement and Indulgence) में फर्क करता है। वह वस्तुओं और कला के उपकरणों का इस्तेमाल करता है। लेकिन वस्तुएँ या कलात्मक उपकरण उसका इस्तेमाल नहीं कर पाते। ऐसा

रचनाकार अपने और अपनी विषय-वस्तुओं के बीच एक सुरुचिपरक फासला (Aesthetic distance) बनाए रहता है। वह पक्षपात नहीं करता, लेकिन न्यायोचित पक्ष का पक्षधर होता है।(2)

अत: कहा जा सकता है कि धूमिल की प्रगतिशील रचनाओं को पढ़कर आप इस तथ्य के प्रति उदासीन नहीं रह सकते हैं कि ये कविताएँ किस विचार का सृजन करती हैं। आप पाते हैं कि ये समाजवादी क्रांति के माध्यम से पूंजीवादी व्यवस्था के ध्वंस के साथ वस्तुगत यथार्थ से गरीब की आँख का आँसू पोंछने को अग्रगामी होती हैं। इस बुनियादी कार्य के लिए उनकी कला संघर्ष को और तेज करना चाहती है, सरल रूप से उनकी कविताओं के विषय मामूली आदमी की तकलीफें ही रही हैं। तो उनकी विभिन्न कविताओं का 'चरित्र' वैचारिक अंतर्वस्तु को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रतिबिंबित करता है।

धूमिल के काव्य-संसार में युगीन परिवेश और राजनीतिक परिदृश्य के विभिन्न संदर्भ उजागर हुए हैं। चुनाव जैसी जनतांत्रिक प्रक्रिया स्वार्थी तत्त्वों के हाथ में पड़कर राजनीतिक हथकंडा बन गई है। पहले चुनाव खास आदर्शों व नीतियों के लिए हुआ करता था; लेकिन आज के चुनाव में यह बात नहीं रही। वह एक व्यापार बन गया जिसमें नेताओं का निजी स्वार्थ व आकांक्षाओं की पूर्ति निहित है। ये नेता अपने हर चुनाव में आदर्शों की बात कर भोली-भाली जनता को मूर्ख बनाने से बाज नहीं आते। अत: धूमिल ने कहा है-

> यह आखिरी भ्रम है/दस्ते पर हाथ फेरते हुए मैंने कहा/ तब
> तक इसी तरह/ बातों मे चलते रहो इसके बाद/ वादों की
> दुनिया में/धोखा खाने के लिए/ कुछ भी नहीं होगा।''(3)

कवि धूमिल ने वस्तुपरक दृष्टिकोण से आजादी और राजनीति के आंतरिक संबंधों पर यथार्थ व्यंग्य करते हुए कहा है-

> ''क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है/ जिन्हें
> एक पहिया ढोता है/या इसका कोई खास मतलब होता है।(4)

सही मायने में आज की राजनीति के कारण देश की आजादी ना के बराबर है।गांधीजी के अनुसार रोटी, कपड़ा और मकान तथा रामराज्य ही आजादी का दूसरा नाम है। यह कार्य असफल रहा है। यही 'थके हुए रंगों का नाम है'- इस पंक्ति से सूचित हो रहा है। कहना न होगा कि ''समकालीन भ्रष्ट राजनीति का धूमिल ने अपनी कविताओं में खुलकर चित्रण किया है। जितनी साफ-सुथरी समझ धूमिल को आज की राजनीति की थी, उतनी अन्य किसी विषय की शायद नहीं थी। राजनीतिक विडंबना उनकी कविता में अभिव्यक्त हुई है। आज की राजनीतिक स्थिति, उसकी विचित्रता ने धूमिल के मन में अनास्था को उपजाया और उसे अभिव्यक्ति के लिए विवश किया। समकालीन राजनीतिक चेतना का स्वर उसकी कविता में मुखर हुआ है।''(5) राजनीति का यथार्थपरक चित्रण

करना उनके काव्य की अपनी विशेषता रही है। वे बनावटी दिखावे का विरोध करते हैं।

4.1 कल्पना और यथार्थ के सह-संबंध

प्रत्येक यथार्थवादी कवि में कल्पना-शक्ति रहती है, जिसके माध्यम से वह अमूर्त को मूर्त करता है। यथार्थ वस्तुओं को नए रूप प्रदान करता है। ऐसे नए रूप जो मन की यथातथ्य एवं संभाव की सीमा से बहुत दूर ले जाते हैं। श्री नारायण मिश्र के शब्दों में- ''उसके द्वारा कवि अपने मन के भाव-सत्य और दृश्यमान जगत् के यथार्थोंमुख सत्य में शृंखला स्थापित करता है। वह अपनी प्रकृति को इतनी सच्चाई से जानता है और विश्व-प्रकृति का एकात्मकता एवं तारतम्यता का उसे इतना स्पष्ट आभास रहता है कि उन परिपाश्वों में उसकी कल्पनात्मक अंतर्दृष्टि विकसित हो जाती है जो उसकी साधारण अनुभूति के क्षेत्र के बाहर पड़ते हैं।... उसकी कल्पना स्फुट तत्त्वों का उस अखंडता में पुनर्निमाण करती है जो साधारण अनुभव के क्षितिज से बाहर है। जिस प्रकार हृदय की आकांक्षा अप्राप्य की ओर धावित होती है, उसी प्रकार अकल्पनीय में ही कल्पना का मुक्त प्रसार है। उसमें स्वप्न-तंतुओं और आत्मप्रकाश से गढ़े हुए अनेक अस्तित्व समाहित रहते हैं।''(6)

4.11 मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र और यथार्थ : प्राय: प्रत्येक युग के साहित्य में यथार्थ और कल्पना का समन्वय दृष्टिगत होता है, प्रारंभिक रचनाएँ कल्पना प्रधान ज्यादा हुआ करती थीं। ज्यों-ज्यों युग बीतते गए काल्पनिक साहित्य की मात्रा भी हमें कम देखने को मिलने लगे। यद्यपि उसमें समकालीन जीवन के यथार्थपरक संकेत भी यत्र-तत्र उपलब्ध होते है। अत: कहा जा सकता है कि आधुनिक युग में रचा गया साहित्य यथार्थ और कल्पना दोनों से ही युक्त है, परंतु ज्यों-ज्यों साहित्य जीवन के निकट आता जा रहा है, उसमें यथार्थ का अनुपात बढ़ रहा है।

यथार्थवादी साहित्य का सृजन काल्पनिक साहित्य की तुलना में अधिक साधना की अपेक्षा रखता है । साहित्य में यथार्थ और कल्पना के संतुलन एवं सामंजस्य पर अपना विचार प्रकट करते हुए डॉ. रांगेय राघव ने एक जगह लिखा है- ''साहित्य का सत्य कल्पना को बिल्कुल नहीं छोड़ देता, वह यथार्थ के आधार पर जितना ही दृढ़ होता है उतना ही गहराइयों तक पहुँचता है। इसी प्रसंग में डॉ. विजयशंकर मल्ल ने यथार्थवाद की प्रतिष्ठा एक अभिनव विचारधारा के रूप में करते हुए कहा है- ''यथार्थवादी साहित्य किसी पिटी-पिटाई सड़क पर चलकर अपनी नियामक शक्ति का जलवा नहीं दिखाना चाहता। वह बहुत ही स्थूल, एकदम एकांगी और असंवेद्य होगा। उसके लिए बंधन इतना ही लगाया जा सकता है कि वह सामाजिक हो और सामान्य अनुभूतियों के मेल में यथार्थ का अंकन करे।''

जहाँ तक कविता का सवाल है, उसका यथार्थ वस्तुपरक होता है। वस्तुजगत् (भौतिक जगत्) का चित्रण कवि ज्यों-का-त्यों अपनी कृति में नहीं करता है। वह रचना करते हुए कुछ को छोड़ता है और कुछ को अपनाता है। ऐसी स्थिति में यथार्थ और कल्पना

दोनों साथ-साथ चलते हैं। इन दोनों में परस्पर विरोध नहीं है। कोई भी यथार्थवादी रचनाकार कल्पना द्वारा 'टाइप' रचता है। वह अपने कल्पित अनुभव की सामग्री से काम की ऐसी चीजें चुनता और सजाता है तथा उनमें ऐसी कल्पित घटनाएँ, पात्र आदि जोड़ता है कि वह ऐतिहासिक रूप से सत्य न होकर भी यथार्थ के अनुरूप होते हैं।

काव्य सृजन का मूल स्त्रोत 'प्रतिभा' को माना जाता रहा है। डॉ. रामरतन भटनागर के शब्दों में ''प्रतिभा का अर्थ है वह कल्पना-शक्ति, वह अंतर्दृष्टि, जिससे कवि प्रत्येक नवीन वस्तु-स्थिति और संयोजना में अपने वैयक्ति क और आकर्षक ढंग से किसी मूर्त वस्तु परिस्थिति, घटना, विचार अथवा भावोद्रेक की स्थापना करता है। कवि प्रतिभा की स्वतंत्र, स्वच्छंद, विविध और अदमनीय चेतना की काव्य के रूप में मूर्तिमान होती है। उसकी स्वतंत्र और सर्वोपरि सत्ता से कोई भी इनकार नहीं कर सकता।''(7)

यथार्थवादी रचनाकार के प्रतिभा के संदर्भ में त्रिभुवन सिंह ने भी ठीक ही लिखा है- ''यथार्थवादी लेखक अपनी कल्पनात्मक प्रतिभा के बल बाह्य पदार्थों का यथातथ्य चित्र उपस्थित करने का भी प्रयत्न करता है अथवा भौतिक तत्त्वों का चित्रण करते समय अपनी भावुकता तथा अपनी अनुभूतियों को बाधक नहीं होने देता। यथार्थवादी लेखक का विश्वास है कि साहित्य में सत्य की अभिव्यक्ति तभी सम्भव है जब कि उसका मूलाधार शुद्ध बाह्यों पर आश्रित हो।''(8)

मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र की दृष्टि से रचनाकार को मानव आत्मा का शिल्पी माना जाता है। पर ''मानव आत्मा की शिल्पी होने के लिए जरूरी है कि हम शब्दों की कारीगरी में महारत हासिल करें, रचना को श्रेष्ठ बनाएँ। हमारा साहित्य अभी अपने युग की मांगों को पूरा नहीं कर पा रहा है। हमारे साहित्य की कमजोरियाँ इस बात की सबूत हैं कि हमारी चेतना आर्थिक जीवन से पीछे है। यह एक ऐसी स्थिति है जिससे हमारे लेखक भी मुक्त नहीं हैं। इसलिए जरूरी है कि हम अपने को निरंतर शिक्षित करें, समाजवाद की भावना से अपने विचारात्मक हथियारों को विकसित करें। इसके बिना सोवियत लेखक अपने पाठकों की चेतना को नहीं बदल सकते और 'मानव आत्मा के शिल्पी' कहलाने के अधिकारी नहीं बन सकते।''(9)

धूमिल को यथार्थ जीवन का ग्रामीण संवेदनाओं का 'वर्ग-चेतस' रचनाकार माना जा सकता है। धूमिल की कविताओं में गाँव की निर्धनता, आर्थिक शोषण, सामाजिक अन्याय व अशिक्षा का जितना भी स्वरूप परिलक्षित होता है, वह सब धूमिल का अपना भोगा हुआ यथार्थ जीवन था। यद्यपि धूमिल की काव्य-रचना की मूल प्रेरणा एवं शक्ति उनकी ग्रामीण संवेदना रही है। वह यथार्थ की दृष्टि से देखते है और गँवाई संस्कार के जो तेवर यानी क्रोध भरी दृष्टि है, उसे वे प्रयोग करते हैं। गांव का साधारण किसान झूठ-फरेब से दूर रहता है। उनके यहाँ 'करछुल बटलोही से बतियाती है' और 'चिमटा तवे से मचलता है'। वह सत्य का अनुयायी कठोर-से-कठोर वज्राघात को सहन करके भी उदार बना रहता

है।

मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के कला और यथार्थ के आप सी सहवर्ती संबंधों को मुक्त रूप से स्वीकारा गया है। कारण '' कला की सृष्टि तभी होती है जब कल्पना यथार्थ पदार्थों और अनुभवों के आधार पर नव-निर्माण का कार्य करती है। अत: कल्पना और यथार्थ तत्त्व दोनों ही अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं। कल्पना अपना काम निराधार नहीं कर सकती, उसके लिए यथार्थ जीवन से प्राप्त सामग्री सदैव अपेक्षित है। दूसरी ओर यथार्थ जीवन और कला में तात्विक भेद है।''(10)

सुधी जन जानते हैं कि सच्चा यथार्थवादी रचनाकार सजग होकर अपनी ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से बाह्य जगत में जुड़ता है, अनुभवों की एक समष्टि प्राप्त करता है और तत्पश्चात जो कुछ भी इंद्रियबोध, भाव या विचारों के रूप में प्राप्त करता है उसे अपनी रचनात्मक कल्पना के सहारे ही, पहले अपने मन में एक रूप देता है। तत्पश्चात् उसकी अभिव्यक्ति करता है। इस अभिव्यक्ति का सीधा संबंध बाह्य जगत की अपनी छवियों से होता है। जीवन का ठोस यथार्थ कलात्मक रूप में हमें प्राप्त होता है।

धूमिल के काव्य में यथार्थबोध और सौंदर्यबोधी रुझानों के पारस्परिक संबंधों की चर्चा एक पृथक शोध प्रबंध की अपेक्षा रखती है। वैसे तो ''सौंदर्यबोध और सौंदर्यबोधीय मूल्यों के विकास का आधार मनुष्य का सामाजिक सांस्कृतिक जीवन है। मनुष्य के विचार क्षेत्र और कार्यक्षेत्र के संबंध बोध से ही उसके सौंदर्यबोधीय मूल्यों का स्वरूप पहचाना जा सकता है। हमारी सामाजिक संवेदनशीलता और सौंदर्य बोधीय संवेदनशीलता की परस्पर पूरकता से ही हमारी मानवीय संवेदनशीलता विकसित होती है। मानव चेतना को स्वार्थ के संकुचित घेरे से मुक्त करके उसे लोक- चेतना से जोड़नेवाली मुक्तिधर्मी क्षमता के कारण ही कला हमारी संपूर्ण संवेदनशीलता का परिष्कार करती हुई आदमी को 'इन्सान' बनाने का काम करती है। सौंदर्यानुभूति हमारी मनुष्यता के विकास का कारण और परिणाम दोनों है। मुक्तिबोध ने लिखा है, ''सौंदर्यानुभूति वास्तविक जीवन की मनुष्यता है। अपने से परे उठने और परे जाने की मनुष्य क्षमता से उसका पूरा संबंध है।'' कला की इस मुक्ति धर्मी क्षमता का विश्लेषण करना नए सौंदर्यबोध का एक अनिवार्य कर्तव्य है।(11) और वह सौंदर्यबोध नागार्जुन, शमशेर की परंपरा में धूमिल, आलोकधन्वा, राजेश जोशी आदि ने भरसक अपनाने की कोशिश की है।

4.12 यथार्थ और कला के आवयक्ति क संबंध : यथार्थ और कला के आवयक्तिक संबंध होते हैं। कारण यथार्थ आदर्श का विरोध है। आदर्श की शैली कल्पना प्रधान और भावुकतापूर्ण होती है। राजनाथ शर्मा के शब्दों के ''आदर्शवाद का प्रयोग वहाँ उठ खड़ा होता है; जहाँ वह यथार्थ की अवहेलना कर केवल कल्पना की ही मनोरम उड़ानें भरने लगता है। कल्पना की अतिशयता उसके रूप को वायवी बना देती है और ऐसी स्थिति में वह जीवन के लिए, समाज के लिए, अकारथ हो उठता है। यथार्थ पर आधारित कल्पना

ही जीवन की प्रेरणा देती है। इसीलिए जब साहित्यकार यथार्थ का आधार त्यागकर अपनी उर्वर कल्पना की ही उड़ानें भरने लगता है; तब उसका विरोध होने लगता है। ऐसा साहित्य हमारा मनोरंजन भले ही करने में समर्थ हो; परंतु जीवन की प्रेरणा नहीं प्रदान कर पाता''(12)

कहना न होगा कि किसी भी काव्य-कृति के निर्माण में कल्पना और यथार्थ दोनों साथ-साथ होते हैं। सतही यथार्थ केवल तथ्य सामने रख देता है। यथार्थ आखिर है क्या? ''यथार्थ का जो दर्शन मार्क्सवादियों ने विकसित किया है, उसके अनुसार यथार्थ वह नहीं है जो हम घटित होते देख रहे हैं; बल्कि वर्तमान, भूत और भविष्य तीनों ही यथार्थ हैं। जिन रचनाकारों ने यथार्थ की इस प्रक्रिया से देखा है उन रचनाकारों में दम होना चाहिए कि वे यथार्थ को समग्रता और गतिशीलता के साथ पकड़ें।''(13)

रचनात्मक स्तर पर बाह्य यथार्थ की पुनर्रचना, कल्पना तत्त्व के अभाव में हो ही नहीं सकती। यथार्थवादी रचनाकार चित्रण की 'फोटोग्राफिक' पद्धति का विरोध है। अत: स्वभावत: वह कल्पना तत्त्व का विरोधी नहीं होगा। साहित्य अथवा कला की अपनी मूल प्रकृति में ही कल्पना तत्त्व का स्वीकार निहित है। साहित्य एवं कला के अर्थ हैं बिंबों में सोचना और बिंबों में ही अभिव्यक्त करना। यथार्थ जीवन से गृहीत इन बिंबों को रचनाकार के मानस में कल्पना तत्त्व का साहचर्य प्राप्त होता है और इसी साहचर्य के परिणाम स्वरूप, उनकी कलात्मक अभिव्यक्ति होती है। यथार्थवादी रचनाकार रचना-प्रक्रिया की गणित को अच्छी तरह जानता है। अपने साहित्य-चिंतन के अंतर्गत गोर्की ने भी कल्पना तत्त्व को बिंबों में सोचने की क्रिया मानते है और कहा है कि ''साहित्य सर्जना की कला जिसका संबंध सामान्य तथा प्रतिनिधि चरित्रों के निर्माण से है, कल्पना, विदग्धता तथा आविष्कारिता की अपेक्षा रखती है।''(14)

यथार्थगत अनुभूति को महत्त्व देकर कल्पना को गौण मानने की प्रवृत्ति भी कतिपय रचनाकारों में कम नहीं है। ग्रामीण संवेदना का चित्रण 'खेवली' व 'गाँव में कीर्तन' नामक कविताओं में यथार्थ और कल्पना के समवेत रूप में उभरी है। गाँव में कुरूपताओं का भी यथार्थ चित्र देखने को मिलता है। गाँव की ग्राम-सभा की लालटेन के शीशे का टूट जाना इसका स्पष्ट उदाहरण है। गांव की आपसी वैमनस्यता की चरमसीमा को स्पष्ट करते हुए धूमिल ने कहा है-

> ''नलकूपों की नालियाँ झरना हो गयी हैं /उनमें अब लाठियाँ
> बहती हैं। और पानी की जगह /आदमी का खून रिसता
> है।''(15)

समकालीन परिस्थितियों में ग्रामीण लोगों में खेत की सिंचाई के लिए साधारण वाद-विवाद भयानक रूप ले लेता है। परिणाम स्वरूप खून-खराबा एवं विनाश की लीला उत्पन्न हो जाती है। अनेक दार्शनिकों का ऐसा मत है कि ''मन में कल्पना की स्थिति सर्वोच्च न होकर माध्यमिक है। उसकी अवस्था तर्क बुद्धि अर्थात् 'रीजन' से पहले की

अवस्था है तथा जीवन के यथार्थ अनुभवों से उद्‌भूत संवेदनाओं से उसका सीधा और निकट संबंध है। जो चित्र अथवा बिंब हम स्मृति से प्राप्त करते हैं उनके पीछे भी यथार्थ अनुभव और पदार्थों की स्थिति होती है। यथार्थवादी चिंतन इस तथ्य को स्वीकृति देता है कि मन और बाह्य जगत् के पदार्थों को व्यवस्थित करके, उन्हें कलात्मक रूप देने का कार्य कल्पना शक्ति के माध्यम से ही संपन्न होता है। कल्पना यदि वह सच्ची कल्पना है, यथार्थ अनुभवों से असंपृक्त नहीं रह सकती और यथार्थवादी रचना यदि वह वास्तव में यथार्थवादी रचना है, कल्पना तत्त्व को अस्वीकार कर अपना साहित्यिक और कलात्मक रूप स्थिर नहीं रख सकती।''(15)

यथार्थवाद के अंतर्गत कल्पना का जो अस्वीकार है वह ऐसी कल्पना का अस्वीकार है जो यथार्थ वस्तुओं के अभाव में भी कार्य करती है अथवा जहाँ उसे तर्क बुद्धि अर्थात् 'रीजन' से भी उच्चतर कोटि की मानसिक शक्ति माना गया है। इस प्रकार की कल्पना भौतिक जगत् और जीवन के अनुभवों से परे हो जाती है और प्रायः रहस्यवादी कवियों में अपनी अभिव्यक्ति करती है। 'संसद से सड़क तक' की 'एक आदमी' शीर्षक कविता में कवि धूमिल ने छोटी उम्र से लेकर उम्र की सत्ताईस वर्ष तक के अपने कटु जीवनानुभव को आत्मकथात्मक शैली में कल्पना-रूपक में अभिव्यक्त किया है। कवि ने अपने संघर्षमय जीवन को निम्नलिखित पंक्तियों में दर्शाते हुए कहा है-

> ''उम्र के सत्ताईस साल/ उसने भागते हुए जिये हैं / उसके
> पेशाब पर चींटियाँ रेंगती हैं/ उसके प्रेम-पत्रों की आँच में/
> उसकी प्रेमिकाएँ रोटियाँ सेंकती हैं/ अपनी अधूरी इच्छाओं
> में झुलसता हुआ वह एक संभावित नर्क है।''(17)

स्पष्ट है कि कवि धूमिल की पूरी जिंदगी संघर्षमय रही है। इस संघर्ष में 27 वर्ष तक भागते-भागते तन और मन से रोगी हो गए हैं। शक और थकान के कारण उनको मधुमेह की बीमारी हो गई है। उन्होंने यह भी जान लिया कि प्रेम-भाव अभिव्यक्ति के लिए जो पत्र-व्यवहार किया था, अब वे प्रेमिकाएँ उन्हें जलाकर रोटियाँ सेंक रही हैं। यह सब जानने के बाद वह अनुभव करने लगे हैं कि वे अपनी अपूर्ण इच्छाओं-कामनाओं में झुलसता हुआ जी रहे हैं; जो उन्हें संभावित नर्क-सा लगता है। डॉ. मनोज सोनकर के कथनानुसार ''धूमिल का जीवन बड़ा संघर्षमय था, छोटी उम्र में ही परिवार के भरण-पोषण का भार उन पर आ पड़ा था, रोटी-रोजी की तलाश में भी उन्हें दर-दर भटकना पड़ा था, संबंधियों ने भी खूब सताया था।''(18) अतः वे यथार्थगत अनुभूतियों में काल्पनिक जीवन जी नहीं पाते हैं।

महानगरीय जीवन उन्हें बहुत खटकता है। औद्योगिकीकरण से शहर का माहौल अटपटा हो गया है। जिससे मानव उन्हें 'लघुमानव' महसूस होता है। यह कवि की आंतरिक पीड़ा है। धूमिल की कविताओं में दर्द का यह रूप है जिससे व्यक्ति अंदर-ही-अंदर टूटता

जाता है और धीरे-धीरे उसके अस्तित्व का परिचायक बन जाता है। इसी दर्द के साथ निराशा, हताशा और अवसाद भी व्यक्त होते रहते हैं। औद्योगिकीकरण से शहर का सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन पिछड़ गया है। धूमिल परिवार एवं समग्र समाज में सम्पन्नता, प्रसन्नता का वातावरण लाना चाहते हैं। सुविधाजीवी होकर नहीं; बल्कि संघर्षशील बनकर। ऐसे में कवि धूमिल कह उठते हैं-

> ''उनकी जरूरतों के लिए मैं अपना पूरा कंधा / दे देना चाहता
> हूँ / मगर टूटते हुए परिवार में / धनुषटंकार झेलते हुए जवान-
> बछड़े-सा / कराहता हूँ।''(19)

यहाँ स्पष्ट है कि कवि धूमिल की पारिवारिक समस्या आम आदमी की यानी सामाजिक समस्या बन गई है। वे जीवनपर्यंत परिवार के पालन-पोषण के कारण संघर्षरत रहे हैं। 'आज मैं लड़ रहा हूँ' शीर्षक कविता - 'कल सुनना मुझे' काव्य संग्रह की एक दमदार कविता है। कवि ने प्रस्तुत कविता में सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था का यथार्थवादी ढंग से चित्रण किया गया है। जो काल्पनिक नहीं लगता है- कवि कहते हैं-

> ''बच्चे भूखे हैं / माँ के चेहरे पत्थर / पिता जैसे काठ ! अपनी
> ही आग में /जले है ज्यों सारा घर।''(20)

डॉ. चमनलाल गुप्त के अनुसार '' धूमिल जानते हैं कि भारतीय वातावरण से बसन्त को चुरानेवाला पेशेवर गुलाब हँस कर सबका शोषण कर रहा है। कवि 'परिवर्तन के अग्निचक्र' युवकों की तलाश कर रहा है। कवि को लगता है कि इस देश की जवानी भटक गई है और कृत्रिम जीवन से चिपकी है। कवि को लगता है कि न केवल लड़कियों के स्तन नकली हैं; बल्कि युवकों के दांत भी नकली हैं।''(21) सुखी गृहस्थ जीवन की कल्पना करते हुए कवि कहते हैं-

> ''कल सुनना मुझे / जब दूध के पौधे झर रहे हों सफेद फूल
> /नि:शब्द पीते हुए बच्चे की जुबान पर / और रोटी खायी
> जा रही हो चौके में /गोस्त के साथ / ज ब खटकर (कमाकर)
> खाने की खुशी /परिवार और भाई चारे में /बदल रही हो-
> कल सुनना मुझे / आज मैं लड़ रहा हूँ।''(22)

यथार्थ और कल्पना का सही गुंफन धूमिल की 'पटकथा' शीर्षक कविता में देखने को मिलता है। 'पटकथा' में संसदीय पद्धति की असफलता को उन्होंने रूपायित ही नहीं किया गया है; बल्कि इस कविता में 'जनवादी मानसिकता' का भी प्रस्फुटन हुआ है। विश्वंभरनाथ उपाध्याय के मतानुसार- ''जनवादी कवि जितना ही बूर्ज्वा व्यवस्था के प्रति उग्र और तिरस्कारपरक स्वर अपनाता है उतना ही उसका झुकाव जनजीवन की ओर बढ़ता है। ये दोनों रुख भी अन्य कविताओं और कवियों में मिलते हैं। मगर कविता की दृष्टि से 'पटकथा' जिस कारण अन्य रचनाओं का रंग फीका कर देती है, उसका कारण धूमिल

की कथन विधि की अनुपमता है। धूमिल में प्रत्येक वाक्य को आकर्षक और दूसरों से विलक्षण बनाने की प्रवृत्ति है। अत: उनके मुहावरे का चटकीलापन पाठक को मोह लेता है। यह चटकीलापन कई प्रकार से पैदा किया गया है।[23] उनकी इस कविता में विरोधी स्थितियों का एकीकरण यथार्थरूप से द्रष्टव्य है-

"मेरे हाथों में कविता थी/ और दिमाग में आतों का एक्स-
रे/ जो दातों और दलदलों का दलाल है, वही देशभक्त है।"

पाठकों की मानसिकता इस धक्कामार स्टेटमेंट से बौखलाती है; पर उन्हें यह कल्पनापरक सत्य उनके यथार्थबोध को और गहराता भी है।

4.2 काव्य कल्पना और रचनात्मक यथार्थ

किसी भी रचनाकार के मन-मस्तिष्क में जिज्ञासा तथा अनुभूति के बाद के उत्पन्न होनेवाला दूसरा मनोभाव कल्पना है। कल्पना के उदय के साथ ही आंतरिक रचना-प्रक्रिया का पहला महत्त्वपूर्ण कार्य प्रारंभ हो जाता है। किसी कलाकृति के रचनात्मक निर्माण में अनुभूति तथा जिज्ञासा एक प्रकार से पृष्ठभूमि के रूप में सक्रिय रहती हैं। बटरोही के शब्दानुसार "मनोविज्ञान के अनुसार भी कल्पना, अनुभूतियों के आधार पर नवीन सृष्टि की प्रक्रिया है। स्थूल रूप से कल्पना के दो भेद हैं- पुनराभिव्यंजक (Reproductive) तथा रचनात्मक (Constructive)। रचनात्मक कल्पना के दो भेद हैं- ग्रहणात्मक और आविष्कारात्मक। रचना से संदर्भित कल्पना इसी आविष्कारात्मक कल्पना भेद का ही एक रूप है, जिसे मनोवैज्ञानिकों ने सौंदर्यबोधात्मक कल्पना (Aesthatic Imagination)) कहा है। कल्पना में घटना का बिंब उपस्थित हो जाने के उपरांत रचनाकार के मन में बिंब से संदर्भित भाव का भी स्मरण होगा और इस प्रकार बिंब, भाव और पूर्व जिज्ञासा के समानुपातिक मिश्रण से 'विचार' का जन्म होगा जिसे हम जिज्ञासा का एक तर्कपूर्ण रूप कह सकते हैं, जहाँ पर रचनाकार के अपने लिए रचना का कार्य समाप्त हो जाता है।"[24]

बटरोही ने यह भी कहा है कि किसी भी कृति में रचनात्मक कल्पना का महत्त्व इसलिए बढ़ जाता है कि इसका कार्य मात्र बिंब प्रस्तुत करना ही न होकर पूर्व जिज्ञासा भाव को सार्थकता प्रदान करना भी होता है। इसी कारण कल्पना का यह रूप मनोराज्यात्मक कल्पना तथा अर्थक्रियात्मक (Pragmatic) कल्पना से भिन्न होता है। मनोराज्यात्मक कल्पना का कार्य बिंब ग्रहण के साथ ही समाप्त हो जाता है तथा अर्थक्रियात्मक कल्पना में बिंब ग्रहण के बाद केवल भौतिक परिश्रम की आवश्यकता होती है।

कल्पना और यथार्थवाद के संदर्भ में रामअवध द्विवेदी ने माना है कि "यथार्थ जीवन और कला में तात्विक भेद है। कला एक मानव कौशल से उपलब्ध होती है। यथार्थ जीवन के संबंध में हम यह नहीं कह सकते। यथार्थ जीवन का विस्तार दिक् और काल में असंगठित रूप में विद्यमान है। कला जब जीवन का निरूपण करती है तब उसको वह एक नवीन क्रम और व्यवस्था प्रदान करती है। कला में जीवन का रूप सुस्पष्ट होकर निखर

उठता है और इस नवीन रूप में नवीन अर्थ और प्रयोजन की प्राप्ति होती है, कहने का अभिप्राय यह है कि कल्पना और यथार्थ कला के क्षेत्र में एक-दूसरे के पूरक हैं और उनमें से कोई भी अकेले कलासृजन के कार्य में सफल नहीं हो सकता। चाहे स्वच्छंदतावादी कला हो, चाहे यथार्थवादी कला हो, दोनों ही के लिए कल्पना और यथार्थ के उभय उपकरण आवश्यक हैं।''(25)

4.21 काव्य कल्पना और धूमिल का काव्य : यथार्थवादी रचनाकार कल्पना का सकारात्मक ढंग से उपयोग करता है। वैसे भी यथार्थ चित्रण और कल्पना इन दोनों में भी परस्पर विरोध नहीं है। ''मनुष्य आज जो कुछ है वह अपने समस्त पूर्व विकास का परिणाम है। इसमें उसका प्राग्मानवीय प्राणि-रूप में विकास भी शामिल है। उसका इंद्रियबोध, उसकी कल्पना सभी यथार्थवाद के अंतर्गत आते हैं। यथार्थवादी लेखक कल्पना द्वारा 'टाइप' रचता है। अपने अनुभव की सामग्री से काम की चीजें चुनता और सजाता है, और उनमें ऐसी कल्पित घटनाएँ, पात्र आदि जोड़ता है, जो ऐतिहासिक रूप से सत्य न होकर भी यथार्थ के अनुरूप होते हैं। इसके विपरीत पलायनवादियों की कल्पना संसार से भागने और सुनहले स्वप्न देखने या कल्पित पीड़ा के कारण आँसू बहाने में चरितार्थ होती है।''(26)

कल्पना और मन तरंग के मिले-जुले पॅटर्न का इस्तेमाल कवि अपनी रचना-प्रक्रिया के अंतर्गत करता है। प्रसंगवश ''पाश्चात्य साहित्य-शास्त्र में कल्पना (Imagination) के साथ-साथ मन तरंग (Fancy) का भी विवेचन प्राय: होता रहा है। यद्यपि मूलत: दोनों को एक ही शक्ति की दो शाखाओं के रूप में स्वीकार किया जाता रहा है, वहाँ इन दोनों के पारस्परिक अंतर एवं महत्त्व के संबंध में विद्वानों में परस्पर पर्याप्त वाद-विवाद हो रहा है। प्रारंभ में ड्राइडन एवं कुछ अन्य साहित्यकारों ने मन-तरंग का कल्पना की अपेक्षा अधिक महत्त्व स्वीकार करते हुए इसे ही साहित्य-सर्जना का सारा श्रेय प्रदान किया था जबकि आगे चलकर स्थिति इससे सर्वथा विपरीत हो गई।''(27)

अब विभिन्न चिंतकों के द्वारा इन दोनों का अंतर बहुत कुछ स्पष्ट किया जा चुका है; जो संक्षेप में इसप्रकार है। ''कल्पना अधिक गंभीर एवं शक्तिशाली होती है जबकि मन-तरंग उसकी अपेक्षा छिछली एवं शक्तिहीन होती है।''(28)

''कल्पना में नवनिर्माण की क्षमता बहुत अधिक होती है जबकि मनतरंग स्मृति की भाँति पूर्व संचित तत्त्वों को उन्मुक्त रूप में पुन: प्रस्तुत करती है। जहाँ स्मृति में विभिन्न तत्त्व देश-काल से बँधे रहते हैं; वहाँ मन-तरंग में उनसे मुक्त रहते हैं। कल्पना वैयक्तिक इच्छाओं से ऊपर उठ सकती है जबकि मन-तरंग प्राय: वैयक्तिक इच्छाओं से ही प्रेरित एवं परिचालित होती है।''(29) हरबर्ट रीड़ के विचारानुसार ''कल्पना अंतर्मुखी होती है जबकि मन-तरंग बहिर्मुखी होती है। कल्पना में वैयक्तिक विशिष्टता और नवीनता की मात्रा मन-तरंग की अपेक्षा अधिक रहती है।''(30) रोबिन स्केलटन के विचारानुसार,

''कल्पना जीवन के किसी अंग का स्पष्ट, सजीव एवं परिपूर्ण चित्र प्रस्तुत कर सकती है जबकि मन-तरंग में यह क्षमता बहुत न्यून होती है। वे यह भी मानते हैं कि कल्पना मन-तरंग की अपेक्षा अधिक विकसित प्रक्रिया है।''(31)

धूमिल काव्य सिद्धांतों और शास्त्र ज्ञान के आचार्य नहीं थे। उनका मुख्य ध्येय रचनात्मकता था, सिद्धांत तो उनके लिए केवल साधन बनकर आया था। उनका युग राजनीतिक संक्रमण का युग था। वे जनता को जगाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने- ''केवल उन्हीं फूलों से प्यार किया जो फल लाते हैं, उन बादलों से नाता जोड़ा जो पानी बरसाते हैं।'' वे कला को न मानकर कला की उपयोगिता में विश्वास रखते हैं। इसीलिए उनकी रचनाएँ 'मोचीराम' जैसी शीर्षक कविता के माध्यम से आम आदमी के जीवन की विवशता और त्रासदी को रेखांकित करती हैं। 'संसद से सड़क तक' की 'पतझड़' कविता में कवि ने युवा पीढ़ी के मोहभंग उसकी दयनीय दशा बेरोजगार एवं उसकी विषम परिस्थिति को लेकर कलात्मक स्तर पर यथार्थपरक चित्रण किया है। भारत का नौजवान रोजगार -दफ्तर से वापस लौटते हुए कहता है-

'इस देश की मिट्टी में/ अपने जाँगर का सुख तलाशना/
अंधी लड़की की आँखों में/ उससे सहवास का सुख तलाशना
है।'(32)

कवि ने भारत के नौजवान के मुँह से यह बात स्पष्ट रूप से सुनी है कि इस देश की मिट्टी से अपने मेहनत का सुख तलाश कर पाना उसी प्रकार ना इन्साफी है; जैसे किसी अंधी लड़की की आँखों में उसके साथ किए गये सहवास के सुख तलशाना। अर्थात् फूटी आंखों से जैसे भाव-भंगिमा की अभिव्यक्ति असंभव है- वैसे ही बिना अपने मेहनत के बलबूते पर अर्जित सुख प्राप्त करना, इस देश की जमीन पर अधिकार प्राप्त कर पाना असंभव है। क्योंकि युवा पीढ़ी इस देश के अंधे नेतृत्व में अपने हक की लड़ाई के परिणामों की वास्तविकता नहीं ढूँढ सकती।

'पटकथा' नामक लंबी कविता कल्पना और यथार्थ का लोकहर्षक दस्तावेज है। 'संसद से सड़क तक' की 'हत्यारी संभावनाओं के नीचे' शीर्षक कविता में समाज के निर्धन और धनाढ्य लोग यानी आम जनता तथा विशिष्ट के बीच अंतर दिखाया गया है इसके पीछे सामाजिक व्यवस्था जिम्मेदार है। 'मुनासिक कारवाई' संसद से सड़क तक की तीसरी अंतिम कविता है; जिसके अंतर्गत कवि ने अपने निजी जीवन में कोर्ट-कचहरी के खट्टे व कडुवे अनुभव को अभिव्यक्ति दी है। कवि धूमिल ने जनविरोधी आर्थिक नीतियों की पक्ष और विपक्ष की साँठ-गाँठ का शिकार बताते हुए कहा है-

''गलत होने की जड़/ इस समझदारी में है/कि वित्तमंत्री की
ऐनक का/ कौन-सा शीशा कितना मोटा है; /और विपक्ष
की बेंच पर बैठे हुए/ नेता के भाइयों के नाम/ सस्ते गल्ले
की कितनी दुकानों का कोटा है।''(33)

कल्पना के स्तर पर ही नहीं यथार्थ रूप में राजनीतिज्ञों की मिलीभगत के कारण जन-जीवन भयानक कठिनाइयों से गुजर रहा है और जवान असमय ही बूढ़े होते जा रहे हैं।

4.22 रचनात्मक यथार्थ और धूमिल का काव्य : आज के साहित्यकारों का कहना है कि भौतिकता और कल्पना का संयोग नहीं हो सकता। दोनों के संयोग से किसी रचनात्मक साहित्य की सृष्टि नहीं हो सकती; बल्कि एक साधारण संग्रह मात्र ही होगा। 'मिल्टन' ने कविता के अंदर तीन बातों की माँग की है। उसके अनुसार कविता 'सरल हो, और अनुभूतिजन्य तथा उत्तेजक हो। बाह्य सत्य एवं रचनाकार के बीच के संघर्ष से उद्‌भूत आवश्यक, कौशल की मांग करती है, जिसके द्वारा सत्य का निर्माण होता है। यही रचनात्मक प्रक्रिया की विशेषता है।

सुधी जन जानते हैं कि आज साहित्य में शिल्प तथा कला की सहायता से यथार्थ के जिन अनेक पक्षों का उद्‌घाटन हो रहा है, उससे मानव जीवन की समस्याओं तथा संवेदनाओं पर अधिकाधिक प्रकाश पड़ने की संभावना है। धूमिल कलावादी नहीं थे। 'कला कला के लिए है' वे इस बात पर विश्वास नहीं करते थे। समकालीन कविता में वह प्रथम कवि थे, जिन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि कला का संबंध जीवन से है और कला की सार्थकता इसी से है कि जीवन के यथार्थ को कलात्मक अभिव्यक्त करे। धूमिल अपने काव्य-साहित्य का संबंध जीवन को मानते थे। यह सच है कि कला के मूल में अनुभूति होती है। यों तो अनुभूति सभी को होती है। अनुभूति को कल्पना और संवेदना के सहारे आत्मसात करने की समकालीन कवियों की उपलब्धि रही है। अनुभूति को इस कड़वी मीठी परिधि में समकालीनता से सिक्त धूमिल की लेखनशक्ति का प्रयोगात्मक रूप जब हमारे समक्ष उपस्थित होता है तो दीन-दलित मजदूरों के प्रति धनलोलुप पिशाचों के घृणित और नारकीय व्यवहार का दर्द उभरता है और 'अतीत की धिक्कार' असलियत की आग को जलाता है।

यथार्थवादी चित्रण को अधिक कलात्मक एवं प्रभावशाली बनाने के लिए लोक-भाषा एवं शब्दों आदि का प्रयोग कर लेना निश्चित रूप से यथार्थवादी रचनाकार की अधिकार-सीमा के अंतर्गत कार्य है।[34] कृष्णदत्त पालीवाल के शब्दानुसार ''कला की वैचारिक अंतर्वस्तु के साथ प्रभावी अंतर्वस्तु के सामाजिक प्रभाव की स्वचेतना उनके काव्य की वैचारिक अंतर्वस्तु को और बलवत्तर आधार देती है। कला में यथार्थ का सही प्रतिबिंबन का अर्थ केवल फोटोग्राफिक निरूपण नहीं होता; क्योंकि ऊपर से गतिहीन दिखाई देनेवाली वस्तु में भी भीतरी परिवर्तन विकास की शक्तियाँ सक्रिय होती हैं। परिवर्तन की इस प्रक्रिया को न समझने पर कला के कई भ्रामक निष्कर्ष निकलते हैं।''[35]

कहना न होगा कि विश्वजनीन दृष्टिकोण से धूमिल के काव्य की परिवर्तन-विकास प्रक्रिया को समझना-समझाना ही कवि के साथ सही न्याय होगा। उनकी ज्यादातर कविताएँ

व्यंग्यपरक हैं; जिनमें आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक जीवन की विसंगतियों, विभ्रमों, विद्रूपताओं तथा विभेदीकरण की स्थितियों का प्रकृत यथार्थवाद है।

धूमिल की संघर्ष-प्रियता ने उन्हें सदैव रचनात्मक रुझानों की यथार्थ प्रक्रिया से जोड़ा है। चाहे वह गाँव में रहे हो या नगर में; नौकरी में रहे हो या स्वतंत्र; उन्होंने सदा अपने इर्द गिर्द व्याप्त संदर्भों पर गहरी नजर रखी तथा अंधेरे में भी रोशनी की किरण का साक्षात्कार किया। उनकी आस्था की डोर कभी खंडित नहीं हुई। तभी वह यह कह सके हैं-

"अंधेरे की मुंडेर पर/ अमर-बेलि लहकी है: / मुझमें पूरे
समूह का भय-/ चीखता है/ दिग्विजय ! दिग्विजय !!"

इस आस्था प्रियता ने ही सारे विरोधों के बीच उन्हें कुछ तलाशने की चेतना से जोड़ा है। उन्होंने अपने भीतर एक 'दस्तक' सुनी कि "हम न देखें/ लेकिन अंधकार वर्ष को चीरकर प्रकाश की लचीली बाँह/ हमें छूती है।" संभवत: उन्होंने जब यह लिखा कि -"जिस-जिस की पूँछ उठाई/ सबको मादा पाया' तो उनका आशय अपने पौरुष की ललकार न होकर बड़े-बड़े बड़बोलों की कलई खोलना था, जो अपने वक्तव्यों से स्वयं अपनी कमजोरी पर पर्दा डालने का उपक्रम करते हैं।

अपने जीवनकाल में कवि धूमिल ग्रामीण एवं शहरी दोनों परिवेशों की सामाजिक विडंबना एवं विसंगतियों को अच्छी तरह से भाँप गये थे। अत: वे ऐसे प्रजातंत्र की तलाश में लगे रहे, जहाँ उनको असामाजिक तत्त्व न दिखाई दे। डॉ. गुरचरण सिंह लिखते हैं - "धूमिल ने दूसरे प्रजातंत्र की तलाश में जहाँ एक ओर शहरी जीवन की विसंगति, विडंबना और व्यस्त जीवन की चर्चा की है वहीं ग्रामीण बोध की भावना भी मुखरित हुई है। शहर में रहकर भी वे गाँव को, उसकी समस्याओं तथा वहाँ के जीवन की जटिलताओं को भूले नहीं है। देहाती और शहरी जीवन के बीच की खाईं को धूमिल ने पहचाना है। उन्होंने दोनों प्रकार के जीवन को भोगा है। वे शहर और गाँव से समान रूप से बंधे हुए थे; इसलिए वे इस खाईं को अधिक गहराई से पहचान पाए। इस खाईं की बढ़ती हुई चौड़ाई और गहराई को उन्होंने देखा और उसके कारणों को जानने की कोशिश की है।"(36)

देश की आर्थिक स्थिति को सुदृढ करने के लिए कई पंचवर्षीय योजनाएँ बनी। भुखमरी, गरीबी व बेकारी को दूर करने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं को लागू किया गया। फिर भी स्थिति में संतोषजनक बदलाव नहीं आया। महंगाई और गरीबी से देश की जनता जूझती रही। आम आदमी की आय 40 पैसे के आगे नहीं बढ़ सकी। यानी सरकार देश की गरीब जनता को रोटी, कपड़ा और मकान की व्यवस्था करने में असफल रही। कवि धूमिल ने इन्हीं तथ्यों का खुलासा अपने कविताओं में किया है। कवि धूमिल ने ग्रामीण आर्थिक स्थिति का वर्णन करते हुए कहा है-

"बच्चे की भूखी/ चिल्लाहट में/ चूल्हे का कोयला और
पतीली का दाल/ बुदबुदाते हैं- रोटी का क्या हुआ?/ औरत
आँचल ठीक करती है,/ एक कनफटी कमीज/ खूँटी पर
झूलती है दौड़ धूप के बाद/ बेतहाशा लौटे आदमी का मुँह/
धोती है बाल्टी चौका बुलाता है/ ओह ! आह!! अच्छे बच्चे
रोते नहीं।"(37)

यह कैसा देश है जहाँ बच्चे के लिए पेट भर रोटी भी नसीब नहीं होती। माँ-बाप का कलेजा फट जाता है। उनका प्यार बच्चे के लिए रोटी तो नहीं बन सकता। यहाँ कवि धूमिल यानी आम आदमी की पीड़ा के प्रति आत्म संघर्ष है। क्योंकि परिवार में भूखे बच्चों की दयनीय स्थितियाँ उसे निरंतर, खटकती एवं कुरेदती हैं। समझौतावादी बनने के लिए नहीं; बल्कि पीड़ा के विरोध में संघर्ष के लिए तत्पर होने के लिए।

धूमिल हाईस्कूल पास कर छोटी ही उम्र में नौकरी की सिलसिले में कलकत्ता (कोलकता) पहुँचे; जहाँ उन्हें बड़ी मुश्किल से लोहा ढोने से लेकर पासिंग अफ्सर की नौकरी करनी पड़ी। इस बीच उनके नजरों के सामने हो रहे आम जनता यानी मजदूरों का शोषण और पूँजीपति व्यापारी वर्ग के कुटिल कर्म का एहसास उनके मन की अग्नि को धधका देता है। इसीलिए उन्होंने यथार्थपरक ढंग से कहा है-

"यह जनता एक भेड़ है/ जो अपनी पीठ पर दूसरों के लिए/
उनकी फसल ढो रही है।"(38)

हर भारतीय के मन में मकान की एक कल्पना होती है। इस संदर्भ में 'मकान' शीर्षक कविता धूमिल की प्रतीकात्मक कविता है। 'मकान' शब्द ही सुख-सुविधा एवं संपत्ति की भावना का प्रतीक है। इस दुनिया में ऐसा कोई भी नहीं है जो मकान न पाना चाहता हो या मकान का मालिक न बनना चाहता हो। अर्थात् कवि धूमिल ने अपनी इस कविता के माध्यम से मकान बनने की समस्या को उठाया है। कवि कहते भी हैं-

"मकान/ मारे गये आदमी के नाम पर/ छतों की साजिश
है जहाँ रात/ रिश्तों की आड़ में। पशुओं को पालतू बनाती
है।"(39)

यहाँ स्पष्ट है कि आदमी मकान बनवाने के चक्कर में पड़कर अपना सारा सुख-चैन गवाँ बैठता है। उसका सामाजिक, आर्थिक एवं वैचारिक आधार सब कुछ नष्ट होता हुआ दिखता है। यानी कवि की भाषा में 'वह छतों की साजिश का शिकार' हो जाता है। लेकिन उसके परिवार के लोग जो रिश्तों के नाम पर उस मकान में रहते हैं, वह उनके साथ पालतू पशुओं की तरह व्यवहार करने लगता है। अर्थात् जो परिवार अब तक एक सामान्य स्तर पर जी रहा था, वह मकान में आते ही उसकी बनावटी जिंदगी शुरू हो जाती है। उसकी दूसरी (टी.वी., फ्रीज आदि) अन्य समस्याएँ भी पैदा होने लगती हैं।

4.3 यथार्थवाद और कलात्मक प्रतिबिम्बन

मार्क्सवादी सौंदर्य शास्त्र के अंतर्गत यथार्थवाद एक केंद्रीय प्रतिमान है और 'यथार्थ का कलात्मक प्रतिबिंबन' संबंधी अवधारणा जार्ज लुकाच के द्वारा स्थापित किया गया सहयोगी कला प्रतिमान है; जो आलोचनात्मक यथार्थवाद की कृतियों का धारदार अस्त्र भी है। अर्नेस्ट फिशर के विचारानुसार ''आलोचनात्मक यथार्थवाद पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ अकेले 'आत्म' के रोमानी विद्रोह तथा बुर्जुआ मूल्यों के प्रति ऐसे विलक्षण अस्वीकार का प्रतिफल है, जिसमें अभिजात तथा गैर-अभिजात दोनों प्रकार की मानसिकता घुली-मिली है।''(40) पूँजीवादी समाज व्यवस्था की असंगतियों के प्रति उसके समूचे कर्म के प्रति एक आलोचनात्मक रुख इन यथार्थवादियों के लिए एक विवशता बन गया था।

इस संदर्भ में बाल्जाक का यह कथन है कि ''जनता हमसे सुंदर चित्रों की माँग करती है; किंतु उनके नमूने इस समाज व्यवस्था में हैं कहाँ? आप के घिनौने वस्त्र, आप की अपरिपक्व क्रांतियाँ, आप का बातूनी बुर्जुआ, आप का मृत धर्म, आप की निकृष्ट शक्ति, बिना सिंहासन के आपके बादशाह, ये सब क्या इतने काव्यात्मक हैं कि इनका चित्रण किया जाय? हम अधिक-से-अधिक इनका मखौल उड़ा सकते हैं।''(41) आकस्मिक नहीं है कि समकालीन कविता के वर्तमान पतनशील पूँजीवादी दौर में, अर्द्ध सामंती दौर में सामाजिक व्यवस्था के यथार्थमय आलोचनात्मक व्यंग-चित्र मार्क्सवादी सौंदर्यबोधी रचनाकारों ने रचे हैं।

कलात्मक प्रतिबिंब एक ऐसा साधन है जिससे मानव जाति यथार्थ को पकड़ने और ग्रहण करने का प्रयास करता है। कला से यथार्थ का ज्ञान होता है। चाहे वह ज्ञान विज्ञान से प्राप्त होनेवाले ज्ञान से भिन्न हो। कभी-कभी कला के माध्यम से प्राप्त यथार्थ यथार्थ के ज्ञान से बेहतर साबित होता है। ऐसे में मनुष्य अपनी आत्मचेतना की ज्वाला में यथार्थ को तपाकर नवीन रूप प्रदान करता है। सारी रचना-प्रक्रिया और कलाकार की सारी वेदना जगत का वास्तविक चित्र निर्मित करने के प्रयत्न में यथार्थ के साथ इस तीव्र संघर्ष में निहित है। कलात्मक प्रतिबिंब तभी सफल माना जाता है; जब वह किसी प्रकार के सिद्धांत-विशेष में परिबद्ध न होकर मुक्त भाव से सभी रूपों और विश्वासों को अपनाकर चलता है।

डॉ. शिवकुमार मिश्र के शब्दों में ''लुइअल्थुसर की मान्यता है कि कला विचारधारा नहीं है, लेकिन दोनों के बीच विशिष्ट संबंध होता है। उन्होंने लिखा है... 'मैं' सच्ची कला को विचारधाराओं में नहीं गिनता, लेकिन कला का विचारधारा से विशिष्ट संबंध होता है। कला उस विचारधारा को देखने, अनुभव करने और बोध करने में हमारी मदद करती है, जो यथार्थ की ओर संकेत करती है।... कला से यथार्थ का अनुभव होता है, सच्ची कलाकृति यथार्थ का दर्पण न होकर यथार्थ की सर्जिका होती है। दूसरे दर्पण केवल सतह की वस्तुओं को ही प्रतिबिंबित करते हैं, जबकि साहित्य एवं कला के अंतर्गत यथार्थ का

अंग बनकर यथार्थ के वे रूप भी आते हैं, जो सतह पर ही दिखाई न देकर सतह के अंदर निहित होते हैं, जो तत्काल का सत्य न होकर अतीत और आगत के सत्य भी होते हैं। दूसरे शब्दों में साहित्य या कला के अंतर्गत चित्रित यथार्थ अतीत और आगत की संभावनाओं को भी मूर्त करता है, जो महज कोरी कल्पनाएँ न होकर वैज्ञानिक दृष्टि के संदर्भ में देखे गए जीवन की यथार्थ आकृति होती है, जिनका उद्‌भव अनिवार्य है।''(42)

साहित्य समाज और यथार्थ व कल्पना के सहसंबंधों में जार्ज लुकाच की मान्यताएँ महत्त्वपूर्ण मानी गई हैं।

4.31 यथार्थवाद और कलात्मक प्रतिबिंबन सिद्धांत :

यथार्थ के कलात्मक प्रतिबिंब के संदर्भ में जॉर्ज लुकाच का मानना है कि यह उसी प्रकार के अंतर्विरोधों पर आश्रित है जिस तरह के अंतर्विरोधों पर यथार्थ के अन्य प्रतिबिंब आश्रित हैं। यह इन अंतर्विरोधों के विज्ञान की अपेक्षा दूसरे प्रकार के समाधान ढूँढता है। यहीं से आगे बढ़ते हुए जॉर्ज लुकाच कहते हैं- ''हम यथार्थ के कलात्मक प्रतिबिंब के विशिष्ट स्वभाव की परिभाषा कर सकते हैं। समस्त महान कला का लक्ष्य, यथार्थ की ऐसी छवि प्रदान करना है; जिसमें आभास और सत् और विरोध-सा, विशेष, सामान्य अव्यवहृत और अवधारणा आदि के बीच के अंतर्विरोधों को इस प्रकार सुलझा दिया गया हो कि दोनों कलाकृति की प्रत्यक्ष छवि में स्वत: स्फूर्त अखंडता में समाहित हो जाएं और एक अभिन्न खंडता का भाव प्रस्तुत करें। सामान्य व्यक्ति विशेष की विशेषता में प्रकट होता है, यथार्थ प्रतिफलित होकर आभास के भीतर अनुभूत हो जाता है, सारघटक विशेष कर चित्रित हो रहे विशिष्ट मामले के प्रेरक कारण के रूप में सामने आता है।''(43)

यथार्थ के कलात्मक प्रतिबिंब में जॉर्ज लुकाच ने साहित्य की जहाँ यह भूमिका मानी है कि साहित्य सामाजिक आंदोलन के बाह्य रूप और उसके सारतत्त्व के बीच मौजूद अंतर्विरोध को अपने पाठकों के लिए हल करने की सामर्थ्य रखता है। वहाँ इसके विपरीत ब्रेंख्त की मान्यता यह है कि ''कला का प्रयोजन आस्वादकर्ता के सामने उन अंतर्विरोधों का खुलासा पेश करना है तथा उन्हें सक्रिय बनाना है।''(44)

सुधी जन जानते हैं कि स्वातंत्र्योत्तर दौर में उपजे धूमिल समकालीन कविता के प्रतिनिधि कवि हैं। उन्होंने अपने दायित्व को समझकर नवीन सांस्कृतिक आदर्श की प्रस्थापना करते हुए समाज को नया मोड़ देने की कारगर कोशिश की है। धूमिल का मानना है कि साहित्य एवं भाषा के माध्यम से मनुष्य की संस्कृति का पता चलता है। क्योंकि साहित्य मनुष्य मन एवं सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति है। धूमिल स्वयं कविता को सांस्कृतिक प्रक्रिया मानकर उसकी परिभाषा देते हुए कहते हैं -

''कविता/ भाषा में/आदमी होने की तमीज है''(45)

'तमीज' शब्द के माध्यम से कवि कहना चाहते हैं- कि यह संस्कृति से जुड़ा हुआ

शब्द है जो तहजीब, व्यवहार, शालीनता और आदर्श संकल्पना से जुड़ा है।

भारत की अधिकांश जनता गाँवों में रहती है, जो भुखमरी, बदहाली, बेरोजगारी की शिकार है। धूमिल ने महसूस किया है कि भारतवर्ष की अधिकांश जनता भुखमरी से त्रस्त है। 'भूख' अमीट होती है। उसका अंत तभी होता है, जब इंसान की मृत्यु होती है। आज का आम आदमी अपनी भूख मिटाने के लिए न जाने कितने कुकर्म कर बैठता है। भूख की महिमा का चित्रण करते हुए कवि धूमिल ने कहा है-

> ''भूख की दर्शन-दीर्घा से कूदकर/मरी हुई आँतों का शोर/
> अकाल की पर्चियाँ फेंकता है/ आ मेरे साथ, आ मेरे साथ
> आ/हड़ताल का रास्ता हथियार के रास्ते /जुड़ गया है।''(46)

स्पष्ट है कि मात्र भूख ही दंगा-फसाद, चोरी कैती, खून-खराबा, हत्याएँ तथा हड़ताल आदि करवाती है। कवि धूमिल ने भूख को यथार्थ के स्तर पर सामाजिक एवं आर्थिक समस्या माना है। धूमिल कृत 'मतदाता' और 'चुनाव' नामक दोनों कविताएँ राजनीति से संबंधित हैं। डॉ. चमनलाल गुप्त के अनुसार ''मतदाता' शीर्षक कविता में आम आदमी में मत की ताकत के प्रति सजगता का चित्रण हुआ है। अब रोटी के लिए वोट नहीं बिकेगा, उसका प्रयोग वह व्यवस्था परिवर्तन के लिए करेगा।''(47) ऐसे जागृत मतदाता के संबंध में कवि ने कहा है-

> ''पहली बार यह जानकर/ वह खुश होगा कि मतपेटी में/
> मत-पत्र के साथ वह अपनी समझ नहीं डाल आया है/ आज
> भी।''(48)

'आस्था' शीर्षक कविता धूमिल ने नेहरू की मृत्यु के बाद लिखी है। जिसका डॉ. चमनलाल गुप्त ने यथार्थवादी कलात्मक प्रतिबिंब स्पष्ट करते हुए कहा है-''आस्था कविता में कवि के मन में नेहरू की मृत्यु के उपरांत छाए अंधकार का चित्रण है। उसे लगता है कि 'रोशनी के दस्तावेज' फट जाने और आस्थाओं के टूट जाने के पश्चात् अंधेरे की मुंडेर पर अनजाने अज्ञात भय की अमरबेलि फूल उठी है और लगता है वह सबको जीत लेगी। आस्था का केंद्र बिंदु वह जननायक चला गया और जनता भयवश अनास्था के अंधकार में डूब रही है।''(49) 'कल सुनना मुझे' काव्य संग्रह की 'दस्तक' शीर्षक कविता जनता में आशा के स्वर भरनेवाली है। कवि धूमिल कहते हैं-

> अंधकार वर्ष को चीरकर /प्रकाश की लचीली बाँह/ हमें
> छूती है। उजले केशोंवाली रोशनी ने/ जब भी दस्तक दी है/
> दरवाजे खुलते हैं।''(50)

यहाँ स्पष्ट है कि ये पंक्तियाँ मनुष्य के अंदर श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न कर उन्हें अपने कर्म क्षेत्र के प्रति जागरूक कर पुनः निर्माण के मार्ग में आगे बढ़ने का प्रोत्साहन

देती हैं। धूमिल ने यथार्थ जीवन के रचनाकार मित्र राजकमल चौधरी पर 'कलात्मक प्रतिबिंबनवाली रचना लिखी है। यह राजकमल चौधरी के मृत्यु के पश्चात् लिखी गई थी। डॉ. मनोज सोनकर के अनुसार ''इस कविता में धूमिल ने राजकमल चौधरी की काव्यगत विशेषताओं के साथ उनकी चारित्रिक विशेषताओं का बड़े ही आत्मीय निष्पक्ष और साहसिक ढंग से अंकन किया है।''(51) धूमिल 'राजकमल चौधरी' के बारे में लिखते हैं-

''उसे जिंदगी और जिंदगी के बीच/ कम-से-कम फासला/
रखते हुए जीना था/ यही वजह थी कि वह / एक की निगाह
में हीरा आदमी था/ तो दूसरी निगाह में/ कमीना था।''(52)

सुधी विद्वानों को ज्ञात है कि 'सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र' नामक शीर्षक कविता की प्रथम पाँच पंक्तियाँ सबसे ज्यादा और अधिक उद्धृत की जाती हैं। कवि धूमिल ने इस कविता में प्रजातंत्र की खोखली व्यवस्था पर व्यंग्य कसा है; क्योंकि इस खोखली व्यवस्था में आम आदमी ही हमेशा दो पाटों के बीच में पीसता रहता है। अत: ऐसी व्यवस्था पर कवि धूमिल व्यंग्य करते हुए कहते हैं-

''न कोई प्रजा है/ न कोई तंत्र है/यह आदमी के खिलाफ/
आदमी का खुलासा/ षड्यंत्र है।''(53)

धूमिल की 'कवि 1970' नामक कविता में शोषित मजदूर है, आम जनता का अभावग्रस्त परिवार है, भूख से पीड़ित साधारण जनता है तथा सतही तारीफ करनेवाले आलोचक हैं। यहाँ धूमिल भयावह यथार्थ स्थिति से घिरे हुए त्रासद भाव में काव्यकर्म के संबंध में पूछ बैठते हैं -

''जब इससे न चोली बन सकती है/ न चोंगा;/ तब ××
इस ससुरी कविता को/ जंगल से जनता तक/ ढोने से क्या
होगा?''(54)

यह कविता अपने आप में यथार्थ का सशक्त प्रतिबिंब है। यहाँ कवि की निजी विवशता देशव्यापी जनविवशता में बदल गई है। जो हमारे यथार्थ जीवन की विभीषिका है।

4.32 धूमिल का काव्य और कलात्मक प्रतिबिंबन : जार्ज लुकाच ने साहित्य को सामाजिक मूल्यों से विरहित नहीं करना चाहा है। वे उसकी सौंदर्यात्मक सत्ता की पूरी रक्षा करना चाहता है। वे कोरे सौंदर्य शास्त्र का निर्माण न करके अपने ढंग का मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र गढ़ने की कोशिश कर रहे थे। वामपंथी होने के कारण ही उन्होंने यथार्थवाद आलोचनात्मक यथार्थवाद और यथार्थ के कलात्मक प्रतिबिंबन पर जोर दिया है। उनके सौंदर्यशास्त्र को समझने के लिए उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ बीज शब्दों की जानकारी आवश्यक है। वे शब्द हैं- ''यथार्थवाद, प्रतिफलन (रिफ्लेक्शन) रूप, टाइप, समग्रता और विशिष्टता

की कोटि। ये सारी की सारी कोटियाँ अलग-अलग नहीं हैं। वे एक-दूसरे से अनिवार्यत: संबंद्ध हैं। एक को समझने के लिए सबको समझना होगा। यही है उसकी समग्रता या टोटैलिटी, किंतु उसकी सौंदर्यशास्त्रीय विवेचना का केंद्रवर्ती शब्द है यथार्थ।''(55)

वास्तव में काव्य-रचना-प्रक्रिया में एक विशिष्टता अवश्य होती है। वह है आदर्श की अपेक्षा वस्तुनिष्ठा, यथार्थ की आग्रहशीलता। डॉ. रोहिताश्व के विचारानुसार ''यथार्थ के कलात्मक प्रतिबिंबन की वस्तुपरकता समग्रता के सही प्रतिबिंब पर निर्भर है। इस प्रकार किसी वर्णन की कलात्मक यथा तथ्यात्मकता इस बात पर निर्भर नहीं है कि यह वर्णन यथार्थ के किसी वैसे ही अंकन के तद्नुरूप है या नहीं। किसी कलाकृति का वर्णन वस्तुपरक यथार्थ की समग्र प्रक्रिया के परिशुद्ध प्रतिबिंब का आवश्यक अंग होने के कारण जीवन का परिशुद्ध प्रतिबिंब होता है, चाहे कलाकार ने जीवन में उसका अवलोकन किया हो अथवा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर उसका कल्पना से सृजन किया हो।''(56)

पाश्चात्य विद्वान जॉर्ज लुकाच के अनुसार ''लेनिन ने भी कलाकृति की स्वत: पूर्णता इस तथ्य पर निर्भर माना है कि कलाकृति अपनी समग्रता में जीवन की पूरी प्रक्रिया को पूर्ण प्रतिबिबिंत किस सीमा तक कर सकती है....। वैसे भी लेनिन और एंगेल्स के लिए कलाकृति में पक्षधरता वस्तुपरक यथार्थ की विधायक और जीवन के सही वस्तुपरक कलात्मक प्रतिबिंब की अवयवभूत है। कलाकृति की प्रयोजनशीलता कृति में चित्रित संसार के वस्तुपरक संदर्भ में मुखर होती है।''(57) यथार्थ के कलात्मक प्रतिबिंबन में सबसे सशक्त माध्यम काव्य-भाषागत अनुभूति, अभिव्यक्ति की जीवंतता, संघर्षशीलता का द्वन्द्व है।

यथार्थवादी साहित्य के कलात्मक प्रतिबिंब को विशेष महत्त्व दिया जाता हैं; क्योंकि उसके अभाव में यथार्थवादी साहित्य की सृष्टि संभव नहीं है। इस संबंध में फास्ट हार्वर्ड ने अपने ग्रंथ 'लिटरेचर एंड रियलिटी' में लिखा है- ''प्रतिभा के अभाव में यथार्थवाद की सृष्टि असंभव है तथा कला की अनुपस्थिति तो और भी अखर जाती है। यथार्थवाद उस मलिन पथ पर अंधे की दौड़ नहीं, जो कीचड़ों के बीच से होकर जाता है, यथार्थवाद गंदे रहस्यों, प्रत्येक भाषा के लिए विचारहीन प्रसन्न करनेवाले शब्दों के बदले प्रयुक्त किया जाने वाला शब्द नहीं, यथार्थवाद साहित्य को कारागर से कला की हथकड़ियों से मुक्ति की कामना करनेवाला विधान सभा का विरोधी सदस्य नहीं, सिद्धांतों अथवा मतों को रंजकता प्रदान करने के लिए प्रयोग में आनेवाला शब्द नहीं और न तो यथार्थवाद रचना-वर्द्धन के लिए जोड़ी जानेवाली विशेषताओं के बदले प्रयुक्त होनेवाली ही कोई वस्तु है; बल्कि वह उन्हीं गुणों की मनुष्य कृत सृष्टि है।''

कवि धूमिल कलात्मकता के पक्ष में नहीं थे, फिर भी वे इस तरह के प्रयोग में पूरी तरह छूट लेते हैं - नवीन शब्द गढ़ते हैं, पुराने में संशोधन करते हैं, श्लेष, विरोधाभास, कल्पना, स्मृति, शब्द योजना में हेर-फेर आदि से भाषा का एक भिन्न रूप समकालीन हिंदी कविता को देते हैं। वैसे कवि धूमिल एक यथार्थवादी साहित्यकार रचनाकार के रूप

में विख्यात हैं। प्रारंभ में भले ही वे आदर्शवादी रचनाकार रहे हों; लेकिन सन्1960 के बाद उनकी रचनाओं में यथार्थ के पुट हमें यत्र-तत्र देखने को मिल जाते हैं। भाषा के संदर्भ में आदर्शवादी एवं यथार्थवादी साहित्यकार की सीमा रेखांकित करते हुए डॉ. रामलखन शुक्ल ने कहा है- ''आदर्शवादी साहित्यकार भाषा प्रयोग में अधिक सतर्क रहते हैं। वे भाषा के सौंदर्य निर्माण को अधिक महत्त्व देते हैं और उनकी भाषा में भावुकता अधिक होती है। यथार्थवादी अर्थ की ओर अधिक सावधान रहता है। वह शब्दों को नवीन अर्थमत्ता प्रदान कर उनके व्यंजक तत्त्व को बढ़ाता है तथा उसकी शैली में विनोद, तर्क, व्यंग्य और बौद्धिकता की प्रधानता रहती है। यथार्थवादी सामान्य रूप में जन भाषा को अपनाकर चलते हैं और सामान्य व्यवहार के शब्दों को साहित्य में प्रतिष्ठित करते हैं। लोक जीवन के विभिन्न पक्षों को वे यथार्थ रूप में चित्रित करने का प्रयत्न करते हैं।''(58)

'शहर का व्याकरण' शीर्षक कविता में कवि धूमिल ने शहर की कानूनी व्यवस्था तथा शहरी जिंदगी का यथार्थ चित्र खींचा है। कवि ने घोषित कर दिया है-

''बनिया-सच्चाई है। यह महँगाई है ××× सचमुच मजबूरी
है/ मगर जिंदा रहने के लिए पालतू होना जरूरी है।''(59)

आज इतनी महँगाई बढ़ गयी है कि बनिया महँगाई के लिए एक सच्चाई बन गया है। वह अपने लाभ कमाने के उद्देश्य से, मकसद से उपभोक्ता समाज को, बाजार को ही चकमा देकर अपना लाभ कमाता है। यदि साधारण आदमी उसके खिलाफ खड़ा हो जाता है तो कुत्तों की मौत मार दिया जाता है। यदि उसे जिन्दा रहना है तो भलाई इसीमें है कि वह सत्ता पक्ष के साथ रहे। जिन्दा रहने के लिए पालतू कुत्ते की तरह अपनी पूँछ हिलाता रहे।

हमें कभी-कभी धूमिल की विचारधारा को देखकर ऐसा लगता है कि वे कहीं-न-कहीं वे प्रगतिशील मार्क्सवादी विचारधारा से भी प्रभावित हैं। डॉ. वाचस्पति ने ठीक ही कहा है- ''धूमिल ने अपने जीवनकाल में काशी से बाहर जाकर सीधी लेखक शिविर, पटना युवा लेखक सम्मेलन और बांदा के प्रगतिशील सम्मेलन में प्रमुख रूप से हिस्सा लिया। कठमुल्लेपन की बातों से चिढ़कर और चिढ़ाने की नीयति से ही धूमिल ने बांदा में कहा- 'मैं मार्क्सवाद का रसोइया नहीं हूँ। अपनी रचनाओं में मार्क्सवाद का छौंक लगाने का आग्रह मुझसे मत करे' यहाँ यह बताना जरूरी है कि बनारस में मार्क्सवाद की बुनियादी बातें जानने-सीखने के लिहाज से धूमिल आलोचक चंद्रवबली सिंह से अक्सर मिलते-बतियाते रहते थे।''(60) धूमिल के मन में आत्मगौरव का भाव रहा है; पर सत्ता-व्यवस्था की भाषागत नीति के प्रति उनमें आक्रोश रहा है, जिसमें वे फटकारते हुए कहते हैं-

''यह जानकर कि तुम्हारी मातृभाषा /उस महरी की तरह
है जो /महाजन के साथ रात-भर /सोने के लिए /एक साड़ी
पर राजी है।''(61)

यहाँ कवि ने 'मातृभाषा' की तुलना उस बर्तन मांजनेवाली कहारन से की है; जो किसी भी महाजन के साथ केवल एक 'गज' भर साड़ी के लिए रात भर गुजारती है। व्यवस्था के सरमायादार लोगों ने 'मातृभाषा' को उसी महरी की तरह अमीरों के हाथों बेच दिया है। धूमिल यहाँ पर देश के कर्णधारों की भाषा-नीति पर व्यंग्य करते हैं; जिन्होंने हिंदी को राजभाषा का गौरव न देकर संविधान की अवहेलना की है और व्यवहार में अंग्रेजी को लादने का प्रयास किया है।

प्रसंगवश 'शांतिपाठ' शीर्षक कविता में धूमिल राष्ट्रीय नीति व्यवस्था पर भी तीखे व्यंग्य किए हैं। यहाँ युद्ध संबंधी भारतीय नीति एवं अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के उल्लेख द्वारा वास्तविकता का बोध होता है। धूमिल देश की भ्रष्ट राजनीति की कटु एवं सत्यपरक आलोचना करते हैं। स्वयं कवि ने अपने क्रोध को जनमत की चढ़ी हुई नदी में सड़ा हुआ काठ कहा है -

> "मेरा गुस्सा/ जनमत की चढ़ी हुई नदी में/ एक सड़ा हुआ
> काठ है।"(62)

यहाँ कवि ने बड़े पैमाने पर जन-जागृति लाने की आवश्यकता महसूस किया है। कहना न होगा कि समाज में व्याप्त अमानवीय रूढ़ियों एवं अर्थहीन परंपराओं का भी खुलासा धूमिल की कविताओं में मिलता है।आज जहाँ-जहाँ धार्मिक संस्थाएँ बनाई गई है। वह सभी खोखले एवं घिनौने अस्तित्व के झूठे प्रचार-प्रसार का केंद्र बन गई हैं। अत: कवि धूमिल ने वैश्विक स्तर पर व्याप्त विसंगतियों का यथार्थपरक प्रतिबिंब रचते हुए कहा है

> "मैंने अचरज से देखा कि दुनिया का /सबसे बड़ा बौद्ध-मठ/
> बारूद का सबसे बड़ा गोदाम है /अखबार के मटमैले हाशिये
> पर /लेटे हुए एक तटस्थ और कोढ़ी देवता का/ शांतिवाद
> नाम है।"(63)

वर्तमान दौर में भाषा एवं मजहब के नाम पर मानवता के विरुद्ध षड्यंत्र रचनेवाले सत्ताधारियों को बेनकाब करते हुए कवि धूमिल ने धिक्कारते हुए कहा है-

> "रामनामी बेचकर या रंडियों की/ दलाली करके रोजी कमाने
> में /कोई फर्क नहीं है।"(64)

यह कवि की भारतीय जनजीवन के उद्देश्यहीन कर्म पर एक सार्थक टिप्पणी है। 'बीस साल बाद' कवि धूमिल की एक ऐसी कविता है; जो आजादी मिलने के लगभग बीस वर्ष बाद लिखी गई है। इस कविता में कवि आजादी के पूर्व कमजोर एवं निरीह लोगों के शोषण के इतिहास की पुनरावृत्ति होते देख रहे हैं। आजादी मिलने के साथ जनता के दु:खों के अंत का स्वप्न पूरा न होते देख कवि का मोहभंग इस कविता में बखूबी चित्रित हुआ है। धूमिल ने यह पूरी तरह से महसूस कर लिया है कि प्रजातंत्र में दमनचक्र चलाया जा रहा है। आम जनता को जो आजादी मिली है, उसका अर्थ बदल गया है। इसीलिए

वे कड़ुवाहट भरे स्वर में कहते हैं-

> ''क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है/ जिन्हें एक पहिया ढोता है /या इसका कोई खास मतलब होता है?''(65)

धूमिल के काव्य में जनतंत्र को तमाशा और तुकांत रूप में मदारी की भाषा बतलाना 'यथार्थ' की विसंगतियों को कलात्मक रूप में प्रस्तुत करना है। पूँजीवादी व्यवस्था के जनतंत्र में अभिजात्य वर्ग ही सेठाश्रयी सत्ता-वर्ग ही उत्पादन एवं वितरण केंद्रों पर अपना वर्चस्व रखता है। वह लोक-विमुख संस्कृति का प्रश्रय देता है। धूमिल के पश्चिमोन्मुख संस्कृति के प्रभाव को ''गर्म कुत्ता खा रहे थे/ सफेद घोड़ा पी रहे थे/''(66) के माध्यम से अभिज्ञापित करते हैं। वे 'शहर में सूर्यास्त', 'मोचीराम' और 'पटकथा' आदि कविताओं के माध्यम से यथार्थगत विकृतियों को दर्शाते हुए सत्ता-व्यवस्था के दमन को काव्यात्मक भाषा में दर्शाएँ हैं। 'पटकथा' में उन्होंने कहा है-

> ''हर तरफ/ शब्दबेधी सन्नाटा है/ दरिद्र की व्यथा की तरह/उचाट और कूँथता हुआ/ घृणा में डूबा हुआ सारा-का-सारा देश/ पहले की तरह आज भी/ मेरा कारागार है।''(67)

4.4 धूमिल का काव्य : युगबोध एवं प्रतिबद्धता

समकालीन कविता के व्यापक क्षेत्र में कई पीढ़ियों के रचनाकार समानांतर रूप से सक्रिय रहे हैं। पर उन सभी के 'युगबोध' को समान नहीं माना जा सकता है। ''अज्ञेय और मुक्तिबोध की कला, दृष्टि, विश्वदृष्टि और युगबोध में जमीन आसमान का अंतर रहा है। कारण अज्ञेय व्यक्तिवादी, अस्तित्ववादी और मनोविश्लेषणवादी आस्तिक रचनाकार रहे हैं और मुक्तिबोध मार्क्सवादी, यथार्थवादी और सामूहिक चेतना के वर्गचेतस रचनाकार रहे हैं। अत: अज्ञेय जहाँ 'असाध्य वीणा' और 'ओ नि:संग ममेतर' की व्यक्तिवादी रचना के सृजक हैं, तो मुक्तिबोध 'ब्रह्मराक्षस' और 'अंधेरे में' नामक व्यक्तित्वांतरण वाली कविता के । कहना न होगा कि धूमिल के समकालीन कुँवर नारायण आस्तिक भाव से 'आत्मजयी' तथा जगदीश चतुर्वेदी 'सुर्यपुत्र' जैसी मिथकीय कविताएँ लिख रहे थे वहीं अपने गत्यात्मक दौर के ऐतिहासिक-संक्रमणकाल में धूमिल 'मोचीराम' और 'पटकथा' का सृजन कर रहे थे।''(68) अत: यह स्पष्ट है कि युगबोध के स्तर पर कुँवर नारायण और धूमिल की अभिरुचि, विचारधारा, युगबोध और प्रतिबद्धता में काफी अंतर है।

सुधी विद्वान जानते हैं कि भारत में 1947 के बाद भारतीय प्रजातंत्र की संसदीय राजनीति की पृष्ठभूमि पुनरुत्थानवाद की रही है और कार्य-प्रणाली निजी पूँजी को बढ़ावा

देनेवाली। इसमें किसान, मजदूर और मध्यवर्ग की आर्थिक मुक्ति और सामाजिक स्वतंत्रता का कोई ठोस प्रावधान नहीं है। वह नीति के निर्देशक तत्त्वों से सुसज्जित है। इसीलिए, कांग्रेस और मुस्लिम लीग के पूँजीवादी नेतृत्व ने आजादी के संघर्ष को वर्गगत नहीं होने दिया। यदि भारतीय सामंतवाद और राष्ट्रीय पूँजीवाद की मिली-जुली स्वार्थ नीतियों का विश्लेषण करें, दोनों की ऐतिहासिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों को समझें तो मालूम होगा कि आधुनिक भारत का राष्ट्रीय रिनासा बदले हुए सामाजिक-आर्थिक ढाँचे की उच्चवर्गीय विचार-प्रणाली के रूप में पल्लवित होता है। इसमें पूँजीवादी ऐश्वर्य भोग और मध्ययुगीन उदासीनता प्रकट की जाती है।

स्वातंत्र्यपूर्व भारतवर्ष में राजेश्वर सक्सेना के अनुसार- ''एक ओर तो साम्राज्यवादी अंग्रेजों ने भारतीय इतिहास की लोकशक्ति को तोड़-मरोड़कर पेश किया जिसके परिणाम स्वरूप नए ज्ञान-विज्ञान से पैदा होने वाले यथार्थवादी चिंतन का जनवादी विकास अवरुद्ध हो गया। दूसरी ओर राष्ट्रीय बुर्जुआजी ने रिनासा-बोध के द्वारा 'समन्वयवादी उच्चमानजीवन' की सीख दी, जिसने जनता के यथार्थ अंतर्विरोधों को दबा दिया। कुल मिलाकर, विदेशी साम्राज्यवाद और देशी पूँजीवाद ने आधुनिक भारत की जनता के यथार्थवाद को पनपने नहीं दिया है।(69)

सातवें दशक में भाववादी और फैशन के अनुकूल काव्य सृजना करनेवाले रामधारी सिंह दिनकर के 'शुद्ध कविता की खोज'(70) के विरुद्ध प्रतिबद्ध कविता का जो दर्शन सामने आया, उसकी पहचान जिन कवियों के आधार पर बनी, उनमें धूमिल प्रमुख थे। परमानंद श्रीवास्तव के विचारानुसार ''अधिक-से-अधिक क्रूर और अमानवीय होती व्यवस्था के विरुद्ध कविता को एक प्रकार के नैतिक हस्तक्षेप का माध्यम बनाते हुए धूमिल के बारे में यह कहना अतिरंजना नहीं माना जाएगा कि उन्होंने अपने समय को शब्द दिए। पहले से प्राप्त मुहावरे में भाषा या काव्यभाषा में इतना बड़ा परिवर्तन लाने के लिए केवल साहस नहीं, नया काव्यात्मक विवेक भी अपेक्षित है। धूमिल इस काव्यात्मक विवेक का निश्चित प्रमाण देते हैं। काव्यात्मक ऊर्जा और नैतिक साहस में अद्वितीय पहचान बनानेवाले धूमिल के यहाँ कविता के बहुत ही कम समय में अर्थ सीमित होने का जो खतरा पैदा हुआ, उसे बहुत सतर्कता से देखने की जरूरत है।''(71)

सामान्यत: 'युगबोध' से तात्पर्य अपने युग की ऐतिहासिक शक्तियों के आंतरिक संघर्ष की पहचान है। उदाहरणत: सामंतवाद के बाद पूँजीवादी-शक्तियों के आगमन, वर्चस्व और उत्पादन कौशल को प्रगतिशील माना गया; पर सर्वहारा श्रमिक वर्ग का कल्याण तो पूँजवादी व्यवस्था में न होकर समाजवाद या साम्यवाद में होता है। अज्ञेय और गिरिजाकुमार माथुर 'वर्ग संघर्ष' वाले पूँजीवादी युगबोध के पैरोकार नहीं रहेंगे; पर नागार्जुन, शमशेर और धूमिल से वर्गसंघर्ष युगबोध और प्रतिबद्धता की अपेक्षा उनकी प्रगतिशील आस्था से की जाती है। युगबोध और प्रतिबद्धता की दृष्टि से धूमिल की 'हत्यारे' नामक एक महत्त्वपूर्ण

कविता है जो इस प्रकार शुरू होती है-

> हत्यारे एकदम नहीं आते/ वह पुराना तरीका है एक आदमी
> को मारने का/ अब एक समूह का शिकार करना है/ हत्यारे
> एकदम सामने नहीं आते/ उनके पास हैं कई-कई चेहरे/
> कितने ही अनुचर और बोलियाँ/ एक-से-एक आधुनिक सभ्य
> और निरापद तरीके/ ज्यादातर वे हथियार की जगह तुम्हें/
> विचार से मारते हैं/वे तुम्हारे भीतर एक दुभाषिया पैदा कर
> देते हैं।(72)

उपर्युक्त कविता 'संसद से सड़क तक' काव्य संग्रह के बाद की कविता है, जिसकी अनुभव-वस्तु को देखें, तो पता चलता है कि न चीजों की पहचान बदली है, न धूमिल की कविता का मुहावरा बदला है। फिर भी इस परिचित तेवर में कुछ खोजने की इच्छा बनी रहती है। पूँजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत मनुष्य को हथियार की जगह विचार से मारने की दृष्टि उभरकर आई है। पूँजीवादी व्यवस्था में मनुष्य मात्र में फ्लैट, फ्रिज, कार और विदेश यात्रा की लालसा जगाई जाती है, उसे विवेकशील इंसान के बजाय उपभोक्ता समाज का एक 'मनुष्य' मात्र बना दिया जाता है।

युगबोध के स्तर पर धूमिल एक संवेदनशील कवि रहे हैं। श्रीराम त्रिपाठी का कथन है- ''कोई भी संवेदनशील और दृष्टि सम्पन्न कवि समकालीन हलचलों से अपने आपको अलग नहीं रख सकता। वह उसमें जरूरी शिरकत करेगा। वह जानने-समझने की कोशिश करेगा कि वे हलचलें किन परिस्थितियों में किन उद्देश्यों को लेकर आईं। ऐतिहासिक समझ के बिना किसी भी हलचल को ठीक-ठीक नहीं जाना जा सकता। एक प्रगतिशील कवि इतिहास को भी दुरुस्त करता है; क्योंकि सत्तापक्ष पहले इतिहास को ही गड्ड-मड्ड करता है। धूमिल में विकास की प्रक्रिया की समझ है। इसलिए उनकी कविताओं में 1962 का भारत-चीन सीमा संघर्ष, 1964 में नेहरूजी की मृत्यु, 1967 का नक्सलबाड़ी विद्रोह, 1967 का भाषा-आंदोलन, 1966 की बिहार और उड़ीसा की भुखमरी और अकाल के पीछे छिपे कारणों की पड़ताल और उसमें अपनी भूमिका के लिए आत्ममंथन स्पष्ट दिखाई देता है।''(73) जो उनके युगबोध का सशक्त प्रमाण है।

4.41 धूमिल का काव्य और युगबोध : मानव का मानसिक जगत उसके सामाजिक भौतिक यथार्थ परिवेश से प्रभावित होता है। परिवेश और चेतना का संबंध केवल प्रतिबिंबात्मक ही नहीं, रचनात्मक भी होता है। जीवन के यथार्थ का द्वन्द्वात्मक विकासशील समग्रता की व्यंजना में कलाकार की चेतना की रचना-धर्मिता प्रकट होती है। कला में यथार्थ के इंद्रियबोधगम्य, भावात्मक और वैचारिक रूपों की रचना के पीछे रचनाकार की रचनात्मक दृष्टि सक्रिय रहती है। संदर्भ चाहे रचना का हो या आलोचना का, जीवन विवेक कला विवेक को अनुशासित करता है। जीवन विवेक में हमारी राजनीतिक चेतना और

ऐतिहासिक दृष्टि का योगदान होता है। मुक्तिबोध ने एक स्थान पर लिखा है- कि- ''वास्तविक जीवन की संवेदना ज्ञानात्मक और ज्ञान संवेदनात्मक समीक्षा शक्ति'' का अर्जन रचनाकार और आलोचक दोनों के लिए आवश्यक है। राकेश कुमार के मतानुसार- ''समकालीन कविता का रचना संसार परिवेश के चतुर्दिक कोनों के इर्द-गिर्द चक्कर काटता है; क्योंकि परिवेश ही उसकी रचनाधर्मिता को युगबोध से संपृक्त करता हुआ उसके सृजनात्मकबोध एवं चेतना को जागृत करता है। उसकी रचनात्मक लपेट संकीर्ण न होकर व्यक्ति, निज, परिवार, जाति, वर्ग, समाज, राष्ट्र एवं अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं तक प्रसारित होती है जिसका लक्ष्य क्रूर यथार्थ (वास्तव) की परतें खोलते जाना है तथा सही सार्थकता की तलाश करना है। यह क्रम उसके व्यष्टि चिंतन से समष्टि चिंतन तक की जीवंत विकास-यात्रा का प्रतिफलन है।''(74)

समकालीन कविता के युगबोध और नई कविता के युगबोध में अंतर रहा है। कारण नई कविता का पूरा समय राजनीति से घिरा हुआ था; बल्कि वह समय की केंद्रीय शक्ति भी जो सारी स्थितियों और मानवीय संबंधों को प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों स्तरों पर संचालित कर रही थी। लेकिन स्वयं इस राजनीति का कोई चरित्र नहीं था। प्रभाकर श्रोत्रिय के अनुसार ''सिद्धांतों की राजनीति की जगह जिस युग में अवसर की राजनीति चल रही हो, उसमें 'मूल्य' की जगह 'छल' बैठ जाता है। नई कविता युग में एक ओर साम्राज्यवादी राजनति, दूसरी ओर पूँजीवादी राजनीति, तीसरी ओर राष्ट्रीय स्वतंत्रता-संघर्ष की राजनीति और चौथी तरफ प्रगतिशील राजनीति चल रही थी। चारों ही तब 'अवसर की राजनीति' थी। मूल्यों की घोर अराजकता वायुमंडल धुंधवा रही थी। साम्राज्यवाद अपने अंतिम समय का अनुमान लगाकर, शासक होने के पूरे लाभ वसूलना चाहता था। यानी शासित देश को फूट और फिरकापरस्ती से छिन्न-भिन्न कर देने की अमानवीय साजिश में व्यस्त था। पूँजीवाद यूँ तो साम्राज्यवाद की गोद में बैठा था, लेकिन उसने राष्ट्रीय आंदोलन की बाँहे थाम रखी थीं, ताकि वह हर अवसर का लाभ उठा सके।''(75)

लेकिन समकालीन कविता काल के प्रारंभिक दौर 62-64 में भारतवर्ष भारत-चीन सीमा-संघर्ष में 'मोहभंग' की स्थिति के आश्त था। 67-69 में संविद सरकारों की स्थापना हुई। 1975 में आपातकाल लागू हुआ, जिसे रचनाकारों के भीतर 'युगबोध' के स्तर गुणात्मक अंतर आया क्योंकि वे यथार्थ की विसंगतियों से दो-चार हो रहे थे। वैसे भी प्रगतिशील जनवादी लेखक ऐतिहासिक यथार्थ से अछूता नहीं रह सकता। यदि धूमिल को मार्क्सवादी प्रतिबद्ध कवि मानना है, तो उन्हें ऐतिहासिक यथार्थवादी कवि मानने से कौन रोक सकता है? यह कहना गलत होगा कि उनकी रचनाएँ ऐतिहासिक यथार्थ की प्रतीति नहीं कराती हैं। उनकी कविताएँ एक ऐसे बदलाव की सूचना प्रकट करती हैं; जो आनेवाले दिनों में खरी साबित हो रही है।

समकालीन कवियों में धूमिल ने अकेले ही ऐतिहासिक यथार्थवाद की नींव डाली

है। उनकी 'पटकथा' कविता तो ऐतिहासिक यथार्थवाद की दृष्टि से बेजोड़ एवं महत्त्वपूर्ण है; जिसमें आजादी के पश्चात् पं. नेहरू (1947) से लेकर भारत-चीन युद्ध(1962), भारत पाक युद्ध (1965) भारत के द्वितीय प्रधान मंत्री लाल बहादुर शास्त्री के निधन तक का यथार्थ ऐतिहासिक घटनाक्रम का यथार्थवादी ढंग से लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है। अत: हम सबसे पहले इसी कविता का ऐतिहासिक यथार्थ की दृष्टि से अध्ययन करेंगे।

देश के आजादी के पश्चात् पं. जवाहरलाल नेहरू लोकनायक के रूप में प्रसिद्ध हुए। इनके द्वारा दिए गए संस्कृति, शांति, मनुष्यता आदि सुनहरे वादों से जनता सम्मोहित बनी रही और बार-बार उन्हें ही चुनती रही। इस लोकनायक के द्वारा आम जनता की सारी समस्याओं का हल करने के लिए नीतियाँ बनाई गईं। कवि धूमिल ने ठीक ही कहा है-

> "एक ही जवाब था/ यानी कि कोट के बटन होल में/
> महकता हुआ एक फूल/ गुलाब का/ वह हमें विश्वशांति
> और पंचशील के सूत्र/ समझाता रहा।"(76)

नेहरू की इस नीति के तहत आम आदमी खुश रहने लगा था। संसद में नए-नए नियम एवं योजनाएँ बनाई जाने लगीं। पं. नेहरू की पक्षधरता में विवाद एवं बहसें होती रहीं, जिसमें उनका पक्ष लगातार हारता रहा। फिर भी उन्होंने अपने को जनता के अनुरूप नहीं बदला। कुछ समय बाद एक ऐतिहासिक घटना घटी। दिसम्बर 1962 में पंचशील का समर्थन करनेवाला चीन ने भारत पर आक्रमण कर दिया। सन् 1963 की समकालीन घटनाएँ कवि धूमिल की आँखे खोल देती हैं। नतीजा यह हुआ कि वे आम जनता को समझने का प्रयत्न करने लगे।

कहना न होगा कि उनकी कविताएँ समकालीन ऐतिहासिक यथार्थ गतिविधियों एवं स्थितियों का परिणाम हैं। देश की इस जनतांत्रिक व्यवस्था को चलाने का जिन लोगों ने बीड़ा उठाया है, वे ही जनता के साथ कैसा व्यवहार करते हैं? यह कवि धूमिल के शब्दों में द्रष्टव्य है-

> "जनता क्या है/ एक शब्द.... सिर्फ एक शब्द है/ कुहरा
> और कीचड़ और काँच से/ बना हुआ..../एक भेड़ है/ जो
> दूसरों की ठंड के लिए/ अपनी पीठ पर/ ऊन की फसल ढो
> रही है।"(77)

युगबोध के स्तर पर धूमिल को यह महसूस होता रहा है कि आजादी केवल एक औपचारिकता मात्र बनकर रह गई है। इस स्थिति के कारणों को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है-

> "उस मुहावरे को समझ गया हूँ/ जो आजादी और गांधी
> के नाम पर चल रहा है/ जिससे न भूख मिट रही है / न
> मौसम बदल रहा।"(78)

स्पष्ट है कि यह देश सिर्फ उन कांग्रेसी नेताओं का ही है, जो आजादी और गांधी के नाम पर माल बटोर-बटोर कर अपनी तिजोरियाँ भर रहे हैं। वे किसी भी तरह कुर्सी से चिपके रहना चाहते हैं। सच तो यह है कि उनको बार-बार चुनने से देश की व्यवस्था में कोई भी बदलाव नहीं आया।

युगबोध के अनुरूप ही 'शांतिपाठ' शीर्षक कविता में अंतर्राष्ट्रीय ऐतिहासिक घटनाओं पर प्रतिक्रिया अभिव्यक्त हुई है। कवि धूमिल ने इस कविता में सन् 1960 एवं 1970 के दशक की अंतर्राष्ट्रीय राजनीति एवं भारत की आदर्शवादी शांतिवादिता की ओर संकेत करते हुए कहा है-

> ''मैक मोहन रेखा एक मुर्दे की बगल में सो रही है /और
> मैं दुनिया के शांति-दूतों और जूतों को/ परंपरा की पालिश
> से चमका रहा हूँ।''(79)

स्पष्ट है कि मैकमोहन रेखा देश की पराजय का प्रतीक है; जहाँ देश के नेता की गलत नीतियों के कारण देश के जवानों का एक बड़ा हिस्सा मारा गया। मैक मोहन रेखा एक गदराई जवान औरत की तरह नेहरू और नेहरूवादी नेताओं की बगल में सब कुछ लील लेने के पश्चात् सो रही है। वह एक ऐसे मुर्दा देश की बगल में सो रही है, जिसका नाम नेहरू है; जो एकदम ठंडा हो गया है- जिसकी मर्दानगी को शांति के कबूतर चाट गए हैं।

सन् 1971 में भारत और पाक के बीच द्वितीय युद्ध हुआ। इस युद्ध में दो महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाएँ घटी। ''पाकिस्तानी सेनाओं की निर्णायक हार तथा बंगला देश का निर्माण, जहाँ पर भारतीयों के लिए आत्मगौरव का अवसर था, वहीं पर शरणार्थी समस्या से भी भारत को दो-चार होना पड़ा। युद्ध समाप्त हो गया; परन्तु शरणार्थी संपूर्ण पूर्वी भारत में फैल गए।'' कवि धूमिल ने शरणार्थी समस्या को लेकर 'मैमन सिंह' शीर्षक कविता भी रची है, जिसमें शरणार्थी मैमन सिंह को फटकारते हुए कहा है-

> ''मैमन सिंह तुम मेरी कंघी को मेरे बालों के/ खिलाफ उकसा
> रहे हो/तुम मेरे बटनों से खेल रहे हो/ मैमन सिंह तुम मुझे
> खा रहे हो/ मैमन सिंह, मैमन सिंह साले शरणार्थी/ तुम
> आदमी नहीं अजदहे हो।''(80)

उपर्युक्त कविता में 'शरणार्थी' का मतलब है कि दूसरे को अपनी सुख-सुविधा में भागीदारी बनाना। इस तरह की शरणार्थी समस्या असम व अन्य पूर्वी इलाकों में ज्यादा रही है।

सुधी विद्वानों को ज्ञात है कि सन् 1962 के चीनी आक्रमण से ही जनता में मोहभंग की स्थिति पैदा हो गई। 27 मई 1964 तक पं. नेहरू आम जनता की वास्तविकता से सीधे साक्षात्कार नहीं कर पाए। उन्होंने जनता के लिए जो आंकड़े बनाए, उसमें झूठेपन एवं

खोखलेपन की बू आने लगी। उनके द्वारा बनाई हुई सारी नीतियाँ, सिद्धांत, विश्व बंधुत्व तथा शांति एवं अहिंसा के सपने नेफा लद्दाख की सीमा पर उस समय चकना-चूर हो गए जब 'हिंदी चीनी भाई-भाई' की नीति का नारा लगानेवाले चीन ने भारत की पीठ में छुरा घोंप दिया था। सन् 1962 के चीनी आक्रमण के दुष्परिणामों से देश की स्थिति में सुधार लाने के लिए पं. नेहरू प्रयत्नशील रहे। सन् 1964 में पं. नेहरूजी के मृत्यु पर सारा देश शोकाकुल हो गया। तब दिग्भ्रमिता की स्थिति भी पैदा हुई तथा काव्यांकन है कि देश के बच्चे कहीं खेलते हुए नजर नहीं आ रहे हैं। कवि धूमिल के शब्दों में

> ''पार्कों में बच्चे नहीं हैं/ किसी असंभव मृत्यु की सूचना की
> तरह ×× मैं एक विशाल बरगद को/ सड़क के बीचों बीच
> गिरा हुआ/ देख रहा हूँ।''(81)

सुधी विद्वान जानते हैं कि धूमिल के प्रौढ़ रचनाकार की अवधि सन् 1960-1975 तक ही रहा है। इनका काव्य संग्रह 'संसद से सड़क तक', 'कल सुनना मुझे' तथा 'सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र' आजादी से लेकर इनके समय तक भारतीय व्यक्ति की सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक दबावों से मुक्ति चेतना के संघर्ष का यथार्थपरक इतिहास रहा है। इस इतिहास को, उसकी समग्रता में अंकित कर देना, कवि धूमिल की ऐतिहासिक यथार्थवादी दृष्टि का स्पष्ट प्रमाण है।

कवि धूमिल ने ऐतिहासिक यथार्थबोध और भारतीय जीवन की संक्रमणशील पहचान के बीच युग-युग के विकास पथ में आनेवाला 'सूरज' को अचानक मुट्ठी खोलकर निकलते हुए देखा है। उन्होंने युगबोध के स्तर पर अपनी कविता 'जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु पर' शीर्षक में स्पष्ट करते हुए कहा है-

> और एक युग बीत गया है / थकी हुई घायल आहुतियाँ आज
> शून्य के बंदीगृह में/ सिसक उठी हैं/ हवाओं में एक ही चर्चा
> है/ महाकाल फिर जीत गया है/ सबकी आँखों में एक ही
> भय/ झांकता है।''(82)

नेहरू की मृत्यु और शास्त्री की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए डॉ. चमनलाल गुप्त ने कहा है- ''सन् 1964 में नेहरू का निधन जहाँ पर धूमिल को हिला दिया था; वहीं पर सन् 1966 में लालबहादुर शास्त्री का ताशकंद में निधन उसके लिए अत्याधिक दु:खदायी था। नेहरू एक विशाल बरगद की तरह भारतीय राजनीति पर छाए रहे, परंतु शास्त्री तो अठारह मास के वसंत की भाँति भारतीय राजनीति में अवतरित हुए थे।''(83) शास्त्री जी ने अल्पायु में ही सारी जनता को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। इन्हीं के नेतृत्व में पहली बार पाकिस्तानी फौजों को भारत की भूमि से खदेड़ दिया गया था; लेकिन कुछ अपने लोगों ने ही इनको मौत की नींद सुला दी। यह देखकर भारतीय जनता को फिर एक बार आँसुओं के घूँट पीने पड़े। जनता के पक्षधर कवि धूमिल अपने आप

को रोक नहीं पाते हैं और कह उठते हैं-

> ''सबसे बड़ी ट्रैजेडी/ अपने इतिहास की/ जब दुनिया के
> स्याह और सफेद चेहरों ने/ विस्मय से देखा कि ताशकंद में/
> समझौते की सफेद चादर के नीचे/ एक शांति-यात्री की लाश
> थी।''(84)

शास्त्री की मृत्यु के पश्चात् देश की व्यवस्था डगमगा गई। डॉ. चमनलाल गुप्त के शब्दों में-''शस्त्री के रूप में पहली बार एक ऐसा नेता देश को मिला था जिसका रहन-सहन, आचार-विचार, चिंतन-मनन ही स्वदेशी नहीं था; बल्कि जो इस देश के करोड़ों निर्धनों का सच्चा प्रतिनिधि भी था। शास्त्री की मृत्यु के पश्चात् राष्ट्र एक बार अपने रास्ते से भटक गया। पूरी व्यवस्था में कालाबाजारी, रिश्वतखोरी, भाई-भतीजावाद, कुर्सी की राजनीति, धोखा-धड़ी तथा स्वार्थपरता व्याप्त गई।''(85)

युगबोध के स्तर पर और ''ऐतिहासिक घटनाक्रम की दृष्टि से 'पटकथा' कविता देश की स्वतंत्रता, भारत-चीन युद्ध(1962), भारत पाक युद्ध(1965), भारत के द्वितीय प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री के निधन तथा युद्धोपरांत चढ़ते वस्तुमूल्यों और उतरते मानवमूल्यों, पुनः मोहभंग के परिताप में झूलते देश की निराश मानसिकता को चित्रित करती हैं। अतः 'पटकथा' में एक लंबी नियतिबद्ध यातनापूर्ण को जोड़े रहती है।''(86) धूमिल की अन्य कविताओं में ऐतिहासिक संक्रमण और युगबोध की सही पहचान अभिव्यक्त हुई है। डॉ. हुकुमचंद राजपाल ने एक स्थान पर कहा है- ''किसी भी आंदोलन में समझ का होना उसके सफल होने तथा फलित होने के लिए अनिवार्य है; पर आतंक आंदोलन में समझ के साथ 'आग' का होना अनिवार्य होता है।''(87) कहना न होगा कि कवि धूमिल को 'आग' के सही रूप की पहचान थी। धूमिल की कविता 'आतिश के अनार-सी वह लड़की' जिसमें कुमारी रोशन आरा बेगम खुद को बंब के साथ आततायी के टैंक के नीचे फेंक दिया था। इस ऐतिहासिक घटना से संबंधी कवि धूमिल ने कहा है-

> ''जवानी जब भी फैसले लेती है/ गुस्सा जब भी सही जतून
> से उभड़ता है/हम साहस के एक नए तेवर से परिचित होते
> हैं/तब हमें आग के लिए/दूसरा नाम ढूँढना नहीं पड़ता
> है।''(88)

इस कविता के संदर्भ में विचार प्रकट करते हुए नामवर सिंह ने कहा है- ''निःसंदेह इस कविता में नारी के वीरत्व के प्रति एक रोमैंटिक भावना अधिक मुखर है, किंतु यथार्थ की माँसलता यहाँ भी मौजूद है।''(89) वास्तविकता तो यह है कि कवि धूमिल की कविताओं में प्रयुक्त 'आग' 'क्रांति का मूलाधार' है। कवि ने 'शब्द जहाँ सक्रिय हैं' शीर्षक कविता में इस क्रांति को एक नए रूप में दिखाने का प्रयत्न किया है। यह क्रांति भाषा व पड़ोसी

राज्यों से संबंधित है। सन् 1967 में बनारस के काशी हिंदू विश्वविद्यालय के छात्रों द्वारा अंग्रेजी हटाओं का जबरदस्त आंदोलन प्रारंभ हो गया था। उसके फलस्वरूप दक्षिण भारत के राज्यों में हिंदी के विरुद्ध लड़ाई छिड़ गई। चूँकि धूमिल एक संवेदनशील कवि हैं, उनकी कवि दृष्टि से यह ऐतिहासिक घटना ओझल नहीं हो पाती। वे कहते भी हैं-

> ''भाषा और भाषा की बीच की दरार में/ उत्तर और दक्षिण
> की तरफ फन पटकता हुआ/एक दो मुँहा विषधर/ रेंग रहा
> है।''(90)

स्पष्ट है कि भाषा को लेकर जनता को जनता से लड़ाया जा रहा है। ऐसे समय कवि धूमिल ने भाषा को लेकर दो विरोधी दलों में जो दरार आई थी, उसको पाटने का काम किया है; क्योंकि उन्होंने उस मामले को गंभीरता से पहचान लिया था। वे कहते भी हैं-

> ''कल तक मुँह में जीभ डालकर/ बोलनेवाला प्यारा पड़ोसी/
> आज/ देशी दाँतों की दोस्ती से/ डर रहा है।''(91)

यहाँ कवि कहना चाहते हैं कि देश की अधिकांश जनता न केवल आपस में लड़ती रही है; बल्कि पड़ोसी देश पाकिस्तान से भी आज तक संघर्ष करती आ रही है। इस संदर्भ में धूमिल ने कहा है-

> ''तीन मुँहवाली एक खौफनाक परछाई/ तुम्हारे सामने/टाँगे
> पसारकर/ बेझिझक लेट गई है।''(92)

स्पष्ट है कि यहाँ 'त्रिभाषा फार्मूला' की ओर कवि धूमिल का इशारा कर रहे हैं, जिसमें आज की युवा पीढ़ी मसली जा रही है। आज हिंदी भाषी इलाकों में अंग्रेजी-जबरदस्ती थोपी जा रही है; ठीक उसी तरह दक्षिण राज्यों में हिंदी। धूमिल उत्तर-दक्षिण में भाषा से संबंधी संघर्ष को रोकना चाहते हैं और जनता में फूट होने से बचाना चाहते हैं। यानि कि उनकी कविता का मूलमंत्र राष्ट्रीय एकता को कायम बनाए रखना है। इस संदर्भ में श्रीराम त्रिपाठी का अभिमत है कि ''धूमिल जनता को एक सूत्र में जोड़ना चाहते हैं। 'भाषा की रात' कविता इसी का परिणाम है। इसलिए वह तत्काल अपने लोगों को वस्तु-स्थिति समझाता है। असलियत से रू-ब-रू कराता है।''(93) इस प्रकार कहा जा सकता है कि धूमिल की कविताओं में भाषा-विवाद का जो भी मामला उभरा है, वह हमें ऐतिहासिक यथार्थवाद की प्रतीति कराता है।

राजनीतिक सांस्कृतिक स्तर पर सन् 1967 में भाषा आंदोलन की तरह एक और आंदोलन बिहार में 'नक्सलवादी आंदोलन' के नाम से उभर पड़ा। यह आंदोलन ज्यादातर पूर्वी ग्रामीण आंचलिक क्षेत्रों के कुछेक पढ़े-लिखे शोषित नौजवानों ने चीन माओत्सेतुंग के जीवन-दर्शन एवं हिंसात्मक कार्य पद्धति द्वारा प्रेरित होकर प्रशासनिक एवं वित्तीय व्यवस्था के विरुद्ध क्रांति छेड़ी थी। यह आंदोलन धीरे-धीरे भारत के अन्य पिछड़े इलाकों में भी

लोकप्रिय होने लगा।

इस नक्सलवादी विद्रोह ने भी समकालीन कविता और रचनाकारों पर व्यापक प्रभाव छोड़ा था। डॉ. नामवर सिंह का कहना है- ''सन् 1967 के बाद यह सही है कि एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ और आक्रोश को एक स्पष्ट राजनीतिक दिशा मिली, जिसका संबंध नक्सलवादी आंदोलन से है। उस आंदोलन की राजनीतिक स्थिति जो भी हो और राजनीति के स्तर पर उसका मूल्यांकन जिस भी रूप में किया जाए, इस पर मतभेद हो सकता है। मेरी उसके बारे में निश्चित राय है। किंतु साहित्य में उससे जो एक बहुत अच्छी बात हुई वह यह कि दिशाहीन व्यवस्था के विरोध का अंत हो गया और स्पष्ट राजनीतिक चेतना आयी। दूसरे यह कि उस आंदोलन के दौरान नगरोन्मुख हिंदी साहित्य ग्रामोन्मुख किया गया, जो बहुत बड़ी देन है।... अत: सन् 67-68 के बाद यह काम कम-से-कम हुआ ही कि ऐसे क्षुब्ध जीवंत और जागरूक लेखकों को अपनी जमीन, अपने ग्रामीण समाज की याद आयी और यहीं से साहित्य एक निश्चित रूप से मोड़ लेता नजर आता है।''(94)

कहा जा सकता है कि इस जनांदोलन का प्रभाव समकालीन रचनाकारों पर खूब पड़ा है। कई रचनाकार तो इस आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग भी लिए थे। कवि धूमिल की 'नक्सलवादी' शीर्षक कविता इसकी उपज है। इस कविता में उन्होंने उन निराशाजनक परिस्थितियों का ऐतिहासिक यथार्थ वर्णन किया है, जिसमें यह क्रांतिकारी एवं दुस्साहस से भरा आंदोलन जन्म लिया। नक्सलवादी आंदोलन के संदर्भ में कवि धूमिल का विचार निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है-

''पेट के इशारे पर/ प्रजातंत्र से बाहर आकर/ वाजिब गुस्से
के साथ अपने चेहरे से/ कूदोगे/ और अपने ही घूँसे पर/
गिर पड़ोगे।''(95)

कहना न होगा कि कवि धूमिल 'नक्सलवादी' शीर्षक कविता में इस जनांदोलन के अंतर्विरोध को कितनी बारीकी से उजागर करते हैं। उन्हें इन्हीं नक्सलवादी क्रांतिकारी के रूप में 'दूसरे प्रजातंत्र की तलाश' है। वे इस प्रजातांत्रिक व्यवस्था से खुलकर बाहर आते हैं। साथ-ही-साथ क्रांति की मशाल देश के कोने-कोने में जलाने की प्रेरणा देते हैं। मगर धूमिल का कहना है-

''मैं अक्सर अपने आप से सवाल/ करता हूँ जिसका
मेरे पास/ कोई उत्तर नहीं है।''(96)

यह सही है धूमिल नक्सलवादी आंदोलन से प्रभावित होकर 'नक्सलवादी' नामक कविता लिखी है। लेकिन नंदकिशोर नवल ने संदेह प्रकट करते हुए कहा है- ''वे नक्सलवाद के समर्थक हो गए होते तो यह कविता एक आशाप्रद संदेश के साथ समाप्त होती। लेकिन इस बात का संकेत तो है ही कि निराश कवि नक्सलवाद की तरफ जा सकता है और कविता

को हथियार की तरह प्रयुक्त करने का प्रयास कर सकता है।''(97) युगबोध के स्तर पर कवि धूमिल ने नक्सलवाद पर कई कविताएँ लिखी हैं। 'कल सुनना मुझे' काव्य संग्रह में संकलित 'खून के बारे में कविता' शीर्षक कविता में धूमिल इसी नक्सलवाद की ओर संकेत करते हुए कहा है-

''छापामार/ दस्ते के अगुआ की तरह/ देह के जंगल में/
जहाँ मौत ने अपना खेमा/ गाड़ रखा था।''(98)

स्पष्ट है कि उक्त पंक्तियों में 'छापामार दस्ते' नक्सलवादियों का प्रतीकात्मक बिंब उभरता है। आज जिस तरह रोगी शरीर में धीरे-धीरे खून सरकाया जा रहा है ठीक उसी प्रकार नक्सलवादियों का अगुआ सरकता हुआ प्रतीत होता है। यहाँ कवि धूमिल ने नक्सलवादी आंदोलन का समर्थन किया है। उन्होंने अपनी लंबी कविता 'पटकथा' में भी इसी नक्सलवाद का जिक्र करते हुए कहा है-

एक ही संविधान के नीचे/ भूख से/ रिरियाती हुई फैली हथेली
का नाम दया है/ और भूख में/ तनी हुई मुट्ठी का नाम
नक्सलबाड़ी है।''(99)

उपर्युक्त पंक्तियों में 'फैली हथेली' और 'तनी हुई मुट्ठी' दोनों का एक ही कारण है- भूख। लेकिन यहाँ दो विरोधी स्थिति का आभास भी दिलाता है। एक दया का सूचक है, तो दूसरा भूख के कारण उद्‌बुद्ध आक्रोश में आतंक या नक्सलवादी का। दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि दया-सामाजिक तथा संवैधानिक मानी जाती है तथा भूख से उत्पन्न नक्सलवादी तत्त्व-असामाजिक, असंवैधानिक तथा आतंकवादी माना जा सकता है, जहाँ संवैधानिक नियमों का कठोरता से उल्लंघन किया जाता है।

इस संदर्भ में युवा आलोचक अक्षय उपाध्याय ने ठीक ही कहा है- ''आजादी के बाद लोकशक्ति घटी है तथा सत्ता की शक्ति बढ़ी। अर्थात् सत्ता के मूल स्वरूप और चरित्र में परिवर्तन नहीं हुआ। ऐसा लगता है कि पश्चिम का युवा विद्रोह, तानाशाही के विरुद्ध हमारा जनविरोध, अफ्रीकी एवं लैटिन-अमेरिकी देशों के स्वाधीनता संघर्ष, चीन की सांस्कृतिक क्रांति के तहत पैदा हो रही है; जन आकांक्षा, बुद्धिजीवियों को मनुष्य के अंदर की छटपटाहट को पकड़ने के लिए बाध्य कर रही है। साधन के प्रश्न पर बुनियादी भिन्नताओं के बावजूद नक्सली आंदोलन को क्या हम इसी क्रम में नहीं रख सकते? कम-से-कम धूमिल की कविता 'श्री काकुलम' इस संदर्भ में कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों को सामने लाती है। नए सोच में मदद करती है।''(100)

4.42 धूमिल का काव्य और प्रतिबद्धता : सामान्यत: विचारधारा एवं प्रतिबद्धता की अवधारणाएँ विभिन्न विचारकों में पर्याप्त मतभेद रखती है। रोहिताश्व के विचारानुसार- ''कतिपय रचनाकार मार्क्सवादी विचारधारा का सरलीकृत पर्याय सर्वहारा वर्ग, शोषित-वर्ग की सहानुभूति व प्रतिबद्धता में मानते हैं, जबकि कतिपय रचनाकार उसे सामाजिक

जीवन की सहभागी न मानकर 'कलागत' ही मानते हैं और आधेय रूप में अलग भी।''(101)

साहित्य कला को विचारधारा से मुक्त करने के हिमायती अर्नेस्ट फिशर की मान्यता है- ''साहित्य एवं कला का संसार विचारधारा, वर्गों व समाज के स्वतंत्र एवं निरपेक्ष रूप है तथा यथार्थ के अभिज्ञान के माध्यम रूप में कविता, संगीत एवं ललित कलाएँ विचारधारा के क्षेत्र से उदित नहीं होती। अत: वह कला के साथ प्रतिक्रियावादी पतनशील बुर्जुआ आदि विशेषणों के इस्तेमाल के पक्ष में नहीं है। वह विचारधारा को यथार्थ के बारे में अति सरलीकृत एवं विकृत विचारों एवं सत्यों का ऐसा समूह मानते हैं जो कि शासक वर्गों के हितों का संरक्षण रखती है। वह रचनाकार के दृष्टिकोण को नकारकर यथार्थ के सीधे प्रभावों को व्यक्त करने की आवश्यकता समझते हैं।''(102)

सामान्यत: प्रगतिशील रचनाकार एक ओर जहाँ विचारधारा को जीवन और जगत की बेहतर समझ प्राप्त करने के लिए पथ-प्रदर्शिका के रूप में देखते हैं वहीं दूसरी ओर इसे संघर्षशील जनता से जुड़ने के माध्यम एवं अपनी पक्षधरता निर्धारित करने के रूप में देखते हैं। समकालीन काव्य व आलोचना जगत् में प्रतिबद्धता से तात्पर्य मार्क्सवादी विचारधारा की पक्षधरता ही समझा जाता है। वैसे भी मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र का मूल मुक्तिबोध के शब्दों में- ''मार्क्सवाद मनुष्य को कृत्रिम रूप से बौद्धिक नहीं बनाता है, वरन् उसे ज्ञानालोकित आदर्श प्रदान करता है।''(103) प्रत्येक मनुष्य अपनी विचारदृष्टि के अनुरूप जीवन स्थितियों और जीवन दर्शन को अपनाता है, जो अपनी मूल प्रवृत्तियों में पारंपरिक एवं प्रगतिशील होगा। वर्तमान आधुनिक जनजीवन में पारम्परिक जात-पाँत, ऊँच-नीच, वर्ण-धर्म की विचारदृष्टि पारंपरिक और पिछड़ी हुई मानी जाती है। वर्ण-वर्ग भेद से व्यावहारिक स्तर पर सम्यक भाववाली दृष्टि प्रगतिशील मानी जाएगी। यहाँ जिस प्रगतिशीलता व प्रतिबद्धता की चर्चा की जा रही है, वह वैज्ञानिक यथार्थवाद के एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

कहना न होगा कि धूमिल मूलत: एक प्रतिबद्ध कवि थे। उनका समूचा काव्य-साहित्य समकालीन हलचल एवं घटना को वैज्ञानिक यथार्थवाद का आधार प्रदान करता है। यानि दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि समकालीन हलचल एवं घटनाओं को समझने के लिए उनकी काव्य रचनाओं से अधिक विश्वसनीय एवं प्रमाण सम्मत स्त्रोत और क्या हो सकता है? धूमिल यथार्थवाद की दीक्षा किसी स्कूल में ग्रहण नहीं किए थे। परंतु परंपरा को एक नवीन स्वरूप एवं संदर्भ प्रदान करते हुए उन्होंने जिस प्रकार विभिन्न विषय-वस्तु को कार्य-कारण श्रृंखला से संग्रहित किया। समाज के नवनिर्माण के आधार पर मानव मात्र की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया है। एक सच्चे यथार्थवादी की तरह धूमिल ने व्यक्तिगत दृष्टिकोण की रक्षा करते हुए समाज का वस्तु-परक चित्रण किया। इसे कुछ आलोचकों ने धूमिल के काव्य में अंतर्विरोधात्मक स्थिति का परिचायक बताया है।

प्रसंगवश समकालीन दौर के अधिकांश कवियों पर मार्क्सवादी विचारधारा का कमोवेश रूप में प्रभाव पड़ा है। अत: यह कहना गलत न होगा कि धूमिल की कविता

पर भी कहीं-न-कहीं यह प्रभाव देखा जा सकता है। उनकी कविता का उद्देश्य समाज में परिवर्तन लाना है। वे अपनी कविता को हथियार की तरह इस्तेमाल नहीं करना चाहते हैं; बल्कि उसके माध्यम से क्रांति का स्वर फूँकना चाहते हैं। उन्होंने एक स्थान पर अपनी कविता की पक्षधरता करते हुए कहा है-

"मेरी कविता/ अंधेरे और कीचड़ और गोश्त की/ खुराक
पर जिंदा है।"(104)

कहना न होगा कि उनकी कविताओं में जीवन एवं जगत की विकृतियों का अंधकार समाया है। जहाँ निम्नवर्ग शोषित जनता के प्रति सहानुभूति एवं पक्षधरताओं की भावना से ही रोशनी पाने की तलाश में विचारा जा सकता है। शोषित जनता की पक्षधरता ही मार्क्सवादी आस्था एवं दर्शन की वकालत करना है।

सारांशत: धूमिल जन-जीवन से जुड़े हुए जनवादी कवि हैं. उनके सामने जीवन-मूल्य पहले आता है, सिद्धांत बाद में आते हैं। उनकी कविता में कोरे विचारों की नहीं, बल्कि संवेदना जनित विचारों की प्रधानता है। यही कारण है कि धूमिल मुक्तिबोध से ज्यादा प्रभावशाली हैं, अधिक सहज और स्वाभाविक हैं।समकालीन कविता के व्यापक कलेवर में धूमिल और नागार्जुन में खुली प्रतिबद्धता है। इसलिए उनकी कविताएँ कभी-कभी वक्तव्य-सी लगती हैं। दूसरे मुक्तिबोध हैं जिनमें वैसा नहीं मिलता। क्योंकि "कविता स्थायी तब होती है जब वह तीन स्तरों पर छूती है- यानी समसामयिक संवेदना, सामाजिक संवेदना, और मानवीय संवेदना को स्पर्श करे। कविता में इन तीनों का होना आवश्यक है।"(105)

अत: कहना न होगा कि कवि का जो भी स्वायव संसार हो, वह संवेदना से अप्रतिबद्ध नहीं रह सकता और संवेदना हमेशा कमजोर, असहाय और शोषित व्यक्ति के साथ ही हो सकती है अपनी यथार्थगत अभिरुचियों में। ब्रह्मदेव मिश्र के विचारानुसार "समकालीन परिवेश में रचनाकारों का यथार्थ के प्रति गहरा लगाव उन्हें जीवन-मूल्यों से सर्वथा विरत नहीं करता; बल्कि यथार्थ की वास्तविक संगति में जीवन-दृष्टि को पुनर्विश्लेषित एवं संश्लेषित कर उनकी पुनर्प्रतिष्ठा के लिए प्रेरणास्त्रोत बनता है। नया कवि जब यह घोषित करता है कि उसका धर्म जन मानस पर मरहम लगाकर उसकी पीड़ा को सुषुप्ति की स्थिति तक पहुँचाना नहीं, उसे कुरेद कर नई स्थिति के प्रति सचेष्ट करना है- तो स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं रहती कि उसकी दृष्टि यथार्थ को नए परिप्रेक्ष्य से देखने की है, न कि पीड़ा अवसाद झेलते हुए यथार्थ को तरह देकर, शहीदाना अंदाज में जीवन-मूल्यों की संभावना के गीत गाने की।"(106)

कहना न होगा कि धूमिल अपने सम-सामयिक यथार्थ जीवन-बोध से प्रतिबद्ध हैं। सम-सामयिक यथार्थ जीवन-परिवेश को बदलने के लिए जितनी भी कोशिश की गई है, वह मात्र फाइलों में कैद ही रह गई। नेताओं की कथनी और करनी में कोई भेदता स्पष्ट

नजर नहीं आई। अत: कवि धूमिल को कहना पड़ा है-

> "वक्त और लोगों के बीच/ सवाल शोर के नापने का नहीं है/बल्कि उस फासले का है जो इस रफ्तार में/ सुरक्षित है।"(107)

कवि इस फासले की दूरी को कम करने के पक्ष में हैं। इसलिए उसकी सच्चाई के तह तक पहुँचकर यह तय कर सके हैं -

> "हर ईमान का एक चोर दरवाजा होता है/जो संडास की बगल में खुलता है।"(108)

इससे भी आगे निकलकर उन्होंने यह देखा है-

> "दृष्टियों की धार में बहती नैतिकता का/ कितना भद्दा मजाक है/ कि हमारे चेहरे पर/ आँख के ठीक नीचे नाक है।"(109)

यह यथार्थ दृष्टि परखने के लिए धूमिल को बड़े-बड़े साहित्य ग्रंथों का अध्ययन नहीं करना पड़ा था। डॉ. ब्रह्मदेव मिश्र के शब्दों में "यह सीधे उसके परिवेश से मिली। वह परिवेश जो निस्संदेह भयावह था और उसकी भयावहता का कारण था वक्त और लोगों के बीच बढ़ता फासला। इस फासले को कम करनेवाले जीवन-मूल्य स्वयं स्थिति की विसंगति के शिकार बनकर बेमानी हो रहे थे। धूमिल की कविता इस भयावहता से भयभीत न हो कर उसकी सही प्रतीति कराती है, जो रचनाकार के लिए आवश्यक है।"(110)

संस्कारों और प्रतिबद्धता के स्तर पर कभी-कभी टकराहट की स्थिति उत्पन्न होती है। यथार्थवादी रचनाकार पर संस्कारों का भी प्रभाव पड़ता है। धूमिल मूलत: ग्रामीण थे। उनके संस्कारों में गाँव की सादगी व आडंबर हीनता गहरी बसी हुई थी। उन्हें शहरी जीवन बिलकुल पसंद नहीं था। श्रीराम त्रिपाठी के शब्दों में- "धूमिल शोषित-पीड़ित के साथ खड़े हैं। वे खुद भी शोषित-पीड़ित हैं। लक्ष्य है उनका आदमी होना, इसलिए वे अपने लोगों से बातचीत करते हैं। ये अपने लोग अशिक्षित हैं, व्यवस्था की मार से पस्त हैं, गुमराह हैं, अपना हित-अनहित समझने में नाकाम हैं, साथ ही आलसी हैं। अत: इन्हें जगाना, समझने के काबिल बनाना और आलस्य को भगाना जरूरी हो जाता है। इन्हें इनकी शक्ति से भी परिचित कराना आवश्यक है । तभी ये संगठित होकर अपनी पूरी ताकत से इस व्यवस्था को उखाड़ फेंकने में सफल होंगे।"(111)

प्रसंगवश आदमी की भूख का विवेचन कवि धूमिल की अनेक कविताओं में दृष्टिगोचर होता है। एक स्थान पर उन्होंने प्रतिबद्धता के स्तर पर भूखे आदमी की सच्चाई को बताते हुए कहा है-

''सुनो!/ आज मैं तुम्हें वह सत्य बतलाता हूँ/ जिसके आगे
हर सच्चाई/ छोटी है। इस दुनिया में/ भूखे आदमी का सबसे
बड़ा तर्क रोटी है।''(112)

धूमिल यथार्थवादी कवि रहे हैं। यथार्थ यानि सच का प्रयोग बार-बार अपनी कविताओं में करते हैं; जिससे समाज का यथार्थ चित्रण संभव हो पाया है। डॉ. नगेंद्र के अनुसार ''समाज में अभिप्राय सामुदायिक जीवन की ऐसी अनवरत एवं नियामक व्यवस्था है जिसका निर्माण व्यक्ति पारस्परिक हित तथा सुरक्षा के निमित्त जाने-अनजाने में कर लेते हैं।''(113) कवि धूमिल हमेशा सामाजिक समस्याओं को अपनी व्यक्तिगत समस्या मानते हैं अत: उन्हें हल करने के लिए तत्पर रहे हैं।

प्रतिबद्धता की भावना के कारण ही 'मुक्ति का रास्ता' नामक कविता में कवि धूमिल वर्ग-संघर्ष को चित्रित करने में सफल हुए हैं। कवि धूमिल ने 'अपराध के कानूनी दलाल' यानी बड़े-बड़े जमींदारों-महाजनों द्वारा आदिवासी किसानों पर होते तरह-तरह के जुल्म का यथार्थ चित्रण किया है। ये ही लोग दिन-दहाड़े इनकी हत्याएँ कर देते हैं। फसलों पर अपना जबरन हक 'कानूनी दलाल' यानी भ्रष्ट पुलिस द्वारा मांगते हैं। यदि हक न दिया गया तो फसल व उनके मकानों को जलाकर राख कर देते हैं। कवि धूमिल के शब्दों में

''अपराध के कानूनी दलाल/ एड़ियाँ बजाते हुए/ किरचों
की मुहर ने/चेहरों को दागी किया था/ लाशों की गिनती/
फिर आगजनी, लूट। लेकिन क्या लगा था/ आततायियों के
हाथ? नफरत की आँच ने/चंद खाली झोपड़ों को राख किया
था।''(114)

प्रतिबद्धता की अवधारणा के कारण ही 'कर्फ्यू में एक घण्टे की छूट' नामक कविता में कवि धूमिल ने जनतंत्र की सुरक्षा के नाम पर हो रहे हिंसात्मक घटनाओं का यथार्थ चित्रण किया है। धूमिल कहते हैं-

''गोलीकांड के बाद/ लड़कों का गायब होना नई बात नहीं
है/यह शांति का मसला है।''(115)

कवि आम आदमी के प्रति उदास एवं चिंतित हैं। क्योंकि नवजवान लड़के जवानी के जोश में संसद के सामने धरना देते हुए गायब हो रहे हैं। ये राजनेता लोग शांति का मसला हल करने के लिए पुलिस हथकंडों द्वारा उनकी हत्याएँ निरंतर करवा रहे हैं। उनकी अपनी शक्ति तो बढ़ रही है; लेकिन आम आदमी कमजोर होती जा रही है। ऐसे में क्रांति का नारा देने से क्रांति संभव नहीं हो सकती । अत: कवि धूमिल मानवीय संस्कारों और प्रतिबद्धता की विलोमी संभावनाओं को स्वीकारते हुए कहते हैं-

''इस कदर कायर हूँ कि उत्तर प्रदेश हूँ।××× यद्यपि यह सही
है कि मैं / कोई ठंडा आदमी नहीं हूँ / मुझमें भी आग है।''(116)

धूमिल की कविता में अभिव्यक्त आम आदमी भूख की आग से जुड़ा हुआ है। यह भूख ही उसे दब्बूपन या सहनशील बनने के लिए विवश करती है। यह भूखा आदमी जिसका सबसे बड़ा तर्क रोटी है, वहीं एक दूसरा आदमी भी है जो रोटी से खेलता है। यही 'रोटी' आदमी की विवशता एवं मानसिक बिखराव का पर्याय बन जाती है। भूख की शांति के लिए रोजगार की तलाश में दर-दर भटकते हुए वह क्रांति की बात सोच ही नहीं पाता। दरअसल धूमिल पूरी-की-पूरी कानून व्यवस्था को बदल डालना चाहते है, किंतु उन्हें मालूम है कि आम जनता के लिए यह एक दुष्कर कार्य है; क्योंकि सारी व्यवस्था शासन-तंत्र के हाथ में है। देश का शासन चलानेवाली संसद ही इस तरह की व्यवस्था बनाए रखने की पक्षधर है। अतः धूमिल ने संसद के चरित्र को उजागर करते हुए कहा है-

''और वह सड़क / समझौता बन गई है जिस पर खड़े होकर /
कल तुमने संसद को / बाहर आने के लिए आवाज दी थी /
नहीं, अब वहाँ कोई नहीं है / मतलब की इबारत से होकर /
सब-के-सब व्यवस्था के पक्ष में / चले गए हैं।''

प्रतिबद्धता और वर्गचेतस भावना के कारण धूमिल यह जान पाए हैं कि शहरी व्यवस्था शोषण व दमनकारी नीतियों पर आधारित है। शहर का कानून, धर्म, कला, साहित्य, संस्कृति, नैतिकता सभी शहरी शोषक वर्ग के संकेतों पर चलायमान है और उसी के लिए कार्य करते हैं। इस वर्गाश्रित समाज व्यवस्था को ही तमाम कुत्साओं के लिए उत्तरदायी ठहराते हुए कवि धूमिल ने कहा है-

''वे वकील हैं / वैज्ञानिक हैं / अध्यापक हैं / नेता हैं /
दार्शनिक हैं / लेखक हैं / कवि हैं / कलाकार हैं / यानि कि /
कानून की भाषा में बोलता हुआ / अपराधियों का एक संयुक्त
परिवार है।(117)

डॉ. रोहिताश्व के विचारानुसार ''धूमिल की काव्य कला और प्रतिबद्धता की अर्थ छायाएँ उनकी 'शहर में सूर्यास्त' 'मोचीराम' और 'पटकथा' की संरचना में तलाशी जा सकती है। उनके लिए काव्य कर्म बैठे-ठाले का मनोरंजन या शाब्दिक क्रीडा का उत्सवधर्मी आयोजन नहीं था; बल्कि वह पोर-पोर में प्रवाहित शिराओं का प्राण-धर्मी लहू था; जिसकी आनुवांशिक जड़े जिजीविषा संघर्ष और वर्ग-चेतना रचनाकारों की जीवन शैली में निराला, शमशेर, त्रिलोचन और नागार्जुन से प्रतीकात्मक रूप में पसरी हुई मिलती हैं।''(118)

'धूमिल का काव्य : भाषा-शैली एवं शिल्पविधान' नामक अगले अध्याय में धूमिल की काव्य भाषा एवं मुहावरों के प्रयोग की चर्चा की जाएगी। साथ ही उनकी बिंब व प्रतीक

[illegible] ग

[illegible]।

x-x-x

संदर्भ-सूची

1.	कुवरपाल सिंह	: साहित्य और राजनीति	पृ.120
2.	राजकुमार सैनी	: यथार्थवाद और सौंदर्यशास्त्र	पृ.19
3.	धूमिल	: सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र	पृ.61
4.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.10
5.	गुरुचरण सिंह	: समकालीन कविता का मूल्यांकन	पृ.105
6.	श्री नारायण मिश्र	: आलोचना पत्रिका, जुलाई 1956	पृ.49
7.	रामरतन भटनागर	: आलोचना पत्रिका, जुलाई 1953	पृ.37
8.	त्रिभुवन सिंह	: हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद	पृ.7
9.	ए. ए. ज्दानोव	: साहित्य, संगीत और दर्शन	पृ.7
10.	रामअवध द्विवेदी	: समालोचक पत्रिका, फरवरी 1959	पृ.34
11.	मैनेजर पांडेय	: शब्द और कर्म	पृ.36
12.	राजनाथ शर्मा	: साहित्यिक निबंध	पृ.489
13.	ज्ञानरंजन	: (सं) पहल-8	पृ.63
14.	मैक्सिम गोर्की	: ऑन लिटरेचर	पृ.29-30
15.	धूमिल	: कल सुनना मुझे	पृ.75
16.	शिवकुमार मिश्र	: यथार्थवाद	पृ.140
17.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.54
18.	मनोज सोनकर	: सत्तरोत्तरी हिंदी कविता	पृ.360
19.	धूमिल	: कल सुनना मुझे	पृ.76
20.	धूमिल	: कल सुनना मुझे	पृ.68
21.	चमनलाल गुप्त	: सुदामा पांडेय धूमिल की कविता में यथार्थबोध	पृ.31-32
22.	धूमिल	: कल सुनना मुझे	पृ.69
23.	विश्वंभरनाथ उपाध्याय	: समकालीन कविता की भूमिका	पृ.75
24.	बटरोही	: आलोचना पत्रिका, अक्टू-दिसम्बर 1971	पृ.26
25.	रामअवध द्विवेदी	: समोलोचक पत्रिका, फरवरी 1959	पृ.34
26.	कुंवरपाल सिंह	: (सं) साहित्य समीक्षा और मार्क्सवाद	पृ.131
27.	सी. ब्रूकस	: लिटरेटी क्रिटिसिज्म- ए शार्ट हिस्ट्री	पृ.388
28.	सी. ब्रूकस	: लिटरेटी क्रिटिसिज्म- ए शार्ट हिस्ट्री	पृ.388
29.	सी. ब्रूकस	: लिटरेटी क्रिटिसिज्म- ए शार्ट हिस्ट्री	पृ.388
30.	हरबर्ट रीड	: इंग्लिस परोज स्टाइल	पृ.125-26

31.	रोबिन स्केलटन	: द पोएटिक पैटर्न	पृ.110
32.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.60
33.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.84
34.	रामकृष्ण हलर्णकर	: सर्वेश्वर और नागेश करमली के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन	पृ.
35.	कृष्णदत्त पालीवाला	: सर्वेश्वर और उनकी कविता	पृ.40
36.	गुरुचरण सिंह	: समकालीन कविता का मूल्यांकन	पृ.113
37.	धूमिल	: सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र	पृ.72
38.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.104
39.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.49-50
40.	अर्नेस्ट फिशर	: दि नेसेसिटी ऑफ आर्ट	पृ.103
41.	बोरिस सुखोव	: हिस्ट्री ऑफ रियलिज्म	पृ.104
42.	शिवकुमार मिश्र	: मार्क्सवादी साहित्य चिंतन, इतिहास तथा सिद्धांत	पृ.367-8
43.	जॉर्ज लुकाच	: आलोचना पत्रिका, जुलाई-सितम्बर 1971	पृ.33-34
44.	ब्रेख्त	: सोशल साइंसेस 89-90 पृ.37, द्वारा उत्तरगाथा पत्रिका, अंक 12	पृ.11
45.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.85
46.	धूमिल	: सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र	पृ.82
47.	चमनलाल गुप्त	: सुदामा पांडेय धूमिल की कविता में यथार्थ बोध	पृ.34
48.	धूमिल	: सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र	पृ.60
49.	चमनलाल गुप्त	: सुदामा पांडेय धूमिल की कविता में यथार्थ बोध	पृ.29-30
50.	धूमिल	: कल सुनना मुझे	पृ.11-12
51.	मनोज सोनकर	: सत्तरोत्तरी हिंदी कविता	पृ.359
52.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.32
53.	धूमिल	: सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र	पृ.18
54.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.64
55.	विद्यानिवास मिश्र	: साहित्य का सौंदर्यशास्त्र	पृ.70
56.	रोहिताश्व	: समकालीन कविता: मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में	पृ.113
57.	जॉर्ज लुकाच	: आलोचना पत्रिका, जुलाई-सितम्बर 1971	पृ.37-41
58.	रामलखन शुक्ल	: हिंदी उपन्यास कला	पृ.85

59.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.57
60.	वाचस्पति	: शोधकर्ता की निजी वार्ता, वाराणसी, दिनांक	15.02.2004
61.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.13
62.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.26
63.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.104
64.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.40
65.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.10
66.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.47
67.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.128
68.	रोहिताश्व	: शोधकर्ता की निजी बातचीत, गोवा,	03-01-04
69.	राजेश्वर सक्सेना	: इतिहास, विचारधारा और साहित्य	पृ.101
70.	दिनकर	: शुद्ध कविता की खोज	
71.	परमानंद श्रीवास्तव	: समकालीन कविता का अर्थ	पृ.122
72.	धूमिल	: सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र	पृ.69
73.	श्रीराम त्रिपाठी	: धूमिल और परवर्ती जनवादी कविता	पृ.72
74.	राकेश कुमार	: धूमिल की काव्य चेतना विविध आयाम	पृ.14
75.	प्रभाकर श्रोत्रिय	: रचना एक यातना है	पृ.134
76.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.102
77.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.104
78.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.10
79.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.25
80.	धूमिल	: सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र	पृ.41-42
81.	धूमिल	: कल सुनना मुझे	पृ.8
82.	धूमिल	: कल सुनना मुझे	पृ.78
83.	चमनलाल गुप्त	: सुदामा पांडेय धूमिल की कविता में यथार्थबोध	पृ.96
84.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.107-8
85.	चमनलाल गुप्त	: सुदामा पांडेय धूमिल की कविता में यथार्थबोध	पृ.96
86.	बलदेव वंशी	: (सं. नरेंद्र मोहन) लंबी कविताओं का रचना विधान	पृ.175
87.	हुकुमचंद राजपाल	: समकालीन बोध और धूमिल का काव्य	पृ.125
88.	धूमिल	: कल सुनना मुझे	पृ.23

89. नामवर सिंह : कहना न होगा पृ.269
90. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.93
91. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.93
92. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.89
93. श्रीराम त्रिपाठी : धूमिल और परवर्ती जनवादी कविता पृ.73
94. नामवर सिंह : कहना न होगा पृ.286-7
95. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.66
96. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.128
97. नंदकिशोर नवल : संभव पत्रिका, जन-सितम्बर, 1993 पृ.105
98. धूमिल : कल सुनना मुझे पृ.91
99. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.127
100. अक्षय उपाध्याय : पूर्वग्रह अंक 7 मार्च-अप्रैल 1975 पृ.50
101. रोहिताश्व : समकालीन कविता- मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में पृ.94
102. अर्नेस्ट फिशर : नेसेसिटी ऑफ आर्ट पृ.89
103. मुक्तिबोध : नई कविता का आत्म-संघर्ष तथा अन्य निबंध पृ.15
104. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.27
105. ज्ञानरंजन (सं) : पहल-8 पृ.64
106. ब्रह्मदेव मिश्र : धूमिल और उसका काव्य-सघर्ष पृ.106
107. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.76
108. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.77
109. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.77
110. ब्रह्मदेव मिश्र : धूमिल और उसका काव्य संघर्ष पृ.107
111. श्रीराम त्रिपाठी : धूमिल और परवर्ती जनवादी कविता पृ.64
112. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.114
113. नगेंद्र : साहित्य का समाजशास्त्री पृ.58
114. धूमिल : सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र पृ.58
115. धूमिल : सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र पृ.35
116. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.65
117. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ.126
118. रोहिताश्व : शोधकर्ता की निजी वार्ता- गोवा विश्वविद्यालय दिनांक 18 फरवरी 04

x-x-x

धूमिल का काव्य : भाषा, शैली एवं शिल्पविधान

काव्य भाषा, शैली एवं शिल्पविधान काव्य संरचना के प्रमुख घटक हैं। शिल्प सौंदर्य में इनका प्रमुख अंश-अंशी स्थान माना गया है। इसलिए जिन भावों एवं अनुभूतियों का स्पष्टीकरण भाषा को करना होता है, उनका स्पष्ट एवं प्रभावशाली प्रयोग भाषा पर ही अवलंबित है। भाषा परिवर्तनशील होती है। उसमें परिवर्तन की प्रक्रिया घटित होती रहती है और इस क्रम को कवि अभिरुचि और प्रतिक्रियात्मक रचना दृष्टि अलग-अलग आयाम प्रदान करने का कार्य करती है। समाज में घटनेवाली प्रत्येक हलचल या घटना कवि के विचारों, संवेदनाओं और जीवन मूल्यों को प्रभावित किए बिना नहीं रहती। धीरे-धीरे उसकी यथार्थवादी दृष्टि विकसित होने लगती है। परिणाम स्वरूप यथार्थपरकता से उसकी यथार्थवादी विचारधारा प्रभावित होती है तथा वह भाषा का मार्जन करने लगता है।

काव्य चेतना के स्तर पर धूमिल न केवल यथार्थवादी रचनाकार हैं; बल्कि वे यथार्थपरक सहज एवं सरल, चुस्त मुहावरेदार तथा भावप्रवण भाषा शैली के भी सचेष्ट कवि रहे हैं। उनके काव्य-भाषा शैली एवं शिल्प प्रयोगों में भिन्नता परिलक्षित होती है। उनकी कविताओं में कहीं संबोधनात्मक या आत्मसंबोधनात्मक शैली तो, कहीं वक्तव्य

एवं व्यंग्यात्मक आदि शैली का आभास मिलता है। जिनका वर्णन प्रसंगानुसार भाषा-शैली-शिल्पगत वैशिष्ट्य और संप्रेषण संदर्भों में किया जाएगा।

धूमिल कथ्य एवं शिल्प दोनों को यथार्थवादी दृष्टि से देखते हैं। विशेषत: यथार्थवाद के लिए एक विशिष्ट सरल अनगढ़ शैली की पर्याप्त वकालत भी की गई है। अर्जुन चव्हाण के अनुसार- ''यथार्थवाद यदि जीवन की अनुकृति नहीं, बल्कि जीवन के सत्य के अनेक स्तरों को उद्घाटित करने और अभिव्यक्ति देने की क्रिया है तो स्पष्ट ही किसी एक शैली का एक छत्र अधिकार उस पर नहीं माना जा सकता है, अपने कथ्य के अनुसार उसकी अभिव्यंजना कोई भी शैली अपना सकती है, चाहे सीधा-स्पष्ट कथन, चाहे वक्रोक्ति, चाहे चित्र और प्रतीक।''(1) कवि धूमिल की कविता में लगभग ये सारे तत्त्व व्याप्त हैं, जिसके कारण उनको समकालीन कविता में एक विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान मिल सका है। भाषा, शैली एवं शिल्प ये जो काव्य संरचना के तत्त्व हैं। इनकी चर्चा सविस्तार से करना समीचिन समझा गया है।

5.1 काव्य-भाषा एवं शिल्प विधान

शिल्प संरचना के स्तर पर काव्यभाषा, बिंब, प्रतीक, मिथक और आद्य बिंब आदि की चर्चा की जाती है। सामान्यत: ''काव्यभाषा' काव्य में प्रयुक्त वह भाषा है, जिसकी अभिव्यंजना, क्षमता, रूप-विधान और संप्रेषण प्रणाली आम भाषा से भिन्न होती है।''(2) पाश्चात्य विद्वान लैंगर के मतानुसार - ''काव्य-भाषा भाषा की तरह ही एक अभिव्यक्ति परक रूप और कुल मिलाकर प्रतीकात्मक रूप है।''(3) वस्तुत: भाषा अभिव्यक्ति का एक माध्यम है। लेकिन भाषा और काव्य-भाषा दोनों में अंतर होता है। राघव प्रकाश के शब्दानुसार ''भाषा मानव चेतना के अनुभव की सर्जनात्मक वाङ्मय अभिव्यक्ति है।... व्यक्ति में इसका जन्म और विकास उसकी चेतना के जन्म और विकास के साथ है। व्यक्ति की चेतना के साथ यथार्थ के टकराव का उच्छलन भाषा है।''(4) डॉ. परमानंद श्रीवास्तव के अनुसार - ''काव्य-भाषा अपने आप में एक प्रकार की रचना ही है- किसी तथ्य, अनुभव या प्रतिक्रिया का एक भिन्न स्तर पर पुन: सर्जन।''(5) जिसकी विशद चर्चा अगले अनुच्छेद में करने का प्रयास किया जायेगा।

5.11 काव्य भाषा : काव्य भाषा के संबंध में प्राय: यह कहा जाता है कि भावों तथा अनुभूतियों की यथावत अभिव्यक्ति में रचनाकार को भाषा की अक्षमता का बोध होता है। सृजन की इस पीड़ा के कारण हिंदी काव्य-जगत् में छायावाद से लेकर अब तक कविता के सभी स्तरों पर नई भाषा की खोज अनवरत बनी हुई है। कविता और भाषा पर अपना मंतव्य देते हुए विजय द्विवेदी ने कहा है- ''कविता एक विधा है। कवि की संवेदनाएँ भाषा में ही जन्म ग्रहण करती हैं। वह भाषा के उपलब्ध शब्द-समूह में से सही शब्दों को सही स्थान के लिए चुनता है और अपनी सृजन की अनिवार्य पीड़ा-विवशता से मुक्ति

पाता है। इस दृष्टि से कवि कविता का जनक और भाषा का अभिभावक होता है। भाषा की सर्वोत्तम अधिसत्ता को अपने अनुकूल प्रयोगार्ह बनाना कवि व्यक्तित्व का महत्त्वपूर्ण पक्ष माना जाता है।''(6)

5.12 धूमिल का काव्य : भाषागत यथार्थ का प्रयोगात्मक पक्ष : भाषा के संदर्भ में हमें विशेष सावधानी बरतनी पड़ती है। आम जन-जीवन ही साहित्य है- ऐसा मानते हुए हम जीवन की अनुरूपता की खोजबीन साहित्य में करते हैं। इसके लिए आम जन-जीवन की भाषा को समृद्ध करना उसकी अर्थवत्ता को दृढ़ करना यथार्थवादी रचनाकार का महत्त्वपूर्ण दायित्व होता है। भाषा क्या है? इस संदर्भ में सदाशिव द्विवेदी का मानना है- ''जीवन की तमाम विद्रूपता से भरी विसंगतियों पर प्रहार करने के लिए भाषा एक शक्तिशाली माध्यम है। जीवंत प्रकाश के लिए यह प्रहार आवश्यक है।''(7)

सामान्यत: यथार्थपरक भाषा में कोई नियत व्याकरण की आवश्यकता नहीं होती। व्याकरण स्वंय व्यवहृत शब्द से निर्मित होता है। वह उस यथार्थवादी भाषा से बनता है, जो जीवित रहती है। पाश्चात्य विद्वान स्टालिन का अभिमत है- ''भाषा का जन्म और विकास समाज के साथ होता है। समाज से अलग कोई भाषा नहीं होती। भाषा-विकास के नियमों को तभी समझा जा सकता है, जबकि समाज के इतिहास का अध्ययन किया जाए, उन लोगों के इतिहास का अध्ययन किया जाए, जिनसे इस भाषा का संबंध है, जो इसकी रचना करते हैं।''(8) अत: कहा जा सकता है कि भाषा का कोई पूर्व नियोजित गुण नहीं हुआ करता। साफ, बेलाग और आम जनता की बोलियों के आधार पर भाषागत यथार्थ का निर्माण होना चाहिए।

विवेच्य शोधकार्य के अंतर्गत यह पाया गया है कि धूमिल ने 'भाषा' को केंद्र में रखकर कतिपय महत्त्वपूर्ण उदाहरण सामान्यत: बोलचाल के दिए हैं; जिसमें ग्रामीण शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों, बिंबों एवं प्रतीकों का सार्थक प्रयोग उपलब्ध है। भाषा एक परिवर्तनशील प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया को कवि की अभिरुचि एवं प्रतिक्रियात्मक दृष्टि बदलने का काम करती है। समकालीन कविता में भाषा अपनी पारंपरिक भाषा से कुछ भिन्न नवीनता लिए हुए उपस्थित होती है। इस दृष्टि से जब हम धूमिल की काव्य-भाषा का आंकलन करते हैं, तो पता चलता है कि उन्होंने ही सबसे पहले कविता के माध्यम से भाषा को ठीक करने की कोशिश की है। संघर्ष एवं तनावों की तीव्रतम स्थितियों में चिंतन, विचार एवं आवेग इतना बढ़ जाता है कि अनुभूति एवं अभिव्यक्ति का साधारण समन्वय भयंकर रूप से प्रभावित होना स्वाभाविक हो जाता है। जिससे कवि धूमिल संभाल नहीं पाते हैं तथा कह उठते हैं-

''अब वहाँ अर्थ खोजना व्यर्थ है/ पेशेवर भाषा के तस्कर
संकेतों/और बैलमुत्ती इबारतों में/ अर्थ खोजना व्यर्थ है।''(9)

उपर्युक्त काव्यांश में 'बैलमुत्ती इबारत' ग्रामीण शब्द है। कुछ विद्वानों ने इसे शिष्टभाषा में 'अभद्र' की संज्ञा दी है; किंतु इस शब्द से जो भाव-भंगिमा उभरती है, संभवत: अन्य समानार्थी शब्दों में मुमकिन नहीं है। कवि धूमिल की कविता में अभिव्यक्त भाषा पर टिप्पणी करते हुए राहुल ने कहा है- ''धूमिल की कविता में 'भाषा' पेशेवर नहीं, उत्तेजित भीड़ का कवच धारण करने के लिए.... खूनी कटार है।''(10)

यह कहना गलत नहीं होगा कि यथार्थयुगीन परिवेश में शब्दों को पहचानने की अपार शक्ति कवि धूमिल में थी। बड़ी हिम्मत के साथ उन्होंने शाब्दिक प्रयोग के माध्यम से भाषा को नई दृष्टि दी है। धूमिल का पहला काव्य-संग्रह 'संसद से सड़क तक' की पहली कविता में बैलमुत्ती, गर्भाधान, गर्भपात, जैसे पारंपरिक हिंदी कविता जगत के लिए अछूत माने जाने वाले शब्दों को स्थान प्राप्त हुआ है। इन शब्दों को ध्यान से देखने पर पता चलता है कि कहीं-न-कहीं उनके मन में आक्रोश का स्वर भरा है। उसकी अभिव्यक्ति के लिए उनकी भाषा सर्वथा अनुकूल ही है। धूमिल ने काव्य की अभिजात्य भंगिमा में, तेवर नये शब्दविधान से बदलाव लाने का प्रयत्न किया है।

नरेंद्र मोहन के मतानुसार- 'चिकने और गोल शब्दों को तोड़ने का क्रम'(11) सबसे पहले कवि धूमिल ने 'संसद से सड़क तक' काव्य-संग्रह की पहली कविता में गर्भाधान तथा गर्भपात जैसे शाब्दिक प्रयोग के माध्यम से कविता को भाषाहीन किया। यहाँ कविता को भाषाहीन करने का मतलब है- पारंपारिक अलंकारिक, चिकने-गोल-मटोल, अस्पष्ट(जो अज्ञेय-मुक्तिबोध की कविता में मिलता है) एवं कृत्रिम भाषा से मुक्त करना। इस संदर्भ में डॉ. चमनलाल गुप्त का कथन ध्यातव्य है- ''धूमिल ने अपनी कविता को भाषिक अभिजात्य से मुक्त करने के लिए सर्वप्रथम कविता में गद्यात्मक भाषा के विकास की ओर ध्यान दिया, जो कि खुर-दुरे, नुकीले एवं व्यंग्यात्मक शब्दों से युक्त थी। धूमिल की कविता में अश्लील कहे जानेवाले, भदेस कहे जानेवाले शब्दों का प्रचुर प्रयोग इसी ओर संकेत करता है।''(12)

5.121 धूमिल की काव्य-भाषा में शब्द प्रयोग : कवि धूमिल को 'शब्दों का जादूगर' कहा गया है। वे हमेशा शब्दों की तलाश में रहते थे। कहीं से भी वह चाहे कोर्ट कचहरी हो, ग्रामीण परिवेश हो। शहरी परिवेश हो, या वे जहाँ I.T.I. में काम किया करते थे। यानि जीवन भर जहाँ-जहाँ भटकते रहे, वहाँ-वहाँ से शब्दों को उठा लाते थे। वे शब्द ऐसे वैसे नहीं है; बल्कि एक व्यापक गंभीर अर्थ-संदर्भो में अभिव्यक्त होते हैं। इस संदर्भ में डॉ. हुकुमचंद राजपाल का कहना है- ''वह शब्द-प्रयोग व्यापक संदर्भों में करता है इतना ही नहीं शब्दों को टटोलने, महसूसने, पटोलने का उसका क्रम समकालीन कवियों में उसे पृथक स्थान पर प्रतिष्ठित करता है।''(13) शब्दों के प्रयोग में धूमिल अत्यंत सुलझे हुए हैं। जहाँ भी जिस भाषा के शब्द की जरूरत पड़ी, उन्होंने उसका प्रयोग किया है। वे शब्दों को उसके खुले रूप में रखने के पक्षपाती थे। कवि धूमिल ने एक स्थान पर स्वयं

कहा भी है-

''छायावाद के कवि शब्दों को तोलकर रखते थे,
प्रयोगवाद के कवि शब्दों को टटोलकर रखते थे,
नयी कविता के कवि शब्दों को गोलकर रखते थे.
सन् साठ के बाद के कवि शब्दों को खोलकर रखते थे।''(14)

धूमिल के शब्द-प्रयोगों के संदर्भ ने काशीनाथ सिंह ने अपने लेख में लिखा है- ''जिन दिनों नई कवितावादियों ने अपनी दब्बू, विनीत और मध्यवर्गीय कुंठाओं वाली कविता की वकालत में कहना शुरू किया था कि शब्दों के अर्थ खो गए हैं, वे गलत जगह रख दिये गए हैं-संदर्भच्युत हो गए हैं। धूमिल ने अपनी कविता में शब्दों को सही संदर्भ में रखना शुरू किया। सही जगह पर और लोगों ने देखा कि सही संदर्भ पाकर वे शब्द 'डाइनामाइट' की तरह हुए जा रहे हैं। उनमें विस्फोटक क्षमता आ गई है।''(15) धूमिल ने कठोर एवं नुकीले शब्दों पर धार देकर, उसे पैना बनाया और वाक्य में उनका इस्तेमाल कर उस आदमी को मारना चाहा -

''जो आदमी के भेस में/ शातिर दरिन्दा है/ जो हाथों और
पैरों से पंगु हो चुका है /मगर नाखून में जिंदा है/ जिसने
विरोध का अक्षर-अक्षर/ अपने पक्ष में तोड़ लिया है।''(16)

कवि धूमिल की काव्य-भाषा की सर्वप्रमुख पहचान यह है कि वह अश्लील एवं नंगेपन शब्दों से ऊर्जा ग्रहण करती है, जिससे इनकी काव्य-भाषा अत्यधिक तीव्र गति से अन्य समकालीन कवियों की अपेक्षा एक पृथक और खतरनाक राह पर खड़ी हुई दिखाई देती है। धूमिल की प्रत्येक कविता की मध्यवर्ती प्राय: तीन-चार पंक्तियों में नारी-पुरुष के गुह्य अंगों का प्रयोग हुआ मिलता है। जिन्हें यथार्थ यौन-प्रतीक भी आप कह सकते हैं। उदाहरणार्थ धूमिल की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

''शहर की समूची/ पशुता के खिलाफ गलियों में नंगी घूमती
हुई/पागल औरत के 'गाभिन पेट' की तरह''(17)

स्पष्ट है कि 'पागल' शब्द विशिष्ट ध्वनि की पहचान है। जब वह नारी यथार्थ की बात करती है तो अनैतिकता पर पर्दा डालने हेतु उसे मुखौटाधर्मी लोग पागल करार देते हैं। धूमिल की अंतिम दो पंक्तियाँ समाज की व्यभिचारी पर व्यंग्य है। ऐसे अश्लील शब्द प्रयोग धूमिल की अनेक कविताओं में हैं और वे प्राय: सभी अकविताई मुहावरे में हैं। जैसे- 'मासिक धर्म में डूबे हुए लत्ते-सा/खड़खड़ाता हुआ दिन', 'बलात्कार के बाद की आत्मीयता', 'तुम्हारी मातृभाषा/ उस महरी की तरह है, जो महाजन के साथ रात भर/ सोने के लिए/ एक साड़ी पर राजी है', 'आजादी- इस दरिद्र परिवार की बीस साला बिटिया/ मासिक धर्म में डूबे हुए क्वाँरेपन की आग से/ अंधे अतीत और लँगड़े भविष्य

की चिलम भर रही है' आदि ऐसे शब्दों का प्रयोग धूमिल ने किया है; जो सर्वाधिक खतरनाक मोड़ ले लेते हैं। यही वह वजह है, जहाँ से धूमिल की काव्य-भाषा की सरिता मरोड़ के साथ अत्यधिक वेग के साथ आगे बढ़ती गयी। जिसे कतिपय आलोचकों ने अश्लीलता का आरोप लगाया है।

डॉ. नंदकिशोर नवल का कहना है कि कवि धूमिल ने अश्लील शब्दों के प्रयोग से सुरुचि एवं शालीनता पूर्ण शब्दों को मुक्त किया है। उन्होंने अश्लील शब्दों, बिंब एवं प्रतीकों तथा वाक्यांशों की एक लंबी सूची तैयार करके अपना निष्कर्ष दिया है। नवलजी ने ठीक ही कहा है- ''ये पंक्तियाँ हमें उनकी मानसिकता से परिचित कराती हैं। ऐसी अभिव्यक्ति के लिए धूमिल और उनकी पीढ़ी के दूसरे कवि यह कहकर सराहे गए हैं कि इसके द्वारा उन्होंने कविता के झूठे अभिजात्य को तोड़ा है और पाठकों को झटके देकर उन्हें निकट यथार्थ का बोध कराया है। वास्तविकता यह है कि ऐसी अभिव्यक्ति में युवा कवि भाषा के स्तर पर भी यथार्थवादी बनने की कोशिश करते हैं। जैसे उनकी वस्तुगत यथार्थ की समझ गड़बड़ रही है, वैसे ही भाषागत यथार्थवाद की भी।''(18) नवलजी का मानना है कि कवि धूमिल के द्वारा ऐसे अश्लील शब्दों के प्रयोग से उनकी हताशा एवं निराशा का परिचय मिलता है। साथ ही भाषिक अभिजात्य को तोड़ने की क्रिया का एक पहलू भी। इसप्रकार की दृष्टि अपनाना एक प्रगतिशील आलोचक के लिए शोभनीय नहीं है। हमारे विचार से कवि धूमिल के ये अश्लील शब्द प्रयोग हमें अवश्य चौकाते हैं; लेकिन किसी प्रकार की वितृष्णा नहीं पैदा करते।

कहना न होगा कि धूमिल के काव्य में अभिव्यक्त प्रत्येक शब्द संदर्भानुसार परिवर्तित होता है। राकेश कुमार के मतानुसार ''कोशीय अर्थों तक ही उनका शब्द-विधान, प्रतीक-विधान सीमित नहीं; अपितु वह गहरी ऐतिहासिक समझ की माँग करता है। शब्द-विन्यास भले ही सामाजिक विसंगति बोध का सूचक हो, परंतु उन अभद्र अनैतिक कृत्यों को सत्य के धरातल पर प्रस्तुत करने का साधन है, साध्य नहीं। इसीलिए 'गर्भपात' 'लड़की का धर्मशाला बनना', 'गाभिन' जैसे शब्द विसंगतिबोध को यथार्थ बनाने हेतु साधन हैं, साध्य है- युग का वास्तविक अनैतिक धर्मी यथार्थ।''(19)

धूमिल के शब्द प्रयोग एवं काव्य भाषा पर नए-पुराने कई आलोचकों ने पक्ष या विपक्ष में अपने अभिमत दिये हैं। धूमिल के नारी संबंधी अश्लील शब्द प्रयोगों के संदर्भ में नेमिचंद जैन का कहना है- ''स्त्री के बारे में ऐसी प्रतिक्रियाएँ एक क्रांतिवादी या क्रांतिकारी कवि की नहीं, समाज के 'लुपेन' उठाईगीर हिस्से की जहनियत होती है। ऐसा लगता है कि धूमिल की कविता ने अकविता के दौर में होश सँभाला और उससे उनकी संवेदना मूलत: भिन्न होने और अपनी ओर से सजग रूप से उसके मुहावरे से बचने की कोशिशों के बावजूद, उसके कुछेक रुझान उनकी कविताओं में अनजाने ही आ गए हैं। यों भी अगर कवि पूरी तरह होशियार या उसके अनुभवतंत्र की बुनावट बिलकुल भिन्न न हो, तो उग्रता का

'रेटारिक' बड़ी आसानी से योनिवादी 'रेटारिक' के गड्ढे में गिर सकता है। मगर धूमिल का अपना सहज सामाजिक और काव्यगत विवेक उन्हें इस खतरे से बचाता है और वैचारिक पृष्ठभूमि की कमजोरी के कारण एक प्रकार की संकीर्ण विरोधवादिता और अंततः हिंसा की ओर बढ़ने के बावजूद उनके बुनियादी लगाव मानवीय और प्रासंगिक बने रहते हैं।''(20)

धूमिल की पक्षधरता, प्रतिबद्धता और यथार्थवादी अभिरुचि को ध्यान में रखकर श्रीराम त्रिपाठी ने कहा भी है कि ''धूमिल उस धरातल पर खड़े हैं जहाँ वास्तविक जिंदगी है। वे पानी के ऊपर खिले कमल से अभिभूत नहीं होते; बल्कि उस कीचड़ में उतरते हैं, जहाँ से कमल रस चूस रहा है। वे उस कीचड़ में चलनेवाली हलचल को जानने और रचने की कोशिश करते हैं। इसी प्रयास में उन्होंने कविता से बहिष्कृत शब्दों-उक्तियों एवं कथन-भंगिमाओं का सृजनात्मक उपयोग किया और अपनी कविता को ज्यादा प्रभावशाली बनाया। उनका यह भदेसपन कविता को एक नई काव्य-भाषा और काव्यशिल्प मुहैया करता है।''(21)
धूमिल की काव्य-भाषा में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के शब्द प्रयोगों को अध्ययन की सुविधा के लिए हमने पाँच भागों में विभक्त किया है-

1. विदेशी शब्दावली के प्रयोग : धूमिल के काव्य-संग्रहों का समुचित अध्ययन करने के पश्चात् यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि कतिपय विद्वान उनके काव्य-संग्रहों में अंग्रेजी शब्दों को ध्यान में रखकर उन पर यह आरोप लगाते हैं कि धूमिल के ये शब्द भाव संप्रेषण के लिए बाधक रहे है; किंतु यह आरोप निराधार है। धूमिल का ध्यान अंग्रेजी शब्दों के हिंदीकरण की ओर कभी नहीं गया और न ही उनका प्रयोग उन्होंने जान बूझ कर किया है। अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग सहज एवं स्वाभाविक रूप से हुआ है। यह सच है कि धूमिल ने अंग्रेजी, उर्दू-फारसी आदि अनेक भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया है। अपनी कविता के लिए जहाँ भी जिस शब्द की आवश्यकता पड़ी है, कवि ने निःसंकोच उस शब्द का प्रयोग किया। चाहे वह बंगाली-बिहारी आदि किसी भी भाषा का शब्द रहा हो। कवि का यह प्रयोग कौशल उन्हें अन्य तमाम आधुनिक कवियों से अलग पहचान कराता है। कवि ने उन्हीं अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया है जो हिंदी भाषा के शब्दों के साथ प्रयुक्त होता हैं।

अंग्रेजी शब्दावली का प्रयोग : जहाँ तक धूमिल के काव्य-भाषा में प्रयुक्त अंग्रेजी शब्दों का सवाल है, वहाँ कवि ने आम जीवन के बोलचाल में प्रचलित शब्दों का ही प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ- कोट, टायर, पंक्चर, पोस्टर, आइरन, प्लेट, ट्रांसफार्मर, कैम्प। कहीं-कहीं अपनी काव्य-भाषा की शक्ति बढ़ाने के उद्देश्य से प्रेरित होकर धूमिल ने कुछ शब्दों को लोक प्रचलन के अनुकूल तोड़ा भी है। उदाहरणार्थ टेलीफून, बिलाक, टेम आदि। धूमिल ने कहीं-कहीं कविता का शीर्षक 'ट्यूशन पर जाने से पहले'(22) तथा 'न्यू गरीब हिन्दू होटल'(23) में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग किया है; लेकिन इनमें कुछ शब्दों को छोड़कर कहीं भी अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ है। यही नहीं कहीं-

कहीं उन्होंने अंग्रेजी का पूरा एक पद ही इस्तेमाल किया है। उदाहरणार्थ- ''फार डिफेन्स सर्विसेज ओन्ली।'' इसी तरह देवनागरी लिपी में लिखी हुई अंग्रेजी की पूरी-की-पूरी पंक्ति का उल्लेख किया जा सकता है- ''द गन इज/नाट इन द/हैंड्स आफ द/पीपुल - जे.पी.''(24)

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि अंग्रेजी शब्दों के हिंदीकरण की ओर कवि धूमिल का रुख कभी नहीं रहा। उनका प्रयोग जिस तरह बोलचाल में किया जाता है; ठीक वैसे ही सहज ढंग से इनकी कविताओं के साथ आ गए हैं। कोई बहुत माथा-पच्ची करके उनका प्रयोग नहीं किया है; जैसे आज के समकालीन कवि किया करते हैं।

उर्दू-फारसी शब्दावली का प्रयोग : कवि धूमिल ने अंग्रेजी शब्दावली की तरह उर्दू-फारसी शब्दों का भी बहुत अधिक मात्रा में प्रयोग किया है। ऐसे शब्दों के प्रयोग से उनकी कविता में कहीं भी दुरुहता नहीं आने पाई है; न ही पाठक उससे चौंके हैं। कवि ने उनका प्रयोग सहज ही किया है। उदाहरणार्थ कतिपय उर्दू-फारसी के शब्द द्रष्टव्य हैं- जरायम- पेशा, जुलूस, नाराज, नफरत, फिरंगी, तसल्ली, शरीक, इंतजार, असलियत, वक्त, वसूल, उम्र, साजिश, हमदर्द, बेकसूर, शराफत, जुबान, खिलाफ, जिम्मेदारी, अमीन, दिमाग, जिंदगी, अफवाह, कोहराम, गोश्त, शराब, शहनाई, इश्तिहार, निगाह, मुश्किल, सरहद, इरादा, खानाबदोश, मुकाम, रिश्ते, बाजार, आदि इसी तरह उर्दू-फारसी के शब्दों की संख्या धूमिल की कविताओं में बहुत मिल जाएँगे। ज्यादातर धूमिल ने प्रचलित शब्दों का ही प्रयोग किया है। कहीं-कहीं धूमिल ने उर्दू-फारसी शब्दों के साथ ही कुछ उर्दू मुहावरों का भी प्रयोग किया है। उर्दू मुहावरा का प्रयोग द्रष्टव्य है-

> ''अपनी-अपनी जगह एक ही किस्म से/ अपना-अपना <u>फर्ज</u>
> <u>अदा करते</u> हैं।''(25)

रेखांकित किए हुए शब्द उर्दू का मुहावरा है; जो व्यंग्यार्थ की प्रतीति कराता है। इसी तरह अनेक मुहावरें आप को देखने के मिल जायेंगे।

2. देशज व आँचलकि शब्दावली का प्रयोग : धूमिल की काव्य-भाषा में देशज व आंचलिक शब्दों का खुलकर प्रयोग हुआ। ये सभी शब्द कवि के कथ्य को उसी रूप में पाठक की अनुभूति से जोड़ने का काम करते हैं। धूमिल के काव्य में प्रयुक्त देशज शब्दों को उसके स्थान से हटाना किसी भी कवि या लेखक द्वारा स्वीकार नहीं किया जाएगा। उदाहरणार्थ ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

> ''एक औरत आँगन में बैठकर पुतड़ा धोती है/ एक रुआँसा
> लड़का/मदरसे से वापस आता है''(26)

उपर्युक्त वाक्य में 'पुतड़ा' तथा 'रुआँसा' से जिस गरीबी, विवशता एवं लाचारी की अभिव्यक्ति कवि कर सके हैं, वह इसके समानार्थक शब्दों के द्वारा नहीं किया जा सकता। राहुल के अनुसार- ''धूमिल की कविता में ठेठ देहाती (भोजपुरी) शब्दों का बहुलता से प्रयोग है, जो तत्कालीन संदर्भों से संबंध जोड़कर नए अर्थ और नए भाव से ग्राह्य बना देते

हैं।''[27] धूमिल के काव्य-संग्रहों में प्रयुक्त कतिपय देशज व आँचलिक शब्दों की सूची दी जा रही है-

'संसद से सड़क तक' काव्य संग्रह से उद्धृत कुछ पंक्तियाँ 1. बैलमुत्ती इबारतों में/ अर्थ खोजना व्यर्थ है- (कविता), 2. गलियों में नंगी घूमती हुई/पागल औरत के गाभिन पेट की तरह (जनतंत्र के सूर्यादय में), 3. एक जूता और है जिससे पैर को/ 'नाँधकर' एक आदमी निकलता है। (मोचीराम), 4. नोनछही ईंटों का अक्स/ झिलमिला रहा है- (भाषा की रात), **'कल सुनना मुझे' काव्य संग्रह से उद्धृत कुछ पंक्तियाँ**- 5. करछुल बटलोही से बतियाती है (किस्सा जनतंत्र), 6. आजादी के कल्ले फूटते हैं- (आतिश के अनार-सी वह लड़की), 7. पानी पीता है और लजाता है। (किस्सा जनतंत्र), 8.कथरी पर सोये हुए मुन्ने पर मत लपक (बारिश में भीगकर), **'सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र' काव्य-संग्रह से उद्धृत कुछ पंक्तियाँ :** 9. वक्त को गॅजेड़ी की तरह फूँकते रहे हो - (सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र),10. नेकर में नाड़े-सी पड़ी हुई पत्नी का प्यार (कविता के भ्रम में),11. अपनी डँड़इयों के बीच/ शब्दों की राख उगलती है। (पर्वतारोहण : नवम्बर1971),12. जबड़े में भिंची हुई/ कलेजी की तरह बमक रहा है (नौजवान),13. मैं शहर की ड्योढ़ी पार करता हूँ - (जनतंत्र : एक हत्या संदर्भ),14. ठेलू ठीहे पर जाता है/ और जुगाड़ जमाता है - (लोहसाँय) आदि रेखांकित देशज व आँचलिक शब्दों के प्रयोग में धूमिल का कवि मन काफी पटु (expert) दिखाई जान पड़ता है। ऐसे शब्द प्रयोगों से धूमिल की काव्य-भाषा में मजबूती आई है।

3. ग्रामीण शब्दावली का प्रयोग : धूमिल का जन्म ही एक ग्रामीण किसान परिवार में हुआ था अत: ग्रामीण बोलचाल की भाषा से इनका रोजमर्रा का संबंध था। स्वाभाविक है कि इनके काव्य में ग्रामीण शब्दों का प्रयोग होना ही था। अशोक वाजपेयी का कथन है- ''धूमिल की संवेदना पूरी तरह से जागरूक और चौकन्नी होते हुए भी सिर्फ शहराती नहीं हैं। उसमें गहरा ग्रामीण संस्कार भी है। बल्कि शायद यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि धूमिल में शहराती बौद्धिकता और ग्रामीण संवेदना एक रचनात्मक तनाव की स्थिति में रहकर उनकी कविता के संदर्भ को व्यापक और ठोस बनाती है। ग्रामीण संस्कार धूमिल के यहाँ पेशनेबल आंचलिकता का रूप नहीं लेता। वह उनकी कल्पना शक्ति बिंब योजना और भाषा को ताजगी और विस्तार देता है।''[28]

धूमिल का ग्रामीण अंचल से गहरा संबंध रहा है। उन्होंने ग्रामीण अंचलों में नित-प्रतिदिन बोलचाल में प्रयोग होनेवाले शब्दों को अपने काव्य में स्थान दिया है। ऐसे प्रयोगों के पीछे उनका एक ही मकसद था कि पारंपरिक काव्य-भाषा को तोड़कर एक नई काव्य-भाषा का जन्म देना। ऐसा अन्य समकालीन कवियों में कम ही होता है। ग्रामीण भदेस शब्दों का प्रयोग भी अन्य कवि सफलतापूर्वक नहीं कर पाए हैं। कुछ कवियों ने कोशिश की भी; पर धूमिल की तरह पर्दे पर चमकते हुए नहीं दिखाई पड़ते हैं। धूमिल ने भदेस

शब्दों का सायास प्रयोग किया है। धूमिल के ग्रामीण जनभाषा के संबंध में राजेश जोशी का कथन है- ''धूमिल एक किसान परिवार में पैदा हुए थे और जनभाषा के शब्द उन्हें संस्कारगत प्राप्त हुए होंगे जबकि दूसरी ओर वे परिष्कृत अभिजात काव्य-भाषा से भी भली-भाँति परिचित थे, जिसे वे सतर्कतापूर्वक तोड़ना भी चाहते थे; ताकि किसानी को चरितार्थ करने की अपनी मान्यता का वे पूरी तरह निर्वाह कर सकें। इसी कारण जहाँ एक ओर जनभाषा के शब्द उनकी कविता में सहज उपजते हैं; वहीं दूसरी ओर धूमिल कई स्थानों पर भदेस शब्दों को सायास भी लाते हैं।''(29)

अधिकांश आलोचकों-विद्वानों का आरोप है कि धूमिल ग्रामीण शब्द-प्रयोग के प्रति इतने आसक्त दिखाई पड़ते हैं कि जैसे शब्द कहीं से बलपूर्वक लाकर अपनी कविता में फिट कर लेते हैं। उदारहणार्थ बिसूसना, खटवाना, लीदना, कूतना, हीकना, जोखना गड़गच्च, झौवा, कठवत, बड़कू-छोटकू, आदि गँवई शब्द धूमिल की काव्यभाषा में इस्तेमाल हुए हैं। इसीप्रकार के कुछ अन्य शब्द प्रयोग निम्नलिखित रेखांकित पंक्तियों में देखे जा सकते हैं-

> ''ठेलू ठीहे पर जाता है/ और जुगाड़ जमाता है ×××
> रोटी कितने मशक्कत से मिलती है /××× गाँव गिराँव से/
> सलाम रमरम्मी के बाद/ठेलू फरगाता है फाल/ गड़सा, खुरपी,
> कुदाल''(30)

उपर्युक्त काव्यांशों में रेखांकित सभी गँवाई शब्द हैं; जो भाव-संप्रेषण में पूर्णतया समर्थ हैं। अत: स्पष्ट हो जाता है कि कवि गँवई शब्दों का प्रयोग वहीं करते हैं, जहाँ अपनी बात को पाठकों की अनुभूति की गहराई में उतार सके। राजेश जोशी के अनुसार- ''काव्य-भाषा को लेकर हुए प्रयोगों को धूमिल ने एक नया मोड़ दिया है। किसानी चरित्र को सही-सही पेन्ट करने, उसके खुरदरेपन, उसके बात कहने के गँवईपन को उजागर करने के लिए उसने एक अक्खड़ काव्य-भाषा अपने लिए निर्मित की है। अनेकों ऐसे शब्द जो अलग से सुनकर एक संस्कारगत काव्य प्रवृत्तिवाले को, काव्य भाषा के लिए नितांत अजनबी, बेतुके यहाँ तक कि असंभव लग सकते थे, धूमिल कविता में पूरे ठाठ से ले आए। उदाहरण के लिए कुछ शब्द देखे जा सकते हैं- पटरासीवान, नोनछही, ईंटों, परखी, पोंक्ता, सकारना, सुखतल्ले आदि। अनेकों ऐसे शब्द हैं जिनसे उसने एक नई काव्य-भाषा की संरचना की है।''(31)

आलोचकों का मानना है कि ऐसे ग्रामीण शब्दों के प्रयोग से भाषा में चमत्कार भले ही उत्पन्न हो जाए; लेकिन ऐसा प्रयोग शहरी मानसिकतावालों से परे होता है। जबकि ऐसा आरोप लगाना उचित नहीं है। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के अनुसार- ''धूमिल की भाषा में ग्रामीण शब्दावली का इस्तेमाल चौकाने के लिए नहीं हुआ है और न आंचलिक छौंक देने के लिए; बल्कि यही उनकी असली जमीन है।''(32) इस कथन से स्पष्ट हो जाता

है कि धूमिल ने गँवई शब्दों का प्रयोग सहजता से किया है। शायद यही कारण हो सकता है कि नामवर सिंह ने धूमिल को 'गँवई अनुभव और किसानी संस्कार का कवि' कहा है।

कहना न होगा कि ग्रामीण भाषिक सम्पन्नता में साँस लेनेवाले धूमिल संभवतः प्रथम कवि हैं, जिन्होंने पाठक और कविता के बीच भाषिक खाईं को गँवई शब्द प्रयोगों द्वारा पाटना चाहता है। कतिपय आलोचकों को यही भ्रम रहा है कि गँवई शब्द-प्रयोगों से धूमिल के काव्य को शहर में रहनेवाले पाठक नहीं समझ पाते; चूँकि यह सही नहीं है। धूमिल ने अपनी काव्य भाषा के द्वारा सबको एक सूत्र में बाँधने की अथक कोशिश की है। आचार्य पंकज ने कहा भी है कि 'संसद से सड़क तक' की सारी कविताएँ हिंदी काव्य साहित्य का एक ऐसा सूत्र है जो सब को जोड़ने में मदद करती है।''[33] धूमिल के पास केवल गँवई संस्कार और भाषायी तेवर नहीं रहे हैं बल्कि उनके यहाँ पढ़े-लिखे व्यक्ति के मानिंद तत्सम और तद्भव शब्दावली का प्रयोग भी मिलता है।

4. तत्सम एवं तद्भव शब्दावली का प्रयोग : तत्सम शब्दावली का प्रयोग- धूमिल की काव्य-भाषा में हमें यत्र-तत्र तत्सम शब्दों की भरमार देखने को मिलती है। वैसे वे ऐसे शब्दों के प्रयोग के पक्षपाती नहीं थे। वे उन्हीं शब्द प्रयोगों के पक्षपाती थे; जो आम जनता की बोलचाल की भाषा में प्रचलित रहे हैं। अधिकांशतः उन्होंने ठेठ शब्दों के साथ ही तत्सम शब्दावली का प्रयोग किया है। उदाहरण के तौर पर निम्नलिखित पंक्तियों के रेखांकित शब्दों को देखा जा सकता है- 1. तीसरे गर्भपात के बाद धर्मशाला हो जाती है। (कविता), 2. पेशेवर भाषा के तस्कर संकेतों। (कविता), 3. क्रांति किसी अबोध बच्चे के/ हाथों की जूजी है। (अकाल दर्शन), 4. आजादी इस दरिद्र परिवार की बीस साला बिटिया (राजकमल चौधरी के लिए), 5. सौंदर्य में स्वाद का मेल (वसंत) आदि।

उपर्युक्त पंक्तियों के रेखांकित शब्द-प्रयोग संस्कृत के शब्द हैं। 'संसद से सड़क तक' काव्य संग्रह में ऐसे अधिकांश शब्दों की प्रचुरता देखी जा सकती है। उदाहरणार्थ- संक्षिप्त, पशुता, देश, करुणा, मातृभाषा, संदर्भ, पृथ्वी, प्रकाश, उत्तराधिकारी, पांहु लिपि, नरभक्षी, दुःख, चुंबन, सर्पिणी, नाभि, दादुर , संघर्ष, पुरुषार्थ, युद्धकाव्य आदि अनेक तत्सम शब्दावली के प्रयोग धूमिल की काव्य-भाषा में देखे गए हैं। यही नहीं, उन्होंने अपने काव्य में संप्रेषणीयता लाने के लिए हिंदी के अतिरिक्त कई अन्य भाषाओं के तत्सम शब्दावली का प्रयोग धड़ल्ले से किया है। उदाहरणार्थ- जरायम पेशा, समानंतर, रायल्टी, कोरस, अप्रत्याशित आदि।

तद्भव शब्दावली का प्रयोग - धूमिल की काव्य-भाषा में तत्सम से अधिक प्रचुर मात्रा में तद्भव शब्दावली के प्रयोग देखे जा सकते है। ये तद्भव शब्दावली दो दृष्टिकोण से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं- एक लोक व्यवहार की भाषा के निकटता और दूसरी अर्थ गंभीरता के कारण। तद्भव शब्दों के संदर्भ में डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी का मंतव्य विचारणीय है- ''तद्भव शब्द में पाठक का अपना जातीय संस्कार अधिक निहित होने के कारण उस पर

आधारित बिंब को ग्रहण करने और उसे पुनर्सृजित करने की प्रक्रिया में वह अधिक सक्रिय हो पाता है। और रचनाकार तद्भव शब्द के प्रयोग से अपने संप्रेष्य को सही दिशा संकेत दे पाता है; क्योंकि तत्सम शब्दों का अर्थ-संचरण कोश पर अधिक निर्भर करता है, जबकि तद्भवों का लोक व्यवहार पर।.... तद्भवों का इस्तेमाल कविता और जीवन को परस्पर निकटतर लाने की प्रक्रिया है, मूलभूत उपकरणों से ही शक्ति ग्रहण करने का यत्न है।'' इस प्रकार जहाँ तत्सम शब्द प्रधान भाषा शिष्ट लोगों की भाषा मानी गई है, वहीं लोकभाषा ग्रामीण परिवेश की भाषा कही गई है। लेकिन तद्भव शब्दावली जीवन की संपूर्णता को अपना लेती है। क्योंकि ऐसी शब्दावली में जीवन के समस्त पक्षों को उद्घाटित एवं विश्लेषित करने की शक्ति होती है। अत: तद्भव शब्दावली को भाषिक शक्ति का प्रमुख स्त्रोत मानने से इंकार नहीं किया जा सकता। तद्भव शब्दावली के कारण ही सामान्य जीवन एवं जीवन की कम महत्त्वपूर्ण समझी जानेवाली स्थितियों का अभिव्यक्ति सहज एवं सरल बन गई है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

''अपने देश की मिट्टी को आँख की/ पुतली समझा है
वर्ना, रोटी के टुकडे पर/ किसी भी भाषा में देश का नाम
लिखकर/खिला देने से/ कोई देश भक्त नहीं होता।''(34)

उपर्युक्त पंक्तियों के रेखांकित शब्द तद्भव शब्द हैं। ऐसे शब्द प्रयोगों द्वारा कवि ने अभीष्ट बिंबों को अपनी काव्य-भाषा में सफलतापूर्वक उभारा है। धूमिल के तद्भव शब्दावली की सबसे बड़ी खूबी यह है कि एक ही शब्द प्रयोग अनेक अर्थ-संदर्भों में अभिव्यक्त करने में क्षमता होती है। दांत, घास, भूख, गाय, रात, पत्थर, भाई, मनुष्य, मुट्ठी, कौवा, माथा, कंधा, चूमना, सूरज, फूल, नींद, भिखारी, आग, आँसू आदि तद्भव शब्दावली का प्रयोग धूमिल की काव्य-भाषा में कई स्थानों पर देखा जा सकता है। सारांशत: कहा जा सकता है कि धूमिल की काव्य-भाषा में प्रयुक्त तद्भव एवं तत्सम शब्दावली सामान्य एवं विशिष्ट भावों की अभिव्यक्ति में पूर्णतया समर्थ एवं सक्षम हैं।

5. स्वनिर्मित शब्दावली का प्रयोग : कवि धूमिल ने जो समकालीन कविता को एक नई काव्य-भाषा दी है, वह किसी भी व्याकरणिक नियमों के आधार पर नहीं। वे एक कुशल शिल्पकार हैं। अपनी काव्य-भाषा में प्रयुक्त जिन शब्दों को जितना तराशना चाहा, उतना तराशा जरूर है। सुराजिए, हल्लागाड़ी, दमकलों, अधियाले आदि इनके द्वारा तराशे एवं गढ़े गए शब्द प्रयोग हैं। कभी-कभी धूमिल ने अपनी काव्य-भाषा में संप्रेषणीयता लाने के लिए आम बोलचाल की भाषा के कुछ शब्द प्रयोगों को लोक व्यवहारानुसार तोड़-मरोड़ भी किया है। उदाहरणार्थ आतियों-जातियों, बिलाक, टेम, आदि। कुछ इसी तरह स्वनिर्मित शब्द प्रयोग निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य हैं-

''इशे बाँद्धो, उशे काट्टो, हियाँ ठोक्को, वहाँ पीट्टो /घिश्शा
दो, अइशा चमकाओ, जूत्ते को ऐना बनाओ।''(35)

अत: कहा जा सकता है कि धूमिल के इस तरह के स्वनिर्मित शब्द संदर्भ एवं प्रसंगानुसार भाव अभिव्यक्ति में काफी हद तक सफल रहे हैं।

5.122 धूमिल की काव्य-भाषा में बिम्बविधान :

बिंब सम्पूर्ण आधुनिक काव्य प्रवृत्तियों का केंद्र है। आधुनिक हिंदी काव्य में 'बिंब' शब्द का प्रयोग जिस अर्थ में किया जाता है, उसका अपना मौलिक अर्थ नहीं है। वह तो अंग्रेजी के 'इमेज'(Image) शब्द का हिंदी रूपांतर है। अत: बिंब के व्युत्पत्तिपरक अर्थ को ढूँढने के लिए हमें शब्द कोशों का आधार लेना पड़ेगा। 'इमेज' यानि 'बिंब' के कोशगत अर्थ कुछ इस प्रकार दिये जा सकते हैं-'इमेज का रूपांतर है बिंब; जिसका शब्दार्थ सूर्य चंद्र मंडल, प्रतिबिंबित, प्रतिच्छाया, प्रतिच्छवि, अथवा प्रत्यंकित रूप चित्र है।''(36) स्मृति अथवा कल्पना में उपस्थित चित्र अथवा प्रतिचित्र जिसका दृष्टिबोध अनिवार्य नहीं है।(37) बिंब- ऐसी सचेष्ट स्मृति है जो उद्दीपन के मूलाभाव में किसी प्राचीन अनुभव का पूर्ण अथवा अंशत: पुनर्निर्माण करती है।(38)

बिंब काव्य-भाषा की जीवंतता का महत्त्वपूर्ण उपादान है। विभिन्न पाश्चात्य आलोचकों ने बिंब की परिभाषाएँ देते हुए कहा है- ''बिंब एक प्रकार का भाव-गर्भित शब्द चित्र है।''(39) ''बिंब एक अमूर्त विचार अथवा भावना की पुनर्रचना है।''(40) ''बिंब ऐंद्रिय माध्यम के द्वारा आध्यात्मिक अथवा तार्किक सत्यों तक पहुँचने का मार्ग है।''(41) ''बिंब वस्तुओं के आंतरिक सादृश्य का प्रत्यक्षीकरण है।''(42) ''बिंब दो विरोधी संवेदनाओं अथवा अनुभूतियों का आंतरिक तनाव (टेन्शन) है।''(43)

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन से बिंब का वास्तविक और वैज्ञानिक परिभाषा स्पष्ट नहीं हो पाती है। अत: बिंब निर्धारण के लिए हमें एक व्यापक और वैज्ञानिक परिभाषा की आवश्यकता है। इस दृष्टि से आई.ए. रिचर्ड्स का कथन है- ''बिंब एक दृश्य चित्र, संवेदना की एक अनुकृति, एक विचार, एक मानसिक घटना, एक अलंकार अथवा दो भिन्न अनुभूतियों के तनाव से बनी एक भाव स्थिति कुछ भी हो सकता है।'' इस प्रकार हम देखते हैं कि रिचर्ड्स ने अपनी परिभाषा में बिंब के समस्त भेदों और स्तरों को समेटने का प्रयास किया है। बिंब अपने आप में इतना जटिल शब्द बन पड़ा है कि उसके संबंध में कोई सामान्य धारणा व्यक्त करना कठिन है।

केदारनाथ सिंह ने आधुनिक हिंदी कविता में बिंबविधान पर अधिकृत रूप से विचार किया है। उनका शोध प्रबंध ही आधुनिक हिंदी कविता के बिंबविधान पर रचा गया है। डॉ. केदारनाथ सिंह की दृष्टि में - ''बिंब शब्द चित्र है, जो कल्पना के द्वारा ऐंद्रिय अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है।''(44) डॉ. कुमार विमल के मतानुसार- '' जब कलाकार अपने अमूर्त मर्म संवेगों की यथातथ्य अभिव्यक्ति के लिए बाह्य जगत से (आवेष्टनगत) ऐसी वस्तुओं की कला फलक पर इस रूप में उपस्थित करता है कि हम भी उसके भावन

से वैसे ही मर्म संवेग की प्राप्ति कर सके, जिससे कलाकार पहले ही गुजर चुका है, तब उन योजित वस्तुओं की वैसी प्रस्तुति को बिंब विधान कहते हैं।''(45)

प्रभाकर श्रोत्रिय द्वारा निष्कर्षित बिंब के वर्गीकरण को स्वीकारा जा सकता है; जो अपनी रूपशैली तत्त्वों की पृथकता में नहीं; बल्कि अंतर्वस्तु की सहायक के रूप में स्वीकारे जा सकते हैं। यथा-

वर्ग एक : ऐंद्रिय आधार पर- दृश्य, श्रव्य, स्पर्श, घृणत्व, स्वाद्य।
वग दो : सर्जक कल्पना के आधार पर- लक्षितस्मृत, उपलक्षित कल्पित।
वर्ग तीन : प्रेरक अनुभूति के आधार पर- सरल, संश्लिष्ट।
वर्ग चार : अनुभूति के आधार पर- खंडित, समकालिक।
वर्ग पांच : काव्य दृष्टि के आधार पर - वस्तुपरक, स्वच्छंद।

अक्सर बिंब पारंपरिक रूप में पाये जाते हैं और कवि दृष्टि के अनुरूप प्रयोग के रूप में। मुख्यत: बिंब को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- प्रत्यक्ष और परोक्ष। परोक्ष बिंब अनुभवों के आधार पर ग्रहण किया जाता है। प्रत्यक्ष बिंब वे बिंब कहलाते हैं, जिसका ज्ञान इंद्रियों के द्वारा होता है। अत: हम कभी-कभी इसे ऐंद्रिय बिंब भी कहते हैं। मानव जाति के पास पाँच इंद्रियाँ हैं- आँख, कान, नाक, जिह्वा, और त्वचा। इन्हीं ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से ही मानव जीवन और जगत् से आंतरिक और बाह्य परिवेश का साक्षात्कार करता है। ये ज्ञानेंद्रियाँ शरीर की अभिन्न और अति आवश्यक अंग हैं। इनके एक अंग अनुपस्थित रहने से मानव जीवन सफल नहीं कहा जा सकता है।

'बिंब-विधान' कल्पना शक्ति की उपज है। प्राय: सभी व्यक्तियों में इस बिंब की सत्ता कमोवेश रूप में विद्यमान रहती है। श्रीराम त्रिपाठी का कहना है- ''बिंब-निर्माण में मनुष्य के संस्कार और परिवेश का काफी योगदान होता है। बिंब, चूँकि जीवन-जगत से लिए जाते हैं, इसलिए व्यक्ति अपने आस-पास की जिंदगी से आत्मसात करता है। कवि की शब्द-संपदा जहाँ उसके परिवेश से प्राप्त होती है, वहीं वह उसे आयास अर्जित भी करता है। धूमिल की काव्य-भाषा का स्त्रोत एक तरफ जहाँ गाँव है, वहीं दूसरी तरफ बनारस शहर। ऐसा शहर जहाँ की संस्कृति कस्बाई संस्कृति के ज्यादा नजदीक है।''(46)

धूमिल की कविताओं में पारंपरिक बिंबों का भरमार तो है ही, इनके अलावा उन्होंने अधिकांश स्वरचित बिंब प्रस्तुत किए हैं; जो काव्य-भाषा को समृद्ध एवं शक्तिशाली तथा प्रभावशाली बना देते हैं। उदाहरणार्थ कवि की निम्नलिखित कविता को देखा जा सकता है-

''जहाँ घास की नोक पर/ थरथराती हुई ओस की/एक बूँद
झड़ पड़ने के लिए/ तुम्हारी सहमति का इंतजार कर रही
है।''(47)

उपर्युक्त काव्यांश संबोधनात्मक शैली में लिखा गया है, जहाँ व्यक्ति की निष्क्रियता

एवं उसकी पीड़ा तथा बेचैनी धारदार व्यंग्य के माध्यम स्पष्ट हो पाई है। 'तुम्हारी सहमति का इंतजार' इस वेदनायुक्त व्यंग्य को और गंभीर बना देता है। श्रीराम त्रिपाठी का कहना है- ''प्राकृतिक उपादान से जुटाया गया यह बिंब अपनेपन की मार्मिक पीड़ा को व्यक्त करता है। इसलिए यह बिंब कविता में एक अनिवार्य और प्रभावोत्पादक उपादान के रूप में अपनी जगह बनाता है। यह ध्यान रहे कि शहरी निम्न का बहुलांश गाँवों से विस्थापित है। इसलिए उसको संबोधित करते समय गाँव के उपादानों से निर्मित बिंब उसकी संप्रेषणीयता को नुकसान नहीं पहुँचाते, और नहीं तो अपने वर्तमान से जूझने की ताकत और प्रेरणा प्रदान करते हैं।''(48) कवि धूमिल की कविता में अभिव्यक्त बिंबविधान को हमनें पाँच भागों में विभक्त किया है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकार के बिंबों का भी उदाहरण सहित चर्चा की गई है।

1. दृश्य बिंब- यह एक ऐसा बिंब है; जिसमें कोई नजारा या चित्र स्पष्ट दिखाई देता है। इसका संबंध आँख से लिया जाता है। दृश्य बिंब इतनी व्यापकता लिये रहता है कि हम उसकी तुलना कभी-कभी उपमान से कर देते हैं। धूमिल के काव्य में दृश्य बिंबों की अधिकाधिक प्रयोग मिलता है। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं- ''माँ का चेहरा/ झुर्रियों की झोली बन गया'' (संसद से सड़क तक, पृ.17), '' दुपहर जब कहीं बर्फ नहीं/ होगी और इन झड़ती हुई पत्तियाँ), आकाश नीला और स्वच्छ होगा नगर'' (कल सुनना मुझे पृ.48), '' तुम सूर्य-नमस्कार की मुद्रा में/ खड़ी हो'' (कल सुनना मुझे, पृ.53), ''मालिक का सीझा हुआ चेहरा/ जैसे बासी रोटी पर किसी/ शरारती महाजन ने/ दो आँखें बना दी हों।'' (सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र, पृ.20) आदि।

2. घ्राण बिंब : घ्राण बिंब एक ऐसा बिंब है जिसका अर्थ गंध या महक से लिया जाता है। इसका संबंध नाक से होता है। ऐसे बिंब काव्य संरचना की अनुभूति में सहायक उपादान के रूप में प्रयोग होते हैं। उदाहरणार्थ -''जूते से निकाले गए पाँव-सा/ महकाता हूँ'' (संसद से सड़क तक पृ.23), '' रसोई घर में खुशबूदार मसालों '' (संसद से सड़क तक, पृ.52), '' उसके मुँह से खून की बू/आ रही है'' (संसद से सड़क तक , पृ.61), ''तुम्हारे चेहरे से आज भी आदमीयता की गंध आती है''(कल सुनना मुझे, पृ.8) आदि।

3. अस्वाद बिंब : आस्वाद बिंब ऐसा बिंब हैं; जिसमें स्वादानुभूति या रसानुभूति होती है। धूमिल के काव्य में अनेक स्थलों पर ऐसे बिंबों का प्रयोग देखा गया है। उदाहरणार्थ- ''लोहे का स्वाद लोहार से मत पूछो'' (कल सुनना मुझे, पृ.80), ''सौंदर्य में स्वाद का मेल/ जब नहीं मिलता/कुत्ते महुवे के फूल पर मूतते हैं।'' (संसद से सड़क तक, पृ.21), ''भूख का जायका बदलने के लिए, आज कुम्हड़े की सब्जी पक रही है।'' (संसद से सड़क तक, पृ.), ''सब्जी में नमक ज्यादा है '' (सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र, पृ.21)

4. श्रव्य बिंब : इसे शब्द बिंब भी कहा जाता है। यह एक ऐसा बिंब है जहाँ श्रोतानुभूति होती है। इसका संबंध कान से होता है। ''किसी पदार्थ से उठनेवाली आवाज,

किसी की बोली, वाद्य यत्र की तान, लय, स्वर, आभूषणों, औजारों और वस्तुओं के अनुरणन आदि से यह बिंब संबंधित है।''(49) धूमिल के काव्य में अभिव्यक्त श्रव्य बिंब के कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं - ''गुस्सा गुर्राया है'' (संसद से सड़क तक, पृ. 79), ''हम वायलिन को/ रोते हुए सुनेंगे'' (कल सुनना मुझे, पृ. 46), ''लोहे की आवाज है''- (कल सुनना मुझे, पृ80), ''हत्यारे की बन्दूक दगती है'' (सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र, पृ.25) आदि

5. स्पर्श बिंब : इसका अर्थ हम छूने से लगा सकते हैं। यहाँ त्वचा की अपनी भूमिका रहती है। इसके माध्यम से हम ठंडा-गर्म, कोमल-कठोर, चिकनाहट- खुरदरेपन आदि की संवेदनाओं को महसूस कर सकते हैं। इसके कतिपय उदाहरण धूमिल की कविताओं में देखिए- ''यह भाषा की रात/ नंगी/ और/ ठंडी'' (संसद से सड़क तक, पृ.90), ''एक ठंडी और गाँठदार अंगुली माथा टटोलती है।''(कल सुनना मुझे,पृ.58), ''चेहरे पर चमाईन मूत गई है।'' (सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र, पृ.28), ''मैं कोई ठंडा आदमी नहीं हूँ/मुझमें भी आग है।''(संसद से सड़क तक, पृ.115) आदि।

6. स्मृति बिंब : ये वे बिंब होते हैं; जो हमारे जीवन में स्मृतियों में अनेक कड़वे तथा मीठे अनुभव घटित हुए होते हैं। यहाँ कल्पना निष्क्रिय रहती है। स्मृति के द्वारा ही ये बिंब उभरते हैं। उदाहरणार्थ धूमिल की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं-

''बीस साल बाद/ मेरे चेहरे में/ वे आँखें वापस लौट आई
हैं /जिनसे मैंने पहली बार जंगल देखा है/ हरे रंग का एक
ठोस सैलाब जिसमें सभी पेड़ डूब गए हैं।''(50)

7. कल्पित बिंब : कल्पित बिंब सक्रिय कल्पना की सृष्टि करते हैं जो अतिशय कल्पना शक्ति से मूर्तिमान होते हैं। उदाहरणार्थ धूमिल की यह पंक्ति द्रष्टव्य है -

''जहाँ वसन्त/ दिमाग से निकले हुए पाषाणकालीन पत्थर
की तरह/ डाल से लटका हुआ है।''(संसद से सड़क तक, पृ.20)

8. स्वप्न बिंब : स्वप्न बिंब वे बिंब होते हैं; जो निद्रित अवस्था में दिखाई देते हैं। उदाहरणार्थ निम्न पंक्ति द्रष्टव्य है-

अंधेरे की मुंडेर पर/ अमल बेलि लटकी है;/मुझमें पूरे
समूह का भय/ चीखता है/दिग्विजय ! दिग्विजय!!(51)

कहीं-कहीं फैंटेसी शैली का रूप धारण कर लेती है; जो अवचेतन अवस्था में सक्रिय रहती है। मुक्तिबोध की 'ब्रह्मराक्षस' और 'अंधेरे में' कविता इसी फैंटसी शैली एवं अतिशय स्वप्न बिंब सृजन की देन है। धूमिल की 'पटकथा' कविता में भी इसी स्वप्न बिंब श्रृंखला का प्रयोग उपलब्ध है।

9. तंद्रा बिंब : ऐसे बिम्ब अर्थ निद्रित अवस्था में दिख पड़ते हैं। उदाहरणार्थ

निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

''सन्नाटा/ नीम की पत्तियों में अँगुलियाँ/ फिराता है
और बैल डकार कर/ पिछले खुर से आँखें सहलाता है।''(52)

10. मिथकीय या स्थैतिक बिंब : मिथकीय बिंबों का संबंध पौराणिक कथाओं, मानव आदेशों व जीवन आख्यानों आदि के अर्थ से लिया जा सकता है। उदाहरणार्थ देखिए- ''औरतें योनि के सफलता के बाद गंगा का गीत गा रही हैं।'' (संसद से सड़क तक पृ.29), ''स्वस्तिक चिह्न'' (संसद से सड़क तक, पृ.44), '' बनिये की आँख बनैले जानवर-सी जल रही है'' (कल सुनना मुझे, पृ.72)

कवि धूमिल के बिंबों की ताजगी, नवीनता, अनवरत शक्ति ने हम पाठकों को उनकी कविताओं की तरफ आकर्षित करती रही है। मंजुल उपाध्याय के शब्दों में ''धूमिल अपने सख्त जीवन संघर्ष के कारण अभाव, अपमान और शोषण की तीव्रानुभूति के कारण वास्तविकता के साथ सीधा युद्ध करते हैं। वह सर्वत्र यथार्थ के नकारात्मक पक्षों का प्रत्यक्ष मूल्यांकन करते प्रतीत होते हैं और सर्वाधिक मर्मघाती या विकृत पक्षों का चयन कर सटीक बिंबों में निबंधित करते हैं। इसे यथार्थ के साथ युद्ध की रचना प्रक्रिया कह सकते हैं।''(53)

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि जहाँ धूमिल ने आज के आदमी की मानसिकता को रूपायित करने के लिए विभिन्न शब्दों को प्रतीक रूप में प्रयोग किया है, वहाँ कविता की सर्जनात्मक शक्ति बढ़ाने के लिए पाठक के दिल और दिमाग पर उसके असर को गहरा बनाने के लिए बिंबों का प्रयोग किया है। अपने आस-पास के जीवन से नए शब्दों और नये बिंबों को निर्मित करने की धूमिल की कोशिश को समकालीन हिंदी कविता की दिशा दृष्टि कहा जा सकता है।

5.123 धूमिल की काव्यभाषा में प्रतीक विधान : प्रतीक एक विशिष्ट प्रकार के अपरोक्ष निरुपण का परिचायक होता है। यह अपनी विचित्रता के कारण उपमा, रूपक, संकेत एवं अन्य प्रकार के चित्रमय निरुपणों से भिन्न होता है। प्रतीक शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'प्रतिअर्थ' शब्द से हुई है; जिसका अर्थ 'प्रतिस्थान' अथवा एक वस्तु के लिए किसी अन्य वस्तु की स्थापना है।

हिंदी शब्द सागर के अनुसार व्युप्तत्तिमूलक दृष्टि से ''प्रतीयते अनेन इति प्रतीक' अर्थात् जिससे प्रतीत हो या किसी वस्तु की अभिव्यक्ति हो- वह प्रतीक है।'' (54) अमर कोशकार के अनुसार ''प्रतीक का अर्थ अंग, अवयव कलेवर आदि भी होता है।''(55) Encyclopaedia Britanica के अनुसार- ''The term (symbol) given to a visible object representing to the mind the semblance of something which is not shown but realised by assocation with it.''(56) प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य वस्तु के लिए होता है; जो मस्तिष्क के सम्मुख किसी अप्रस्तुत वस्तु की सादृश्यता को अपने

संबंध सूत्रों द्वारा प्रस्तुत करती है। चैम्बर्स कोश के अनुसार ''प्रतीक परंपरा से किसी अन्य वस्तु का प्रतिनिधित्व करते हैं।''(57)

प्रो. क्षेम ने प्रतीक की विशेषता पर बल देते हुए कहा है- ''प्रतीक लाक्षणिक प्रक्रिया की निर्मित हैं, अत: मूर्तिमत्ता और चित्रात्मकता उनकी विशिष्टता होती है। प्रतीकों का जन्म प्रयोजन को लेकर होता है। अतएव प्रतीक में प्रयोजनवती लक्ष्मणा ही सक्रिय होती है। बहुत-से-प्रतीकं प्रयोग से विशिष्ट युग या कवि के काव्य में रूढ़ता की ओर भी झुकने लगते हैं।''(58) डॉ. सुरेश त्यागी के अनुसार- ''काव्य में वह गोचर या अगोचर वस्तु जो किसी अन्य वस्तु या भाव का बोध कराये और जिसमें भाव जगाने की शक्ति हो प्रतीक कहलाती है।''(59) डॉ. केदारनाथ सिंह के अनुसार- ''प्रतीक कोई वस्तु नहीं, वह एक विराट रचना प्रक्रिया में पड़नेवाला ऐसा बिंदु है; जो किसी पदार्थ को एक निश्चित वस्तु के रूप में परिचित कराता है।''(60) डॉ. कैलाश वाजपेयी के मतानुसार- ''प्रतीक विस्तार को संक्षेप में कहने का माध्यम है।''(61)

हमारे जीवन में प्रतीकों का अत्यंत महत्त्व है। हम उन्हीं के माध्यम से ही सोचते हैं। इसलिए कोई भी रचनाकार खुद को इससे वंचित नहीं रख सकता। हमने यहाँ धूमिल की कविता की काव्य-भाषा का अध्ययन करते हुए विभिन्न प्रतीकों की सार्थकता और कलात्मकता का परीक्षण करने का प्रयास किया है।

धूमिल की काव्य-भाषा में बिंबों की भाँति प्रतीकों का भी अधिक प्रयोग देखा जा सकता है; जो उनके भावों को संप्रेषित करने में सहायक सिद्ध हुए हैं। सामान्य बोलचाल और जीवन के अत्यंत साधारण शब्दों को प्रतीक के रूप में कवि ने इस्तेमाल करने का प्रयास किया है। कवि ने प्राय: जंगल, घास, पशु, पेड़, रोशनी, भेड़िया, कंकाल, जूता, सड़क, सूरज, खून, जीभ, लीद, दाँत, धर्मशाला आदि संज्ञा प्रतीकों का प्रयोग अपनी कविताओं में स्थान-स्थान पर किया है। यदि हम धूमिल के 'जंगल' शब्द को ही ध्यान से देखें, तो पता चलता है कि वह कई संदर्भों में प्रयोग किया गया है। ऐसे शब्द देखने में तो बहुत साधारण लगते हैं; लेकिन कविता की समग्र मानसिकता से जुड़कर अर्थ की गहरी प्रतीकात्मक व्यंजना से सम्पन्न हो जाते हैं। यह 'जंगल' शब्द अव्यवस्था का प्रतीक होकर भारतीय जनतंत्र की अराजकता का अर्थ देने लगता है।

'जंगल' जैसे प्रतीक शब्द कवि धूमिल को अधिक प्रिय जान पड़ते हैं; जिनका वे 'संसद से सड़क तक' की लगभग हर कविता में बार-बार इस्तेमाल करते हैं। यह 'जंगल' प्रतीक शब्द भिन्न-भिन्न अर्थों में आया है। कहीं एक दुश्मन, प्रतिपक्षी या बाधा के रूप में; जैसे- ''चमड़े की शराफत के पीछे/ कोई जंगल है जो आदमी पर/ पेड़ से वार करता है'' (मोचीराम); या ''वह जरा-सी गफलत होती है और जंगल/ आदमी की गिरफ्त से छुटकर/ दीवारों की कवायद में शरीक/ हो जाता है'' (मकान); या ''और एक जंगल

है/ मतदान के बाद खून में अँधेरा/ पँछीटता हुआ जंगल मुखबिर है''(नक्सलबाड़ी); या ''भूल जाओ/ कि नींद में पेड़ के लिए/ तुमने जंगल से बहस की है'' (हत्यारी संभावनाओं के नीचे: या जिनका आधे से ज्यादा शरीर/ भेड़िया ने खा लिया है/ वे इस जंगल की सराहना करते हैं/''(अकाल दर्शन); या ''वे आँखे वापिस लौट आयी हैं/ जिनसे मैंने पहली बार जंगल देखा है/ हरे रंग का एक ठोस सैलाब जिसमें सभी पेड़ डूब गए हैं। (बीस साल बाद); या 'राजकमल चौधरी' के लिए शीर्षक कविता में -''राख और जंगल से बना हुआ वह/ एक ऐसा चरित्र था/ जिसे किसी भी शर्त पर राजमकल होना था''... कविताओं/ को कौन-सा अर्थ/ देने के लिए/ किस जंगल/ किस समुद्र/ किस शहर के अंधेरे में जाकर/ गायब हो गया है/'' आदि

धूमिल के काव्य में प्रयुक्त 'जंगल' प्रतीक के संबंध में नेमिचंद जैन ने ठीक ही कहा है- ''एक ही शब्द के इतने सारे संदर्भों में प्रयोग से जहाँ धूमिल में भाषा के बड़े कल्पनाशील सूक्ष्म अन्वेषण की क्षमता तथा बोलचाल के मुहावरे की जानकारी का अहसास होता है; वहीं प्रतीकों के अनुभव की सीमा और एक खाँचे में फँस जानेवाली अभिव्यक्ति का भी असर मन पर पड़ता है। कुछ कम मात्रा में दुतरावट के साथ 'मासिकधर्म' 'घर' 'व्याकरण' आदि के बिंब-प्रतीक भी इनके कविताओं में आते हैं। फिर भी यह बात बेझिझक कही जा सकती है कि धूमिल की कविता में प्रतीकों-बिंबों की पुनरावृत्ति नगण्य है। पाठक इनकी अनोखी नवीनता से, बेमिसाल टटकेपन से ही आकर्षित, प्रभावित और चमत्कृत होता है।''(62)

धूमिल के काव्य भाषा में आए कुछ प्रतीक परंपरा से प्राप्त या बहुप्रयुक्त पुराने प्रतीक हैं; लेकिन अधिकांश प्रतीक नए और समसामयिक जीवन से लिए गए हैं; जो वर्तमान मूल्य-संकट की अभिव्यक्ति में सहायक हैं। समसामयिक यथार्थगत जीवन से लिए गए ये नए एवं मौलिक प्रतीक कवि के अन्वेषी दृष्टि को भास्वर करते हैं तथा वैचारिक स्तर पर संप्रेषणीय होते हुए भी पूर्णत: बोधगम्य हैं। ये कथ्य या संदर्भ पर हावी हुए बिना संदर्भ से जुड़कर गहरी एवं सार्थक तथा यथार्थ व्यंजना देते हैं। इनका प्रयोग इतनी सावधानी से किया गया है कि ये सहज ही बोधगम्य हैं। कवि धूमिल के नए प्रतीकों की ओर संकेत करते हुए इब्बार रब्बी ने कहा है- ''उनके प्रतीक बिलकुल नए हैं। उन्हें गाँवों से उठाया है। उनके प्रतीकों का नयापन और प्रभाव क्षमता इसी तथ्य से जाहिर हो जाती है कि उनके प्रतीकों की धड़ाधड़ नकल की गई।''(63) धूमिल के काव्य में आए हुए प्रतीकों का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से किया गया है-

1. परंपरागत प्रतीक : परंपरागत यानी पुराने प्रतीक; लेकिन अर्थ की दृष्टि से नवीन हैं। कतिपय उदाहरण द्रष्ठव्य होंगे- ''जहाँ वसंत/ दिमाग से निकले हुए/ पाषाण कालीन पत्थर की तरह'' (संसद से सड़क तक, पृ.20), ''मुर्गे की बांग पर सूरज को टांगकर सो जाओ'' (संसद से सड़क तक पृ.78), ''चूल्हा कुछ नहीं बोलता'' (कल सुनना मुझे

पृ.16), '' हमारी रीढ़ पर दाँत भेड़ियों के गड़े हैं''(सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र, पृ. 32), ''जिनका आधे से ज्यादा शरीर भेड़ियों ने खा लिया है।'' (64)

2. सांस्कृतिक प्रतीक : सांस्कृति प्रतीक हमें अपनी संस्कृति से प्राप्त हुए हैं। इनमें पौराणिक, ऐतिहासिक, अथवा धार्मिक प्रतीक आ सकते हैं; जो हमारी सांस्कृतिक चेतना से अभिन्न रूप से जुड़े रहते हैं। धूमिल के काव्य में सांस्कृतिक प्रतीक कतिपय विलक्षण रूप में आए हैं। उदाहरणार्थ ''उन्होंने जनता और जरायमपेशा औरतों के बीच की सरल रेखा को काटकर/ स्वस्तिक चिह्न बना लिया है।'' (संसद से सड़क तक, पृ.44), ''दल बदल करते उतावले बादल''(65) ''तितिलियों के नगर की ओर चलेंगा''(66) ''कबूतर का पर लगाकर/ विदेशी युद्ध प्रेक्षकों ने /आजादी की बिगड़ी हुई मशीन को/ ठीक कर दिया है।'' (संसद से सड़क तक,पृ.25) आदि।

3.प्राकृतिक प्रतीक : ऐसे प्रतीक ऋतु परिवर्तन एवं व्यापारों से ग्रहण किए जाते हैं। इनका संबंध यथार्थ जीवन के धरातल से जुड़ा होने के कारण नई अर्थ व्यंजना का संवाहक होता है। उदाहरणार्थ- ''फूलों की मृत्यु से उदास फूलदान'' (कल सुनना मुझे), ''बबूल के वन में वसंत से खिले थे'' (सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र), ''जहाँ भूख/ उस महशी को पालतू बनाती है'' या ''मेरे लिए वसन्त/ बिलों के भुगतान का मौसम है।''(संसद से सड़क तक, पृष्ठ 72,20) आदि।

'संसद से सड़क तक' संग्रह में संकलित 'वसंत' शीर्षक कविता पारंपारिक ढंग से बिल्कुल अलग है। वसंत आते ही प्राणी जगत में हर्षोल्लास की स्थिति पैदा हो जाती है। कवि धूमिल ने वसंत की परिभाषा ही बदल दी। उनके लिए वसंत का महीना बिलों का भुगतान सा लगता है। उनका जीवन विकट समस्याओं से घिर जाता है। इस संदर्भ में धूमिल की उपर्युक्त अंतिम अंतिम पंक्ति देखी जा सकती है।

कवि धूमिल की इस तरह की अनेक कविताएँ हैं; जो प्रतीक-उपमा की सटीकता लिए हुए हैं। उन दिनों बनारस की साहित्यिक मित्र मंडलियों में 'वसंत' शीर्षक कविता की ''मासिक धर्म में डूबे हुए लत्ते-सा खड़खड़ाता हुआ दिन'' यह पंक्ति बहुत चर्चित और बहस का मुद्दा लिए हुए था। कवि द्वारा प्रयुक्त उपमा या प्रतीक की सटीकता पर ध्यान दिए बिना अपनी 'सुरुचि' पर आघात लगने से उन लोगों ने उन्हें भला-बुरा कहने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। कहानीकार काशीनाथ सिंह के अनुसार ''स्वभावत: उस पर कवि धूमिल की यह प्रतिक्रिया थी-सालों को मिल गया है एक मासिक धर्म का लत्ता। कविता जहाँ की तहाँ है और वे उसी को उठाकर झंडे की तरह फहरा रहे हैं।''(67)

4. वैज्ञानिक प्रतीक : वैज्ञानिक विकास एवं उपादानों से हमारी संवेदना और अनुभूति जुड़ी हुई होती है। अत: वैज्ञानिक उपादानों एवं अविष्कारों से भी प्रतीक लिए जाते हैं; जो यथार्थ जीवन से संबंधित होते हैं। उदाहरणार्थ धूमिल की कविताओं की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखीं जा सकती हैं - ''टेलिफोन के खम्बों पर/ कोई पतंग फँसी

है और खड़खड़ा रही है।''(68)

''लोगों में टी.वी. के कीटाणु कई प्रतिशत बढ़ गये हैं'' (कल सुनना मुझे,पृ.27),''इसे केवल ट्रान्सफर का दिल जानता है।'' (सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र,पृ.66), ''पूरे आकाश को/ दो हिस्सों में काटती हुई एक गूँगी परछाई गुजरेगी।'' (संसद से सड़क तक, पृ.11)

5. यौन प्रतिक : ये वे प्रतीक हैं जो नारी के विभिन्न अंगों, शारीरिक सौंदर्य के उपादानों द्वारा नया अर्थ देते हैं। इस संदर्भ में 'संसद से सड़क तक' की कुछ महत्त्वपूर्ण पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं। ''जब जवान औरतों को देखता है/ उसकी आँखों में कुत्ते भौंकते हैं।'' (संसद से सड़क तक, पृ. 84), ''गर्भधान की क्रिया से गुजरते हुए/ उसने जाना की प्यार घनी आबादीवाली बस्तियों में/ मकान की तलाश है। (संसद से सड़क तक, पृ.7)' '' अंधी लड़की की आँखों में सहवास का सुख तलाशना''(69)

धूमिल की कविता समकालीन अन्य कवियों की कविता से अधिक दुरूह एवं कठिन जरूर है। अत: बिना उनके प्रतीकों को समझे, उनकी कविता को समझ पाना कठिन है। डॉ. रत्नशंकर पांडेय के शब्दों में -''उन्होंने प्रतीकों -बिंबों के माध्यम से कविता को बहुत अस्पष्ट किया है। बहुत ही उलझा दिया है। अगर पाठक बिंब प्रतीक के सही अर्थ पकड़ लेता है; तो कविता उसके दिमाग में बिंब-प्रतीक के रूप में उतर जाएगी- वरना उतरेगी नहीं। उन्होंने डायरी में एक स्थान पर लिखा भी है कि 'बिंब प्रतीकों ने कविता को दूर कर दिया है।''(70) प्रतीक की सार्थकता के संदर्भ में डॉ. नामवर सिंह का अभिमत है ''भाव और रूप की पूर्ण संगति के बाद कभी-कभी काव्य की रूप विधि एक ओर काम कर चुकने के बाद जब रूप अथवा फार्म किसी अतिरिक्त भाव की व्यंजना करता है ।तब वह प्रतीक होता है।''(71) धूमिल के काव्य में प्रतीकों की उपस्थिति सहज अनुषंगों के रूप में हैं; जो जन समाज में स्वीकृत भी है।

5.124 धूमिल का काव्य : मुहावरे, लोकोक्ति एवं सूक्ति का प्रयोग :

धूमिल की काव्यभाषा में जनसमाज में व्यवहृत मुहावरे, लोकोक्ति का प्रयोग पाया जाता है। वैसे 'मुहावरा' शब्द अरबी भाषा का है और'लोकोक्ति ' शब्द संस्कृत भाषा से लिया गया है। लोकोक्ति को दूसरें शब्द में 'कहावत' के रूप में भी पहचाना जाता हैं। संस्कृत वांग्मय में मुहावरा का समानार्थक कोई शब्द नहीं पाया जाता है। कुछ लोग इसके लिए 'प्रयुक्तता', 'वाग्रीति', 'वाग्धारा' अथवा 'भाषा सम्प्रदाय' का प्रयोग करते हैं। बी. एस. आप्टे ने अपने इंग्लिश-संस्कृत कोश में मुहावरे के पर्यायवाची शब्दों में 'वाक्पद्धति', 'वाक्रीति', 'वाक्व्यवहार' और 'विशिष्ट स्वरूप' के रूप में लिखा है। विष्णु पराड़करजी ने 'वाक् संप्रदाय' को मुहावरे का पर्यायवाची माना है। काकासाहेब कालेलकर ने 'वाक्प्रचार' को मुहावरे के लिए 'रूढ़ि' शब्द का सुझाव दिया है। यूनानी भाषा में 'मुहावरे' को 'ईडियोमा', फ्रेंच में 'इडियाटिस्मी' और अंग्रेजी में 'इडियोगा' कहते हैं। कुछ विद्वानों ने मुहावरे की परिभाषा इस प्रकार दी है-1. ऑक्सफर्ड कनसाइज डिक्शनरी के अनुसार- ''किसी

भाषा की अभिव्यंजना के विशिष्ट रूप को मुहावरा कहते हैं।'' 2. एन. एस. हार्थ के मतानुसार ''मुहावरा शब्दों का वह क्रम या समूह है; जिसमें सब शब्दों का अर्थ एक साथ मिलकर किया जाता है।

साहित्य में मुहावरे एवं लोकोक्तियों के प्रयोग सामाजिक तथा सांस्कृतिक संदर्भ में अधिक हुआ करते हैं। इनकी रचना ही किसी परंपरा, घटना अथवा विचार के संदर्भ में होती है। मुहावरों और लोकोक्तियों की रचना किसी संदर्भ में होती है। मुहावरों और लाकोक्तियों की रचना में संदर्भ प्राय: एक से हाते हैं; किंतु दोनों का स्वरूप भिन्न-भिन्न होता है। जिसका अध्ययन हम आगे चलकर करेंगे।

सामान्यत: मुहावरे वाक्यांश होते हैं और लोकोक्ति याँ अपने आप में संपूर्ण होती हैं। मुहावरों के अंतर्गत लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ होते हैं; परंतु लक्ष्यार्थ के बाद मुहावरों का स्थान होता हैं, किंतु लोकोक्तियाँ व्यंजना प्रधान होती हैं। इसके प्रयोग से रचनाकार की लोक आसक्ति प्रकट होती है। जो रचनाकार लोक व लोक भाषा के जितना निकट होता है , उतना ही समानतापूर्वक वह लोकोक्ति व मुहावरों का प्रयोग करने में निपुण एवं सक्षम होता है। इनके प्रयोग से कवि की भाषा शक्तिशाली एवं समृद्ध होती है। वह कम-से-कम शब्दों में अधिक बात कह सकता है। वस्तुत: लोकोक्तियाँ तो आम प्रचलित भाषा का एहसास कराती हैं; किंतु मुहावरें किसी खास मौके पर प्रयुक्त किए जाते हैं; लेकिन डॉ. सुरेंद्र दुबे के शब्दों में- ''सर्जक और भावक के बीच कुछ भाषायी तत्त्व उभयनिष्ठ होते हैं। मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ ऐसे ही तत्व हैं। सर्जक मुहावरे तथा लोकोक्तियों का प्रयोग प्राय: दो उद्देश्यों से करता है - पहला भाषा में वक्रता या विदग्धता लाने के लिए तथा दूसरा सूक्ष्म भावों की तीक्ष्ण अभिव्यक्ति के लिए।''(72)

निसंदेह कहा जा सकता है कि धूमल ने सूक्ष्म भावों की तीक्ष्ण अभिव्यक्ति के लिए ही मुहावरे तथा लाकोक्तियों का प्रयोग किया है। ऐसे प्रयोगों से धूमिलजी की अनुभूति और भी प्रखर तथा तीव्र हो गई। राहुल के शब्दों में- ''भोगी हुई अनुभूति के प्रति दृष्टा बने रहने की स्थिति में धूमिल के मुहावरे समकालीन स्थितियों का अंकन करते हैं। इस स्थिति के दबाव से जीवनानुभूति में सक्रिय वेदना-तंत्रवेग से टूटते-पिसते, खौलते, मानवीय स्वर का उफान देते हैं।''(73) इसी संदर्भ में अशोक वाजपेयी ने भी कहा है कि 'धूमिल जो काव्य संसार बसाते हैं वह हाशिए की दुनिया नहीं बीच की दुनिया है। यह दुनिया जीवित है और पहचाने जा सकनेवाले समकालीन मानव चरित्रों की दुनिया है; जो अपनी ठोस रूप-रंगों और अपने चारित्रिक मुहावरों में धूमिल के यहाँ उजागर होती।'

मुहावरों एवं लोकोक्तियों की दृष्टि से कवि धूमिल एक महत्त्वपूर्ण कवि हैं। उनमें मुहावरों को अपनी काव्य-भाषा के प्रवाह में ढालने की जितनी भी शक्ति थी. उतनी ही महत्ता एवं प्रतिष्ठा वह जन सामान्य में प्राप्त कर सकें। चंद्रकांत महादेव बांदिवड़ेकर के अनुसार- ''मनुष्य के कार्य क्षेत्र विस्तृत हैं; उन्हीं के अनुरूप उसके मानसिक भाव अनंत

हैं। घटना एवं कार्य-कारण परंपरा से ही मुहवरों की उत्पत्ति होती है। प्राय: मनुष्य के जीवन में कुछ ऐसे अवसर आते हैं; जब वह अपने मन के भावों, विचारों और कल्पनाओं को सीधे-सीधे व्यक्त न करके शारीरिक चेष्टाओं अस्पष्ट ध्वनियों अथवा किंही दूसरे संकेतों या व्यंग्यों के द्वारा प्रकट करता है- चूल्हा झोंकना, पट्टी पढ़ाना आदि इसी प्रकार के अनेक मुहावरे इसी परंपरा की उपज हैं।''(74)

धूमिल की काव्य-भाषा में दो तरह के मुहावरों का प्रयोग मिलता है- एक जो परंपरा से चले आ रहे समाज द्वारा स्वीकृत है तथा दूसरा स्वयं धूमिल द्वारा निर्मित। धूमिल की काव्य-भाषा में उनके द्वारा निर्मित नए-नए मुहावरों की आधिक्य पाया जाता है; जो प्रतीकात्मक अर्थ लिए रहते हैं। कुछ मुहावरे अश्लील भी हो सकते हैं; जैसे 'गाँडधोना'। यह मुहावरा अश्लील एवं अभद्रता का प्रतीकार्थ नहीं है; बल्कि यह एक यथार्थ ठेठ देहाती मुहावरा है; जो उनकी काव्य-भाषा में प्राण फूंक देने का काम करता है। राहुल के शब्दों में- ''धूमिल की कविता में प्रयुक्त मुहावरे गँवई बोल-चाल से आकर उनके तर्क और विश्वास के साथ घुल-मिलकर उनके अपने हो गए हैं। उनकी कविताओं में समकालीन स्थिति से आत्म साक्षात्कार की सघनता है, मुहावरों के माध्यम से उसमें कसाव है।''(75) धूमिल की काव्य-भाषा में स्वनिर्मित मुहावरे यत्र-तत्र देखे जा सकते हैं। ये मुहावरे अपने अर्थ एवं संदर्भानुसार भाव अभिव्यक्ति सफल साधन कहे जा सकते हैं। इन मुहावरों के स्थान पर यदि पारंपरिक मुहावरों का प्रयोग किया जाए; तो उतने अधिक भावाभिव्यक्ति में सफल नहीं हो सकते। जितने कि स्वयं कवि द्वारा निर्मित मुहावरों द्वारा।

कवि धूमिल के ये मुहावरे आम जनता के दु:ख-दर्द से संबंधित होते हैं; जो ग्रामीण किसान मजदूर के पेट की समस्याओं और अधूरी इच्छाओं को प्रस्तुत कर देने में सक्षम हैं। काव्य-भाषा में प्रयुक्त मुहावरे अपनी पूर्ण भाव अभिव्यक्ति में सफल एवं सहायक है कि नहीं, इसे कवि धूमिल भांप गये थे। अत: वे भाव अभिव्यक्ति हेतु मुहावरों के परिवर्तन के लिए जागृत रहे हैं और कहते हैं-

> ''गूँगापन/ न सिर्फ, आत्महत्या की सरहद पर बोलता है
> मुहावरों के हवाई हमले से बचने के लिए/ जिसके दिमाग
> में शताब्दियों का अंधा कूप है / जो खोए हुए साहस की तलाश
> में/ पशुओं की पूँछ के नीचे टटोलता है।''(76)

कहना न होगा कि धूमिल अपनी काव्यसृजना में वाग्जाल नहीं फैलाते; बल्कि कविता में मुहावरेदारी पैदा कर उसे चुस्त बनाते हैं। क्योंकि उनके काव्य-भाषा में डॉ. शुकदेव सिंह के अनुसार ''मेहनत से टकराकर शब्द बजते हैं और पसीने से नहाकर मुहावरे कविता की तरह तीखे, हथियार की तरह चुटीले हो जाते हैं।''(77) धूमिल की काव्य-भाषा में अधिकांश मुहावरे व्यंग्यात्मक रूप में ही आए हैं। उन्होंने जुमलों, मुहावरों, लोकोक्तियों एवं सूक्तियों के प्रयोग द्वारा अपनी काव्य-भाषा को धारदार तरीके से प्रस्तुत

किया है। उनकी काव्य-भाषा में प्रयुक्त मुहावरें एक प्रकार से नयापन लिए रहते हैं; जो पाठकों को आश्चर्य चकित किए बिना नहीं रहते और उनका अर्थ ढूँढने के लिए मजबूर कर देते हैं। उदाहरणार्थ धूमिल की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य है-

> ''मगर चालाक 'सुराजिए' / आजादी के बाद के अंधेरे में/
> अपने पुरखों का रंगीन बलगम/ और गलत इरादों का मौसम
> जी रहे थे/अपने अपने दराजों की भाषा में बैठकर/ 'गर्म
> कुत्ता' खा रहे थे/'सफेद घोड़ा' पी रहे थे।''(78)

समकालीन कविता के प्रारंभ से लेकर वर्तमान जनवादी काव्य सृजना मुहावरे बाजी चर्चा का विषय बन गया है। ये मुहावरे उन्होंने अपने ठेठ देहात से चुने हैं। कारण जो कवि जिस परिवेश में रहता है। वह वहाँ की शब्दावली से प्रभावित होता है ; और अपनी कविता में आवश्यकतानुसार उन्हें फिट कर लेता है। इस दृष्टि से धूमिल का अधिकांश जीवन ग्रामीण क्षेत्रों में गुजरा है। नौकरी के दौरान भी उन्हें ज्यादातर गाँवों में ही रहना पड़ा। कहना न होगा कि जहाँ-जहाँ धूमिल को जीवन गुजारने का मौका मिला; वहाँ-वहाँ से उन्होंने मुहावरों को हू-ब-हू अपनी काव्य पंक्तियों में स्थान दिया। त्रिलोचन शास्त्री का कहना है कि ''धूमिल में मुहावरेबाजी ही है। ऐसे आरोप करने वाले यदि यह समझते हों कि भाषा बिना मुहावरे की हो सकती है तो भ्रम में हैं। किसी समर्थ लेखक के माध्यम से भाषा अपना तेवर बदलती है। यही किसी भाषा में व्यक्तित्व का उदय कहा जा सकता है। यह व्यक्तित्व धूमिल को प्राप्त था। फलतः धूमिल आज भी चर्चा में हैं।''(79)

सूक्तियाँ : धूमिल के काव्य में सूक्तियों का भी अपना विशेष महत्त्व है। डॉ. मंजुल उपाध्याय के शब्दों में ''अर्थ की प्रासंगिकता से कोई सूक्ति प्रसिद्ध नहीं हो जाती। धूमिल की सूक्तियों में रोज-ब-रोज वास्तविक दुःखों और अमानवीयताओं का रेखांकन है और उनसे कविता की संघर्षशील भूमिका बार-बार आलोकित होती है। सूक्तिपरक वाक्य संरचना धूमिल की कविता में अग्राधारणा (for grounding) का काम करती है।''(80)

धूमिल की कविताओं में कई स्थलों पर ऐसी पंक्तियाँ या टिप्पणियाँ मिलती हैं; जिनमें अनुभव का सार या कहें जीवन-सार छिपा हुआ है। इन वैचारिक या दार्शनिक स्तर की टिप्पणियों को 'सूत्रात्मक सूक्तियाँ' कहा जा सकता हैं। ये सूक्तियाँ आधुनिक जीवंत यथार्थ के पीछे छिपे सत्यों को पूरे असर के साथ संक्षेप में बाँधती हैं। कवि जब यथार्थ जगत की रूपात्मक सत्ता का अतिक्रमण करके उनके पीछे निहित या उनसे निष्कर्ष रूप में उभरकर सामने आनेवाले किसी बौद्धिक सामान्य सत्य को सामने रखता है। तो ये वैचारिक अर्थों से संपन्न जीवन-सूत्र या सूक्तियाँ प्राप्त होती हैं। इनके अध्ययन से यथार्थ के विविध रूपों और स्थितियों आदि के प्रति कवि का दृष्टिकोण स्पष्ट होता है। कई स्थलों पर इन सूक्तियों का स्वर व्यंग्य का है। ये सूक्तियाँ विसंगतियों से भरे उस समाज पर कटाक्ष करती

हैं; जिसकी मूल्य दृष्टि परिवर्तित हो चुकी है। उदाहरणार्थ धूमिल की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

> ''मैंने हरेक को आवाज दी है/ हरेक का दरवाजा खटखटाया है/ मगर बेकार.... मैंने जिसकी पूँछ/ उठायी है उसको मादा पाया है।''(81)

यहाँ कवि धूमिल ने आज के जीवन के खोखलेपन, विडंबना, एवं छल-कपट को सार रूप में प्रस्तुत कर दिया है। धूमिल की कुछ सूक्तियाँ उनके ग्रामीण संस्कार से ली गई हैं। जो शहरी मानसिकतावालों को माथा-पच्ची करने से भी कुछ हासिल नहीं होता। राजेश जोशी का कहना है कि- ''धूमिल की कविता में सूक्तियाँ बोलने की प्रवृत्ति के पीछे जहाँ उनके किसानी संस्कार या किसानी को चरितार्थ करने की मान्यता एक कारण है वहीं दूसरा कारण भाषा का संकट भी है। लेकिन वैसा नहीं जैसा एक ग्रामीण के पास था या होता है; वरन् यह एक दूसरे प्रकार का संकट था, अकवितावादियों द्वारा भाषा के साथ किए गए खिलवाड़ से पैदा हुआ संकट, जिसने अनेकों शब्दों के अर्थों को विकृत कर डाला बल्कि काफी हद तक अर्थहीनता की स्थिति में फेंक दिया।''(82) राजेश जोशी द्वारा कहे गए कथन के संदर्भ में धूमिल की यह पंक्तियाँ द्रष्टव्य है-

> ''पेशेवर भाषा के तस्कर संकेतों / और बैलमुत्ती इबारतों में/ अर्थ खोजना व्यर्थ है।''(83)

वास्तव में धूमिल की काव्य-भाषा को लेकर सबसे अधिक विवाद उनकी 'सूक्तिधर्मिता' पर उठा है। धूमिल के काव्य में नैतिकता सिखानेवाली उक्तियाँ नहीं हैं। परंतु ऐसे अनेक वाक्य हैं जो एक विचार को कलात्मक ढंग से कम-से-कम शब्दों में व्यक्त करते हैं। ऐसे वाक्यों या वाक्य-खंडो को हम सूक्ति, जुमला अथवा चुस्तबयानी कह सकते हैं। कवि धूमिल ने सूक्तियों के माध्यम से ही ज्यादातर अपने कविता के कथ्य और शिल्प का रूप निर्धारित करते दिखाई देते हैं। इस संदर्भ में कुछ पंक्तियों का उदाहरण स्वरूप उल्लेख किया जा रहा है- 1. ''कविता/ घेराव में / किसी बौखलाए हुए आदमी का /संक्षिप्त एकालाप है।'' (कविता), 2. आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगो का नाम है, जिन्हें एक पहिया ढोता है।''(बीस साल बाद), 3. ''मेरे लिए बसंत बिलों के भुगतान का मौसम है।'' (बसन्त) 4. ''मेरे लिए, हर आदमी एक जोड़ी जूता है जो मेरे सामने/ मरम्मत के लिए खड़ा है।''(मोचीराम) 5. ''जनता-/ एक भेड़ है/ जो दूसरों की ठंड के लिए अपनी पीठ पर/ ऊन की फसल ढो रही है।'' (पटकथा), 6. ''एकता युद्ध की और दया/ अकाल की पूंजी है।'' (अकाल दर्शन),7. ''वह सुरक्षित नहीं है/जिनका नाम हत्यारों की सूची में नहीं है।'' (हत्यारी संभावनाओं के नीचे), 8. हाँ, हाँ, मैं कवि हूँ; कवि यानी भाषा में भदेस हूँ; इस तरह कायर हूँ/ कि उत्तर प्रदेश हूँ'' (कवि 1970), 9. ''मैंने पहली बार यह महसूस किया है कि नंगापन/ अंधा होने के खिलाफ एक सख्त

कार्यवाही है।'' (उस औरत के बगल में लेटकर) आदि।

चुस्तबयानी को धूमिल की कविताओं की एक मूलभूत चारित्रिक विशेषता बताते हुए डॉ. रणजीत ने लिखा है- ''इन संश्लिष्ट काव्यात्मक सूक्तियों में कहीं जीवन के किसी गहरे सत्य में मार्मिक अभिव्यक्ति दी गई है, कहीं परिवेश की बेहूदगियों के प्रति कवि की आक्रोशपूर्ण प्रतिक्रिया है, कहीं जबान दराजी है, कहीं एक सार्थक नई उपमा या रूपक के माध्यम से शब्दों की समाहार शक्ति के साथ किसी महत्त्वपूर्ण तथ्य की अभिव्यक्ति है, कहीं भाषा के साथ सार्थक खिलवाड़ है ('गर्म कुत्ता' खा रहे थे, 'सफेद घोड़ा' पी रहे थे) और अनेक स्थलों पर वस्तुओं और स्थितियों को अपने नई पारिभाषित करने की ईमानदार कोशिश है।''(84)

सारांशत: धूमिल का काव्य शिल्प वक्त व्य, बातचीत और सूक्ति यों का सम्मिश्रण है। वे कविता में लगातार चुस्त सूक्तियाँ और मुहावरे गढ़ते हैं। सूक्तियों को लेकर उनकी कविता में आई विशिष्टताओं और कमजोरियों पर अच्छी खासी चर्चा हुई है। यह माना जाता है कि धूमिल ग्रामीण जनता एवं मित्रों की बातचीत के बीच से अपनी कविता की पंक्तियाँ उठाते थे। उनके सुख-दु:ख का जो अवसाद है। वहीं धूमिल की कविता की प्रेरणा स्त्रोत रहा है। कविता वहीं से फूटती है और उसको आवश्यकतानुसार अपनी कविताओं में सही जगह फिट कर लेते थे। वे अपनी कविता की खुराक जनता के बीच मानवीय संवेदना से उठाते है थे; जिसमें बड़ी 'टीस' या दर्द होता था। कवि ज्ञानेंद्रपति के शब्दों में ''धूमिल ने जो मुहावरे लिए हैं वह जनता के बीच से। क्योंकि जनता ही मुहावरों का निर्माता होता है। मुहावरा कोई पंडित नहीं बनाता है।''(85) धूमिल की कविता में जो ग्रामीण जन-जीवन के शब्द (बैलमुत्ती इबारत, हुचुर हुचुरकर हँसना आदि) उपलब्ध होते हैं, वह शहरी मानसिकता के लोगों को अटपट या नए मालूम होते हैं; लेकिन निरर्थक नहीं हैं । परिवेश के मुताबिक उनका चुनाव एकदम सही प्रमाणित होता है।

धूमिल की सूक्तियों एवं मुहावरों के संदर्भ में राजेश जोशी का अभिमत है- ''सूक्तियाँ या मुहावरे गढ़ना एक ग्रामीण परंपरा है जो कमोवश अनुभव की प्रचुरता लेकिन भाषा की पर्याप्त जानकारी न होने के कारण पैदा हुई होगी। सूक्तियाँ अधिकतर अपने निर्धारित शब्दों के भीतर ही अनेकानेक अर्थों की गूँज को अपने में समाहित किए होती हैं और संदर्भों के बदलते ही एक ही सूक्ति के अर्थ भी बदल जाते हैं। यह सूक्तियों का एक विशेष गुण है जिसे अधिकांश सूक्तियों में देखा जा सकता है। 'निराला' कविता में सूक्तियों और 'उपदेशों' को कवि की कमजोरी मानते थे लेकिन धूमिल की कविता निराला की मान्यता के विरुद्ध एक जीवंत चुनौती है, वहाँ सूक्तियाँ उपदेशों और वक्तव्यों से कविता का गठन सिर्फ संभव ही नहीं हुआ है; वरन् उसने आज की कविता का एक तेज तर्रार नया मुहावरा भी गढ़ा है और धूमिल उसमें काफी हद तक सफल भी रहे हैं।''(86)

यह माना जा सकता है कि कवि धूमिल की कविता में बिंब, प्रतीक, मुहावरों

आदि का जो स्वरूप मिलता है; वे सभी कविता को अधिक जीवंत, सघन एवं गतिशील बनाने में सहायक सिद्ध हुए हैं। यदि इनका यथार्थगत प्रयोग संगत, सहज व कथ्य के अनुरूप नहीं हुआ; तो ये अपने आप में लाख मौलिक तथा अर्थवान हों; लेकिन कविता की संप्रेषणीयता में बाधक बन सकते हैं। वास्तविकता तो यह है कि कलात्मकता अच्छे व खूबसूरत साधनों को इकट्ठा करने में नहीं; बल्कि उनके सार्थक संयोजन में होता है। कुल मिलाकर कविता में इनकी उपस्थित अनिवार्य एवं महत्त्वपूर्ण होती है।

5.2 काव्यशैली एवं प्रयोगात्मक पक्ष

5.21 शैली संबंधी विवेचना : शैली का क्षेत्र अपने-आप में अत्यंत उलझा हुआ तथा विवादास्पद है। 'शैली' शब्द ही स्वयं में अत्यंत उलझनपूर्ण एवं अनिश्चित अर्थबोधक है। इसके तत्त्वों एवं स्वरूप को लेकर विभिन्न विद्वानों एवं आलोचकों में पर्याप्त मतभेद है। अधिकांश भारतीय विद्वानों ने अंग्रेजी के 'स्टाइल' शब्द के पर्यायवाची हिंदी के 'शैली' शब्द को भारतीय काव्यशास्त्र के 'रीति' शब्द का समानार्थी माना है। भारतीय काव्यशास्त्र के उपलब्ध स्त्रोतों के आधार पर संस्कृत आचार्यों में सर्वप्रथम वामन ने शैली को 'विशिष्ट पद रचना रीति' कहा है।(87) दंडी ने अपने काव्यादर्श में शैली के लिए 'मार्ग' शब्द का प्रयोग किया है। इन्होंने 'वैदर्भी और गौड़ी' दो मार्ग बताए हैं।(88) भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में शैली को वृत्ति अर्थात् वाणी की प्रवृत्ति कहा है। उन्होंने भौगोलिक आधार पर वृत्ति को अवंती, दाक्षिणात्य, पांचाली, मागधी इन चार भागों में विभक्त किया है।(89) आनंदवर्धन ने शैली का रस, गुण और अलंकार से संबंध स्थापित किया है।(90) कुछ इसी प्रकार कुंतक और दंडी ने रीति(शैली) को कवि के स्वभाव पर आधारित माना है। अत: यह स्पष्ट हो जाता है कि रीति और शैली दोनों अभिव्यक्ति के साधन हैं। यह भारतीय आचार्यों की शैली विषयक व्याख्या रही है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र मे भी शैली को कवि व्यक्तित्व का अविभाज्य अंग कहा गया है।

आधुनिक भारतीय विद्वानों में पं. बलदेव उपाध्याय के मतानुसार- ''अंग्रेजी भाषा में रीति (मार्ग) के लिए 'स्टाइल' शब्द प्रयुक्त होता है।''(91) पं. रामदहिन मिश्र का कथन तो पूर्णत: स्पष्ट कर देता है कि ''रीति या वृत्ति का आधुनिक नाम शैली है।''(92) किंतु भारतीय विद्वानों का एक बहुत बड़ा वर्ग आधुनिक साहित्य में प्रयुक्त 'शैली' शब्द को अंग्रेजी के 'स्टाइल' का हिंदी रूपांतर मानता है और संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त 'रीति' शब्द से अत्यंत अलग-भिन्न मानते हैं। डॉ. नगेंद्र का मानना है- ''अभिव्यक्ति की पद्धति के अर्थ में शैली का प्रयोग आधुनिक ही है।''(93) आचार्य सीताराम चतुर्वेदी के अनुसार- ''कुछ लोगों ने रीति को ही शैली मान लिया है; किंतु रीति केवल काव्य-रचना का एक

ढंग है। इसके विपरीत शैली वह साधन है जो वाणी की अभिव्यक्ति में अभिनव आकर्षण शक्ति का संचार करे। वामन ने पदों की विशेष रचना की रीति (विशिष्ट पदरचना) माना है; किंतु गुणों के आधार पर दी हुई विशेष पद रचना की इस रीति को शैली के विशिष्ट और व्यापक रूप में सर्वथा भिन्न मानना चाहिए।''(94)

पाश्चात्य विद्वानों ने भी शैली पर पर्याप्त मात्रा में अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। इन विद्वानों के विचारों को दो वर्गों में बांटकर हमने अध्ययन करने की कोशिश की है। कतिपय विद्वानों ने लेखक के व्यक्तित्व एवं भाषिक संरचना के सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए मतभेद प्रकट किए हैं। पहले वर्ग के विद्वानों ने शैली में लेखक के व्यक्तित्व को ही सब कुछ मान लिया है। इस संदर्भ में बफन की प्रसिद्ध उक्ति है- ''Style is the man himself'' शैली व्यक्ति ही तो है। हर्डसन के मतानुसार- ''Style is fundamentally a personal quality''(95) शैली अपने मूल में एक वैयक्तिक गुण है। फ्लाबर्ट के अनुसार ''Style is the writers individual way of middleten seeing things''(96) इसे लेखक के वैयक्तिक निरीक्षण की विधि के रूप में देखता है। एफ. एल. लूकाम के अनुसार- ''साहित्यिक शैली एक व्यक्तित्व का दूसरे व्यक्तित्व को प्रभावित करने का साधन है।'' इन विद्वानों ने किसी-न-किसी रूप में एक ही तथ्य का प्रतिपादन किया है कि शैली में लेखक का व्यक्तित्व ही सब कुछ है अर्थात शैली पूर्णतः व्यक्ति सापेक्ष होती है।

यह सच है कि शैली का संबंध अनुभूतियों (विचारों) की मात्रा अभिव्यक्ति से ही नहीं है, बल्कि विषय-वस्तु की पूर्ण, प्रभावपूर्ण तथा औचित्यपूर्ण अभिव्यक्ति- विषय एवं व्यक्तित्व प्रेरित वैशिष्ट्यों से युक्त अभिव्यक्ति से है। क्योंकि अभिव्यक्ति का आधार है- भाषा; जिसका निर्माण ध्वनि, शब्द, वाक्य संघटना अनुच्छेद आदि से होता है और मुहावरों, लोकोक्तियों, बिंब प्रतीकों आदि के प्रयोग द्वारा इसमें वैशिष्ट्य उत्पन्न होता है। अभिव्यक्ति के इन आधारों की चर्चा लगभग हो गई है। यहाँ उनका जिक्र मात्र किया जा रहा है।

प्रायः किसी भी साहित्यिक कृति में कथ्य और शिल्पशैली की चर्चा अनिवार्य होती है। कथ्य आंतरिक पक्ष होता है और शैली कृति का बाह्य पक्ष। शैली की श्रेष्ठता सशक्त अभिव्यंजना एवं संप्रेषण हेतु अनिवार्य है। रोहिताश्व के मतानुसार- ''कलाकृति के रूप तत्त्व या शिल्प-शैली तत्व उसकी अंतर्वस्तु अंतर्व्यवस्था के ही महत्त्वपूर्ण तत्त्व होते हैं; जो उसके अनुषंगी बनकर समग्रता में चेतना-रूपांतरण व सौंदर्यबोधी अभिव्यक्ति के माध्यम बनते हैं। वस्तुतः विभिन्न प्रकार की शिल्प-शैलियाँ ही समुच्चय रूप में साहित्य रूपी सधन वन की सघनता बनती है। आंतरिक समृद्धि को बाह्य अभिव्यंजना प्रदान करने में शैलियाँ ही सहायक होती हैं; लेकिन यह शिल्प शैली संबंधी अभिव्यंजना ऐसी नहीं होनी चाहिए कि सत्य ओझल हो जाए।''(97)

शिल्प शैली एक आवरण की तरह होती ह;, जो कलाकार की आत्मा के मुख

को ढँकती है। लेकिन रमेष कुंतल मेघ के शब्दों में - ''अलंकृत भी होती है और अनलंकृत एंब्राइडर्ड भी, यह अनिवार्य सत्य को अंकित करती है और द्वितीयक यथार्थ को भी। जो शैली कलाकृति की बुनियाद सामाजिक अनुभवों की अभिव्यंजना को स्पष्ट करती है, वह वरेण्य है। चाहे उसमें अलंकृति की मार्क्स की शब्दावली में रैफेलीकरण या चाहे अनलंकृति ही मार्क्स की शब्दावली में रेम्ब्रारण। वैसे मार्क्स भी निर्धारित शैली को व्यंग्य में 'सरकारी रंग' कहते थे जो अंकुश रूप में 'काली वेश-भूषा' के समान होता है, क्योंकि उनके अनुसार यह जीवन की इंद्रधनुषी समृद्धि को ढँक लेता। उन्होंने लिखा है कि विभिन्न शैलियाँ ओस-बिंदुओं की तरह होती हैं, जो आत्मा के सूर्य से प्रकाशित होकर असंख्य रंगों में झलकती है; क्योंकि वह सूर्य उन्हें निरंतर असंख्य व्यक्तियों और वस्तुओं में बाँटता जाता है। जबकि मनुष्य प्रकृति के असीम वैभव और उल्लासपूर्ण विविधताओं की प्रशंसा करता है, तब उसे इतना क्यों बाँधा जाए।''(98) अत: मार्क्सवादी चिंतन तथा पक्षधर बोध का सौंदर्यशास्त्र सृजनात्मक क्षेत्रों में विभिन्न काव्य शैलियों की तरफदारी ही करता है, उन पर कोई बंदिश नहीं लगाता है।

डॉ. रोहिताश्व ने भी समकालीन कविता के विस्तृत परिप्रेक्ष्य में विभिन्न रचनाकारों की विशिष्ट शैली-शिल्प की विवेचना अपने आलोच्य ग्रंथ में करते हुए कहा है कि ''विभिन्न कलाकारों द्वारा रची गयी समकालीन उन्नत शिल्प-शैलियाँ अपने-अपने नई विभिन्न विचारों और ध्वनियों के पैटर्नों का निर्माण भी करती हैं; जो संवेगों का उद्दीपन करते हैं। प्रतिबद्ध रचनाकारों में अपनी संवेगात्मक तीव्रता और सामाजिक व्यापकता के मुताबिक जिन विभिन्न शैली पैटर्नों में से किसी एक या अनेक माध्यम रूपी शैलियों द्वारा अपनी काव्य अभिव्यंजना की है।'' डॉ. रोहिताश्व ने समकालीन कविता के परिप्रेक्ष्य में विभिन्न ग्यारह काव्य-शैलियों के नाम गिनाए हैं -

1. इतिवृत्तात्मक शैली : कांग्रेस- ज्ञानेंद्रपति, वियतनाम-कुमारेंद्र पारसानथ सिंह, सुअर- उदयप्रकाश।
2. विवेचन शैली : हरिजनगाथा, अकाल और उसके बाद- नागार्जुन इसयात्रा में- लीलाधर जगूड़ी, सफर- वेणुगोपाल ।
3. भावाभिव्यजन शैली : लाशों का बयान- श्रीहर्ष, आत्महत्या के विरुद्ध- रघुवीर सहाय, वापस- विष्णु खरे।
4. उद्बोधन शैली : जंगल गाथा- वेणुगोपाल, गोली दागो पोस्टर- आलोक धन्वा, गुजारिश करता हूँ हुजूर- रोहिताश्व ।
5. व्यंग्यात्मक शैली : अंडा मंत्र, विज्ञापन सुंदरी- नागार्जुन, कवि1970- धूमिल, मालिक और नाहक नाराज हैं-उदय प्रकाश।
6. वार्तालाप एवं संवाद शैली : यात्रा में- सुदर्शन, भाई से कविता- शशि प्रकाश, दो शराबियों की बातचीत का एक टुकड़ा- कुमार विकल।

7. वक्तव्यपूर्ण शैली	: एक वक्त व्य- ज्ञानेंद्रपति, सामग्री आ रही है- पंकज सिंह
8. तर्कपूर्ण शैली	: पावलान और गांधी - वेणुगोपाल, क्या है- ऋतुराज।
9. कथा शैली	: एक सामरिक चुप्पी - कुमार विकल, बलदेव खटिक - लीलाधर जगूड़ी।
10. पत्र शैली	: शेष कुशल है- मनमोहन।
11. प्रतीकात्मक और बिंबात्मक शैली	: रेलगाड़ी नेपथ्य में-मनमोहन , आजादी - भूपेंद्र कौशिक बारिश- राजीव सक्सेना, युद्ध-मनमोहन, घोड़ा- प्रकाश चंद्रायन और लीला- लीलाधर ज गूडी , बेटी के नाम- रोहिताश्व

काव्य शैली और शिल्पगत प्रयोगों के विवेचन हेतु हमें एक पृथक शोधकार्य की रचना करनी होगी। उपर्युक्त शैली पैटर्नों के आधार पर धूमिल के काव्य की विवेचना एक विस्तृत ही नहीं; बल्कि व्यापक अनुसंधान की अपेक्षा रखती है।

5.22 धूमिल का काव्य : शैलीगत यथार्थ का प्रयोगात्मक पक्ष : किसी भी कवि की काव्य-भाषा और शिल्प-शैली विधान में उसकी वर्ग चेतना एवं युगीन परिवेश को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। सामाजिक परिवेश और भाषा-प्रयोग की पद्धतियाँ रचनाकार के मानस एवं विचारों को दूर तक नियंत्रित करती हैं। भाषा प्रयोग और शिल्प-शैली दरअसल कवि मानस के संप्रेषण संबंधी औजार हैं।

शिल्प-शैली गत यथार्थ भगवान सिंह के विचार द्रष्टव्य ''भाषा और सृजन रीतियाँ दोनों ही सामाजिक संप्रदाय हैं और समाज से इन्हें ग्रहण करने के बाद हम इनके साथ इच्छित प्रयोग करते या नई अर्थ छायाएँ गढ़ते हैं। समाज एक बहुत विशाल तंत्र है, जिसके अनेक वर्ग और स्तर हैं। जिनमें प्रश्न यही नहीं है कि कोई रचनाकार किस प्रकार की भाषा या अभिव्यक्ति को अपनाता है; अपितु यह भी है कि वह किस वर्ग को अपना भावक मानता और संबोधित करता है। एक बार अपने भावक वर्ग का निश्चय करने के बाद प्रत्येक कवि या लेखक स्वत: इस बात का निर्धारण कर सकता है कि उसकी भाषा और व्यंजना का रूप क्या हो सकता है।''(99) ''कैसे सर्वहारा व शोषित मध्यवर्ग आदि से जुड़ा हुआ प्रतिबद्ध रचनाकार ही सृजनात्मक भाषा और वर्ग चेतना के सौंदर्यबोधी रूपांतरण की सकारात्मक चेष्टाओं के प्रति विशेष तौर पर निर्धारित तौर पर सजग रहता है। वह समकालीन सृजन में किसी वर्ग विशेष की तरफदारी ही नहीं करता है; बल्कि अनुभूति की व्यवस्था और सामाजिक प्रामाणिकता के दाबव-द्वन्द्व के अंतर्विरोधों को भी रूपायित करता है।''(100)

प्रसंगवश धूमिल की निम्नलिखित काव्य पंक्तियाँ जहाँ शोषित वर्ग की दीन-हीन पराभव व्यवस्था को बतलाती हैं; वही शोषक और शोषित वर्ग के संघर्ष बोध को भाषिक

संरचना में अभिव्यक्त करती हैं-

> ''उन्होंने किसी चीज़ को/ सही जगह नहीं रहने दिया है
> न संज्ञा/ न विशेषण/ न सर्वनाम/ एक समूचा और सही
> वाक्य/टूटकर/ बि ख र गया है/××× वे जिसकी पीठ
> ठोंकते हैं उसके रीढ़ की हड्डी गायब हो जाती है।''(101)

कहना न होगा कि प्रत्येक रचनाकार अपनी-अपनी सामर्थ्य और कला संबंधी सूझ के अनुरूप अभिव्यक्ति शैली के पैटर्नों का चयन करता है। समकालीन कविता के विस्तृत परिप्रेक्ष्य में विभिन्न रचनाकारों ने कतिपय विशिष्ट शिल्प-शैली को संप्रेषण हेतु आजमाया है; जिनका संकेतात्मक चर्चा 'शैली संबंधी विवेचना' के उपअध्यापक के अंतर्गत हो चुका है। अब हम धूमिल के काव्य-संग्रहों 'संसद से सड़क तक', 'कल सुनना मुझे' और 'सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र' में प्रयुक्त विभिन्न काव्य शैलियों का अध्ययन करेंगे।

व्यंग्यात्मक शैली : व्यंग्यात्मक शैली एक ऐसा माध्यम है; जो पाठकों को सरलता से समझ में नहीं आता। हरिशंकर परसाई व्यंग्य को साक्षात्कारकर्ता; अन्वेषणकर्ता उद्‌घाटनकर्ता मानते हैं। उनके मतानुसार- ''व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है... समाज में बेहद विसंगतियाँ हैं- परिवार से लेकर राष्ट्र के मंत्री मंडल तक। भ्रष्टाचार, अन्याय, शोषण, मिथ्याचार पाखंड है। व्यंग्य इन सबके अन्वेषण और उद्‌घाटन का माध्यम है।''(102) व्यंग्य के संदर्भ में परसाई जी की मान्यता बिलकुल शतप्रतिशत सही है। व्यंग्य पर प्रकाश डालते हुए डॉ. शेरजंग गर्ग लिखते हैं- व्यंग्य समाज को टटोलता है, अपनी राजनीतिक परिस्थितियों को तौलता है, आर्थिक विसंगतियों की गाँठे खोलता है तथा वास्तविकता, सत्य और ईमानदारी की वाणी बोलता है।''(103) शेरजंग गर्गजी के विचार महत्त्वपूर्ण हैं, सत्य-कथन व्यंग्य की बहुत बड़ी विशेषता है।

कतिपय आलोचकों ने धूमिल के व्यंग्य-वैविध्य की चर्चा सम्यक रूप से की है; कारण धूमिल की लगभग संपूर्ण कविताएँ व्यंग्यात्मक शैली में ही हमारे समक्ष आती हैं। डॉ. हुकुमचंद राजपाल के अनुसार- ''प्रत्येक महत्त्वपूर्ण वक्तव्य (एकालाप) में कवि किसी-न-किसी विशेष संदर्भ को उद्‌घाटित करना चाहता है। यही कारण है कि कविता के सही एवं सार्थक रूप में शब्दों, भाषा रूप, विषय, पैठ (समझ) बोध की चर्चा करता है। वैसे व्यक्ति (पुरुष-स्त्री) के सही रूप को उद्‌घाटित करने के लिए उसने बलात्कार, नम्रता, गर्भपात के साथ योनि, चूची, चोली, लूप लोकशास्त्र, गंदी बस्ती, वेश्या वृत्ति इत्यादि का उल्लेख किया है। मासिक धर्म, बलात्कार, सहवास के पश्चात् शोक की स्थिति का वर्णन भी हुआ है इन सब के मूल में कवि का व्यंग्य एवं खीझ निहित है। वह किसी प्रकार की सहानुभूति अथवा ऊपरी करुणा का प्रदर्शन नहीं करता, व्यंग्य अवश्य करता है- तीखा प्रहार करता है, भले ही व्यभिचारी हो, नेता हो या तथाकथित साहित्यिक हो सभी को धूमिल का व्यंग्य-प्रहार सहना पड़ता है।''(104)

कवि धूमिल ने अपने काव्य में व्यंग्यात्मक शैली अपनाई है। वह किसी व्यक्ति विशेष को लक्ष्य करके नहीं; बल्कि उन आम जनता के दुश्मनों यानि शोषकवर्ग एवं सत्ताधारी वर्ग पर तीखे धारदार व्यंग्य कसा है। कवि ने अपने व्यंग्य वाण से नेता, अध्यापक, साहित्यकार, वकील, युवक-युवतियाँ आदि सभी को आहत किया है। वे व्यंग्यात्मक शैली अपनाकर समाज में व्याप्त भ्रष्ट व्यवस्था में परिवर्तन कर 'दूसरे प्रजातंत्र की तलाश में' सजग-निडर खड़े होकर मानों भ्रष्ट समाज को चुनौती दे रहे हैं। धूमिल का व्यंग्य वाण अत्यंत तीखा, तीव्र, पैना एवं धारदार है; जो भी भ्रष्ट पात्र उसके सामने आता है; उसके भीतर गहराई तक चीर कर रख देता है। इस सच्चाई को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता है। इस दृष्टि से 'आलोचक' शीर्षक कविता में कवि को कहना पड़ा है-

> ''वह तुम्हारी कविता का/ एक शब्द सूंघता है/ और/ नाक
> की सीध में / तिजोरियों की ओर दौड़ता चला/ जाता
> है।''(105)

उपयुक्त पंक्तियों में कवि ने 'कुत्ते' के रूप में 'आलोचक' का एक सुंदर एवं सजीव चित्र बिंब उभारने में कोशिश की है। धूमिल की कविता मूलत: व्यंग्यात्मक शैली में लिखी गई है। उनके व्यंग्य प्रहार से कोई भी नहीं बच सका है।

वक्तव्य शैली : वक्तव्य शैली को जनतंत्र की देन मानते हुए डॉ. हरदयाल ने कहा है- ''जनतंत्र व्यक्ति में दूसरों को प्रभावित करने की महत्त्वाकांक्षा भी जगाता है। प्रभावशाली वक्तृत्व कला के द्वारा जन-समुदाय को अपने साथ बहा ले जाना एक सफल जन नेता का गुण है। युवा कवि इससे प्रभावित हुए हैं। वक्तृत्व कला की अनेक विशेषताएँ सरलता से युवा कविता में खोजी जा सकती है।''(106)

समकालीन कविता में वक्तृत्व कला की विशेषताएँ यत्र-तत्र मिलती हैं। उपर्युक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि युवा कवि धूमिल की कविताओं में वक्तव्य शैलीगत यथार्थ का प्रयोग हुआ है। वक्तव्य शैली नेताओं के हाथों में एक शस्त्र की तरह होती है। यह गुण कवि धूमिल में भी था। वे वक्तव्य शैली में बात करते हुए कहते हैं- ''एक सही कविता/पहले /एक सार्थक वक्तव्य होती है।''(107) यहाँ स्पष्ट है कि कवि धूमिल ने सिर्फ 'वक्तव्य' को नहीं; बल्कि एक 'सार्थक वक्तव्य' को विशेष महत्त्व दिया है। मनोज सोनकर के अनुसार ''सार्थक वक्तव्य' का अर्थ जिम्मेदारी पूर्वक दिया गया वक्तव्य है, निरीक्षण और परीक्षण के बाद दिया गया वक्तव्य है।''(108)

हम यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि नेता और कवि धूमिल के वक्तव्य शैली में फर्क होता है। नेता बिना परीक्षण-निरीक्षण तथा जिम्मेदारी के मात्र वक्तव्य देकर चला जाता है। जबकि कवि धूमिल में ऐसा नहीं है। वह मात्र 'वक्तव्य' में नहीं; बल्कि 'सार्थक वक्तव्य' में ज्यादा विश्वास करते हैं। डॉ. मनोज सोनकर के शब्दों में ''सच तो यह है कि धूमिल ने कविता को 'सार्थक वक्तव्य' घोषित कर, कविता में क्षणवादी दर्शन,

सीमित संवेदना... नितांत वैयक्ति क अनुभूति का विरोध करते हुए, वैचारिकता का समर्थन किया था। अत: उन्होंने वक्त व्य का संबंध कथ्य से जोड़ा था और मैं भी मानता हूँ कि वक्त व्य का संबंध मूलत: तथ्य से ही है।''(सत्तरोत्तरी हिंदी कविता, पृ.729) धूमिल कवि के साथ-साथ अच्छे वक्ता भी रहे हैं। जब वे किसी भी साहित्यिक मंच पर वक्त व्य देने लगते तो सारे लोग उनकी वक्तव्य शैली से पूर्णत: प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। इस शैली के कारण ही कभी-कभी साहित्यिक मित्र मंडलियों के बीच मनमुटाव भी हो जाता। लेकिन उन्होंने कभी इसकी परवाह नहीं की। वे कविता के संबंध में वक्त व्य देते हुए कहते हैं।

> ''कविता क्या है?/ कोई पहनावा है/ कुर्ता-पाजामा है/
> ' ना भाई ना,/कविता-/ शब्दों की अदालत में/ मुजरिम
> के कटघरे में खड़े बेकसूर आदमी का/ हलफनामा है।'
> क्या यह व्यक्ति त्व बनाने की/ चरित्र चमकाने की खाने-
> कमाने की-/चीज है?'/ ना, भाई ना/ कविता/ भाषा
> में/ आदमी होने की तमीज है।''(109)
>
> कविता में जाने से पहले/ मैं आपसे ही पूछता हूँ /जब इससे
> नचोली बन सकती है/ न चोंगा;/ तब आप कहो-/ इस
> ससुरी कविता को/ जंगल से जनता तक/ ढोने से क्या
> होगा?'(110)

उपर्युक्त दोनों ही उद्धरण वक्त व्य शैली के प्रमाण हैं। यही नहीं, दोनों में ही एक तरह से तर्क देने का आभास मिलता है। अत: ये दोनों उद्धरण तर्कपूर्ण शैली के भी उदाहरण कहे जा सकते हैं। ऐसे अनेकों तर्कपूर्ण शैली उनके काव्य संग्रहों में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं।

संबोधन शैली : कवि धूमिल के तीनों काव्य-संग्रह 'संसद से सड़क तक', 'कल सुनना मुझे' और 'सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र' की अधिकांश कविताओं में संबोधन शैली का निर्वाह हुआ है। कहीं-कहीं आत्म संबोधनात्मक शैली का यथार्थ प्रयोग भी देखने में आया है। हुकुमचंद राजपाल के अनुसार ''यह संबोधन कहीं कवि स्वयं को करता है, कहीं 'तू' 'तुम' 'वह' 'वे' से स्थिति की वास्तविकता का बोध कराता है। इसके साथ ही कवि ने ऐसे वक्त व्य एवं उक्तियों का ताना-बाना प्रस्तुत किया है; जो कविता क्षेत्र में एक नया सार्थक प्रयोग कहा जा सकता है।''(111) धूमिल की संबोधनात्मक शैली में सबसे ज्यादा सर्वनामों के माध्यम से हमें दर्शन होते हैं। 'संसद से सड़क तक' काव्य-संग्रह से उद्धृत आत्म-संबोधनात्मक शैली- 1. मैं अपने आपसे एक सवाल करता हूँ(पृ.9), 2. मैं बीचोबीच से दब गया हूँ/ मैं चारों तरफ से बंद हूँ/ मैं जानता हूँ कि इससे न तो कुर्सी बन सकती है (पृ.25), 3. मैं उन तमाम चुनौतियों के लिए /खुद को तैयार करना चाहता हूँ (पृ. 34), 4. 'मैं आपसे ही पूछता हूँ' (पृ.62), 5. मैं एक शरीफ आदमी हूँ/ पूरी नागरिक

सौम्यता के साथ (पृ.73)

प्रस्तुत संग्रह की अंतिम कविता 'पटकथा' में तो आत्म संबोधनात्मक शैली की झड़ी ही लगी हुई है। इस कविता के लगभग हर पृष्ठ में 3-3 4-4 'मैं' जैसे आत्म संबोधनात्मक शैली यानी सर्वनाम का यथार्थ प्रयोग हुआ है। इनके अतिरिक्त 'मुझे' और 'मुझको' जैसे सर्वनामों का भी यथार्थ प्रयोग हुआ है। और 'सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र' 'कल सुनना मुझे' काव्य संग्रह में पहले संग्रह की अपेक्षा कम ही ऐसी शैली का प्रयोग देखने को मिलता है। जो भी हो, इन संग्रहों से भी कुछ उदाहरण देना हम आवश्यक समझते हैं- 1. क्या मैंने पेड़ की आत्मीयता की बात की/ क्या मैंने कहा कि धूप माँ की गोद-सी गर्म थी/ क्या मैंने कहा कि थरथराती हुई जुबान/ डबडबाई आँख में बदल गयी थी। (कल सुनना मुझे पृ.25), 2. मैं समझने लगता हूँ कि दुनिया/ ज्वालामुखियों के दहाने पर भी/इतनी ठंडी क्यों है। (कल सुनना मुझे, पृ.32), 3. मुझे कुछ नहीं कहना है/ मैं सिर्फ रहना भर जानता हूँ (कल सुनना मुझे, पृ.38), 4. मैं वापस चला जाऊँगा/ अपनी कविताओं के अँधेरे में (सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र, पृ. 10), 5. मैं तीन बार संसद कहूँगा/ और चार बार संविधान (सुदामा पांडेय का प्रजांतत्र, पृ.28)

उपर्युक्त उद्धरणों का अध्ययन करने के पश्चात् हम सहज ही कह सकते हैं कि धूमिल संबोधनात्मक शैली के अधिक निकट के कवि हैं। धूमिल की संबोधनात्मकता की ओर संकेत करते हुए प्रभात कुमार त्रिपाठी को कहना पड़ा है- ''युवा कविता की दुनिया में, संभवतः धूमिल प्रखर संबोधन के अकेले कवि हैं। संबोधन की यह बात महत्त्वपूर्ण है। यह उन्हें 'मैं जन हूँ, मैं जन के साथ हूँ'' जैसी भावुक जनोन्मुखता से मुक्त रखे हैं। वे जन के साथ रहने की आत्म-प्रक्षापी घोषणाओं के नहीं, जन से बात करने की जरूरी मुखरता के कवि हैं।(112)

धूमिल के तीनों काव्य-संग्रहों - 'संसद से सड़क तक', 'कल सुनना मुझे' और 'सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र' में 'तू', 'तुम', 'वह' और 'वे' आदि सर्वनाम शब्दों के प्रयोग संबोधन शैली में यत्र-तत्र देखा गया है। लेकिन इनमें 'तू' सर्वनाम शब्द प्रयोग मात्र दो-चार जगह ही हुआ है, उदाहरणार्थ- 1. ''तू मेरी/ हम बिस्तर नहीं- मेरी/ हम सफर हो'' (सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र, पृ. 34), 2. ''तुम हो विपक्ष में/ बेकारी और नींद से परेशान'' (संसद से सड़क तक, पृ.68), 3. ''तुम पेड़ो की छाल गिनकर/ भविष्य का कार्यक्रम तैयार कर रहे हो'' (संसद से सड़क तक, पृ.112), 4. ''तुम कह सकते हो कि खून/ बह रहा है'' (कल सुनना मुझे, पृ.20), 5. ''तुम अपनी भूख से इसे/ भर नहीं सकते'' (कल सुनना मुझे, पृ.72), 6. ''तुम लौट रहे थे खेल के मैदान से'' (सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र, पृ.34), 7. ''तू वक्त के तहखाने में/ लगातार हारते जुआड़ी के हाथों की नोट रही है।'',8. ''मैं तेरा बेटा हूँ/ तू मेरी माँ है'' (सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र, पृ.77), 9. ''वह तुम्हारी जंजीरों से/ शिकायत करती है।'' (संसद से सड़कत तक, पृ.71),

10. ''वह सिर्फ चाहता/ कि उसका 'स्वस्तिक'/ स्वस्थ रहे'' (संसद से सड़क तक, पृ. 96), 11. ''वे लौटा रहे हैं उपाधियाँ/ और अलंकार'' (संसद से सड़क तक, पृ.88), 12. ''वे मेरे देश के हम उम्र नौजवान/ वे हाफती हुई जंगली नदी के दहाने पर पहुँच गये हैं'' (संसद से सड़क तक पृ.94), 13. ''वे सबके सब तिजोरियों के दुभाषिये हैं'' (संसद से सड़क तक, पृ.126), 14. ''वे जो शरीरों की बिक्री में माहिर हैं'' (कल सुनना मुझे, पृ.47), 15. ''वे बिना पूछे/ आपकी जेब से पैसे निकालेंगे/ और सिनेमा चले जायेंगे'' (सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र, पृ.41), 16. ''वे स्वस्थ और सुन्दर हैं/ ठीक अपने दाँत की तरह शत-प्रतिशत देशी और निजी'' (सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र, पृ.68) आदि इस तरह के अनेक संबोधनात्मक शैली का प्रयोग धूमिल की कविताओं में यत्र-तत्र सर्वत्र पाए जाते हैं।

'सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र' काव्य संग्रह के 'हत्यारे एक' शीर्षक कविता में 'वे' संबोधनात्मक शैली का यथार्थ प्रयोग हुआ है। उपर्युक्त तीनों काव्य संग्रह में इन संबोधनात्मक सर्वनाम शब्द के अतिरिरिक्त - तुम्हें, तुझको, तुमने, तुम्हारे, उन्हें, जिन्होंने, आप आदि सर्वनाम शब्दों का भी निर्वाह हुआ है। इन संबोधनात्मक शैली के प्रयोग के कारण धूमिल की कविताओं में प्रत्यक्ष कथन की स्फूर्ति प्रभाव और जीवंतता का आभास मिलता है। उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि ''कवि कथ्य-विस्तार एवं सही रूप में प्रस्तुत करने के लिए इस शैली को अपनाता है।'' (समकालीन बोध और धूमिल का काव्य - हुकुमचंद राजपाल)

संवाद-वार्तालाप शैली : समकालीन कविता में संवाद एवं वार्तालाप शैली को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है। आम-आदमी की कविता लिखनेवाले कवि के लिए यह शैली ज्यादा उपयुक्त है। इससे बोझिलता कम हुई है। जीवंतता अधिक आई है। नाटकीयता का आभास भी अधिक पाया जाता रहा है। जब कि 'बतकही' का अंदाज कुछ और ही है। डॉ. चमनलाल गुप्त के अनुसार- ''धूमिल के लिए काव्य एक सजीव संवाद का पर्याय है। इसलिए उसका काव्य-भाषा बोलचाल की भाषा के समान प्रवाहमयी होने के साथ-साथ अनेकानेक नाटकीय मुद्राओं को लेकर हमारे सामने आती है। ऐसा प्रतीत होता है कि धूमिल अपने पाठकों से सीधे बतिया रहा है।... धूमिल की काव्य-भाषा की शक्ति का एक आधार उसकी जीवंत संवादात्मकता भी है।''[113] धूमिल की निम्नलिखित पंक्तियाँ एकदम नाटकीय मुद्रा लिए हुए हैं। ऐसा लगता है कि कवि हम पाठकों से संवाद करते हुए दीख रहे हैं-

> ''मैंने खुद को समझाया यार/ उस जगह खाली हाथ जाने से इस तरह / क्यो, भिभकते हो?/ क्या तुम्हें किसी का सामना करना है?/तुम वहाँ कुआँ झाँकते आदमी की सिर्फ पीठ देख सकते हो/ और सहसा मैंने पाया कि मैं खुद अपने सवालों के/[114]

इसी तरह कवि धूमिल अपनी 'आतिश के अनार-सी वह लड़की' शीर्षक कविता के माध्यम से समस्त नारी जाति को नाटकीय संवादात्मक शैली में संबोधित करते हुए कहते हैं-

> ''ओ प्यारी भाभियो !/ ओ नटखट बहिनो!/ सिंगार-दान
> को छुटी दे दो/आईने से कहो वह कुछ देर अपना अकेलापन
> घूरता रहे/ कन्धी को झड़े हुए बालों की याद में गुनगुनाने
> दो/ रिबन को फेक दो 'बाडिस' की अलगनी पर/ यह चोटी
> करने का वक्त नहीं और न बाजार का? बालों को ऐंठकर
> जूड़ा बाँध लो/ और सब के सब मेरे पास आ जाओ/
> देखो, मैं एक नई और ताजा खबर के साथ/ घर की दहलीज
> पर खड़ा हूँ/''(115)

कवि धूमिल जब भी अपनी कविताओं में शब्दों को फिट करते हैं; तब सबसे पहले उनको अपनी भाषा की चरित्र तय करना होता है। उन्हें हर वक्त इस बात का बराबर ध्यान रहता है कि उन्हें आम जनता की बोली में शामिल होना है। प्रभात कुमार त्रिपाठी के अनुसार ''बेशक उनकी बोली में भाषण का अंदाज कई जगह मौजूद है, जो कविता की नफ़ीस धारणा को अपने काव्य-संसार में घुसने की इजाजत ही नहीं देता।''(116) उदाहरणार्थ कवि धूमिल ने राजकमल चौधरी पर कविता लिखते हुए कहा है-

> ''जीभ और जाँघ के चालू भूगोल से/ अलग हटकर उसकी
> कविता/एक ऐसी भाषा है, जिसमें कहीं भी/लेकिन, शायद
> अगर नहीं है।''(117)

जहाँ संवादों की सरलता एवं सहजता कवि धूमिल की कविता को रोचकता प्रदान करती है, वहीं उनमें नाटकीयता के गुण विशेष भी स्पष्ट होने लगते हैं। उनकी कविता में अभिव्यक्त संवादात्मक शैली ही उनकी संपूर्ण काव्य-भाषा को आम जीवन की आवश्यकताओं के करीब की भाषा बनाने में अधिक सक्षम है। कवि धूमिल ने अपनी कविता 'भाषा की रात' में देश के युवकों के साथ वार्तालाप करते हुए कहा है-

> ''तुम्हें वक्त में/ वापस खींच लाने की कोशिश में/ लगा
> हूँ/नहीं मुझे इस तरह/ डबडबाई आँखों से/ मत घूरो/ मैं
> तुम्हारे कुनबे का आदमी हूँ/ शरीफ हूँ/ फिलहाल/ तुम्हें
> गलत जगह डालने का मेरा कोई इरादा नहीं है।''(118)

इस प्रकार कवि धूमिल यत्र-तत्र सर्वत्र मात्र संवाद ही नहीं; बल्कि सार्थक संवाद वार्तालाप स्थापित करने की भरसक कोशिश में रहे हैं। वस्तुत: कवि धूमिल की कविता भले ही किसी बौखलाए हुए आदमी का 'हलफनामा' 'वक्त व्य' या 'एकालाप' हो; पर वह अपने मूल में संवादात्मक की स्थिति लिए रहती है। इसे झुठलाया नहीं जा सकता है।

कवि धूमिल की संवादात्मक शैली देखकर ऐसा प्रतीत होता है, जैसे वे अपने पाठकों से आमने-सामने बैठकर बतिया रहे हों। इनकी संवादात्मक शैली की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए डॉ. अरविंद पांडेय का कथन है- ''उन्होंने सही आदमी के साथ सही सार्थक भाषा, कविता और वक्तव्य भी ईजाद किया। वक्तव्य का स्वभाव काव्य को संवाद में बदल देता है। ऐसे ही प्रसंग अपने संदर्भ में पूर्ण नाटकीय हो उठते हैं। वक्तव्य और संवाद अपना सहभागी चाहते हैं।(119) इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कवि धूमिल की काव्य-शैली की शक्ति का एक प्रमुख आधार उसकी जीवंत संवादात्मकता भी है, जिसकी चर्चा किए बिना समकालीन कविता का परिप्रेक्ष्य अधूरा है।

कहना न होगा कि कवि धूमिल की कविताओं में जो कोर्ट-कचहरी की शब्दावली का प्रयोग हुआ है, वह सटीक भावाभिव्यंना अभिव्यक्त करने में सफल हैं। डॉ. काशीनाथ सिंह कहते भी हैं- ''धूमिल की कविताओं में कचहरी की सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका है। कचहरी ने उसे इतने और ऐसे शब्द और मुहावरे दिये जिनसे हिंदी कविता बिल्कुल अनजान रही है।''(120) धूमिल की कविताओं में अभिव्यक्त हलफनामा, अदालत, पेशेवर तस्कर-संकेत, जरायमपेशा, दलाल, कार्यवाही, इश्तिहार आदि कोर्ट-कचहरी की शब्दावली द्वारा भावाभिव्यंजना दूर-दूर तक फैली हुई है। डॉ. काशीनाथ सिंह के अनुसार- ''उन दिनों नई-कवितावादियों ने अपनी दब्बू, विनीत और मध्यवर्गीय कुंठाओंवाली कविता की वकालत में कहना शुरू किया था कि शब्दों के अर्थ खो गए हैं, वे गलत जगह रख दिए गए हैं- संदर्भच्युत हो गये हैं। धूमिल ने अपनी कविता में शब्दों को सही संदर्भ में रखना शुरू किया- सही जगह पर और लोगों ने देखा कि सही संदर्भ पाकर वे शब्द 'डाइनामाइट' की तरह हुए जा रहे हैं। उनमें विस्फोटक क्षमता आ गयी है। ऐसे ही इस सख्त और बेमुरव्वत जमाने में नई कवितावादियों के कोमल, मुलायम और लहरियादार शब्द प्रभावहीन और ढुलमुल हो गए थे। उसने इनके विपरीत कठोर और नुकीले शब्द चुने, उन पर धार दी, उन्हें पैना किया और वाक्यों में बाँध कर फेंकता रहा। अपनी तरफ से पूरी ताकत लगाकर उस आदमी को मारता रहा।(121)

> ''जो आदमी के भेस में/ शातिर दरिंदा है/ जो हाथों और
> पैरों से पंगु हो चुका है/ मगर नाखून में जिंदा है/ जिसने
> विरोध का अक्षर-अक्षर अपने पक्ष में तोड़ लिया है।''(122)

उपर्युक्त पंक्ति यों में प्रयुक्त शब्द अपने भावाभिव्यंजना अभिव्यक्त करने में सक्षम है। अत: कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि कवि धूमिल ने जगह-जगह पर ऐसी शब्दावली का प्रयोग कर भावाभिव्यंजना को सफल बनाया है।

5.3 छंद एवं लयात्मकता का प्रयोग

समकालीन कविता के पहले से ही कवियों एवं आलोचकों में कविता में तुक

और लय आदि के प्रति एक हिचक-सी पैदा हो गई थी; किंतु धूमिल ने मुक्त छंद का प्रयोग करते हुए भी तुकों एवं लय के प्रति आग्रह दिखाया है। तुकांतता के द्वारा उन्होंने अपने काव्य-शिल्प को एक अलग अंदाज एवं तेवर दिया है। यद्यपि वे एक स्थान पर 'निष्ठा का तुक विष्ठा से मिलाने' का उदाहरण देकर समकालीन तुकबंदी पर व्यंग्य करते हैं। क्योंकि हिंदी के समकालीन नए कवियों ने शिल्प के क्षेत्र में सबसे अधिक आंदोलन छंद को लेकर ही किया। तुक, लय और मुक्त छंद के संदर्भ में रामविलास शर्मा ने ठीक ही कहा है- ''यथार्थवादी कविता के लिए यह आवश्यक नहीं कि उसमें मुक्त छंद का बहिष्कार हो। मुक्त छंद भी आखिर छंद है, मुक्त गद्य नहीं। उसमें लय का निर्वाह होना चाहिए।''(123) कहना न होगा कवि धूमिल ने तुकों का बड़ा सर्जनात्मक प्रयोग किया है। 'भाषा में/ भदेश हूँ/ इस कदर कायर हूँ/ कि उत्तर प्रदेश हूँ' या 'निष्ठा का तुक विष्ठा से मिला दूँ' (कवि 1970) जैसी काव्य पंक्तियाँ सिर्फ चमत्कार या चौकानेवाली तुकांतता ही नहीं हैं; बल्कि दो सर्वथा अप्रत्याशित या विपरीत वस्तुओं-स्थितियों के समक्षीकरण द्वारा विसंगति की अभिव्यक्ति भी है।

धूमिल की कविता में अभिव्यक्त तुकों के संदर्भ में नेमिचंद जैन का कथन है- ''पहले भी कुछेक कवियों ने तुकों का ऐसा इस्तेमाल किया है, पर धूमिल की कविताओं में वे जितनी विस्फोटक रूप में कारगर हुई हैं वैसी और किसी के यहाँ नहीं। यह ठीक है कि तुकों के प्रयोग से एक तरह का बनावटीपन पैदा होता है, पर कुछ संयम बरतने पर (जैसा कि अक्सर धूमिल में है) कविता को आम पाठक या श्रोता तक पहुँचाने में उससे मदद मिलती है और कथ्य का भारीपन या उसकी नीरसता कम होती है। कम-से-कम धूमिल की कविताओं में तुकों का प्रयोग बहुत कारगर और कथ्य के उपयुक्त ही है। उनकी हाल की कविताओं में तुकों का प्रयोग नहीं है और उसके कारण एकाध अपवाद के अलावा उनमें कोई सूक्ष्मता बढ़ने के बजाय उनकी सहज संप्रेषणीयता कुछ कम ही हुई है।''(124)

धूमिल कभी-कभी एक ही पंक्ति के बाद तुक को दुहरा भी देते हैं। उसके उदाहरण हम देख चुके हैं। तुक के आग्रह के लिए 'इन्टरलॉक' करने की प्रवृत्ति धूमिल में अधिक पाई जाती है। कभी-कभी कई पंक्तियों के बाद भी तुकों का प्रयोग हुआ है। इस तरह के प्रयोग उनकी कविताओं में ज्यादा हुआ है। उनकी कविता में सहायक क्रिया के साथ संज्ञापद का तुकांत उदाहरण द्रष्टव्य है- 'कुछ रोगी हैं/कुछ भोगी हैं/ कुछ हिजड़े हैं/ कुछ जोगी हैं।''(125)

प्रसंगवश कहा जा सकता है कि धूमिल की प्रत्येक कविता में मुक्त छंन्द का प्रयोग है; किंतु उसे पढ़ने में एक प्रवाह को ध्वनि और लय के बिना किसी प्रयास से पकड़ा जा सकता है। प्रत्येक प्रवाह के ठहराव के बाद आनेवाले ध्वनि-समूह का तुक बाद में आनेवाले प्रवाह के ठहराव से अक्सर मेल खा जाता है। धूमिल ने इस तुक का प्रयोग सायास नहीं किया है; बल्कि उन्होंने कहीं भी तुक को जोड़ने का प्रयास नहीं किया है। जो जहाँ जैसे

आ गया और उसे अपनी भाषा शिल्प में कुछ अर्थ पूर्ण देने लगा। धूमिल ने तुरंत उसे अपने काव्य-शिल्प का अंग बना लिया। धूमिल की 'मोचीराम' शीर्षक कविता में हर दूसरी, तीसरी तथा चौथी लाइन से तुकबंदियों का मेल है; जो सहजता से आई हैं। उदाहरणार्थ - 'टांकता हूँ' से 'निबाहता हूँ' का, 'अक्लमंद है' से 'पाबंद है' का, 'घड़ी है' से 'हड़बड़ी है' का, 'बिसाती है' से 'नाती है' का, 'बिसूरता है' से 'घूरता है' का, 'खटवाता है' से 'नट जाता है' का तथा 'गुर्राता है' से 'बढ़ जाता है' का तुक सहज गति से कविता में प्रयुक्त हुए हैं।

प्रसंगवश नेमिचंद जैन ने ठीक ही कहा है ''धूमिल की प्राय: सभी कविताएँ छंद में या छंद जैसी लयवाले गद्य में हैं। मगर उसकी रवानी में कोई बनावट नहीं है; बल्कि ऐसी सहज अनिवार्यता है कि पढ़ने या सुननेवाला उसमें अनायास बहता जाता है। इस निरंतरता और प्रवाह के लिए धूमिल वाक्य को झटके के साथ अप्रत्याशित जगह बीच से तोड़कर एक के बाद दूसरी पंक्ति में फैलाते जाते हैं जिससे विचार एक पंक्ति से दूसरी पंक्ति तक अनिवार्य रूप से बहता जाता है और पंक्तियाँ एक-दूसरे के साथ जुड़ी हुई लगती हैं।(126)

कवि धूमिल की कविताओं में प्रयुक्त लयात्मकता की तुलना अन्य कवियों की कविता में प्रयुक्त लयबद्धता से किया जा सकता है। इस संदर्भ में धूमिल की 'पटकथा' और मुक्तिबोध की 'अन्धेरे में' कविता को लिया जा सकता है। डॉ. हुकुमचंद राजपाल के अनुसार- ''मक्ति बोध ने 'अंधेरे में' में देशज की भयावहता की जो फंतासी दी, उसका विस्तार धूमिल की 'पटकथा' तक हुआ है। इन दोनों कविताओं की लय विभिन्न परिवेशों के बावजूद एक-सी है। व्यवस्था के आतंक से उपजा आत्मविस्मरण मुक्ति बोध की कविता 'अंधेरे में' में यों है।''(127) ''पीटे हुए बालक-सा मार खाया चेहरा/ उदास इकहारा/ स्लेट-पट्टी पर खींची गयी तस्वीर/ भूत जैसी आकृति/क्या वह मैं हूँ/ मैं हूँ?'' लगभग ऐसे ही यातना की लयात्मकता का कवि धूमिल की कविता 'पटकथा' में ज्यों का त्यों प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ देखिए -

> ''मैं अक्सर अपने आप से सवाल/ करता हूँ- / जिसका
> मेरे पास/कोई उत्तर नहीं है/ और आज तक- / नींद और
> नींद के बीच जंगल काटते हुए/ मैंने कई रातें जागकर गुजार
> दी है।''(128)

वस्तुत: धूमिल ने कविता की रचना लयात्मकता-संगीतात्मकता का प्रभाव उत्पन्न हेतु नहीं; बल्कि युगीन विसंगतियों के प्रकाशन के लिए की है। उनके काव्य में लयबद्धता सरल, सहज एवं स्वाभाविक रूप से आई है; जो तुकों के रूप में अभिव्यक्त हैं। तुक और लय ये दोनों धूमिल की कविता में यों ही आ टपके हैं बिना प्रयास के।

कहना न होगा कि धूमिल ने अपने काव्य-शिल्प के लयात्मक विधान में छंद आदि के क्लासिक अनुशासन के बंधन को स्वीकार नहीं किया है। लेकिन फिर भी उनके काव्य

में लयबद्ध संरचनाओं का समर्थ कौशल झलकता है। उनकी बहुत-सी कविताएँ स्वर-समृद्धि और लयात्मक संवेदना की सूक्ष्मता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

सपाटबयानी एवं चुस्तबयानी का प्रयोग : समकालीन कवियों ने अपनी कविताओं में एक प्रकार से प्रत्यक्ष कथन विधि को बहुत अधिक महत्त्व दिया है। डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय के अनुसार- ''प्रत्यक्ष कथन विधि ही सपाटबयानी है।'' (129) डॉ. मनोज सोनकर के मतानुसार- ''सपाटबयानी का मतलब 'अकलात्मकता नहीं है, इसका अर्थ 'कलात्मकता आग्रहों' का त्याग है। 'नयी कविता कलात्मक आग्रहों से बोझिल थी, अत: उसमें दुर्बोधता आ गयी थी। इस दुर्बोधता के कारण वह विशिष्ट व्यक्तियों, विद्वानों, आलोचकों, खास किस्म के रसिकों तक सीमित हो गई थी। साठोत्तरी कविता आम आदमी की कविता है, जन साधारण की कविता है। अत: कवियों का लक्ष्य उसे विशिष्ट लोगों तक सीमित न रखकर, आम आदमी तक पहुँचाता है। जन साधारण तक ले जाता है। इसलिए उन्होंने 'कलात्मक आग्रहों' का त्याग कर, 'सपाटबयानी' को अपनाया है, शिल्प में सादगी को प्रमुख स्थान दिया है'' (130)

वास्तव में धूमिल के काव्य में प्रयुक्त 'सपाटबयानी' का महत्त्व अधिक है। महेंद्र कार्तिकेय का कहना है कि सपाटबयानी में बिंबों का समावेश चाहे वे कैसे भी बिंब क्यों न हो अनुचित है। उनके मतानुसार - ''बिंब और सपाट बयानी दो विरोधी चीजें हैं। सपाट बयानी कविता का अनिवार्य तत्व नहीं हो सकता। काव्य और गद्य में जो अंतर है, वही अन्तर बिंब और सपाटबयानी में है।''(131) डॉ. नामवर सिंह ने उपर्युक्त मत से पूरी तरह असहमति प्रकट करते हुए कहा है कि सपाटबयानी का अर्थ बिंब रहित होना नहीं है। उनका यह भी कहना है कि रोजमर्रा की जिंदगी से लिए गए बिंबों को अनदेखा नहीं कर सकते। अत: स्वाभाविक है कि सपाटबयानी के साथ बिंब-प्रतीक का समावेश होना अनिवार्य है।

पर यह स्पष्ट है कि धूमिल के शब्द प्रयोग में प्राय: प्रतीक की समाविष्टि रहती है। जूता, लोहा, जंगल, घास, नींद, रोटी, भूख इत्यादि शब्द अपने कोशगत अर्थ तक ही सीमित नहीं हैं- इससे स्पष्ट है कि उसकी काव्य-भाषा प्रतीकात्मक है। डॉ. हुकुमचंद राजपाल का अभिमत है ''इस प्रकार धूमिल की काव्य भाषा को प्रतीकात्मक सपाटबयानी कहना उचित होगा। सपाटबयानी लगती है पर उसका अर्थ-संदर्भ अथवा प्रसंग से जानने पर उसके विस्तार एवं व्यापक होने का बोध सहज ही हो जाता है।''(132)

धूमिल के काव्य-शिल्प में प्रयुक्त सपाटबयानी के अनेकों उदाहरण हमें देखने को मिल जाते हैं। मात्र एक छोटी-सी शीर्षक कविता 'रोटी और संसद' को देखे तो इसे सपाटबयानी, लयात्मकता एवं मुक्तछंद की दृष्टि से एक सशक्त उदाहरण कह सकते हैं -

''एक आदमी/ रोटी बेलता है/ एक आदमी रोटी खाता/
एक तीसरा आदमी भी है/ जो न रोटी बेलता है, न खाता
है/वह सिर्फ रोटी से खेलता है/ मैं पूछता हूँ/ यह तीसरा
आदमी कौन है/ मेरे देश की संसद मौन है।''(133)

वस्तुत: धूमिल की 'पटकथा' शीर्षक कविता को सपाटबयानी का सबसे अच्छा उदाहरण कहा जा सकता है। इस कविता के संबंध में कतिपय आलोचकों ने यह आरोप लगाया है कि सपाटबयानी के कारण ही यह कविता शिथिलता का बोध कराती है। शिल्प की दृष्टि से 'पटकथा' का भाषिक शिल्प, गद्य की भाषा शिल्प अथवा वक्त व्य जैसे नजर आते हैं। इससे कविता में कसाव की जगह शिथिलता आ गई है। अत: इस कविता को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता-

"मैंने कहा आजादी..../ मुझे अच्छी तरह याद है-/
मैंने यही कहा था/ मेरी नस-नस में बिजली/ दौड़ रही थी/
उत्साह में/ खुद मेरा स्वर/ मुझे अजनबी लग रहा था/
मैने कहा आ-जा-दी।" (134)

सपाटबयानी के कारण ही धूमिल द्वारा आजादी के उल्लास का यह वर्णन अपनी अलग अहमियत रखता है। यही नहीं ऊपर से देखने पर जो गद्य की भाषा प्रतीत होती है उस सपाटबयानी के भीतर क्या कुछ अदृश्य है? उसका एक अन्य उदाहरण इसी 'पटकथा' कविता से उद्धृत किया जा रहा है-

"मैंने देखा हर तरफ ×××/ गिरते हुए लोग हैं/ अकड़ते
हुए लोग हैं/भागते हुए लोग हैं/ पकड़ते हुए लोग हैं/ गरज़
यह कि हर तरफ के लोग हैं/एक-दूसरे से नफरत करते हुए
वे/ इस बात पर सहमत हैं कि इस देश में/ असंख्य रोग हैं/
और उनका एक मात्र इलाज चुनाव है।"(135)

उपर्युक्त 'पटकथा' के दोनों उद्धरणों की सपाटबयानी में एक प्रवाह है, वाक्यों में सरलता एवं लघुता है तथा तुक एवं लयात्मकता है। वे एकदम तेजी से उठते हैं और धूमिल के काव्य-शिल्प में स्थान पा जाते हैं। कवि धूमिल की चुस्तबयानी पर प्रकाश डालते हुए राहुल ने कहा है- "धूमिल की अधिकांश अच्छी कविताओं की संरचना चुस्त फिरकेबाजी पर ही निर्भर है। यह फिरके बाजी विशेषत: कुछ सुनिश्चित सामान्यीकरण के रूप में है; जिसे वे विशिष्ट मुहावरों के रूप में प्रस्तुत करते हैं। संभवत: इन फिरकों के आधिक्य के कारण ही कुछ आलोचक उनके चुस्तबयानी को उनकी कविता की मौलिक चारित्रिक विशेषता कहते हैं।"(136) कवि धूमिल की कविताओं में सपाटबयानी एवं चुस्तबयानी में फर्क करना मुश्किल का काम है। इस संदर्भ में धूमिल की 'बीस साल बाद' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ द्रष्टव्य करना चाहेंगे-

बीस साल बाद/ मैं अपने/ आप से एक सवाल करता हूँ/
जानकर बनने के लिए कितने सब्र की जरूरत होती है?

× × ××

अपने-आप से सवाल करता हूँ/ क्या आजादी सिर्फ तीन थके

हुए रंगों का नाम है/ जिन्हें एक पहिया ढोता है/ या इसका
कोई खास मतलब होता है?''(137)

उपर्युक्त पंक्तियाँ हमें सूक्ति का भी आभास दिलाती है। चुस्तबयानी को धूमिल की कविताओं का एक मूलभूत चारित्रिक विशेषता बताते हुए डॉ. रणजीत ने कहा है- ''इन संश्लिष्ट काव्यात्मक सूक्तियों में कहीं जीवन के किसी गहरे सत्य में मार्मिक अभिव्यक्ति दी गई है, कहीं परिवेश की बेहूदगियों के प्रति कवि की आक्रोशपूर्ण प्रतिक्रिया है, कहीं जबान दराजी है, कहीं एक सार्थक नयी उपमा या रूपक के माध्यम से शब्दों की समाहार शक्ति के साथ सार्थक खिलवाड़ है ('गर्म कुत्ता' खा रहे थे, 'सफेद घोड़ा' पी रहे थे) और अनेक स्थलों पर वस्तुओं और स्थितियों को अपने नई पारिभाषित करने की ईमानदार कोशिश है।''(138)

लंबी कविता का प्रयोग : कवि धूमिल समकालीन कविता के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उन्होंने छोटी और लंबी दोनों ही प्रकार की कविताएँ लिखी हैं। डॉ. नामवर सिंह ने समकालीन छोटी कविता और लंबी कविता के भेद को स्पष्ट करते हुए लिखा है- ''छोटी कविता मूलत: गीत कविता है, जबकि लंबी कविता नाटकीय कविता होती है।''(139) इस दृष्टि से धूमिल के काव्य शिल्प में छोटी एवं लंबी कविताओं का जिक्र होना जरूरी कार्य है। लेकिन हम यहाँ अपनी सीमा में 'रोटी और संसद' तथा 'पटकथा' शीर्षक वाली कविता को ही उद्धृत किया है। कवि धूमिल शिल्प के कारण ही समकालीन कवियों में बहुत अधिक टिकाऊँ रहनेवाले कवि साबित हुए हैं। इसी संदर्भ में वशिष्ठ मुनि ओझा ने कहा- ''समकालीन कविता को इतना बड़ा शिल्प देनेवाले कवि धूमिल को सौ साल तक पढ़ा जाता रहेगा। धूमिल की सबसे छोटी कविता 'रोटी और संसद' शिल्प की दृष्टि से बेजोड़ है।''(140) इस पूरी कविता को उद्धृत किया जा चुका है। अत: यहाँ उसको उद्धृत करना अनुचित है। इस कविता के शिल्प संबंधी खास बात क्या है? मात्र उसकी चर्चा करेंगे।

कवि धूमिल जब कहते हैं 'एक आदमी/ रोटी बेलता है।' बाद में कहते हैं 'एक आदमी रोटी खाता है।' 'रोटी' पहले बेली जाती है। बाद में उसे सेंकी जाती है, फिर कहीं उस रोटी को खाई जाती है। क्रम इस प्रकार होना चाहिए। लेकिन कवि धूमिल इस क्रम को बदल देते हैं। आखिर क्यों बदल देते हैं? क्योंकि उन्हें यह कहना है कि एक बदमास है जो 'रोटी से खेलता है'। यहाँ खेलने का अंदाजे बयान का तुक बेलने से लिया है। वस्तुत: तुक का कारगर उपयोग या इस्तेमाल करना कोई समकालीन कविता में सीखे; तो धूमिल से। यह सीखने की चीज है। कविता की टेकनिक सीखी जा सकती है। यही नहीं धूमिल की अंतिम पंक्ति देखिए- ''मैं पूछता हूँ, वह तीसरा आदमी कौन है? मेरे देश की संसद मौन है।'' यहाँ भी तुक का ही निर्वाह हुआ है। कवि अंतिम पंक्ति में जो कुछ कहते हैं असल में संसद में बैठा हुआ वही आदमी चोर है।

धूमिल बड़ी क्षिप्रता के साथ कम शब्दों में अपनी टेकनिक के कारण बिना किसी

लाग लपेट के कह जाते हैं। बहुत लोग उस तकनीक (शिल्प) को बरकरार रखने की असफल कोशिश में रहे हैं; किंतु धूमिल का शिल्प आगे चलकर भी टिकेगा। 'रोटी और संसद' शीर्षक की जो विशेषता है, वह अर्थ प्रधान की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मानी गई है। प्रगतिशील कवियों का मानना है कि कविता 'कान्टेन्ट' (विषयवस्तु) से पहचानी जाती है। धूमिल ने इस बात को नकारा है; क्योंकि उनकी इस कविता ने अर्थ अधिक दिये हैं। यह भले ही छोटी-सी कविता है, लेकिन बेजोड़ है। यह छोटी-सी कविता कवि के निशाना साधने की कला को उजागर करती है। बातचीत के दौरान वशिष्ठमुनि ओझा ने कहा है- ''धूमिल का गुस्सा आदी कवि वाल्मीकि की तरह था। वाल्मीकि ने अपने प्रथम अवस्तूप (उद्‌गार) में क्रोधावेश में जो कुछ कहा है वह अर्थ प्रधान है। वह यह गुस्सा है- ''जा पापी जा निशाद तुम्हें शाश्वत प्रतिष्ठा नहीं मिलेगी।' यहाँ कवि का गुस्सा ही निशाना के रूप में उभरा है।''(141) और इसके अतिरिक्त कुछ नहीं है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि कवि धूमिल का निशाना कितना सधा हुआ है। इस बात को कहने के लिए उनकी यह कविता ही पर्याप्त है। कविता में जो आदमी रोटी खाता है; वह खाने का हकदार है। जो रोटी बेलता है; वह भी रोटी के उपयोग का हकदार है। क्योंकि वह श्रम करता है। जो तीसरा व्यक्ति है वह न तो श्रम करता है न तो श्रम से उपजी वस्तु का सदुपयोग करता है। वह बरबाद करता है। वह संसद के उस तबके का आदमी है। जो हमारे देश को, समाज को, हमारी मानवता को बरबाद करता है। संसद में इस तरह मार करनेवाली कविता शायद ही किसी ने लिखा होगा।

कवि धूमिल ने अपनी 'पटकथा' शीर्षक कविता के शिल्प का जो ताना-बाना बुना है। संभवत: उन्होंने मुक्तिबोध की लंबी कविता 'अंधेरे में' प्रभावित होकर लिखा है। मुक्तिबोध पूरी कविता को फैंटेसी के माध्यम से समाप्त किया है। 'पटकथा' कविता में भी फैंटेसी का प्रभाव देखा जा सकता है। बलदेव वंशी के अनुसार ''पटकथा फैंटेसी के मिश्रण से राजनीतिक सामाजिक यथार्थ को लेकर डब की गई ऐसी चित्रकथा है, जो पर्दे पर उन चुने हुए दृश्यों को लाती है, जिन्हें एक मार्क्सवादी रुझान और लेखकीय ईमान के तर्क से संजोया गया है और जिसका तर्क युगीन आधुनिकता की अपेक्षा युगीन मानवीयता है।''(142)

'पटकथा' एक ऐतिहासिक कविता है; जिसमें स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, मूल्यहीनता तथा निरर्थकता बोध के तनाव को सृजन का केंद्रीय आधार बनाकर आत्मप्रलाप तथा नाटकीय शैली में लिखी गई कविता है। डॉ विश्वंभरनाथ उपाध्याय के अनुसार इस कविता में 'मुहावरे का चटकीलापन' है, 'कथन के बीच क्रिया' से जन्मी नाटकीयता है और इस कविता में किस्सागोई की विस्तारवादी विधि को अपनाया गया है। उन्हीं के शब्दों में देखिए ''उनके मुहावरे का चटकीलापन पाठक को मोह लेता है।.... नाटकीयता 'कथन के बीच क्रिया' के विन्यास से आती है।.... सब कुछ समेटने के चक्कर

में 'पटकथा' एक सुगठित रचना नहीं बन सकी।... पुरानी कहानियों में दृश्य वर्णन का तरीका यह था, कि किस्सागो, जो चीज या घटना सामने आती थी, उसका विशद मगर दिलचस्प वर्णन करने लगता था। यही विधि 'पटकथा' में भी है।''(143) वस्तुत: 'पटकथा' में अनावश्यक विस्तार तो है ही; फैंटेसी रचने का असफल प्रयास भी दिखाई पड़ता है। जब कि कविता का सूक्ष्म विश्लेषण करें तो स्पष्ट हो जाता है कि लय, छंद, तुक तथा चुस्त एवं सपाटबयानी के संदर्भ में सफल प्रयास कहा जा सकता है। शिल्पगत अन्य कमजोरियों के बावजूद भी, यह कविता ऐतिहासिकता लिए हुई है।

प्राय: सभी आलोचकों ने धूमिल की भाषाई प्रयोग, उसकी संप्रेषणीयता में गांव-देहात के स्थानीय मुहावरों शब्दावलियों के प्रयोग को सराहना की है। अक्षय उपाध्याय के मतानुसार- ''भाषा का सजीवतम प्रयोग समकालीन कविता में सबसे पहले और बड़ी सार्थकता के साथ उन्होंने किया और असामाजिक एवं हरिजन शब्दों को कविता में उतारा और भाषा को उसके अभिजात्य से मुक्त किया। भाषा की इस उपयोगिता की ओर सबसे पहले लोगों का ध्यान खींचा। काव्य-भाषा के साथ जनभाषा का ताल-मेल हिंदी कविता के लिए एक नई शुरुआत हुई। वे बराबर उस भाषा को नकारते रहे; जो खूबसूरत तो हो परन्तु जरूरी नहीं। उनके अनुसार सही भाषा वह भाषा है जिसे अनर्गल करार देकर संसदीय कार्रवाई से बाहर निकाल दिया गया है।''(144) अक्षय उपाध्याय के उक्त कथन को 'पटकथा' शीर्षक कविता के भाषा-शिल्प से जोड़ा जा सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है।

धूमिल की भाषाई विशिष्टता को उनके व्यंग्य ने काफी हद तक चमत्कृत किया है। व्यंग्य ही उनके काव्य शिल्प की मूलशक्ति रही है। बलदेव वंशी ने कहा भी है- ''व्यंग्य, वस्तुत: एक सक्षम कवि के हाथों पड़कर जो प्रहार शक्ति अर्जित करके तेज हथियार बन जाता है, उसकी संभवानाओं को धूमिल ने विकसित करने में पर्याप्त योग दिया है। परस्थ और आत्मव्यंग्य के द्वारा जो विचार उभरता है उसकी मारक शक्ति 'पटकथा' के अभिव्यंजनागत कौशल को प्रकट करती है।''(145)

चूँकि 'पटकथा' शीर्षक कविता की शुरुआत और अंत सपाटबयानी के माध्यम से हुई है। लेकिन सपाट वक्तव्यों में कही हुई बातों में अत्यधिक अर्थों एवं आशयों के सम्प्रेषित करने की शक्ति का परिचायक है। 'पटकथा' कविता में अधिकांशत: सपाट वक्तव्य एवं इकहरापन ही ज्यादा है उदाहरणार्थ धूमिल की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं-

> यह सच है कि इन दिनों/ मंत्री जब प्रजा के सामने आता
> है/ तो पहले से/ कुछ ज्यादा मुसकराता है।''(146)

स्पष्ट है कि 'मंत्री' का 'मुसकराना' बहुत अर्थगर्भित लिए हुए है। समसामयिक राजनीतिक प्रसंग में इसके कई अर्थ निकलते हैं। बलदेव वंशी के अनुसार ''मंत्री की ज्यादा मुसकराहट में एक यह अर्थ हो सकता है कि वह जनता की मूर्खता और अपनी सफलता पर मुसकरा रहा है या वह जनता को पहले से ज्यादा मूर्ख बना रहा है। फिर उसकी यह

मुसकराहट उस न्यायाधीश की-सी भी लगती है; जो सजा सुन चुके व्यक्ति की गिड़गिड़ाहट पर अधिक साभिप्राय होकर चमक उठती है- न्यायाधीश उस गिड़गिड़ाहट की व्यर्थता, मासूमियत और कातरता पर हँसता है या यह हँसी मदारी की चालाकी भरी सफलता से भीगी हुई लगती है। कुछ भी हो, इस मुसकराहट में हरी पत्तियों में लगी आग से उठते दमघोंट कडुवे धुएं के जहर से कम घातक प्रभाव नहीं है, जो हँसते-खेलते हृदयरोगी के क्षणों में ही प्राण ले लेता है। उपर्युक्त पंक्तियों में, धूमिल ने इस मुसकराहट की घातक अमूर्तता को मूर्त कर दिया है।''(147) वे तथाकथित साम्यवाद और पूँजीवाद के नकली लोकतंत्र के नाटक को अच्छी तरह पहचानते रहे हैं।

5.4 धूमिल का काव्य : शिल्पविधान एवं प्रयोग

किसी भी साहित्यिक कृति की श्रेष्ठता रचयिता की अनुभूति की गहराई तथा सच्चाई पर निर्भर होती है। उसकी अनुभूति दरअसल अभिव्यक्ति को प्रभावकारी स्वरूप प्रदान करनेवाली शिल्प-विधि पर आश्रित होती है। कोई भी रचनाकार अपनी अनुभूतियों को रूपायित करने हेतु जो विधि अपनाता है, उसे हम शिल्प-विधान कहते हैं।

काव्य - शिल्प के संदर्भ में अपना विचार प्रकट करते हुए डॉ. शिवपाल सिंह ने कहा है ''शिल्प शैली की भाँति अभिव्यक्ति और अनुभूति के प्रकाशन का साधन है। शिल्प की उच्चता और सुंदरता पर ही काव्य की उत्तमता निर्भर रहती है। शिल्प ही यदि त्रुटिपूर्ण है; तो काव्य में दोनों की स्थिति अनिवार्य और आवश्यक हो जाती है। अत: अपने काव्य को अधिकाधिक सशक्त , समर्थ, आकर्षक और लोकप्रिय बनाने के लिए कवि को एक उच्च शिल्प की आवश्यकता पड़ती है। कोरी अनुभूति या प्रतिभा से ही साहित्य की रचना नहीं होती। इसके लिए शिल्प भी उसी प्रकार आवश्यक है; जैसे शरीर की रक्षा और सुंदरता हेतु वस्त्राभूषण। इसलिए साहित्यकार का यह पुनीत कर्तव्य है कि वह अपने शिल्प को विकासगामी और आकर्षक बनाए तथा नवीन शिल्प पद्धतियों का विकास कर, अपनी आंतरिक अनुभूतियों का चित्रण करें।''(पंत का काव्य शिल्प, पृ.44)

5.41 शिल्प संबंधी विवेचन : शिल्प संबंधी विवेचन पर विचार करने के पूर्व शैली और शिल्प के संबंध अंतर को जान लेना अतिआवश्यक है। आजकल दोनों के विषय में अधिक भ्रामकता की स्थिति फैली हुई है। कुछ विद्वानों ने शैली को शिल्प विधान का पर्यायवाची मानना है; तो कुछ लोगों ने शैली को शिल्प विधान की संज्ञा दी है। वास्तव में इन दोनों में सूक्ष्म अंतर है। अत: दोनों में भेद करना कठिन-सा हो जाता है। डॉ. शिवपाल सिंह ने शैली और शिल्प में अंतर स्पष्ट करते हुए कहा है- ''शैली भी एक विधान है; किंतु शैली का यह विधान शिल्प विधान के अंतर्गत नहीं आता है। शैली सौंदर्य वर्णन का एक साधन तत्व और उपकरण मात्र है। शिल्प विधान भी सौंदर्य वर्णन के साधनों के बल पर कवि की अमूर्त अनुभूति को मूर्त रूप प्रदान करता है और शैली वह विधान है जो इसका

प्रकाशन करता है। इसे ऐसे भी कह सकते हैं कि शैली अभिव्यक्ति की एक मुख्य प्रणाली है और शिल्प अभिव्यक्ति का एक प्रमुख साधन है। अभिव्यक्ति में चमत्कार करने का कार्य शिल्प करता है। इस प्रकार शिल्प और शैली दोनों ही अभिव्यक्ति के साधन हैं। इससे स्पष्ट है कि शैली प्रकाशन और अभिव्यक्ति का माध्यम है। इसमें बनावटी और कृत्रिम कुछ भी नहीं होता है। शैली लिखने का ढंग है जो भाव से भिन्न होता है। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि शिल्प और शैली में निकट का संबंध है। 'शैली' शिल्प का एक मुख्य अंग है।''(148) लेकिन हमने इस शोध प्रबंध में शैली को एक स्वतंत्र उपअध्याय के रूप में अध्ययन किया है। अत: यहाँ इसकी चर्चा अनुचित है।

शिल्प के संबंध में अनेक पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने विशदता एवं सूक्ष्मता के साथ विवेचना की है। अत: यहाँ उसकी पुनारावृत्ति मात्र कलेवर वृद्धि ही सिद्ध होगी। पाश्चात्य विद्वान फुलर ने सिर्फ शिल्प को कविता के लिए अनिवार्य बताते हुए कहा है- ''कविता में केवल शिल्प ही होना चाहिए।''(149) काम्बेल डबलेड ने शिल्प का संबंध रचना विधान से जोड़ते हुए कहा है- ''अच्छे टेकनीक का अर्थ है सही बात सही ढंग से उपयुक्त समय पर करना। कवि वही विषय चुने जो उसे रुचता हो। इसके अतिरिक्त उसे शैली और टेकनीक भी ऐसी चुननी चाहिए कि जिसके सहारे वह विषय को मार्मिक और आकर्षक रूप में पाठकों तक पहुँचा सके।... टेकनीक ही एक ऐसा साधन है; जिसके सहारे या माध्यम से कलाकार अपने विषय की खोज और अनुसंधान करता है। टेकनीक के द्वारा ही साहित्यकार अपनी अनुभूतियों को सुसंगठित रूप में रखकर दूसरों तक पहुँचाता है।''(150)

पाश्चात्य साहित्य में 'शिल्प' के लिए प्राय: 'फार्म' और 'टेकनीक' इन दो शब्दों का प्रयोग होता रहा है। किंतु दोनों शब्दों की प्रकृति एवं स्वभाव में सूक्ष्म अंतर है। पाश्चात्य विचारक सैंतायना के अनुसार - ''विभिन्न तत्वों की अन्विति या एकता का नाम ही रूप या शिल्प है।''(151) ग्रैने ने अपनी कृति में कलात्मक संयोजन की व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए कहा है- ''किसी कलाकृति में व्यक्त विषय की कलात्मक संयोजन या व्यवस्था ही उसका कलात्मक रूप है।''(152) ग्रैने और सैंतायना दोनों की शिल्प संबंधी परिभाषा में एकदम अंतर है। सैंतायना ने काव्य के रूप(फार्म) पर अधिक जोर दिया है, जबकि ग्रैने ने विधि (टेकनीक) को विशेष महत्व दिया है।

पाश्चात्य विद्वान टॉलस्टॉय ने भी शिल्प की उच्चता एवं सुंदरता पर ही कलाकृति का अच्छा या बुरा होना स्वीकारते हुए कहा है- ''जब तक कला का रूप उच्च और सुंदर नहीं होगा तो कोई भी कथा, गीतिकाव्य, लय, चित्र, आभूषण, मूर्ति, नृत्य, नाटक और भवन अपने निर्माणकर्ता के मनोभावों को दूसरों तक नहीं पहुँचा सकेगा। वस्तु की सुंदरता उसके बाह्य रूप पर निर्भर करती है।''(153) आक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार शिल्प(टेकनीक) ''कलात्मक कार्यविधि की वह रीति है जो संगीत अथवा चित्रकला में प्राप्त है।''(154)

शाब्दिक अर्थ बोध से ज्ञात होता है कि 'शिल्प' शब्द रीति या विधान के लिए प्रयुक्त होता है। अर्थात् हम कह सकते हैं कि किसी वस्तु के बनाने, रचने का तरीका, ढंग या पद्धति ही शिल्प-विधान है। काव्य के संदर्भ में 'शिल्प' अभिव्यंजना पद्धति का बोध कराता है।

वस्तुत: भारतीय विद्वान डॉ पुष्पकर दत्त शर्मा के अनुसार - ''रूप सर्जना की विशिष्ट योजना को शिल्प कहते हैं, शिल्प रूपकार का कौशल है। तकनीक अर्थात् तकनीक प्रिंसीपल ही शिल्प कहलाता है।''(155) डॉ. मोहन अवस्थी ने काव्य शिल्प की सैद्धांतिक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए कहा है - ''काव्य विधान काव्य का विज्ञान है। कविता करने की विधि से लेकर कविता संबंधी गुण-दोषों का विधिवत् ज्ञान उसके भीतर आ जाता है और उस ज्ञान का आत्मप्रकाश काव्य-शिल्प है।''(156) डॉ. मोहन अवस्थी ने शिल्पविधान के समानार्थक अनेक शब्दों की व्याख्या की है। इन समानार्थक शब्दों में परस्पर क्या समता, क्या विषमता है तथा उनकी प्रकृति कैसी है आदि इन सभी पहुलों पर विचार करते हुए डॉ. अवस्थी ने पुन: कहा है- ''काव्य शिल्प पर विचार करते समय काव्य-विधान, काव्य कला, काव्य शैली, काव्यरीति, काव्यविधि आदि शब्द सामने आ जाते हैं। कला विधान में कविता करने के तरीके से लेकर कविता के गुण, दोषों का विचार उसमें आ जाता है। काव्य शिल्प और विधान में निराकार और साकार 'मूर्त और अमूर्त का अंतर है। काव्य विधान बीज है पर शिल्प एक सुंदर पौधा है। विधान को मूर्त करने का प्रयास ही शिल्प है। काव्य-शिल्प का अध्ययन कवि को कुशलतर बनाता है और पाठक की दृष्टि को सूक्ष्मता प्रदान करता है।... विधान और व्यक्तित्व की प्रक्रिया ही शिल्प है। कला यदि आकाश की भाँति असीम है तो शिल्प घटाकाश की भाँति ससीम है। व्यक्तिगत होने पर ही कला को शिल्प कहा जा सकता है। काव्य शिल्प में व्यक्तित्व रहित रचनाविधान की उपादेयता नहीं है; क्योंकि शिल्प कवि की बुद्धि व मस्तिष्क का नवीन प्रयास होता है।''(157)

सामान्यत: शिल्प का अर्थ ही होता है खंडित यथार्थ को स्थान तथा काल के सही संदर्भ में एकत्रित करना; ताकि विच्छिन्नता (खंडत्व) का बोध हो ही नहीं। अतएव प्रतिफलन तथा समग्रता (संपूर्णता) का प्रतिफलन इन तट्वों से ही 'विषय' एवं 'शिल्प' की परस्परता का प्रश्न उठता है। लूकाच के मतानुसार शिल्प का असली कार्य है विषय को संक्षिप्त प्रदान करना। उन्हीं के शब्दों में - ''सबसे अच्छे शिल्प का कार्य ही होता है, विषय को सबसे अच्छी तरह संक्षिप्त करना। इस संक्षिप्त के अभाव में तो शिल्प सृष्टि ही असंभव होती है। अत: शिल्प की वस्तुमयता वस्तुत: सृष्टि क्रिया के अंतर्गत ही है।'' (छायावादी कविता का कलाविधान- बलबीर सिंह रत्न, पृ. 19)शिल्प के मूल में श्रम साधना और कल्पना होती है। डॉ. नगेन्द्र ने भी शिल्प को अभ्यास आरश्रम साधना कहा है।...''शिल्प बहुत कुछ साधना की वस्तु है, उसके लिए परिष्कृत रूचि के अतिरिक्त कल्पना की समृद्धि और प्रयत्न साधना अपेक्षित होता है।''(158) डॉ नगेंद्र के अनुसार शिल्प में परिष्कृत अभिरुचि, कल्पना तथा प्रयत्न साधना ये तीन गुण अनिवार्य हैं। मात्र प्रयत्न साधना से ही कार्य सम्पन्न

नहीं हो सकता है। अत: इसके साथ-ही-साथ रचनाकार के पास अपनी विकसित कल्पना शक्ति एवं परिष्कृत अभिरुचि का होना नितांत आवश्यक है।

शिल्प और कला एक सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों का ही कार्य निर्माण करना होता है। काव्य में प्रयुक्त होनेवाले ये दोनों शब्द समानार्थक शब्द कहे जा सकते हैं। डॉ. मुंशीराम शर्मा ने कला और शिल्प पर विचार करते हुए कहा है- ''कला क्या है? वस्तु के स्वरूप को उसके प्रारंभिक, प्राकृतिक या सहज रूप में न रखकर सवाँरना, अलंकृत करना, कलई करना या संस्कृत करना कला है। दूसरे शब्दों में प्रकृत को शोभन अभिव्यक्ति देना कला का काम है। ठीक यही कार्य शिल्प द्वारा भी सम्पन्न होता है।'' शिल्प विधान के साहित्यिक स्वरूप की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए डॉ. श्रीमती ओम शुक्ल ने कहा है ''शिल्प विधान साहित्यिक कृति अथवा कलात्मक वस्तु के रचने का ढंग या तरीका है। कला की रचना में जिन तरीकों, रीतियों और विधियों का प्रयोग किया जाता है। वे ही उस कविता की शिल्पविधि के नाम से पुकारी जाती है।''(159) जो प्रकारांतर से कथ्य के अनुरूप उसका रूप पैटर्न और मुखौटा होती है।

5.42 शिल्पगत यथार्थ का प्रयोगात्मक पक्ष : कवि धूमिल की रचनाओं की यथार्थपरक भाषा और शैलीगत यथार्थ के विवेचन के पश्चात् शिल्पगत यथार्थ का अध्ययन भी यहाँ अत्यंत आवश्यक है। अपनी बात की सत्यता प्रमाणित करने के लिए वस्तुस्थिति का सही परिचय देने के लिए यथार्थवाद की क्या भूमिका होनी चाहिए? यह प्रश्न बहुत हद तक शिल्प से संबंधित है। सदाशिव द्विवेदी के मतानुसार ''भाषा की तरह शिल्प का भी नियत नहीं होता और उसका सार्वकालिक या सार्वदेशीय ढाँचा नहीं बनाया जा सकता। शिल्प उस मानव चेतना से दृढ़ होता है; जिसका संबंध अर्थनीति के साथ है अर्थात् जो अर्थनैतिक संपर्कों से जनित होती है। इस प्रकार शिल्प मानव चेतना का एक अंश है। आर्थिक उत्पादन की भिवि से जो सामाजिक धारणाएँ जन्मती हैं। वही आगे चलकर बाह्य ढाँचे में परिवर्तित हो जाती हैं। शिल्प इस भित्ति से संबंधित होता है और सहकारी मालिकाना, दासतंत्र, सामंततंत्र, धनतंत्र और समाजतंत्र आदि भित्तियों के अनुसार शिल्प अपना रूप लेता है।''(160)

प्रौढ़ शिल्प अर्थात् विषय के साथ अनिवार्यत: प्रासंगिक शिल्प, यह 'चुनने' का कार्य करता हैं और निर्दोष रूप में करता है। कहने का तात्पर्य यह है; कि जब शिल्प सुगठित होता है तब यह 'छँटनी' छँटनी प्रतीत नहीं होती, 'विच्छिन्न' विच्छिन्न प्रतीत नहीं होता, मात्र 'समग्रता' के प्रतिरूप की अनुभूति होती है। अलख नारायण के मतानुसार ''शिल्प का अर्थ ही होता है खंडित यथार्थ को स्थान तथा काल के सही संदर्भ में एकत्रित करना ताकि विच्छिन्नता अथवा खंडत्व का बोध हो ही नहीं। अतएव, प्रतिफलन तथा समग्रता का प्रतिफलन इन तत्वों से ही 'विषय' एवं 'शिल्प' की परस्परता का प्रश्न उठता है। लुकाच के अनुसार शिल्प का असली कार्य विषय को संक्षिप्ति प्रदान करना। वे कहते हैं; ''सबसे

अच्छे शिल्प का कार्य ही होता है, विषय को सबसे अच्छी तरह संक्षिप्त करना। इस संक्षिप्ति के अभाव में तो शिल्प सृष्टि ही असंभव होती, अत: शिल्प की वस्तुमयता वस्तुत: सृष्टि क्रिया के अंतर्गत ही है।''(161)

बेशक प्रौढ़ शिल्प के लिहाज से धूमिल की 'मोचीराम' शीर्षक कविता समकालीन कविता की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रही है। पूरी कविता की बुनावट में व्यापक सामाजिक सरोकार और सर्जनात्मक कल्पनाशीलता की बड़ी नई ढंग की घुलावट है। एक मोची के एकालाप द्वारा एकदम अछूते प्रकार की बिंबयोजना और मुहावरे में कवि ने अपने समाज के कुछ अंतर्विरोधों पर टिप्पणी की है। मोची के सामने तरह-तरह के इंसान जूतों के रूप में मरम्मत के लिए आते हैं। ''हर आदमी एक जोड़ी जूता है/ जो मेरे सामने/ मरम्मत के लिए खड़ा है/'' या ''जूते/ और पेशे के बीच/ कहीं-न-कहीं एक अदद आदमी है।'' दरअसल मोची के पेशे के तरह-तरह के औजारों, सामानों और उसकी भाषा के कल्पनाशील संयोजन से कविता के पूरे निर्वहण में बड़ी ताजगी भरी लाक्षणिकता आ गई है; जो कवि के वक्तव्य को एक साथ कई स्तरों पर ध्वनित करती है- ''वसंत... दिन को ताँत की तरह तानता हैं/ पेड़ों पर लाल लाल पत्तों के हजारों सुखतल्ले/ धूप में, सीझने के लिये/ लटकाता है/... उस समय/ राँपी की मूठ को हाथ में सँभालना/ मुश्किल हो जाता है/ आँख कहीं जाती है/ हाथ कहीं जाता है।''(162)

वास्तव में गंभीरता से कवि धूमिल की कविताओं की जाँच-पड़ताल की जाए तो यह निश्चित पता चलता है कि कथ्य, शिल्प और भाषा कविता के इन तीनों महत्त्वपूर्ण घटकों में कवि ने अपनी यथार्थवादी दृष्टि अपनाने का सफल प्रयास किया है।

चिह्नों का प्रयोग : कवि धूमिल के शिल्प विधान पर प्रयोगवाद और अकवितावाद के शाब्दिक प्रयोगों का समन्वित प्रभाव पड़ा है। वे अपने काव्य शिल्प में चिह्न प्रयोगों का काफी प्रयोग किया है। कौमा चिह्न, कोष्ठक चिह्न, प्रश्न, व विस्मयादि बोधक चिह्नों आदि का प्रयोग तो हुआ ही है, इनके अतिरिक्त डैश(-) और डॉट्स(..) का भी प्रयोग इनके काव्य शिल्प में बहुलता के साथ हुआ है। इन चिह्नों के माध्यम से कवि ने कुछ-न-कुछ जरूर कहना चाहा है। डॉ. हुकुमचंद राजपाल के शब्दानुसार ''वाक्यों में शक्ति-संवाहन हेतु वह डैश(-) खाली स्थान डॉट्स(...) का काफी प्रयोग करता है। अनेक कविताओं में डैश से वह अपने वक्तव्य विस्तार का कार्य लेता है, कई बार वाक्य पूर्ति का। डॉट्स से वह बहुत कुछ अनकहा छोड़ देता है। कविताओं में विस्तार के लिए कवि ने अन्य अनेक ढंगों को भी अपनाया है, जो लेखन में प्रचलित हैं।''(163)

डैश प्रयोग : कवि धूमिल के तीनों काव्य संग्रहों 'संसद से सड़क तक', 'कल सुनना मुझे', 'सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र' में उपर्युक्त सभी चिह्नों का प्रयोग हुआ है। जहाँ तक डैश (-) के प्रयोग का सवाल है; वह अंतिम दो काव्य-संग्रहों में प्रचुर मात्रा में मिलता है। डैशों का प्रयोग शब्दार्थ-वाक्यार्थ को और अधिक पुष्ट तथा गहन बनाने

के हेतु किया गया है।निम्नलिखित पंक्तियों में डैश का प्रयाग उल्लेखनीय है-

''- रंगीन पत्रिकाओं में चरित्र-/ पोंकता हुआ ईमान, /
जो दाँतों में फँसी हुई भाषा की/ तिकड़म है/ - टूटे हुए
बकलस का खुफिया तनाव/-एक बातूनी घड़ी/ - वकील
का लबार चोंगा -एक डरपोक चाकू जिसका फल कानून की
जद से. सूत भर कम है''(164)

उपर्युक्त पद्यांश में डैशों का प्रयोग एक विशेष ढंग से कवि ने किया है। सिर्फ एक जगह शब्दों के बाद डैश का प्रयोग है। बाकी जितने भी डैश हैं उनके बाद शब्द प्रयोग हुआ है। यहाँ कवि ने जो शब्दों के पहले डैशों का प्रयोग किया है। किसी खास परिस्थिति के पुष्टि के लिए।

इस प्रकार कवि धूमिल की बहुत-सी कविताएँ हैं; जहाँ डैश के प्रयोगों से भाव एवं अर्थ की गंभीरता को अभिव्यक्त करती हैं। तीनों काव्य संग्रहों की कुछ कविताओं के नाम गिनाये जा सकते हैं; जिनमें डैश शिल्प का प्रयोग हुआ है। 'संसद से सड़क तक' की जनतंत्र का सूर्योदय में, राजकमल चौधरी के लिए, मकान, शहर का व्याकरण पतझड़ आदि। 'कल सुनना मुझे' में देश-प्रेमः मेरे लिए, किस्सा जनतंत्र, आतिश के अनार सी वह लड़की, सापेक्ष्य-संवेदन आदि तथा 'सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र' में- घर में वापसी, चुनाव, हत्यारे दो, लोहसाँय, कमरा आदि कविताओं में डैशों का यत्र-तत्र प्रयोग देखा जा सकता है।

डॉट्स (बिंदु) प्रयोग : कवि धूमिल ने डॉट्स का प्रयोग अभिव्यंजना के नवीन माध्यम के रूप में ही किया है। वैसे डॉट्स का प्रयोग वहाँ होता है जहाँ कवि-लेखक कुछ बातें कहने के बाद, उससे संबंधित अन्य कुछ बातें पाठकों की कल्पना पर छोड़ देता है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं

''मैं इन्तजार करता रहा.../ इन्तजार करता रहा.../इन्तजार
करता रहा.../जनतन्त्र, त्याग, स्वतंत्रता.../संस्कृति, शांति,
मनुष्यता... /ये सारे शब्द थे सुनहरे वादे थे।''(165)

यहाँ स्पष्ट है कि कवि को बीस वर्षों तक सच्ची आजादी पाने के लिए लगातार इन्तजार करना पड़ा। कहीं-कहीं ऐसा भी हुआ है कि कवि अपने मन के उद्वेग को शब्दों के माध्यम से न कहकर डॉट्स का प्रयोग कर संकेत भर कर देते हैं। उदाहरणार्थ निम्न लिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

''जमीन के बारे में सबसे सही जानकारी / एक किसान दे
सकता है/ बस, छेडने की देर है... /इस बार तुम्हारे खेतों
की फसल कुछ खास....(166)

इस प्रकार कवि ने डॉट्स प्रयोग द्वारा अपने भावों को अभिव्यक्ति दी है। डॉट्स

प्रयोग से कवि धूमिल अभीष्ट कथ्य को अप्रत्यक्ष रूप से व्यंजित करने में सफल हुए हैं।

कोष्ठक प्रयोग : धूमिल के काव्य-संग्रहों मे यथास्थान कोष्ठकों का प्रयोग हुआ है। उन्होंने कोष्ठकों का प्रयोग उन स्थानों पर करना चाहा है; जहाँ अपनी कही हुई बात उन्हें दुविधा या अधूरी लग रही हो। उदाहरणार्थ धूमिल की ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं।

> ''यह मेरी जिंदगी का लब्बोलुबाब है/ (हर अच्छे नागरिक
> की तरह/ खतरे का सायरन बजते ही/ मैंने अपनी खिड़कियों
> के पर्दे गिरा दिए हैं /खतरा- इन दिनों-/ बाहर की नहीं
> बल्कि भीतर की रोशनी से है)''(167)

स्पष्ट है कि कवि को जिंदगी के लब्बोलुबाव को और अच्छी तरह स्पष्टीकरण हेतु कोष्ठक के अन्दर का वाक्य कहना पड़ा है। वस्तुत: शब्द या वाक्य स्पष्टीकरण हेतु उन्होंने कोष्ठकों का प्रयोग किया है। कोष्ठकों के अंदर शब्द प्रयोगों द्वारा पूर्ववर्ती शब्द का उचित अर्थ एवं कथ्य को संप्रेषित करने के हेतु किया गया है। इस दृष्टि से धूमिल की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

> ''वह एक दुधमुँही दिलचस्पी है/ कुल-बुल जिज्ञासा है/
> जिसे मारने के लिए इस पृथ्वी पर/ अभी कोई गोली नहीं
> बनी। (घनी-घनी उसकी बरौनियों के बीच की/ हवापट्टी
> पर दिवास्वप्नों की गूँजे/ उतरती हैं।)''(168)

कहीं-कहीं कवि ने अपने मन में उभरे भावों को अभिव्यक्ति देने हेतु कोष्ठकों का प्रयोग किया है। धूमिल के तीनों काव्य-संग्रहों 'संसद से सड़क तक', 'कल सुनना मुझे' और 'सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र' पर दृष्टि डालते हुए पता चला है कि एक जगह उन्होंने गणित की भाँति कोष्ठक के अंदर कोष्ठक का प्रयोग किया है। उदाहरण के तौर पर ये पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं-

> ''कितने नामों और चिन्हों और शब्दों को/ काटते हुए
> मैं चीख पड़ा-/ हत्यारा ! हत्यारा !! हत्यारा !!! /(मुझे
> ठीक-ठीक याद नहीं है। मैंने यह /किसको कहा था। शायद
> अपने-आपको /शायद उस हमशक्ल को (जिसने खुद को
> /हिन्दुस्तान कहा था) शायद उस दलाल को /मगर मुझे
> ठीक-ठीक याद नहीं है।))(169)

स्पष्ट है कवि ने यहाँ दो कोष्ठकों का प्रयोग किया है एक बड़ा और दूसरा छोटा। बड़े कोष्ठक में प्रयुक्त वाक्य द्वारा कवि यह स्पष्टीकरण देना चाहते हैं कि उन्होंने 'हत्यारा' शब्द किसके लिए प्रयोग किया? क्या वह अपने आपको? हमशक्ल या किसी दलाल को? नहीं। छोटे कोष्ठक का प्रयोग कर कवि ने उसके अंदर अपने 'हमशक्ल' यानी 'हिंदुस्तान' को स्पष्ट किया है।

कौमा प्रयोग : कवि धूमिल के काव्य-शिल्प की अन्य और विशेषताएँ हमें देखने को मिलती हैं। कोष्ठक, डॉट्स और डैश के अलावा कौमा, प्रश्नात्मक एवं विस्मयादि बोधक चिह्नों का भी प्रयोग धूमिल के काव्य में हुआ है। उन्होंने अपने वक्तव्य को कहीं-कहीं दो कौमा " " और एक ' ' का प्रयोग किया है। इनके द्वारा ऐसा जान पड़ता है; मानो वे किसी अभिमत को प्रस्तुत करना चाहते हैं। उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित कविताएँ देखी जा सकती हैं-

"कहने का मतलब यह है कि भाइयों !/ जनतन्त्र जनता से
नहीं /घर के जंग से शुरू होता है।"(170)
"कवि हो ! इस फौरी दावे में साथ दो / और सुनो ! कविता
मारती नहीं, जाने बचाने की कोशिश में /पहल करती
है।"(171)

इस प्रकार एक कौमा (' ') का प्रयोग हमें धूमिल के तीनों काव्य संग्रहों 'संसद से सड़क तक', 'कल सुनना मुझे', 'सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र' में अनेक स्थानों पर देखने को मिल जाते हैं। लेकिन दो (" ") कौमावाले उद्धरण चिह्न के वक्त व्य एक (' ') कौमा वाले उद्धरण की अपेक्षा-कृत कम ही हैं। कहीं-कहीं कवि धूमिल ने काव्य-शिल्प में प्रश्न चिह्नों एवं विस्मयादि बोधक चिह्नों का भी इस्तेमाल किया है। कवि ने विस्मयादि बोधक चिह्नों का निर्वाह उपर्युक्त कई पक्ति यों में किया है। अत: अब यहाँ उसका जिक्र करना व्यर्थ है। हाँ प्रश्नवाचक चिह्नों का प्रयोग अवश्य देखना बाकी है। इस संदर्भ में ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं

अक्सर उठते हैं सवाल/ कहाँ हैं युवा - जन?/ परिवर्तन
के अग्नि-चक्र?/ क्षुब्धित इतिहास?(172)

धूमिल के काव्य शिल्प में अल्प विराम, अर्द्धविराम और पूर्ण विराम चिह्नों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम ही हुआ है। जो कथ्य-शिल्प में तीव्रता एवं गहन अनुभूति के उत्पादन में सहायक सिद्ध हुए हैं। समकालीन कविता में अल्पविराम(,) अर्द्ध विराम (;) और पूर्णविराम (।) का प्रयोग कुछ कवियों ने ही किया है। संबोधन (!) और विस्मयादि बोधक चिह्नों (! !! !!!) का अधिक प्रयोग हुआ है। चिह्न प्रयोग के कारण कविता के कथ्य को पकड़ने में और समझने में सहायता मिलती है।

नाटकीयता का प्रयोग : कवि धूमिल के काव्य-कृतियों में नाटकीयता के भी दर्शन होते हैं। वे अपने काव्य में नाटकीयता का प्रयोग कर कोई चमत्कार करने के पक्ष में नहीं; स्वजन्य शाब्दिक अभिव्यक्ति करना चाहते थे। धूमिल की कविता में यत्र-तत्र नाटकीयता का गुण दिखाई देता है; जो उनके काव्य-शिल्प की योजना में सुंदर एवं सफलता का आभास देते हैं। काव्य शिल्प में नाटकीयता का प्रयोग चरित्रानुरूप हुआ है। इस संदर्भ में कुछ उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है

''वह हँसता है- ऐसी हँसी कि दिल / दहज जाता है / कलेजा मुँह को आता है / और मैं हैरान हूँ / यहाँ आओ / मेरे पास आओ / मुझे छुओ / मुझे जियो / मेरे साथ चलो / मेरा यकीन करो / इस दलदल से / बाहर निकलो / सुनो! / तुम चाहे जिसे चुनो / मगर इसे नहीं / इसे बदलो / मुझे लगा आवाज / जैसे किसी जलते हुए कुँए से / आ रही है '' - पटकथा

''ओ देश के पोर-पोर में दुखते हुए गूँगे जनून ! / क्रोध की अकेली मुद्रा में / उफनते हुए तात्विक खून / आ, बाहर आ / मैं एक अदना कवि-तेरी भाषा का मुँहताज / मुझे अपनी बोली में शरीक कर'' - भाषा की रात

स्पष्ट है कि यह प्रसंग संदर्भ तथा चरित्र के साथ बदलती और उससे लिपटकर चलती भाषा शिल्प धूमिल की कविता को खास किस्म की प्रामाणिकता और शक्ति प्रदान करती है; जो उनके किसी समकालीन कवियों में इस रूप में नहीं दिखती।

धूमिल की काव्यभाषा और शिल्पविधान की विशेषता रेखांकित करते हुए विश्वंभर नाथ उपाध्याय ने माना है कि ''धूमिल संज्ञाओं को विशेषणों से अनूठा बनाते हैं, तुकों का प्रयोग करते हैं, सामान्यीकृत वाक्यों से यथार्थ को नए रूप में पेश करते हैं और 'पटकथा' में विरेचन-विश्लेषण, संभाषण-प्रवचन आदि के तौर तरीकों से उत्पन्न नीरसता को खत्म करने के लिए नाटकीयता का प्रयोग भी करते हैं। यह नाटकीयता 'कथन के बीच' के विन्यास से आती है। मसलन, 'आजादी' कहकर कवि उत्साहातिरेक में खड़ा नहीं रह जाता, वह दौड़ता है। दृश्यों को शब्दबद्ध करता है (चिड़ियाँ... कांसे की बजती हुई घंटियाँ) और जानवरों की पीठ थपथपाता है, किसान से कुशल पूछता है.. घर लौटकर बत्तियाँ साफ करता है)। इस प्रक्रिया व्यापार से कविता बोझिल नहीं बनती, एक नाटक होने लगता है, जिसके बीच क्रिया करता हुआ कवि शत्रु पर चोट- पर- चोट करता चला जाता है (दरवाजे पर एक पौधा लगाया और कहा वनमहोत्वस)।[(173)] यह सभी वर्णन सांकेतिक शैली में न होकर वर्णनात्मक शैली, वक्तव्य शैली, विवेचन शैली में उपलब्ध है । धूमिल की मुहावरेबाजी, लोकोक्ति प्रयोग, बिंब-प्रतीक सृजन और व्यंग्य प्रयोग संबंधी विवेचना इसी अध्याय के अंतर्गत की गई है। समकालीन कविता के विस्तृत परिदृश्य में धूमिल ने जो प्रभाव काव्य-सृजन पर रेखांकित किया है, वह किसी अन्य प्रगतिशील कवि द्वारा संभव नहीं है।

×-×-×

संदर्भ-सूची

1.	अर्जुन चव्हाण	: राजेंद्र यादव के उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन	पृ.120
2.	अरुण प्रकाश मिश्र	: काव्य भाषा	पृ.1
3.	एस. के. लैंगर	: फीलिंग एण्ड फार्म ए थ्योरी ऑफ आर्ट डेवलपमेन्ट फ्रॉम फिलॉसफी इन ए न्यू	पृ.385
4.	राघव प्रकाश	: आलोचना पत्रिका, अगस्त दिसम्बर, 1988	पृ.10
5.	परमानंद श्रीवास्तव (सं) कुमार विमल	: काव्य रचना प्रक्रिया	पृ. 168
6.	विजय द्विवेदी	: नयी कविता स्त्रोत और सिद्धांत	पृ. 121
7.	सदाशिव द्विवेदी	: आलोचना पत्रिका, जन. मार्च 1974	पृ. 49
8.	जे. व्ही. स्टालिन	: कनसर्निंग माक्सिज्म इन लिंग्विस्टिज्म	पृ. 19
9.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ. 8
10.	राहुल	: विपक्ष का कवि - धूमिल	पृ. 157
11.	राजकुमार शर्मा	: कविता की रचना यात्रा	पृ. 58
12.	चमनलाल गुप्त	: सुदामा पांडेय धूमिल की कविता में यथार्थ बोध	पृ. 145
13.	हुकुमचंद राजपाल	: समकालीन बोध और धूमिल का काव्य	पृ. 139
14.	धूमिल	: भाषा की रात में - धूमिल की भूमिका, कल सुनना मुझे	पृ. 1
15.	काशीनाथ सिंह	: आलोचना पत्रिका, अप्रैल जून, 1975	पृ. 18
16.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ. 86
17.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ. 12
18.	नंदकिशोर नवल	: कविता की मुक्ति	पृ. 145
19.	राकेश कुमार	: धूमिल की काव्य चेतना विविध आयाम	पृ. 109
20.	नेमिचंद जैन	: पूर्वग्रह पत्रिका, अंक 7 मार्च -अप्रैल 1975	पृ. 7
21.	नेमिचंद जैन	: धूमिल और परवर्ती जनवादी कविता	पृ. 49
22.	धूमिल	: सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र	पृ. 19
23.	धूमिल	: सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र	पृ. 20
24.	धूमिल	: कल सुनना मुझे	पृ. 20
25.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ. 42
26.	धूमिल	: कल सुनना मुझे	पृ. 74

27.	राहुल	: विपक्ष का कवि धूमिल	पृ. 166
28.	अशोक वाजपेयी	: फिलहाल	पृ. 28
29.	राजेश जोशी	: पूर्वग्रह पत्रिका, अंक 7 मार्च-अप्रैल 1975	पृ. 16
30.	धूमिल	: सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र	पृ. 73-75
31.	राजेश जोशी	: पूर्वग्रह पत्रिका, अंक 7 मार्च-अप्रैल 1975	पृ. 16
32.	विश्वनाथ प्रसाद तिवारी	: समकालीन हिंदी कविता	पृ. 202
33.	आचार्य पंकज	: शोधकर्ता से बातचीत साक्षात्कार हुआ दिनांक 25.03.2003	
34.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ. 97
35.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ. 39
36.	मेनियर विलियम्स	: (सं) संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी	पृ. 731
37.	विलयम जेवी	: चेम्बर ट्वेन्टिएथ सेन्चुरी डिक्शनरी,	पृ. 527
38.	संपादित	: इन साइक्लोपडिया ब्रिटेनिका	पृ. 52
39.	सी. डे. लीविस	: दी पोयटिक इमेज	पृ. 19
40.	जॉर्ज ह्वैले	: पोयटिक प्रोसेस	पृ. 145
41.	एस. के लेंगर	: प्राब्लम्स ऑफ आर्ट	पृ. 132
42.	टी. ई. ह्यूम	: स्पेक्यूलेशन	पृ. 281
43.	एलेन टेट	: सेलेक्टेड प्रोसेस	पृ. 83
44.	केदारनाथ सिंह	: आधुनिक हिंदी कविता में बिंब विधान	पृ. 23
45.	विमल कुमार	: सौदर्यशास्त्र के तत्व	पृ. 203-4
46.	श्रीराम त्रिपाठी	: धूमिल और परवर्ती जनवादी कविता	पृ. 89
47.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ. 14
48.	श्रीराम त्रिपाठी	: धूमिल और परवर्ती जनवादी कविता	पृ. 89
49.	ओमप्रकाश अवस्थी	: नई कविता रचना प्रक्रिया	पृ. 119
50.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ. 9
51.	धूमिल	: कल सुनना मुझे	पृ. 10
52.	धूमिल	: सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र	पृ. 207
53.	डॉ. मंजुल उपाध्याय	: समकालीन कविता और धूमिल	पृ. 154
54.	हिंदी शब्द सागर	: भाग - 3	पृ. 2208
55.	अमरकोश, श्लोक संख्या 470		
56.	संपादित	: एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, वोलुम-21	पृ. 7001
57.	संपादित	: चैम्बर्स डिक्शनरी	पृ.1117
58.	प्रो. क्षेम	: छायावाद के गौरव चिह्न	पृ. 242

59.	सुरेश त्यागी	: छायावादी काव्य में सौंदर्य दर्शन	पृ. 168
60.	केदारनाथ सिंह	: कल्पना और छायावाद	पृ. 97
61.	कैलाश वाजपेयी	: आधुनिक हिंदी कविता में शिल्प	पृ. 75
62.	नेमिचंद जैन	: पूर्वग्रह पत्रिका, अंक-7, मार्च अप्रैल, 1975	पृ. 9
63.	इब्बार रब्बी	: आजकल पत्रिका, मई 1975	पृ. 31
64.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ. 17
65.	धूमिल	: कल सुनना मूझे	पृ.
66.	धूमिल	: सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र	पृ.
67.	काशिनाथ सिंह	: याद हो कि न याद हो	पृ. 85
68.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.38
69.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.60
70.	रत्नशंकर पांडेय	: शोधार्थी की वार्ता, खेवली दिनांक 22.04.2002	
71.	नामवर सिंह	: छायावाद	पृ. 38
72.	सुरेंद्र दूबे	: दिनकर की काव्यभाषा का संरचात्मक अध्ययन	पृ. 130
73.	राहुल	: विपक्ष का कवि - धूमिल	पृ. 177
74.	चंद्रकांत महादेव बांदिवड़ेकर	: अज्ञेय की कविता - एक मूल्यांकन	पृ. 188
75.	राहुल	: विपक्ष का कवि - धूमिल	पृ. 179
76.	धूमिल	: संसद से सडक तक	पृ. 45
77.	शुकदेव सिंह(सं)	: धूमिल की कविताएँ	पृ. 19
78.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ. 47
79.	त्रिलोचन शास्त्री	: आलोचना पत्रिका, अप्रैल-जून1989	पृ. 54
80.	मंजुल उपाध्याय	: समकालीन कविता और धूमिल	पृ. 178
81.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ. 126
82.	राजेश जोशी	: पूर्वग्रह पत्रिका, अंक 7, मार्च-अप्रैल1975	पृ. 17
83.	धूमिल	: संसद से सडक तक	पृ. 8
84.	रणजीत	: हिंदी के प्रगतिशील कवि	पृ. 297
85.	कवि ज्ञानेंद्रपति	: शोधकर्ता से साक्षात्कार, वाराणसी दि. 17.02.2003	
86.	राजेश जोशी	: पूर्वग्रह पत्रिका, अंक 7, मार्च-अप्रैल1975	पृ.17
87.	वामन	: काव्यांलकार सूत्रवृत्ति 80-85	पृ. 16
88.	दंडी	: काव्यादर्श, प्रथम परिच्छेद 40	
89.	भरतमुनि	: नाट्यशास्त्र	पृ. 77

90.	आनंदवर्धन	: ध्वन्यालोक - 2	
91.	बलदेव उपाध्याय	: भारतीय साहित्य शास्त्र -	पृ. 213
92.	रामदहिन मिश्र	: काव्यालोक - 2	पृ. 33
93.	नगेंद्र	: भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका	पृ. 53
94.	सीताराम चतुर्वेदी	: हिंदी साहित्य सर्वस्व	पृ. 610
95.	हर्डसन	: एन इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ लिटरेचर	पृ. 34
96.	जे. मेरी	: द प्रोब्लम ऑफ स्टाइल	पृ. 14
97.	रोहिताश्व	: समकालीन कविता-मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में	पृ. 277
98.	रमेश कुंतल मेघ	: साक्षी है सौंदर्य प्राश्निक	पृ. 277
99.	भगवान सिंह	: उत्तरार्द्ध पत्रिका, अकं 41	पृ. 9
100.	रोहिताश्व	: समकालीन कविता-मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में	पृ. 272
101.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ. 110
102.	हरिशंकर परसाई	: मेरी सर्वश्रेष्ठ व्यंग्यरचना - भूमिका	
103.	शेरजंग गर्ग	: स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में व्यंग्य	पृ. 28
104.	हुकुमचंद राजपाल	: समकालीन बोध और धूमिल का काव्य	पृ. 107-8
105	धूमिल	: कल सुनना मुझे	पृ. 65
106.	हरदयाल	: हिंदी कविता का समकालीन परिदृश्य	पृ. 87-88
107.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ. 6
108.	मनोज सोनकर	: सत्तरोत्तरी हिंदी कविता	पृ. 726
109.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ. 85
110.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ. 62
111.	हुकुमचंद राजपाल	: समकालीन बोध और धूमिल का काव्य	पृ. 136
112.	प्रभात कुमार त्रिपाठी	: पूर्वग्रह पत्रिका, अंक 7, मार्च-अप्रैल1975	पृ. 14
113.	चमनलाल गुप्त	: सुदामा पांडेय धूमिल की कविताओ में यर्थाथ बोध	पृ. 153
114.	धूमिल	: संसद से सडक तक	पृ. 85-86
115.	धूमिल	: कल सुनना मुझे	पृ. 24
116.	प्रभात कुमार त्रिपाठी	: पूर्वग्रह पत्रिका, अंक 7 मार्च-अप्रैल	पृ. 14
117.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ. 33
118.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ. 92
119.	अरविंद पांडेय	: हिन्दी के प्रमुख कवि -रचना और शिल्प	पृ. 241

120. काशीनाथ सिंह : आलोचना भी रचना है पृ. 78
121. काशीनाथ सिंह : आलोचना भी रचना है पृ. 78
122. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ. 86
123 रामविलास शर्मा : आस्था और सौंदर्य पृ. 173
124. नेमिचंद जैन : पूर्वग्रह पत्रिका अकं 7, मार्च-अप्रैल, 1975 पृ. 78
125. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ. 108
126. नेमिचंद जैन : पूर्वग्रह पत्रिका अकं 7, मार्च-अप्रैल, 1975 पृ. 8
127. हुकुमचंद राजपाल : समकालीन बोध और धूमिल का काव्य पृ. 51
128. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ. 128
129. विश्वंभरनाथ उपाध्याय : समकालीन सिद्धांत और साहित्य पृ. 126
130. मनोज सोनकर : सत्तोरोत्तरी हिंदी कविता पृ. 90
131. महेन्द्र कार्तिकेय : आधुनिक कविता के नए मूल्य पृ. 159
132. हुकुमचंद राजपाल : समकालीन बोध और धूमिल का काव्य पृ. 135
133. धूमिल : कल सुनना मुझे पृ. 33
134. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ. 99
135. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ. 118
136. राहुल : विपक्ष का कवि - धूमिल पृ. 86
137. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ. 9-10
138. रणजीत : हिंदी के प्रगतिशील कवि पृ. 297
139. नामवर सिंह : कविता के नए प्रतिमान पृ. 150
140. वशिष्ठमुनि ओझा : शोधकर्ता की बातचीत, वाराणसी दि. 15.02.2003
141. वशिष्ठमुनि ओझा : शोधाकर्ता की बातचीत, वाराणसी दि. 15.02.2003
142. बलदेव वंशी(सं) नरेंद्र मोहन: लंबी कविताओं का रचना विधान पृ. 175
143. विश्वंभरनाथ उपाध्याय : समकालीन कविता की भूमिका पृ. 75-76
144. अक्षय उपाध्याय : पूर्वग्रह पत्रिका, अंक 7, मार्च-अप्रैल 1975 पृ.21
145. बलदेव वंशी (सं) नरेंद्र मोहन: लंबी कविताओं का रचना विधान पृ. 181
146. धूमिल : संसद से सड़क तक (पटकथा) पृ.
147. बलदेव वंशी(सं) नरेंद्र मोहन: लंबी कविताओं का रचना विधान पृ. 180-81
148. शिवपाल सिंह : पंत का काव्य शिल्प पृ. 32
149. फुलर : लिटरेरी क्राफ्टमैनशीप एण्ड अप्ब्रीसीयेशन पृ.131
150. काम्बेल डबलडे : राईटिंग एडवाईस एण्ड डीवाईस पृ. 34-47
151. सैंतायना : द सेन्स ऑफ ब्यूटी पृ. 59
152. टी. एम. ग्रैने : द आर्ट एण्ड आटर्स ऑफ क्रिटिसिज्म पृ. 123

153. टॉलस्टॉय : व्हाट इज आर्ट पृ. 10
154. आक्फोर्ड डिक्शनरी ऑफ करंट इंगलिश पृ. 1258
155. पुष्पकरदत्त शर्मा : आधुनिक काव्य रूप और शिल्प पृ. 6.
156. मोहन अवस्थी : आधुनिक हिंदी कविता में शिल्प पृ. 19
157. मोहन अवस्थी : आधुनिक हिंदी कविता में शिल्प पृ. 45
158. नगेंद्र : विचार और विवेचन पृ. 120
159. ओम शुक्ल : हिंदी उपन्यास की शिल्प विधि का विकास पृ. 10
160. सदाशिव द्विवेदी : आलोचना पत्रिका, जन. मार्च, 1974, पृ. 51
161. अलख नारायण : आलोचना, जुलाई-सितम्बर, 1974 पृ. 18
162. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ. 40-41
163. हुकुमचंद राजपाल : समाकलीन बोध और धूमिल का काव्य पृ. 141
164. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ. 82
165. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ. 101
166. धूमिल : सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र पृ. 50
167. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ. 73
168. धूमिल : सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र पृ. 36
169. धूमिल : संसद से सड़क तक पृ. 123
170. धूमिल : सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र पृ. 60
171. धूमिल : कल सुनना मुझे पृ. 61
172. धूमिल : कल सुनना मुझे पृ. 69
173. विश्वंभरनाथ उपाध्याय: समकालीन कविता की भूमिका पृ. 76

x-x-x

समकालीन कविता और यथार्थवाद के संदर्भ में धूमिल का योगदान : उपसंहार

समकालीन कविता के विभिन्न रचनाकारों में जो वर्ग चेतना, वर्ग संघर्ष और यथार्थवाद की प्रवृत्ति पाई जाती है; उनमें सबसे प्रखर स्वर धूमिल का रहा है। जिन्होंने स्वातंत्र्योत्तर जीवन की तथा कथित समाजवादी व्यवस्था में पूँजीवादी शोषण और आम आदमी की व्यथा का यथार्थपरक और काव्यात्मक स्वरूप रचा है। शोध प्रबंध की अपेक्षाओं के अनुकूल हमने प्रकृतवादी यथार्थवाद, समाजवादी यथार्थवाद, आलोचनामत्क यथार्थवाद और साम्यवादी यथार्थ की सैद्धांतिक विवेचना करते हुए धूमिल की काव्य कला के विभिन्न पात्रों को रेखांकित किया है।

विवेच्य शोध ग्रंथ के 'यथार्थवाद और धूमिल की काव्य कला' अध्याय के अंतर्गत काव्य कल्पना, रचनात्मक यथार्थ के साथ-साथ जार्ज लुकाच सम्मत यथार्थ का कलात्मक प्रतिबिंबन प्रतिमान की चर्चा की गई है। अुनषंग रूप में 'युगबोध' और 'प्रतिबद्धता' की विवेचना भी प्रस्तुत की गई है। दरअसल धूमिल के यहाँ काव्य कर्म खाने-कमाने, व्यक्तित्व को चमकाने की चीज न होकर 'भाषा में आदमी होने की तमीज रही है'।

धूमिल को इस बात का आभास रहा है कि वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था आदमी

को पालतू बनना चाहती है; आखिरकार आदमी जानवर बनने के लिए कितने सब्र का इंतजार कर सकता है, इस बात की उन्हें चिंता रही हैं। वे जनतंत्र, संसद और चुनाव के खोखलेपन से भी परिचित रहे हैं। धूमिल के काव्य उद्धरण 'कविता मारती नहीं /जानें बचाने की कोशिश में/पहल करती है/ के समानांतर 'कविता श्रीकाकुलम' जैसी कविता रख देने से यह बात और उभरकर सामने आती है कि उनकी कविता का वक्तव्य या अभिप्राय एकायामी नहीं है; लक्ष्यात्मकता को नष्ट किए बगैर वह दूसरे - तीसरे आयामों की उन्मुखता को प्राप्त करता है। धूमिल भाषा के जंगल में कविता के वर्जित प्रदेश की खोज करते हुए मानवीय सरोवर के कवि बने रहे । यही उनकी एक बहुत सीमित अवधि की विषम काव्ययात्रा की मार्मिक उबलब्धि है। समकालीन कविता के विस्तृत कैनवास में परमानंद श्रीवास्तव के मतानुसार ''धूमिल की काव्य शैली की छाप एक पूरे समय की कविता पर है - कहने की जरूरत नहीं कि अपने अलग शैली बनानेवाले कवि इतिहास में बहुत थोड़े होते हैं जिन्हें एक पूरी पीढ़ी अपनी अभिव्यक्ति के लिए अनिवार्य समझती हो।''(1)

धूमिल यथार्थगत अनुभूतियों और वर्ग संघर्षों तथा चेतना के सच्चे पैरोकार रहे हैं। उनकी संवेदना, अनुभूति तथा विचारधारा का सीधा संबंध आम जनता की यर्थाथगत विसंगतियों से रहा है। उनकी यथार्थगत भाषा के संदर्भ में नंदकिशोर नवल का कहना है ''धूमिल की कविता की भाषा के झूठी चमकवाले मुहावरों और चक्करदार लाक्षणिक प्रयोगों को छोड़ दे; तो उनमें यत्र-तत्र कविता की एक ठेठ; लेकिन अत्यंत सशक्त भाषा गढ़ने का प्रयास दिखलाई पड़ता है। उन्होंने संसद से लेकर सड़क तक के ढेर सारे ऐसे शब्दों का कविता की भाषा में प्रवेश करा दिया है। जिनके सार्थक संयोजन से कविता की एक अधिक यथार्थवाद और पैनी भाषा का निमार्ण हो सकता है।''(2)

सारांशत: धूमिल की काव्य भाषा साधारण जनता की है, जिसमें बिंब-प्रतीक, सूक्तियों, उक्तियों तथा मुहावरों को ढूँढकर एवं रचकर अपनी अभिव्यक्ति को उन्होंने अधिक सार्थक बनाया है। धूमिल की मूल चिंता मानवीयता को बचाने एवं भाषा के भदेसपन को रोकने की रही है। धूमिल का मानना है कि 'भाषा पहले सार्थक वक्तव्य होती है' इसी सार्थकता को ध्यान में रखकर धूमिल काव्य रचना में प्रवृत्त हुए हैं। धूमिल को जनभाषा से बहुत गहरा लगाव था; जिसमें सहज, सरल एवं संप्रेषणीयता के सारे गुण समाए हुए हैं। अत: धूमिल ने उसी भाषा को अपनी कविताओं में यत्र-तत्र- सर्वत्र स्थान दिया है; जो जनता की भाषा है। यही भाषा उन्हें आम जनता का महाकवि बना देती है।

6.1 धूमिल का काव्य : परम्परा और प्रभाव

धूमिल अकवितावादी आन्दोलन के प्रारंभिक विकास से गहराई तक प्रभावित रहे हैं। काशीनाथ सिंह, नागानंद, राजकमल चौधरी, एलन्सगिन्स बर्ग आदि का प्रभाव उनकी प्रारंभिक रचनाओं पर रहा है, जिसका विगत अध्यायों में सम्यक रूप से संकेत दिया

गया है। गीत-प्रगीत शैली की रचनाओं को उन्होंने स्वयं महत्त्व नहीं दिया है। वे आस पास के जीवन से काव्यभाषा, मुहावरे और बिंब संकेत ग्रहण कर लेते थे।

धूमिल के काव्य पर प्रभाव देखने से पहले हमें यह जान लेना अत्यंत आवश्यक होगा कि उनका काव्य-लोक कैसा है? धूमिल के बारे में विद्वानों द्वारा कही गई, धारणाओं में से एक गलत धारणा यह होगी कि वे मूलत: अकवितावादी ही थे। इसके प्रमाण में कुछ बातें ऐसी हैं; जो अनिवार्य रूप से कही जा सकती हैं-

1)धूमिल की 'शांतिपाठ' जैसी कविता अकविता आंदोलन से प्रभावित मानी जाती है। 2) धूमिल ने राजकमल की मृत्यु पर एक अच्छी कविता की रचना की, जिसमें न केवल यह कहा कि ''अपनी वासनाओं के अंधेरे में/ वह खोया हुआ देश था'' बल्कि यह भी कहा कि ''उसके लिए हम इत्मीनान से कह सकते हैं वह/ एक ऐसा आदमी था जिसका मरना/ कविता से बाहर नहीं है।''(संसद से सड़क तक पृ. 33) 3) धूमिल की कविताओं में अनेक स्थानों पर ऐसे वर्जित घिनौने शब्दों का प्रयोग मिलता है; जिनसे अकविताओं को कोई परहेज न था। हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि इन तीनों में से किसी बात से यह अंतिम रूप से स्पष्ट नहीं हो पाता कि धूमिल अकवितावादी कवि थे। यद्यपि यह कहना गलत न होगा कि उनकी आरंभिक कविताओं पर राजकमल चौधरी, एलेन्सगिन्स बर्ग आदि के अकविता आंदोलन का प्रभाव पड़ा है।

डॉ. काशीनाथ सिंह के शब्दों में- ''एलेन्सगिन्स बर्ग अमेरिका का 'बिट' कवि था। वह अपनी कविताओं में यौन शब्दों के प्रयोग के लिए बदनाम था; जिन्हें समाज में गंदा, अश्लील, तथा फूहड़ माना जाता है। लेकिन उस समय वह अमेरिका का बड़ा ताकतवर कवि माना जाता था। धूमिल के सामने राजकमल चौधरी और एलेन्सगिन्स बर्ग ये दो कवि थे।'' (शोधकर्ता की निजी वार्ता, वाराणसी दिनांक 20-09-2001)

धूमिल की कविता में प्रयुक्त ऐन्टी रोमांटिक भावना फूहड़ता एवं अभद्रता का परिचायक है। उनमें रोमानियत विरोधी भावना का परिणाम 'कमलनयनी' या 'पिकबयानी' सुंदरी का रूप नहीं दिखलाई पड़ता है। उनके यहाँ नारी अधिकतर गर्भवती, धर्मशाला, वेश्या आदि की अवस्था में उभरकर आई है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि धूमिल में नारी जीवन के सामाजिक स्वस्थ और संतुलन रिश्तों की चर्चा लगभग नगण्य है। उनकी कविता में सौंदर्यशास्त्र का दर्शन नहीं; बल्कि वीभत्स रूप के दर्शन होते हैं। अकवियों की भाँति उनमें यौन-प्रतीक यत्र-तत्र-सर्वत्र बिखरे पड़े हैं; जो भयावह यथार्थ को उभारने में सक्षम हैं। जूजी, चिलम, योनि, संभोग, आदि शब्दों का प्रयोग 'कुछ हद तक' बिटनिक कवियों के प्रभाव का परिणाम माना जा सकता है।

धूमिल द्वारा रोशनआरा बेगम की शहादत पर लिखी गई कविता 'आतिश के अनारासी वह लड़की' और नीग्रो औरत के उन्नत स्तन पर लिखी गई कविता 'लेलिन का सिर' देख लेने की कल्पना उन्हें अकवितावादी नहीं; बल्कि प्रगतिशील होने का प्रमाण

देती हैं। धूमिल की नारी जिन रूपों एवं प्रसंगों में चित्रित हुई हैं वे इस प्रकार हैं-

''हर लड़की तीसरे गर्भपात के बाद/ धर्मशाला हो जाती है।'', ''गलियों में नंगी घूमती हुई/ पागल औरत के गाभिन पेट की तरह'', ''जरायमपेशा औरतों की सावधानी'', ''बलात्कार के बाद की आत्मीयता'', ''गर्भ गदगद औरतों में अजवाइ का सत्त'', ''योनि की सफलता के बाद गंगा का गीत'', ''मासिक धर्म में डूबे हुए क्वारेपन की आग'', ''जीभ और जाँघ के स्थानिक भूगोल की वाजिब मजदूरी'' आदि कविताओं में कवि धूमिल इस तरह के दृश्य एवं प्रसंगों को चित्रित कर, विकृतियों के प्रति वितृष्णा से भर देना चाहते हो ऐसी बात नहीं; बल्कि वे इसे नरक से निकाल कर स्वस्थ रूपों में चित्रित होते देखना चाहते हैं। डॉ. शुकदेव सिंह ने अपनी संपादित पुस्तक 'धूमिल की कविताएँ' के आरंभ में धूमिल के कुछ उद्धरण दिए हैं। उन्हीं एक में से वे यह कहते हैं कि समकालीन कविता की सबसे बड़ी पहचान आक्रामकता है और दूसरे में यह कहा है कि उनका उद्देश्य चीजों को नंगा करना नहीं, परन्तु उन्हें सच्चे रूप में उपस्थित करना है।

धूमिल की रचनाशीलता के साथ सबसे बड़ा खतरा बताते हुए डॉ. शुकदेव सिंह ने यह कहा है- ''जब वे प्रसिद्ध हो रहे थे, तब उन पर राजकमल और गिन्सबर्ग के असर देखे जाते थे और जब उनका विरोध होने लगा, तो उनकी कविता को ही लक्ष्य बनाकर उन कविताओं को सामने किया गया; जो अपने लेखन-काल में या आज भी कविता की तरह स्वीकृत नहीं है। धूमिल में कविता नहीं है- यह घोषित षड्यंत्र धूमिल के प्रशंसकों ने भी किया है और धूमिल को, कविता के खिलाफ लड़ते हुए एक लड़ाकू क्रांतिकारी; किंतु अपेक्षाकृत कविता-शत्रु के रूप में मूल्यांकित करने की कोशिश की है। धूमिल की कविताओं में मुहावरों, रचनाशीलता, शब्दान्वेषण, उक्ति की विलक्षणता बिलकुल अगल-बगल की जिन्दगी से कविता को उठाकर खड़ा कर देने के वाक्चातुर्य और उनके गहन कवित्व को विश्लेषित करने की कोशिश ही नहीं की गयी। इसके कारण हैं- यह कि हिंदी कविता का पाठक और आलोचक समुदाय भी तो धार्मिक रहा है या तो शृंगारिक और कुछ सुसंस्कृत हुआ तो रोमांटिक।''(3)

यह सच है कि धूमिल की कविताओं में नारी सुंदर, प्रेममय, स्वतंत्र एवं संघर्षशील रूप कम ही देखने को मिलता है; परंतु यह आवश्यक नहीं है कि एक ही कवि में ये सारी चीजें मिलें। यह भी जरूरी नहीं है कि जहाँ उनका दृष्टिकोण अभिव्यक्त न हुआ हो, वहाँ भी उसका दृष्टिकोण ढूँढ लिया जाना चाहिए। यह संभव नहीं है कि विद्रोही कवि नारी के प्रति भर्त्सनापूर्ण दृष्टिकोण अपनाए। यदि कवि धूमिल की नारी से दी गई उपमाओं की गहराई में जाँच-पड़ताल की जाए; तो प्राय: उसके प्रति गहरी करुणा की ही अभिव्यक्ति होती है। आचार्य पंकज के शब्दो में- ''घर में वापसी'' शीर्षक कविता में नारी के प्रति ममता का भाव सम्मान का भाव है। धूमिल के पूरे साहित्य में औरत के प्रति जितना अनुराग,

जितनी करुणा, जितना प्लावन मिलता है; वह अपने पूर्ववर्ती कवियों को पछाड़ता है। 'नीर भरी दु:ख की बदली' तथा 'तुम केवल श्रद्धा हो' ये सारे-के-सारे खारिज होते हैं।''(4)

धूमिल पर अकविता आंदोलन के श्रेष्ठ कवि राजकमल चौधरी का विशेष प्रभाव पड़ा है। इस संदर्भ में त्रिलोचन का कथन है--''धूमिल युवकों की गोष्ठियों में जाया ही करते थे और अपनी कविताओं का पाठ भी करते थे। धूमिल अपनी रुचि या अरुचि के अनुसार कविता संबंधी विचार भी व्यक्त करते थे। धूमिल ने राजकमल चौधरी की 'कंकावती' ध्यान से पढ़ी। 'कंकावती' पढ़कर उनके कविता संबंधी विचार भी बदले। लेकिन वे राजकमल की शैली को महत्त्वपूर्ण मानकर भी राजकमल के अनुकरण मात्र नहीं हुए।''(5)

धूमिल की 'पटकथा' शीर्षक कविता नाटकीयता से ओत-प्रोत है। धूमिल के पूर्व इस तरह की कविता की रचना करनेवाले विदेशी कवि येन्तुशेको और भारतीय कवि मुक्ति बोध का नाम सर्वोपरि था। डॉ. काशीनाथ सिंह के अनुसार- ''येन्तुशेको रूसी कविता का बड़ा विद्रोही किस्म का युवा कवि था। वह अपने काव्य पाठ की नाटकीयता के लिए बड़ा प्रसिद्ध था। उसकी कविता में जो वक्रता शैली दिखाई पड़ती थी, लोग इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। धूमिल ने भी उसकी कविता को अच्छी तरह पढ़ी थी। दूसरे कवि मुक्तिबोध थे। धूमिल ने उनकी कविताओं को अच्छी तरह पढ़ा था। उन्होंने महसूस किया कि इन कविताओं में जो 'नाटकीय प्रवाह', 'बिंब' और 'फेंटेसी' है, उनके काम की चीज हो सकती है। 'पटकथा' लिखते समय निश्चित ही उनके दिमाग में मुक्ति बोध की लंबी कविता 'अंधेरे में' होगी।''(6)

हम एक और बात की ओर संकेत करना चाहेंगे कि प्रारंभ में रोमांटिक भावना से ओत-प्रोत कविता लिखनेवाला कवि में अचानक राजनीतिक चेतना कैसे पनपी? लगभग उनकी हर कविता में दो चार पंक्ति के बाद राजनीतिक छीटें पड़ते हुए दिखाई पड़ते हैं। इस दृष्टि से 'संसद से सड़क तक' की अंतिम लंबी 'पटकथा' शीर्षक कविता उदाहरण तौर पर देखी जा सकती है। उनके पूर्व ऐसा कोई राजनीतिक रचनाकार कहीं भी प्रेरणा स्त्रोत के रूप में परिलक्षित होता है क्या? यदि हाँ तो कहाँ? भारत में वैसा कोई रचनाकार उन्हें नजर नहीं आया। शायद इसीलिए उन्होंने राजनीतिक कवि माइकोओस्की को चुना होगा। कवि ज्ञानेंद्रपति के अनुसार- ''धूमिल पर विदेशी कवि माइकोओस्की का प्रभाव बहुत अधिक पड़ा था। वह समीक्षावादी संघर्ष से जुड़ा हुआ एक राजनैतिक कवि था।''(7)

हम इन सभी रचनाकारों के साथ-साथ सबसे पहले धूमिल को कबीर से जोड़ना चाहते हैं। बाद में निराला पर आकर रुकते हैं । कबीर और निराला की परंपरा की जो बातें रह गई थी; वह उन्होंने जनभाषा के माध्यम से उकेरने की कोशिश की है। हाँ कबीर और धूमिल की भाषा में यह अंतर जरूर है कि कबीर की भाषा में बड़ा गडमड है, खिचड़ीपन है। पर धूमिल की भाषा में अगर कहीं अंग्रेजी के शब्द भी हैं; तो अंग्रेजी न जाननेवाला

भी उस अंग्रेजी को जानता है।

समकालीन कविता के युवा कवियों में धूमिल का नाम सर्वोपरि है। लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि समकालीन काव्य रचना में शमशेर, रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह, मुक्तिबोध, श्रीकांत वर्मा का अत्यधिक योगदान रहा है। ये सभी नई कविता के दौर के कवि थे और एक मोहभंग की प्रक्रिया से गुजरकर नए ढंग की कविता लिख रहे थे। नयी कविता की कवियों में मोहभंग से पैदा होनेवाली गहरी पीड़ा रही है। सातवें दशक में उभरते हुए कवि धूमिल पर भी इनका प्रभाव पड़ा है; किंतु वे चित्कार नहीं भरते; बल्कि तमाम चीजों को सहज एवं स्वाभाविक रूप में ही लेते हैं। श्रीकांत वर्मा का मोहभंग उन्हें 'सिनिसिज्म' तक ले जाता है, लेकिन धूमिल 'सिनिक' नहीं होते। वे अपने को जनतंत्र एवं जनतांत्रिक व्यवस्था पर केंद्रित कर उसकी असलियत उजागर करने लगते हैं। 'पटकथा' कविता इसका परिणाम है। रघुवीर सहाय ने भी जनतंत्र को अपना निशाना बनाया; पर उनमें जहाँ उसके प्रति आलोचना का भाव है। वहीं धूमिल में आक्रोश एवं क्रांति की भावना निहित है।

धूमिल की प्रतिबद्धता जनता के प्रति है। धूमिल की जन प्रतिबद्धता सुस्पष्ट ही नहीं, बल्कि दृढ़ भी है। उनका एक पैर शहर में है तो दूसरा गांव में। उन्हें जनता की निष्क्रियता से शिकायत है। केदारनाथ सिंह भी जनता के पक्षधर कवि माने जाते हैं, लेकिन उसके प्रति उनके मन में कोई शिकायत नहीं है। किंतु नफरत की भावना है। उनमें कहीं भी जनोद्‌बोधन की ध्वनि नहीं सुनाई देता है। जबकि कवि धूमिल का जनोद्‌बोधन उनकी 'प्रौढ शिक्षा' शीर्षक कविता में देखने योग्य है। वे जनता को उद्‌बोधन देते हुए कहते हैं -

> "मैं फिर कहता हूँ कि हर हाथ में / गीली मिट्‌टी की तरह
> हाँ-हाँ मत करो/ तनो/ अकड़ो/ अमरबेलि की तरह मत जियो/
> जड़ पकड़ो/ बदलो-अपने आपको बदलो/यह दुनिया बदल रही
> है/ और यह रात है सिर्फ रात/इसका स्वागत करो/ यह तुम्हें/
> शब्दों के नये परिचय की ओर लेकर/ चल रही है।"(8)

धूमिल नहीं चाहते हैं कि देश की आम जनता का शोषण जारी रहे; बल्कि वे चाहते हैं कि यह जनता अपनी जमीन पर मजबूती के साथ खड़े होकर तने और अकड़े। इसी तरह 'पटकथा' शीर्षक कविता में हिंदुस्तान का हमशक्ल उन्हें उद्‌बोधित करता हुआ कहता है।

> "तुम मेरी चिंता न करो/ उनके साथ/ चलो। इससे पहले
> कवि के गलत हाथों के हथियार हों/इससे पहले कि वे
> नारों और इश्तिहारों से/काले बाजार हों/ उनसे मिलो।
> उन्हें बदलो/"(9)

धूमिल ने अपनी मार्क्सवादी आस्थाओं के 'काव्य और कला' की वैचारिक हथियार मानकर उपर्युक्त कविता लिखी है; क्योंकि वे यथार्थ को अपने जीवनानुभवों से जान रहे

थे। इस संदर्भ में नामवर सिंह से उन्हें पर्याप्त मार्गदर्शन मिला है। धूमिल यथार्थवादी चिंतन परंपरा से जुड़कर वर्तमान प्रजातंत्र एवं शोषण व्यवस्था का विरोध रचते हैं। यह सच है कि 'यथार्थ सौंदर्यात्मक चेतना की बनावट का मुख्य निर्णायक तत्त्व है, नियामक नहीं।' प्रदीप सक्सेना के शब्दों में कहा जा सकता है कि जब कलाकार यथार्थ का पुनरुत्पादन कृति में करता है; तो कल्पना के रूप में वह विचारात्मक और सौंदर्यात्मक यथार्थ से समतुल्य ही होते हैं। हावर्ड फास्ट ने यथार्थवाद-रियलिज्म की जगह इस संदर्भ में सोशलिस्टिक मेथड़, रियलिस्टिक सिचुयेशन्स, रिफुलेक्शन ऑफ रियलिटी आदि कई शब्दों का सतर्कता पूर्वक सार्थक प्रयोग किया।

हावर्ड फास्ट की यथार्थवादी धारणा को धूमिल के काव्य-संसार में रूपायित होते देखा जा सकता है; जहाँ वे व्यवस्था, प्रजातंत्र, न्याय व्यवस्था का खुलासा आलोचनात्मक यथार्थवादी शैली में करते हैं। प्रस्तुत संदर्भ में रमेश कुंतल मेघ, शिवकुमार मिश्र एवं रोहिताश्व की मान्यताएँ हमारी अवधारणा का समर्थन कर सकती हैं। उदाहरणार्थ 'पटकथा' के संदर्भ में डॉ. शिवकुमार मिश्र ने कहा भी है- ''अपनी सारी आक्रामकता के बावजूद धूमिल की कविताएँ युवा पीढ़ी के इसी वर्ग की रचनात्मक क्षमताओं का प्रतिनिधित्व करती है... 'पटकथा' आक्रोश, विक्षोभ एवं विद्रोह की शब्दावली नहीं एक ऐतिहासिक फर्दे जुर्म है, जिसे समूची पीढ़ी के प्रतिनिधि के रूप में कवि ने आजादी के बीस वर्षों की नंगी वास्तविकता से साक्षात्कार करते हुए समय के हाथों में सौंपा है कि वह निर्णय ले और इस वास्तविकता की जिम्मेदार शक्तियों के खिलाफ उसे कार्यन्वित करे। वह एक चुनौती है, सत्ता के शीर्ष पर बैठी, अतिचारी व्यवस्था की जाल बुनती हुई उस पीढ़ी को, जिसने नौजवानों के हाथों से उनका भविष्य छीनकर अपने वर्तमान को संवारा है, जिसने उनके देश को, उन्हीं के लिए कारागार बना दिया है।''(10)

उपर्युक्त विवेचन समसामयिक यथार्थ का ही वैचारिक रूपांतरण है। धूमिल के संबंध में यह कह देना भी जरूरी है कि उन्हें जो वक्तव्य अथवा सपाटबयानी का कवि माना जाता है; वह बहुत कम अंशों में ही सच है, क्योंकि उनके जैसे दुरुह मुहावरें बहुत कम कवियों ने प्रयुक्त किए हैं उनके बिंब नई कविता की परिपाटी पर रचे हुए नहीं है, लेकिन वे अपने स्वरूप में विलक्षण जरूर हैं।

कवि धूमिल के इर्द-गिर्द फेरी मारे हुए लोगों की एक लंबी कतार आज भी है। धूमिल एक तरह से बहुत बड़े प्रेरणास्त्रोत रहे हैं इस देश के कवियों के लिए। उनका पहला काव्य संग्रह 'संसद से सड़क तक' हिंदी कविता जगत में आने के बाद युवा कवियों की आँखें खुली की खुली रह गई। भारत में ही नहीं, रुस आदि देशों में इसकी प्रशंसा होने लगी। कई विदेशी भाषाओं में इनकी कविताओं का अनुवाद भी किया गया।

युवा कवियों में मंगलेश डबराल, राजेश जोशी, अरुण कमल, सोमदत्त, उदयप्रकाश, लीलाधर जगूड़ी, आदि कवि धूमिल के उपज हैं। धूमिल इनके प्रेरणास्त्रोत रहे हैं। आज

कविता में जो भी ऐंठन आई है, जो भी ट्रेलीक्क से हठकर बातें हुई हैं, वे अस्त्र के रूप में आयी हैं। हे भाई हे/ संसद जाम करने से/ बेहतर है सड़क जाम करो' ऐसा मार्ग-निर्देश धूमिल के पहले किसी ने नहीं दिया है धूमिल के बाद जो भी कवि समकालीन कविता जगत में उतरे सबके 'बॉस' धूमिल हैं। उनकी कविताएँ पढ़कर लोगों में कविता सृजन करने की क्षमता आई है। इसमें कोई संदेह नहीं है।डॉ. हुकुमचन्द राजपाल ने मुक्तिबोध और धूमिल की प्रेरक शक्ति की ओर इशारा करते हुए कहा- ''मुक्ति बोध आम आदमी तक स्वयं को अपने क्लिष्ट संदर्भ एवं नयी टेकनिक के कारण कम प्रेषित कर सकते; जबकि धूमिल यथार्थता एवं सपाटता के कारण हजारों कवियों का प्रेरक बन सके हैं। आज नई कविता का अपना अंदाज धूमिलीय बन चुका है। ऐसे कवि बहुत कम हुआ करते हैं; जिनसे युग में एकाएक बदलाव आता है अथवा वह युग के अन्य कवियों का प्रेरक बन जाता है। धूमिल सही सार्थक आदमी की खोज करते हुए अन्ततः सही वक्तव्यों द्वारा सार्थक कविता तथा उसके व्यवहृत उपकरणों को समझने -समझाने का प्रयास निरंतर करते हैं, यही कारण है कि कवि को बाह्य या ऊपरी धरातल से देखने पर आम स्थिति का प्रस्तुतीकरण प्रतीत हो सकता है, परंतु शब्द, स्थिति, प्रसंग के मूल में निहित कवि लक्ष्य काफी गहरा एवं युग-सापेक्ष है।''(11)

समकालीन हिंदी कविता में अपनी स्वतंत्र भाषा लेकर आनेवाले कवि का नाम धूमिल है। यदि अन्य कवि इनकी काव्य-शैली की नकल भी करते हैं; इनकी अपनी खूबी खत्म नहीं होती। पूरे भारत में इनकी नकल हो रही है। बहुत सीमा तक लीलाधर जगूडी ने धूमिल की नकल की है। उन्होंने धूमिल की कविता 'मोचीराम' के तर्ज पर 'बलदेव खटिक' नामक लंबी कविता की रचना की; पर हिंदी जगत में 'मोचीराम' की तरह उतनी स्वीकृति नहीं मिली। त्रिलोचन शास्त्री का कथन है- ''धूमिल की शैली को अपनाकर निकट भविष्य में कोई नया व्यक्तित्व हिंदी में उभर आएगा ऐसी आशा नहीं है। अनुकरण कोई भी कर सकता है; लेकिन इस अनुकरण को कृतित्व में बदलने की क्षमता अनुकरण की स्थिति में तो संभव नहीं है। यही बात धूमिल को साधारण से असाधारण करती है और इसी कारण नए-से-नए रचनाकार उन्हें अपने से आगे देखते हैं।''(12)

कहना न होगा कि धूमिल की मुहावरेदार भाषा, चुस्त उक्तियों, सपाटबयानी शैली आदि का प्रभाव परवर्ती लीलाधर जगूड़ी, चंद्रकांत देवताले, श्रीहर्ष, राजेश जोशी, अरुण कमल, रोहिताश्व, देवीप्रसाद मिश्र आदि पर पड़ा है; जिसकी विस्तृत व्याख्या हेतु एक अन्य शोध प्रबंध रचना होगा।

6.2 समकालीन कविता : धूमिल का योगदान एवं उपलब्धियाँ

समकालीन कविता का प्रस्थान बिंदु सन् 1962 के भारत-चीन सीमा-संघर्ष से उपजे 'मोहभंग' की स्थिति से माना जाता है। हैदराबाद की 'कल्पना' पत्रिका ने सन् 1961 के आस-पास नई कविता दौर की सपाटी के चंद सवाल भारतवर्ष के विभिन्न रचनाकारों के सामने रखे थे; जिस पर परमानंद श्रीवास्तव, नामवर सिंह, श्रीकांत वर्मा आदि विचारकों ने विचार व्यक्त किए थे। धूमिल इसी सातवें दशक में ,मोहभंग दौर में उपजे राजनीतिक चेतना के प्रखर कवि रहे हैं; जिन्होंने प्रजातंत्र, संसद की दुर्व्यवस्था का खुलासा रचा है। सातवें दशक की कविता में 'अकविता' का उदय एक आंदोलन के रूप में हुआ। सन्1962 के भारत-चीन-सीमा और 1964 के पाक-भारत-संघर्ष ने भारतीय जनता में मोहभंग की स्थिति पैदा कर दी। नेहरू सत्ता के प्रति अनास्था एवं विरोध ने नवयुवकों को प्रतिरोध एवं विद्रोह के लिए प्रेरणा दी। इसी कारण नक्सलवादी आंदोलन उभर कर सामने आया।

समकालीन कविता का विकास प्रगतिशील (मार्क्सवादी) यथार्थवादी काव्य-धारा के विकास के साथ जोड़ा गया है। समकालीन कविता को हमनें विवेचन एवं विश्लेषण के लिए कुछ भागों में इस प्रकार विभाजित करने का प्रयास किया है -1) समकालीन कविता का लक्ष्य यथार्थ एवं वक्तव्यों पर आधारित है। इसमें सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के प्रति विशेष दृष्टि है। 2) सपाटबयानी समकालीन कविता का धरोहर है। शब्द-प्रयोग में संदर्भ एवं प्रसंगत अर्थ-व्यापकता नीहित है।3) समकालीन कविता नई कविता से पृथक धरातल की है कथ्य एवं टेकनिक के आधार पर।4) परम्परा के प्रति विरोध, असहमति, भाव के धरातल पर। 5) प्रतिबद्धता नए धरातल पर।

इसके अतिरिक्त आशा, निराशा, अनास्था, आस्था के चलते कवियों ने अपनी ऊर्जा को अर्जित की और उसे प्रमाणित भी किया। नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, अमृतलाल, त्रिलोचन के बाद की पंक्ति में रघुवीर सहाय, कुँवर नारायण, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, श्रीकांत वर्मा, केदारनाथ सिंह, धूमिल आदि कवि उभरे हैं। अकविता आंदोलन के कवि जगदीश चतुर्वेदी, शाम परमार, मोना गुलाटी, राजकमल चौधरी, सौमित्र मोहन आदि कवि ने व्यवस्था, सत्ता के प्रति वर्जित शब्दों के प्रयोग से विरोध का काव्य रचा है। पर यह सच है कि धूमिल ने समकालीन हिंदी काव्य धारा में ठोस वैचारिक प्रतिबद्धता और प्रगतिशील आस्था से जनसंघर्ष की अभिव्यक्ति दी है।

समकालीन कविता में धूमिल इसलिए महत्त्वपूर्ण हैं; क्योंकि वे शायद हिंदी के पहले ऐसे कवि हैं; जिन्होंने आजादी के बाद की उपलब्धियों को सही मायने में जाँचा और परखा था। अक्षय उपाध्याय के अनुसार इन्होंने- ''कविता के मार्फत संविधान और संसद पर सबसे पहले प्रश्न चिह्न लगाया, चालू भाषा में उसकी पवित्रता की माँग को तथा सत्ता को पूर्णरुपेण खुली चुनौती दी। जबकि इस समय लगभग 65 से 70 के बीच हिंदी समकालीन

कवि अभी तक आजादी के बाद के सरकारी आँकड़ों से सुखी थे और सहज भाव से काव्य कर्म में पिले हुए थे। लगभग यही समय है कि जब देश में एक नये राजनैतिक दल ने अपने अस्तित्व के लिए पेशकश की थी और यहीं कहीं आसपास धूमिल अपने विचारों को लेकर उसके समानांतर साहस में खड़े होते हैं।''(13) धूमिल के काव्य संबंधी मूल्यांकन से कई बातें स्पष्ट होकर सामने आई हैं। वे समकालीन कविता के अपरिहार्य हस्ताक्षर हैं। उन्होंने कविता के नए प्रयोग और नए तत्त्वों के अन्वेषक का काम पूरे उत्तरदायित्व के साथ निभाया है। समकालीन कविता में धूमिल का सबसे बड़ा 'कन्ट्रीब्यूशन' यह है कि उन्होंने शहरी और मध्यवर्गीय जीवन से नई कविता को बाहर निकालने का सफल प्रयास किया है।

धूमिल की काव्य-यात्रा उनके गाँव खेवली से आरंभ होती है, जहाँ गरीब किसान हैं, खेत-खलिहान हैं तथा उनकी आपस की लाग-डाँट है। उन्होंने पहली बार कविता को गाँव से जोड़ा है। ग्रामीण बोलचाल के वे भदेश शब्द उनकी कविता में स्थान पाने लगे; जो अब तक हिन्दी काव्य जगत में अनछुए थे। इनके साथ-साथ गाँव की जिंदगी भी कविता का विषय बना। कहानीकार डॉ. काशीनाथ सिंह के शब्दों में ''पंद्रह साल पहले कहानी गाँव से जुड़ गई थी और कविता नहीं जुड़ पाई थी। कविता को गाँव से जोड़ने का श्रेय धूमिल को जाता है। धूमिल ने ही अपनी कविता को गाँव के सभी तबकों एवं उनकी समस्याओं से जोड़ा। जिन्हें हम अति पिछडे कह सकते हैं। यानि 'मोचीराम' जैसी कविता रोज कमाने खानेवाले जैसे व्यक्ति से जोड़ा। इस तरह धूमिल ने लगभग शहर का तिरस्कार किया। उनके 'टोन' में जो बनारसी अक्खड़पन था, वही उनकी कविता में भी दिखलाई पड़ता है।''(14)

दिल्ली में सन् 1975 में धूमिल पर एक गोष्ठी हुई थी। जिसके आधार पर इब्बार रब्बी का कहना है- ''गोष्ठी में अधिकतर लोगों ने धूमिल के बारे में कहा कि वह ऐसे आदमी की कविता है; जो गाँव से आया है और शहर में बौखला रहा है। हमारी समझ में धूमिल को गँवार या देहाती कहकर वक्ताओं ने शब्दों के चयन में गलती की है; क्योंकि वक्ताओं की इच्छा के विपरीत इस आरोप का अर्थ यह हो जाता है कि गाँव का आदमी मूर्ख है और शहर का आदमी बुद्धिमान। यह स्थापना गलत है। इसके विपरीत सही समझ यह बताती है कि शहर में या गाँव में रहने मात्र से कोई बुद्धिमान या मूर्ख नहीं हो जाता। इस कथन के पीछे वक्ताओं का वर्ग चरित्र झाँक रहा था, उसे देहाती पिछड़ा हुआ लगेगा ही। हालाँकि श्रोताओं का आशय यह बिल्कुल नहीं था कि गाँव का आदमी पिछड़ा हुआ होता है।''(15)

कहना न होगा कि धूमिल की काव्य-यात्रा गाँव से प्रारंभ होती है और समकालीन इतिहास, प्रत्येक जागरूकता, क्रोध, सम-सामयिक क्षुद्रता एवं प्रजातंत्र के हास्यास्पदता का स्पर्श करती हुई उत्तरकालीन साहित्य बोध व साहित्यकारों तक पहुँची है। उनका पहला काव्य संग्रह 'संसद से सड़क तक' सन् 1972 में प्रकाशित होने के बाद ही लोगों के मस्तिष्क

को आंदोलित किया। बौद्धिकता, वैचारिकता, एवं यथार्थ से समन्वित यह काव्य-संग्रह यथार्थवादी अंर्तद्वन्द्व का अजायबघर बन गया।

समकालीन कविता में अकेले धूमिल ने ही अपने काव्य के माध्यम से धर्म एवं रूढ़ियों के विरुद्ध आंदोलन चलाया है। यही नहीं ग्रामीण संस्कार को अपनी कविता में सभ्यता के आडंबर से उत्पन्न अतिरिक्त साज-सजावट से बचाते रहे तथा सहजता पर बल देते रहे। अत: धूमिल यथार्थ को कलात्मक रूप से प्रस्तुत करते रहे हैं। समकालीन कविता में धूमिल के काव्य में प्रयुक्त ग्रामीण चित्रण सबसे बड़ा योगदान रहा है। दो-दो घण्टे 'आवरे गइयवा आवरे भइसियाँर आवरे कुकुरा आवे बिलरिया'' कहने के बाद दूध पीनेवाले किशोर धूमिल के सामने अकस्मात परिवार के लिए दो वक्त रोटी का प्रश्न खड़ा हो गया था। होश सम्भालते हुए धूमिल कहते हैं-

> ''बच्चे भूखे हैं/ माँ के चेहरे पत्थर/पिता जैसे काठ: अपनी
> ही आग में जले हैं ज्यों सारा घर।''(16)

नई पीढ़ी के कवियों में एक मात्र धूमिल ने ही ग्रामीण भूख को अपने काव्य में प्रमुख स्थान दिया है। धूमिल नई कवियों से बिलकुल भिन्न हैं। अक्षय उपाध्याय का कथन है- ''नई पीढ़ी में धूमिल ही वह अग्रणी कवि हैं; जिनकी कविताओं में नई कविता या अंग्रेजियत का संस्कार नहीं है। धूमिल ने कविता को उस वर्ग के लहजे से उसके आत्मविश्वास से जोड़ा, जिसमें यह मध्यवर्ग का खोखलापन नहीं रहता, जिसमें परिवर्तन की अदम्य इच्छा और आकांक्षा रहती है और जो इतिहास की परिवर्तनकारी शक्तियाँ हैं। धूमिल की कविताओं में मजूर बोलता है; गाँव का किसान बोलता है, यही नहीं, उसमें अस्सी प्रतिशत हिंदुस्तान बोलता है। वे परजीवी समुदाय पर बड़े बेलौस ढंग से व्यंग्य करते हैं, उसे चिढ़ाते और ललकारते हैं। भाषा का यह जुझारूपन धूमिल की देन है हिंदी कविता को; क्योंकि उनके लिहाज से कविता भाषा में आदमी होने की तमीज है।''(17)

हिंदी साहित्य में व्यंग्य की परंपरा काफी पुरानी रही है। कबीर की रचनाओं में उच्च कोटि के व्यंग्य के दर्शन होते हैं। आधुनिक युग के हिंदी कवियों में भी व्यंग्य की परंपरा रही है। महाकवि निराला ने तो अपनी समकालीन परिस्थितियों को व्यंग्य के माध्यम से ही वाणी दी है। 'भिक्षुक' शीर्षक कविता इस बात का प्रमाण है। सातवें दशक के बहुचर्चित कवि धूमिल की कविता की शक्ति भी व्यंग्य बाण ही रही है। उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं-

> ''इतनी हरियाली के बावजूद/ न मालूम उसके गालों की
> हड्डियाँ क्यों उभर आई हैं/ उसके बाल सफेद क्यों हो गए
> हैं।''(18)

धूमिल के व्यंग्य बाण से युवक-युवती, अध्यापक- नेतागण, वकील आदि सभी शहर या गाँव में रहने वाले शिकार हुए हैं। यह भी एक बड़ी उपलब्धि मानी जा सकती

है। धूमिल के काव्य की उपलब्धि बताते हुए प्रभातकुमार त्रिपाठी ने ठीक ही कहा हैं- ''संभवत: धूमिल के काव्य की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है कि अव्वल तो अंधकार का कोई निजी जिक्र उनकी कविता में उपस्थित नहीं है और अगर कहीं है भी तो उसे लेकर उनका आलोचनात्मक रुख काफी स्पष्ठ है। यही कारण है कि उनके यहाँ अपने परवर्ती कवियों की तरह 'भावुक उग्रता' या बिखरा हुआ समावेशीपन (जैसा कि मणिमधुकर के यहाँ है) नहीं है, और न ही अकविता के दौर के कवियों की सी आत्मरति। इसलिए मुझे लगता है कि धूमिल की कविता का केंद्रीय आकर्षण यही है कि वे अपनी कविता में आत्म-प्रक्षेप की मसीहाई मुद्रा से मुक्त हैं। इसलिए उनके व्यवस्था-विरोध के स्वर में, रेटॉरिक या सामान्यीकरणों जैसे, खतरनाक काव्य-उपकरणों का भी सार्थक और असरदार इस्तेमाल संभव हो सका है।''(19)

समकालीन कवियों में नार्गाजुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, धूमिल आदि जनवादी कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। इन जनवादी रुझान के कवियों में धूमिल का अत्यधिक महत्त्व है। वे जन का उद्धार करना चाहते हैं। धूमिल की कविताओं को पढ़ने के बाद हमें ऐसा लगता है कि अकेले धूमिल ही ऐसे कवि हैं; जो सामाजिक चेतना के कवि मुकम्मल हैं। डॉ. विश्वनाथ सिंह के शब्दों में ''अगर वह वसंत पर कविता लिख रहे हैं; तो उसी सामाजिक दृष्टि को, परिवेश को तथा अंतर्विरोध को पहचान रहे हैं। अगर वह किसी 'मोचीराम', 'भाषा की रात',' गाँव खेवली', 'संसद और रोटी' पर कविता लिख रहे हैं; तो वही सामाजिक दृष्टिकोण है। मृत्यु की शैय्या पर पड़ा हुआ व्यक्ति जो एक-दो-दिन बाद महाप्रस्थान करने को है; पीड़ा से ग्रस्त सामाजिक दृष्टि के लिए लिख रहा है- 'लोहे का स्वाद/ उस लोहार से मत पूछो/ उस घोड़े से पूछो/ जिसके मुँह में लगाम हैं।' (कल सुनना मुझे पृ.80) धूमिल जब मठों-बड़े बड़े मंदिरों को देखते हैं; तो वही दृष्टिकोण है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नई कविता के दूसरे दौर के सामाजिक-आर्थिक तथा राजनैतिक चेतना के महत्त्वपूर्ण कवियों में धूमिल का विशेष महत्त्व है।''(20)

धूमिल लोकवादी कवि हैं। उनकी कविता में जिस आम जनता का जिक्र बार - बार आता है, वह और कोई नहीं; बल्कि स्वयं धूमिल ही हैं। जिस प्रकार मुक्तिबोध की कविता में रचनाकार मुक्ति बोध के साथ व्यक्ति मुक्तिबोध की टकराहट व संघर्ष बराबर चलता रहा है; ठीक उसी प्रकार धूमिल की कविता में कवि धूमिल के साथ व्यक्ति धूमिल ही टकराते हैं। अशोक वाजपेयी ने दोनों कवियों की उपलब्धियों पर प्रकाश डालते हुए कहा है- ''दर असल मुक्तिबोध ने कविता पर बहस करने की, उसे सामाजिक संघर्ष में स्थित करने की शुरुआत की। इस खास अर्थ में यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि धूमिल युवा पीढ़ी में मुक्तिबोध इस समावेशी परंपरा के उपयुक्त उत्तराधिकारी हैं। हालाँकि धूमिल का अवदान मुक्तिबोध के मुकाबले कहीं कम है, नयी कविता को निरे कविता के स्वायत्त संसार के कलावादी ऐश्वर्य भवन में जाने से मुक्ति बोध ने जैसे रोका था, कुछ इसी अकविता

के दिनों में धूमिल ने भी, हालाँकि छोटे पैमाने पर, युवा कविता को वस्तुस्थिति से दूर कलाबाजियों से तुष्ट होने से बचाया और सामाजिक संघर्ष की केंद्रीयता को कविता में पुनर्प्रतिष्ठा दी। मुक्तिबोध ने माध्यम और रचना प्रक्रिया के प्रश्नों को आपातत: कलावादी मानकर छोड़ नहीं दिया: ठीक उसी तरह धूमिल ने भाषा और कविता संबंधी प्रश्नों को प्रगति विरोधी मानकर फेंक नहीं दिया; बल्कि अपने उद्दाम काव्य-व्यवहार में उन प्रश्नों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया।''(21)

धूमिल जनवादी होने के साथ-साथ मानवतावादी कवि भी हैं। उनकी कविता में आम आदमी के प्रति यही दृष्टिकोण सर्वत्र परिलक्षित होता है। डॉ. हुकुमचंद राजपाल के शब्दों में- ''वस्तुत: ये एक ऐसे जनवादी कवि हैं, जिन्होंने मार्क्सवादी चिंतन एवं साम्यवादी सिद्धांतों का अध्ययन तो किया था; पर उसे वक्तव्यों में कविता का विषय नहीं बनाया। जिस रूप में स्थिति को देखा, समझा कविता का विषय बना दिया। यही धूमिल की उपलब्धि है। फिर भी धूमिल की संपूर्ण कविताओं एवं डायरी के पन्नों में दिए वक्तव्यों के आधार पर किसी एक धारणा, चिंतन अथवा विचारधारा का अनुमान लगाया जा सकता है।... यदि धूमिल के काव्य का मूल्यांकन रसवादी चिंतन (भारतीय काव्यशास्त्र) की दृष्टि से करेंगे तो हिंदी काव्य परम्परा में इसे कुछ कवि मानने से भी इन्कार कर सकते हैं। पर नई कविता एवं समकालीन कविता के प्रतिमानों के आधार पर धूमिल के काव्य का विशेष महत्त्व है।''(22)

कविता को जनता के बीच ले जाना ही धूमिल के काव्य की सबसे बड़ी उपलब्धि है। उस दौर के समस्त कवियों में यही एक ऐसी चीज थी; जो धूमिल को 1972 में सबसे अलग एवं ऊँचा स्थान प्रदान करती है। डॉ. अवधेश प्रधान के अनुसार- ''वे उन कवियों में से थे; जो खुद अपनी सीमा देख सकते थे। धूमिल के बाद ही यह संभव हुआ कि कविता लोगों के बीच पढ़ी जाए। वे अपने को कसौटी पर बराबर कसते रहे।''(23) यह सत्य है कि आधुनिक कविता में मैथिलीशरण गुप्त के बाद धूमिल को लोग सबसे ज्यादा उद्धृत करने लगे। वह चाहे अध्यापक वर्ग हो या छात्र वर्ग सभी के जुबान पर उनकी कविताओं की पंक्तियाँ चढ़ गई। बहुत कम कवियों में यह भाग्य बदा होता है कि उनकी कविता की पंक्तियाँ कुछ लोगों को याद हो जाए। बड़े-बड़े आचार्य-विद्वान, भारी-भारी आलोचक ही याद रखे, यह उसकी सार्थकता नहीं है। तुलसीदास यदि आज जिंदा हैं; तो अपनी सरल, सुगम एवं लोक प्रचलित भाषा के कारण। इनकी रचनाएँ शिक्षित वर्ग के साथ-साथ कम पढ़े-लिखे लोगों के बीच भी लोकप्रिय हैं। आज लोग उनकी सूक्ति यों-दोहों आदि का समय-समय पर उद्धृत करते हैं।

नेमिचंद जैन ने धूमिल की कविता की उपलब्धि पर विचार करते हुए कहा है- ''धूमिल की कविता मूलत: आत्मालाप की कविता है; जिसमें आवेग की ऊर्जा है और एक तरह की अंत:प्रज्ञा पर आधारित दिशा-बोध है और सहज प्रभावी अभिव्यक्ति भी

है। यह असंभव नहीं था कि वे वक्त के साथ स्पष्ट जीवन-दृष्टि और वैचारिक पृष्ठभूमि भी हासिल कर लेते और इस प्रकार एक अत्यंत सक्षम और समृद्ध काव्य-जगत की रचना करने में सफल होते। यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि ऐसा होने के पहले ही उनका जीवन समाप्त हो गया। मगर जो कुछ छोड़ गए हैं वह समकालीन कविता की एक उपलब्धि मानी जाती रहेगी इसमें संदेह नहीं।''(24)

कवि धूमिल की कविताएँ एक प्रवाह एवं गतिशील लिए हुए हैं। उनके यहाँ विषयवस्तु एवं शिल्प के स्तर पर बारीक बुनावट है। धूमिल काफी ऊँचाई पर से यथार्थ परक वस्तुओं को ध्यान से देखने के बाद ही उन पर अपने वक्तव्य देते हैं। इब्बार रब्बी का कथन है- ''उनका अंदाज पैगंबरवाला है; लेकिन नजर रेडिकल, उग्र और बौखलाई हुई है। वह वर्ग-सजग व्यक्ति की दृष्टि नहीं है। पैगंबर की तरह काफी ऊँचाई पर से सामयिक स्थितियों पर जनभाषा में टिप्पणी करना यह अपने आप में विरोधाभास है, जिसके कारण उनकी कविता में बड़बोलेपन है। उनमें गाँव से आए सीधे-सादे आदमी की निराशा और बेचैनी है; जो व्यवस्था के फरेब से चोट खाया हुआ है। धूमिल की राजनीतिक समझ परिपक्व नहीं है, इसलिए वह जन आंदोलनों का जिक्र नहीं करते। सही रास्ते की तलाश नहीं करते केवल बौखलाते हैं। सारांश में धूमिल की कविता आग, हाय और आँसू का मिश्रण है। सही जनवादी चेतना के अभाव में वह जनतंत्र और जनवाद के खिलाफ हो जाते हैं। कवि का गुस्सा व्यक्तिगत मुठभेड़ या अकेली शहादत बनकर रह जाता है।''(25)

विषयवस्तु और शिल्प के संबंध में धूमिल की कविता में अनेक ऐसी बातें हैं; जो उन्हें अपने समकालीन कवियों में भिन्न, महत्त्वपूर्ण एवं विशिष्ट स्थान प्रदान करती हैं। उन्हीं बातों के बदौलत उनकी कविताएँ अत्यधिक असरदार प्रमाणित हुई हैं। इन सभी तत्त्वों में आलोचकों का मानना है कि धूमिल ने हिंदी कविता को एक नई भाषा दी है। इस संदर्भ में नेमिचंद जैन का विश्वास है- ''इन तत्त्वों में सबसे खास है धूमिल की भाषा। छठे-सातवे दशक में देशव्यापी मोहभंग की प्रक्रिया से उत्पन्न तल्खी और गुस्से को धूमिल ने एक अलग तरह की चुनौती देती, ललकारती हुई, दबंग भाषा दी, जिसमें व्यंग्य और ऊर्जा का बड़ा प्रभावी मिश्रण है। मगर साथ ही उसकी एक अपनी विशिष्ट निजी पहचान है और वह इस दौर की दूसरी अनेक कविताओं और कवियों की चरित्रहीनता से अभिशप्त नहीं है। धूमिल इस दौर के जिस विसंगति भरे परिवेश को अपनी कविताओं में पेश करते हैं, उसके अंतर्विरोधों का बहुत-सा तनाव उनकी नाटकीय तनाव भरी भाषा में जाहिर होता है। उसमें बड़ी अनिवार्यता, एक तरह की बरजस्तगी है; जो पढ़ने या सुननेवाले को चौंकाती है, चमत्कृत करती है और उसके आगे कविता की व्यंजना के अप्रत्याशित स्तर अचानक ही नाटकीय चरमबिंदु (क्लाइमेक्स) या द्रुतलय के संगीत में अचानक आनेवाले समय सम की तरह कौंधा देती है।''(26)

कवि धूमिल ने हमेशा अपनी रचनाओं में भाषा को एक आकार-रूप देने के लिए

प्रयत्नशील रहे हैं। यह बात स्वयं धूमिल के इस कथन से प्रमाणित होता है- ''अपनी कविताओं में कब से भाषा पाने की कोशिश कर रहा हूँ। पहले की सारी रचनाओं को मैंने भाषा-हीन किया है लोगों की भाषा के लिए; लेकिन लोगों के मुख से, अलग रह कर क्या भाषा पाई जा सकती है?''(27) धूमिल की कविता की भाषा एवं ढाँचा अपनी एक अलग पहचान रखती है। इस संदर्भ में राजेश्वर का मत है- ''भाषा, भाव-भूमि, कथ्य और अपने शिल्पगत प्रयोगों में वह अपने समकालीन रचनाकारों से एकदम पृथक और बेजोड़ है। धूमिल की कविताओं का ढाँचा, उसकी काठी जैसा शक्तिशाली और मजबूत है। धूमिल को समझने के लिए, पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर, संजीदगी से उसकी जमीन पर खड़ा होकर सोचना जरूरी है, जो उसके खून-पसीने और आँसुओं से तर है...।''(28) धूमिल की निम्नलिखित पंक्तियाँ इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं-

> अनुभव के नये-नये पृष्ठों पर/ भाषा के समर्थन में बूँदें गिरती हैं /जैसे सामूहिक हस्ताक्षर अभियान में/ आसमानी दस्तखत।''(29)

सामाजिक यथार्थ के संप्रेषण के मस्तिष्कीय आग्रह में भाषा के दो रंग अधिक उपयुक्त पाए जाते हैं। एक आक्रामक, प्रहारात्मक या जुझारू तेवरवाली भाषा, दूसरी व्यंग्यात्मक। पहली ज्यादा सीधी-सपाट होती है; इसीलिए ज्यादातर दूसरी का इस्तेमाल करते हैं। प्रभातकुमारी त्रिपाठी के अनुसार जिसके माध्यम से - ''धूमिल ने युवा कविता को आत्म-विश्वास की नुकीली, पैनी और बेलाग भाषा दी है।''(30) कवि धूमिल की भाषा को लेकर प्रारंभ से लेकर आज तक आलोचकों-साहित्यकारों-विद्वानों में एक मत नहीं है। आचार्य नंदकिशोर के शब्दों में- ''भाषा की उग्र आक्रमिक, उक्ति-वैचित्र्यपूर्ण इस्तेमाल धूमिल में अपनी चरम सीमा पर दिखाई देती है, उसी कारण उतना ही सरलीकरण, शब्द-स्फीति और बड़बोलापन भी है। आवेश को एक नाटकीय भंगिमा में रूपायित करने की जो हिकमत श्रीकांत तुकों के इस्तेमाल से करते हैं; वह धूमिल में और अधिक विकसित होती जाती है और इसीलिए सामान्यीकृत कथनों की बहुलता भी वहाँ बढ़ जाती है। कई बार जो स्वयं कवि अपनी भाषिक भंगिमा की रौ में कुछ ऐसा कह जाता है; जो वह नहीं कहना चाहता''(31)

धूमिल की भाषा में शहरीपन नहीं के बराबर है; क्योंकि उनका संबंध गाँव से अधिक रहा है। डॉ. विद्यानिवास मिश्र के अनुसार- ''धूमिल की भाषा में कुछ शहरीपन मिल भी जाए, शहरी यारों की सोहबत की बदौलत; पर उनकी भाव-भूमि ठेठ देसी है, निखालिस हिंदुस्तानी है।''(32) यह सच है कि धूमिल ने ग्रामीण शब्दों को अपने घर और पड़ोस से उठाकर शहर की जुबान तक पहुँचा दिया है; जो खड़ी बोली के लिए एक असरदार एवं प्रभावशाली चुनौती है तथा सम्मोहन से भरपूर निमंत्रण भी। डॉ. शुकदेव सिंह ने धूमिल

की इस विशेषता की ओर इशारा करते हुए ठीक ही कहा है- ''धूमिल ने निश्चित रूप से न लोगों पर लिखा था और न ऐसे लोगों पर कहा था। वे सही अर्थों में एक अल्प शिक्षित गाँव में पूरी तरह से धँसे हुए, किसान जीवन की कठोरताओं, व्यंग्यों और मुहावरों को अपनी ग्रामीण भाषा-संपदा में जीनेवाले सशक्त किसान कवि थे। किसान अर्थात् जिसके आस-पास पड़ोसी, दोस्त, संबंधों और आत्मीय काका, भइया, चाचा, दादा, बुढऊ, भौजी और बुआ बनकर रहते हैं। चाहे वे बनिहार, कुम्हार, तेली, लुहार हलवाहे हों। यहाँ मेहनत से टकराकर शब्द बजते हैं और पसीने से नहा कर मुहावरे कविता की तरह तीखे और हथियार की तरह चुटीले हो जाते हैं। कबीर के बाद धूमिल शायद दूसरे आदमी थे, जिन्होंने अपने आस-पास की श्रमिक शब्दावली को कविता की ओर बढ़ा कर कविता तक पहुँचा दिया था।''(33) कवि धूमिल पर मूलत: किसानी संस्कार का प्रभाव है। उनकी भाषा में भी वही देशी टटकापन मौजूद है; जो किसानी परिवेश में आम तौर पर बोला जाता है। डॉ. नामवर सिंह का यह मानना है- ''इसी किसानी दृष्टि के द्वारा धूमिल ने हिंदी कविता को एक जीवंत नई भाषा दी, केवल शब्द नहीं; बल्कि वाक्य-विन्यास और बातचीत का लबो लहजा भी...''(34)

व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग भी धूमिल की एक उपलब्धि रही है। आरंभ से ही उन्होंने समाज की विसंगति, विद्रूपता तथा कुंठा को लक्ष्य बनाया था। ऐसे स्थानों पर वाक्-विदग्धता अपने आप आ जाती है। यहाँ भाषा जीवन के अनुभवों के गहराई से जुड़ी है। राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक अंतर्विरोधों से है। यहाँ व्यवस्था का विरोध प्रखर है। इसीलिए धूमिल को 'विपक्ष का कवि' भी कहा जाता है। धूमिल की व्यंग्यात्मक भाषा में व्यापकता, स्थायित्वता एवं बौद्धिकता का पुट अधिक पाई जाती है। धूमिल ने अपनी काव्य-भाषा में जो बिंबों-प्रतीकों का प्रयोग किया है। उनके माध्यम से सामाजिक अंतर्विरोध, शोषण-उत्पीडन तथा राजनीतिक भ्रष्टाचार के यथार्थ नग्न, रूप सबसे अधिक परिलक्षित होते हैं। यौन बिंबों का भी प्रयोग खूब उन्होंने किया है; जो समकालीन अन्य कवियों में उन्हें अलग एवं विशिष्ट महत्त्व प्रदान करती है। उनकी कविता में बिंबों की तरह प्रतीकों के जाल को भी समझे बिना आस्वादन पूर्णत: नहीं हो पाता।

कहना न होगा कि धूमिल की कविता की शक्ति उनके बिंब-प्रतीक ही हैं। धूमिल के प्रतीकों में सामाजिक संदर्भ अधिक हैं। प्रसंगानुकूल कुत्ता, भेड़िया, जंगल, भीड़, चीता आदि उनके सर्वाधिक प्रिय प्रतीक हैं; जो समकालीन कवि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के काव्य में भी 'जंगल का दर्द', 'कुवानों नदी' तथा 'भेड़िया' शीर्षक कविता में उभरकर आए हैं। भेड़िया सत्ता का प्रतीक है और जनता इस भेड़िए से त्रस्त है। अत: इस भेड़िए से खुलकर सामना करने के लिए सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने आह्वान करते हुए कहा है-

''भेड़िए की आंखें सुर्ख हैं/ उसे तब तक घूरो जब तक तुम्हारी
आँखें/ सुर्ख न हो जाए/ और तुम कभी क्या कर सकते हो/

जब वह तुम्हारे सामने हो।''(35)

कवि का कहना है कि इस समाज को तंग करनेवाले भेड़ियों को मशाल जलाकर भगाना चाहिए तभी लोग चैन की साँस ले पाएँगे। कुछ ऐसा ही भाव कवि धूमिल के यहाँ भी मिलता है-

''एक अजीब-सी प्यार भरी गुर्राहट/ जैसे कोई मादा भेड़िया/
अपने छौने को दूध पिला रही है और/साथ ही किसी मेमने
का सिर चबा रही है।''(36)

धूमिल के काव्य में प्रयुक्त शब्दों के माध्यम से जो बिंब-प्रतीक के चित्र उभरते हैं, उनमें कहीं वह जटिलता या वह सारी बातें नहीं हैं; जो कहीं मुक्तिबोध और अज्ञेय के काव्य में हैं। इनको समझने के लिए आपको बहुत मूड़ बनना पड़ता है। कवि धूमिल के यहाँ ऐसा नहीं है। डॉ. हुकुमचंद राजपाल के शब्दों में ''धूमिल ने अपनी कुछेक कविताओं में ऐसे शब्द-प्रयुक्त किए हैं। जिनसे बहुत बड़े ऐतिहासिक सत्य का संकेत मिलता है- यही पर्याप्त नहीं है। शब्द प्रयोग के प्रति कवि काफी सजग है। इसलिए अनेक वक्त व्यों में वह स्वयं एक शब्द कई नामों से अभिहित करना चाहता है। यथा- ''कविता श्री काकुलम्' में उसने कहा है- 'यह हत्याकांड नहीं सिर्फ लोहे को एक नया नाम दिया जा रहा है। शब्द का इस रूप में प्रयोग कम कवि कर पाए हैं। यहाँ 'लोहा' कोशगत अर्थ से हत्याकांड की भीषणता एवं मारकाट का प्रतीक शब्द है।''(37)

कहना न होगा कि धूमिल अधिकांश भाषा के शब्दों के प्रति पूर्ण जागरूक थे। वे नहीं चाहते थे कि भाषा के कारण उनके भावों का कहीं गला घुटता हुआ दिखाई दे। यह उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। धूमिल की भाषा की विशेषता की ओर इशारा करते हुए डॉ. अवधेश प्रधान ने ठीक ही कहा है- ''धूमिल के अनुसार वह जो केवल भाषा तरासता है; वह हमारी दृष्टि में कवि नहीं है। बहुत बड़ा पंडित हो सकता है; पर कवि नहीं; क्योंकि सहृदयता हमेशा निचले स्तर से जुड़ी होती है।''(38) धूमिल भाषा को संस्कार मानने से इनकार करते हैं। उनकी सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने परंपरागत भाषा के स्थान पर लोगों को एक नई भाषा दी। समकालीन कविता में वे प्रथम ऐसे कवि हैं, जिन्होंने पारंपरिक जकड़न से कविता को मुक्त किया। राहुल के शब्दों में-''धूमिल स्वयं मानते थे रचनाकार के लिए भाषा का सांस्कारिक होना जरूरी नहीं। यहाँ सांस्कारिक भाषा से तात्पर्य है, वह भाषा जिसे कवि विशेष प्रयोजन के लिए इस्तेमाल करता है।'' (39) धूमिल ने एक जगह 'भाषा और भाषा के बीच की दरार' पाटने की बात करते हुए कहा है-

'मैं एक अदना कवि-/ तेरी भाषा का मुहताज/मुझे अपनी
बोली में शरीक कर।'

कहना न होगा कि धूमिल समकालीन कविता में एक रचनाकार ही नहीं, भाषा

पर्यवेक्षक के रूप में समकालीन कवियों में अगुवा और उनकी भाषा समकालीन कवियों की दृष्टि हैं। धूमिल ने समकालीन कविता में जो एक नया काम किया है, वह है, तुकों का अप्रत्याशित (अनसोचा) होना; जिसे देखकर पाठक चौंकता है। धूमिल कहीं-कहीं तुकों का निर्वाह कर हिंदी कविता की परंपरा से बराबर जुड़े रहे। यह भी समकालीन कविता में उनका योगदान रहा है।

धूमिल की कविता विवाद के लिए चुनौती देनेवाली कविता है। उनका मुहावरा, मुहावरे से व्यक्त होनेवाला क्रोध हमें न केवल चौंकाता है; बल्कि दासता के संस्कारों में उलझी मानसिकता से मुक्त भी करता है। हरिनारायण व्यास के अनुसार- ''कविता पढ़ते समय हमारी आस-पास की बाहरी और भीतरी दुनिया का एक ऐसा गोपनीय आशय स्पष्ट हो जाता है। जिसे हम या तो जानते नहीं थे या फिर जान बूझकर समझ नहीं रहे थे। एक व्यर्थता का एहसास होने लगता है। प्रतीत होने लगता है कि हम जो कुछ कर रहे हैं, वह एकदम बेमानी और फालतू है। ये कविताएँ पढ़ने पर महसूस होता है कि हम युद्धभूमि में लड़नेवाले वे सिपाही हैं जिनकी सारी लड़ाई आत्मरक्षा की लड़ाई है, जिसमें स्वार्थो और शोषण के हथियारों का इस्तेमाल करना विवशता है। हमारी बेबसी और निरर्थकता इन कविताओं के पढ़ने के बाद अर्थगर्भित हो जाती है, हम बदल जाते हैं।''(40)

धूमिल के काव्य-मूल्यांकन एवं योगदान पर अनेक शोधकार्य, संगोष्ठी एवं विचार विनिमय कार्य सम्पन्न हुए हैं। कुछ वर्ष पहले इनके योगदान को रेखांकित करते हुए काशी प्रतिमान नामक पत्रिका ने धूमिल के अप्रकाशित लेख की पंक्तियाँ उद्धृत की है; जिसमें सार्थक संवाद की पहल है, ''आधुनिकता असंवाद की स्थिति है; जबकि जीने के लिए बातचीत जरूरी है। मेरे निकट विद्रोह और आधुनिकता दोनों अप्रासंगिक हैं। आधुनिकता शौक है और विद्रोह एक सहूलियत। विद्रोह में जब शौक शरीफ होता है, तब वह समारोह बन जाता है। वर्तमान दौर से जब अशोक वाजपेयी आलोचना में आधुनिकता और विद्रोह जैसे शाब्दिक उत्सवकार्य एवं बहस चला रहे हैं।''(41) कहना न होगा उनकी पक्षधरता पर धूमिल की निम्नलिखित पंक्तियाँ एक सार्थक प्रतिक्रिया के रूप में उभरकर प्रस्तुत होती हुई दिखाई दे रही हैं

> ''जनता नहीं समझती राजनीति के पेंच/दोस्ती और दलाली
> के बीच/ सत्ता कुर्सी के पावों पर जम्हाई लेती रहती है/
> और पेचकस कसता रहता है/ धीरे-धीरे और स्क्रू से पूछता
> भी जाता है /दर्द तो नहीं हुआ?/ चोट तो नहीं हुआ?/
> जनतंत्र कलाबाजियां खाता है।''(42)

डॉ. प्रभातकुमार त्रिपाठी का यह कहना है कि उनकी कविता में भाव एकदम हटके गँवई प्रतीकों से भर उठते हैं। गतिशील गाढ़े बिंबों से चेतना नहा उठती है। संवादों

में कविता बतियाने लगती है-कभी पाठक से तो कभी चरित्रों से, तो कभी अपने आप से भी। इनके लिए धूमिल फैंटेसी भी रचते हैं और कहानी भी बुन लेते हैं। लेकिन फैंटेसी यहाँ मुक्तिबोध की तरह अबूझ नहीं, बूझने का सरल जरिया बनकर आती है। और इन सबसे समृद्ध (सजी नहीं) कविता कई-कई आरोपों के बावजूद पूरे युग के सर चढ़कर बोली और अभी तक बोलती जा रही है।

समकालीन कविता में धूमिल के योगदान एवं उपलब्धियों को रेखांकित विभिन्न आलोचकों द्वारा किया गया है; जिसमें नामवर सिंह, विद्यानिवास मिश्र, नेमिचंद जैन, अशोक वाजपेयी, हरिनारायण व्यास आदि से लेकर युवा आलोचक विश्वंभरनाथ उपाध्याय, अरुणकमल, रोहिताश्व, राजेश जोशी आदि शामिल हैं। धूमिल एक संवेदनशील और आत्मचेतस रचनाकार रहे हैं, जिन्होंने पैटी बुर्जुआ मानसिकता के लेखकों-पत्रकारों-अध्यापकों की प्रतिबद्धता संबंधी असलियत की पोल भी खोली है। यह प्रश्न आम पाठक अपने आपसे भी पूछ सकता है कि आज संसद से लेकर सड़क तक जो भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, आपाधापी एवं अवसरवादिता व्याप्त है, उसके लिए जिम्मेदार कौन है? राष्ट्रीय नेतृत्व या आम जनता अथवा व्यवस्था के दलाल? यही चेतना और प्रश्नाकुलता धूमिल के काव्य-संसार को यथार्थपरक योगदान कर रही है; जिसे झुठलाया नहीं जा सकता।

×-×-×

संदर्भ-सूची

1.	परमानंद श्रीवास्तव	: समकालीन कविता का यथार्थ	पृ.127
2.	नंदकिशोर नवल	: पहल पत्रिका, अंक 13,	पृ. 22
3.	शुकदेव सिंह (सं)	: धूमिल की कविताएँ	पृ.15-16
4.	आचार्य पंकज	: शोधकर्ता की व्यक्तिगत बातचीत, हरहुआ दिनांक 25-05-2003	
5.	त्रिलोचन शास्त्री	: वीरेंद्र मोहन की बातचीत, आलोचना पत्रिका, अप्रैल-जून 1989	पृ.53
6.	काशीनाथ सिंह	: शोधकर्ता की व्यक्तिगत वार्ता, वाराणसी दिनांक 20-09-2001	
7.	ज्ञानेंद्र पति	: शोधकर्ता से बातचीत-साक्षात्कार, वाराणसी दिनांक 17-02-2003	
8.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.48
9.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.121-122
10	शिवकुमार मिश्र	: कल्पना पत्रिका, अगस्त-सितम्बर 1969	
11.	हुकुमचंद राजपाल	: समकालीन बोध और धूमिल का काव्य	पृ.64
12.	त्रिलोचन	: वीरेंद्र मोहन की बातचीत आलोचना पत्रिका, अप्रैल-जून 1989	पृ.55
13.	अक्षय उपाध्याय	: पूर्वग्रह पत्रिका, मार्च, अप्रैल 1975	पृ. 20
14.	काशीनाथ सिंह	: शोधकर्ता की व्यक्तिगत वार्ता, वाराणसी दिनांक 20-09-2001	
15.	इब्बार रब्बी	: आजकल पत्रिका, मई 1975	पृ.31
16.	धूमिल	: कल सुनना मुझे	पृ.68
17.	अक्षय उपाध्याय	: पूर्वग्रह पत्रिका, मार्च-अप्रैल 1975	पृ.21
18.	धूमिल	: सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र	पृ.65
19.	प्रभात कुमार त्रिपाठी	: पूर्वग्रह पत्रिका, मार्च-अप्रैल 1975	पृ.13
20.	विश्वनाथ प्रसाद	: शोधकर्ता की बातचीत, हरहुआ दिनांक 18-02-2003	
21.	अशोक वाजपेयी	: पूर्वग्रह पत्रिका, मार्च-अप्रैल 1975	पृ.22
22.	हुकुमचंद राजपाल	: समकालीन बोध और धूमिल का काव्य	पृ.74
23.	अवधेश प्रधान	: शोधकर्ता से विचार-विमर्श, वाराणसी दिनांक 16-02-2003	

24.	नेमिचंद जैन	: पूर्वग्रह पत्रिका, मार्च-अप्रैल 1975	पृ.9
25.	इब्बार रब्बी	: आजकल पत्रिका, मई 1975	पृ.29
26.	नेमिचंद जैन	: पूर्वग्रह पत्रिका, मार्च-अप्रैल 1975	पृ.7
27.	सारिका पत्रिका, अंक जनवरी 1980		पृ.10
28.	राजेश्वर	: कल सुनना मुझे	पृ. 24
29.	धूमिल	: कल सुनना मुझे	पृ.44
30.	प्रभात कुमार त्रिपाठी	: पूर्वग्रह पत्रिका, मार्च-अप्रैल 1975	पृ.13
31.	आचार्य नंदकिशोर	: मधुमति पत्रिका, जुलाई 1989	पृ.32
32.	विद्यानिवास मिश्र	: कल सुनना मुझे, प्रस्तावना	पृ.
33.	शुकदेव सिंह	: (सं) धूमिल की कविताएँ, भूमिका	पृ.19
34.	नामवर सिंह	: आजकल पत्रिका, मार्च 1980	पृ.8
35.	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	: जंगल का दर्द	पृ.26
36.	धूमिल	: संसद से सड़क तक	पृ.112
37.	हुकुमचंद राजपाल	: समकालीन बोध और धूमिल का काव्य	पृ.138
38.	अवधेश प्रधान	: शोधकर्ता से विचार-विमर्श, वाराणसी दिनांक 16-02-2003	
39.	राहुल	: विपक्ष का कवि धूमिल	पृ.154
40	हरिनारायण व्यास	: पूर्वग्रह पत्रिका, मार्च-अप्रैल 1975	पृ.19
41.	सुरेश्वर (सं)	: काशी प्रतिमान पत्रिका 1997	पृ.4
42.	धूमिल	: काशी प्रतिमान, 1997	पृ.10

×-×-×

परिशिष्ट 1

धूमिल : संक्षिप्त जीवन एवं सृजन परिचय

नाम : सुदामा पांडेय 'धूमिल'।

जन्म : 9 नवम्बर 1936 ई.।

जन्म स्थान : खेवली (रामेश्वर) वारणासी, उ. प्र.।

परिवार : पितामह - गौरी पांडेय, प्रपितामह - बिंदेश्वरी पांडेय
पिता - शिवनायक पांडेय, माता श्रीमती रजवंती देवी पांडेय,
पत्नी - श्रीमती मूरत देवी।
संतान- दो पुत्र 1-रत्न शंकर पांडेय उच्च श्रेणी सहायक, भारतीय जीवन बीमा निगम, मंडल कार्यालय, भेलूपुर - वाराणासी। पुत्र वधु श्रीमती सुधा पांडेय
संतान - नम्रता, श्रीकांत, अमृता, मीनू
2- आनंद शंकर पांडेय (सहायक, आई. टी. आई. बलिया, उ.प्र.) पुत्रवधु ममता
और 3 पुत्री - इंदु, इंदिरा देवी, ऊषा देवी
भाई - कन्हैया पांडेय (जीवित) , अर्जुन पांडेय (निधन 01.08.1996), शोभनाथ पांडेय (निधन 7.11.2001), लोकनाथ पांडेय (निधन 1.6.1998)

विशेष ज्ञातव्य: 1. धूमिल का विवाह कम उम्र (जून 1949)
2. पत्नी श्रीमती मूरत देवी साक्षर।
3. बचपन में ही धूमिल के पिता का निधन

शिक्षा : जुलाई 1942 में प्रारंभिक शिक्षा 'बेसिक प्राईमरी पाठशाला' भतसार- खेवली, कक्षा चार तक पढ़े।
जुलाई 1947 में मिडिल स्कूल हरहुआ, वाराणासी में दाखिला।
1950 में मिड्डिल स्कूल की कक्षा सातवीं की परिक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए।
1951 में कुर्मी क्षेत्रीय इंटर कालेज, हरहुआ (काशी कृषी इंटर कालेज) में कक्षा आठवीं में दाखिला। प्रथम स्थान पाने के कारण कक्षा 9-10 की पढ़ाई के लिए छात्रवृत्ति मिलना।
1953 में हाई स्कूल द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण संस्कृत में विशेष योग्यता के साथ।
1958 में काशी विश्व विद्यालय में आई. टी. आई. डिप्लोपा (इलेक्ट्रिशियन) प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण।

कार्य / व्यवसाय/ मृत्यु : 1953 में हाई स्कूल के बाद कलकत्ता में नौकरी की तलाश में गए।
1954-55 में कलकत्ता के मेसर्स तलवार एंड ब्रदर्स लिमिटेड कंपनी में आफिसर के पद से इस्तीफा।
12 जून 1958 में काशी विश्व विद्यालय के आई. टी. आई. में विद्युत अनुदेशक के पद पर नियुक्ति।
1961 में पर्यवेक्षक के रूप में पदोन्नति पर आई. टी. आई बलिया में स्थानांतरण।
1963 में बलिया से उसी पद पर वारणसी स्थानांतरण।
1966 में अखिल भारतीय कर्मचारी संघ के मंच से अधिकारियों की आलोचना

- परिणाम स्वरूप सहारनपुर स्थानांतरण।
1968 में पुनः वारणसी में स्थानांतरण।
1974 में वाराणसी से सीतापुर स्थानांतरण हुआ वही अंतिम स्थानांतरण सिद्ध हुआ। कुछ दिन बाद सीतापुर जाकर कार्यभार सँभालने के बाद चिकित्सा हेतु अवकाश ले लिया।
18 अक्टूबर 1974 में काशी विश्वविद्यालय के मेडिकल कालेज में चिकित्सा हेतु भर्ती।
1 नवम्बर 1974 में लखनऊ के किंग जार्ज मेडिकल कालेज में भर्ती।
10 फरवरी 1975 की रात में 9 बजकर 50 मिनट पर धूमिल का जिंदगी से अंतिम स्थानांतरण इस दुनिया से हो गया।

सृजन : गीत - धूमिल का प्रारंभिक दौर गीतों का रहा है। उनके गीत बलिया के 'क' पत्रिका और वाराणसी के 'चाँद सितारे' यानी 'नीहार' में छपे मिलते हैं। 'बाँसुरी जल गई' इस नाम से गीतों का संग्रह निकालने की योजना थी। मगर यह योजना ही बनकर रह गई।
काव्य संग्रह- 1. संसद से सडक तक (1972); 2 कल सुनना मुझे (1977); 3 धूमिल की कविताएँ - संपादित शुकदेव सिंह (1983); 4 सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र (1984)

अन्य विधाएँ : कहानी। निबंध। डायरी। पत्र। अनुवाद।

परिशिष्ट 2

धूमिल के अनुज श्री कन्हैया पांडेय 22-03-2002

रमाशंकर : चाचाजी आपका शुभ नाम क्या है?

कन्हैया : मेरा नाम कन्हैया पांडेय है।

रमाशंकर : धूमिल जी से आपका क्या संबंध है?

कन्हैया : मैं उनका छोटा भाई हूँ। उनसे तीन साल छोटा हूँ। मैं उनके साथ जीवन भर रहा। हर एक काम में उनके साथ कंधा-से कंधा मिलाकर चलता था। उदाहरण के तोर पर, अगर, वे कोई कविता लिखते थे, तो कहा करते थे 'सुनो मैं कविता की एक लाइन लिखा हूँ। कभी-कभी पूरी कविता लिख लेते थे, तब सुनाते थे। मैं उनके साथ ही रहकर 1960-61 में बी.ए. पास किया। उन्हीं के चलते मेरा नाम बी.एच.यू में लिखा गया। भैया जब भी अपनी कविता सुनाते थे, तो मैं हाथ जोड़ लेता था कि भाई साहब आपकी कविता आपके ही पल्ले पड़ती है। वह हमारे वश की बात नहीं है। तो वे बिगड़ जाते थे, और कहते थे 'तुम मूर्ख हो, आज नहीं कल तुम जरूर पढ़ोंगे और लड़कों को भी पढ़ाओगे। यह कविता जो देख रहे हो, क्या है? आग है आग। मुर्दे में जान फूँकने वाली चीज है। यह बात एकदम सही है। यही यथार्थ है। मैंने जो कुछ देखा है, भोगा है वही लिखा है।'

भैया, कभी-कभी कहा करते थे की देखो ! मैं चाहूँ तो एक दिन बहुत बड़ा आदमी बन सकता हूँ। पूरी दुनिया में मेरा नाम हो जायेगा। मैं ऐसी चीज लिख दूँगा कि सी. आई. डी. मेरे पीछे लग जायेगी। तुम लोगों भी मिट्टी पलीद हो जाएगी। मैं जेल चला जाऊँगा। हमारी दुर्गति तो होगी ही, तुम लोगों की भी दुर्गति होगी।' इस तरह के बहुत से संस्मरण हैं। एक तरह से मेरा पूरा शरीर ही उनका संस्मरण है।

रमाशंकर : अच्छा ! आपको पढ़ाने-लिखाने में धूमिल जी की क्या भूमिका रही थी?

कन्हैया : भैया, पढ़ाई-लिखाई को बहुत ही महत्त्व देते थे। वे स्वयं बहुत पढ़ना-लिखना चाहते थे; लेकिन बचपन में ही पिता का साया सर से हट जाने के बाद वे ज्यादा पढ़ नहीं पाए। यह कमी उनको हमेशा खला करती थी। वे कहा करते थे कि मैं नहीं पढ़ सका तो ना ही सही। अपने भाइयों को खूब पढाऊँगा। स्कूल भेजने की जिम्मेदारी उन पर आ गई। कभी-कभी तो हमें स्कूल घसीटते हुए ले जाया करते थे। भैया चाहते थे कि हम लोग पढ़-लिखकर किसी अच्छे पद पर पहुँच जाएँ जिससे हमारा नाम हो। मेरे छोटे भाई शोभनाथ पढ़ने-लिखने में कच्चे थे। वे मास्टरों के मुँह लग्गू थे। और भाई पढ़ नहीं पाय। मैं भैया के साथ बनारस के छेतूपुर में रहकर पढ़ाई की। भैया हाईस्कूल पास करके उच्च शिक्षा हेतु यहीं रह रहे थे। वे विज्ञान के विद्यार्थी थे। संस्कृत विषय में लगभग 80-85 प्रतिशत अंक उन्हें मिलते थे। उन्होंने अपना नाम मैदागिन के हरिश्चंद्र इंटर कालेज में लिखाया। गणित का उत्तर निकालना उनके बायें हाथ का खेल था।

रमाशंकर : धूमिल जी का शौक क्या हुआ करता था?

कन्हैया : वे सिनेमा के बड़े शौकिन थे। यदि कोई पिक्चर शहर में आ गयी, तो उसे वे देखते जरूर थे। भले ही आर्थिक वे कष्ट से लदे हों। वह फिल्म चाहे अंग्रेजी में हो या हिंदी या फिर बंगला ही क्यों न हो, उनके समझ में आए, चाहे न आये; लेकिन देखते जरूर थे। फिल्म देखना उनका शौक रहा। फिल्म में कोई भी चीज देखते थे, तो बड़े गौर से। उसमें क्या

नयी चीज है, उसे बराबर समझने की कोशिश करते थे और नोट किया करते थे। इसी तरह वे जब भी कैंटीन में चाय के लिए जाया करते थे वहाँ बैठे लोगों की बातें ध्यान से सुना करते थे। उस बीच कोई नया शब्द उन्हें सुनाई देता, तो वे उसे तुरन्त बिना किसी को बताये कागज का टुकड़ा फाड़ लेते थे या अखबार का टुकड़ा ही सही या फिर सिगरेटवाली वह पन्नी ही सही- उस पर वह शब्द लिख लेते थे। पूरा का पूरा उस आदमी का वाक्य लिख लेते थे और उसे कविता में अपनी जगह फिट कर लेते थे।

रमाशंकर : धूमिल जी का व्यक्तित्व कैसा था?

कन्हैया : भैया की अच्छी 'पर्सनालिटी' थी। उनके पास अच्छी जानकारी भी थी। आई.टी.आई. में उन्हें पढ़ाना होता था। वे बड़े दबंग टाइप के 'इन्स्ट्रक्टर' थे। 'सोसायटी' में उनकी अच्छी पहचान थी। बड़े-बूढ़े हर तरह के उनके साथी थे। रहीस से रहीस (रईश) जैसे- शिवप्रसाद सिंह, नामवर सिंह, दूधनाथ सिंह, केदारनाथ सिंह, डॉ. रामचन्द्र शुक्लजी, आदि साहित्यकार उनके मित्र थे। इस तरह से विद्वानों में भी उनकी इज्जत थी। यदि कोई अपने आप को गुंडा समझता, तो भैया भी किसी गुन्डे से कम अपने आपको नहीं समझते थे। वे अपनी बात से उनको मारते थे। यदि आई.टी.आई. में कोई विद्यार्थी बहुत बदमाश था, तो वे अपने दिमाग से उसे वश में कर लेते थे। भैया, दिमाग के बड़े तेज थे। आई.टी.आई. की परीक्षा में सर्वाधिक नम्बर लेकर कई वर्षों के रिकार्ड को उन्होंने तोड़ा था।

भैया व्यावहारिक आदमी थे। उनके व्यवहार और पढ़ाई-लिखाई को देखकर आई.टी.आई के सभी अध्यापक गण खास करके उनके वाइस प्रिंसिपल कृष्ण कुमार माथुर बहुत प्रभावित थे। उनकी मदद से उन्हें 25/-रुपये महीना वजीफा भी मिलने लगा था। आई.टी.आई. की परीक्षा के रिजल्ट निकलने के ग्यारहवें दिन जब वे मार्कसीट लेने गए, तो प्रिंसिपल ने भैया से कहा-'धूमिल ! क्या तुम हमारे विभाग में काम करोगे?' भैया ने कहा- 'गुरुजी, यदि नौकरी मिल जायेगी तो क्यों नहीं करूँगा। पढ़ाई-लिखाई इसीलिए कर रहा हूँ।' के.के. माथुर जी ने तुरन्त एशिया के माने जाने 'इलेक्ट्रीसियन' एम. सेन से फोन पर बात की। उन्होंने धूमिल का परिचय बताया कि यह वही लड़का है जिसने खेलकूद में 13-14 पुरस्कार जीता है।

सन् 1957 में बिना 'अपरेन्टिस' किये उनकी नियुक्ति फोन द्वारा आई. टी.आई. में हो जाती है। उस समय उनकी तनख्वाह 75/-रुपये प्रतिमाह थी। इस तरह बिना सोर्स सिफारिश के भैया को नौकरी मिल गई। यों कहा जा सकता है कि उनकी अपनी जमीन थी, वह जमीन उन्होंने खुद बनायी थी। चाहे वह गांव की राजनीति हो यानी किसी भी क्षेत्र में उन्होंने अपने बलबूतें पर सफलता प्राप्त की। उस समय आई. टी. आई में लोग उन्हें सुदामा पाण्डेय कहकर बुलाते थे।

धूमिल भैया, बड़े साहसी टेकनीशियन थे। वे पतलावाला नंगा बिजली का तार चुटकी से पकड़ लेते थे। उनको करन्ट नहीं लगता था। उनका कहना था कि तार को इतने जोर से दबाओ कि 'ब्लड सरकुलेशन' बन्द हो जाये। जब वहाँ खून ही नहीं रहेगा, तो करन्य कैसे लगेगा। एक बार मैंने अपनी आँखों से देखा था। इस समय भैया नवाबगंज में रहते थे।

एक दिन आई. टी. आई में एक प्रोग्राम हुआ था, जिसके प्रबंधक स्वयं भैया ही थे। डायरेक्टर साहब आये थे। लोगों ने उनसे कहा कि साहब ये तो 'करन्टमैन' हैं। नंगे बिजली के तार पकड़ लेते हैं। लोगों ने भैया को एक नयी उपाधि दे दी। डायरेक्टर साहब 'करन्टमैन' नाम सुनते ही आश्चर्य से बोले - 'यह कैसा आदमी है जो बिजली का नंगा तार पकड़ लेता है। भैया ने डायरेक्टर के सामने तार पकड़कर दिखा दिया। लोगों की काफी भीड़ थी, इसलिए

नहीं कि 'फांक्शन' हो रहा है, इसलिए कि लोग उनको तार पकड़ते हुए देखना चाहते थे। तार पकड़ लेने के बाद भैया ने डायरेक्टर से कहा- 'सर ! जरा मुझको छूकर देखिये। डायरेक्टर साहब का नाम राजेन्द्र प्रसाद सिंह था। उन्होंने कहा- 'मैं कुर्सी से उठ नहीं सकता, छूने की बात कह रहे हो। भैया जूता खोलकर मोजे में थे। लोगों को भ्रम था कि मोजे के कारण उनको करन्ट नहीं लग रहा है। अत: लोगों ने कहा कि 'आप तो, मोजा पहने हुए हैं कैसे करन्ट लगा सकता है ?' भैया ने कहा 'इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मुझे छूकर कोई देखे तो पता चल जाएगा।'

रमाशंकर : अच्छा आप बताइये आप छेत्तूपुर में रहते थे फिर नवाबगंज कैसे पहुँचे?

कन्हैया : छेत्तूपुर में मेरी पढ़ाई लिखाई हुई। फिर मैं 'ला' करने के लिए हरिश्चन्द्र कालेज में एडमिशन लिया। वहीं पास के नवाबगंज में रहता था। एक बार भैया मुझे लेकर अस्सी के पास 'छोटा गुदड़ अखाड़ा' में ले आये थे।

रमाशंकर : यह छोटा गूदड़ अखाड़ा क्या है?

कन्हैया : यह साधुओं का एक मठ है। यहाँ जानकी का मंदिर है। यहाँ भैया बराबर आया करते थे। साधुओं द्वारा औटाए हुए दूध की आधा किलो तक मलाई खा जाते थे। कहते भी थे कि 'साधु संन्यासी होकर मलाई खाकर का करब, हरे चलब का? साधु लोग भैया के हाथ-पैर जोड़ते; लेकिन वे मलाई खाकर ही रहते थे। सेहूलियत से आधा किलो तक खा लेते थे। उनकी बातें गजब की हुआ करती थीं। लोग उन्हें बहुत मानते थे। उनके विरोधी भी कम नहीं हुआ करते थे।

रमाशंकर : श्री सुदामा पांडेय जी अपना नाम 'धूमिल' कब से लिखने लगे थे? क्या इसकी आपको जानकारी है?

कन्हैया : सन् 1957 में वे आई. टी. आई. में इन्स्ट्रक्टर के रुप में काम कर रहे थे। मुझे याद है कि आई. टी. आई. की तरफ से एक मैगजीन निकला करती थी, जिसमें प्रोफेसरों व विद्यार्थियों के लेख व कहानियाँ तथा कविताएँ छपा करती थीं। सन् 1958 की मैगजीन में 'धूमिल' के नास से भैया की दो कविताएँ छपी थी। तब से मैं जानता हूँ कि भैया की कविताएँ 'धूमिल' के नाम से ही छपा करती थीं। भैया विद्यार्थी जीवन से ही कविता लिखा करते थे। इनकी कविताएँ अखबारों में व छोटी-मोटी पत्रिकाओं में, जैसे 'निहार', 'साखी' व 'कुटज' आदि में छपती थी। लोग बड़े चाव से पढ़ते थे।

रमाशंकर : धूमिल जी जाति के ब्राह्मण थे। निम्न-जाति के लोगों के प्रति उनका कैसा व्यवहार हुआ करता था?

कन्हैया : भैया मध्यवर्गीय जीवन से जुड़े थे। उनके मन में उच्च और निम्न जाति में कोई भेदाभाव नहीं था। शादी-ब्याह हो, तीज-त्यौहार हो, किसी के यहाँ चाहे वह हिन्दू हो, चाहे मुसलमान, सिख-ईसाई हो, जात-पात का कोई परहेज नहीं था। उनका कहना था कि खाना मिलना चाहिए वह शुद्ध और कायदे से बना होना चाहिए। मांस-मछली से वे बहुत दूर रहते थे। उनके मित्र बगल में बैठकर मांस-मछली खाते थे, लेकिन उस तरफ वे ताकते तक नहीं थे। यदि कोई मजाक में कहता कि पाण्डेयजी चाहे तो एक 'बोटी' ले लो। तब वे उत्तर देते हुए कहते- 'अरे सालो ! तुम लोगों को खाने को यही मिला था। अरे, दूध-दही और घी खाओ। इससे मन खुश रहता है।'

रमाशंकर : ऐसा सुना है कि धूमिल जी का तबादला जल्दी-जल्दी हुआ करता था। इसका कारण क्या हुआ करता था?

कन्हैया : भैया का तबादला 'प्रमोशन' के बाद होता था। इतना जल्दी-जल्दी किसी का

भी 'प्रमोशन' नहीं हुआ था। इसके पीछे उनकी कर्तव्य निष्ठा एवं ईमानदारी थी।

रमाशंकर : प्राय: धूमिल जी का संबंध लोगों से क्यों बिगड़ जाया करता था?

कन्हैया : भैया को सभी राजनीतिक पार्टियाँ चाहती थीं। वह चाहे कांग्रेसवाले हो, सोसलिस्ट पार्टी हो या अन्य पार्टी हो। जहाँ तक मुझे मालूम है वे किसी भी पार्टी के मेम्बर नहीं थे। वे जिसमें भी बुराई देखते थे, उसकी भरपूर खिंचाई करते थे। चाहे बाद में परिणाम कुछ भी हो। यही कारण है कि उनका संबंध प्राय: लोगों से बिगड़ जाया करता था। उन्होंने लिखा भी है-

"मैने हरेक को आवाज दी है
हरेक का दरवाजा खटखटाया है
मगर बेकार.. मैंने जिसकी पूँछ
उठायी है उसको मादा/ पाया है।"

रमाशंकर : धूमिलजी के ये पंक्तियाँ किसके संदर्भ में कही गयी हैं?

कन्हैया : ये पंक्तियाँ किसी के भी संदर्भ में हो सकती है, चाहे उनके समकालीन कहानीकार काशीनाथ सिंह हो, शिवप्रसाद सिंह हो, नामवर सिंह हो, चाहे त्रिलोचन शास्त्री जी, चाहे दूधनाथ सिंह हो, चाहे केदारनाथ सिंह हो या गांव के प्रधान हो। हर जगह भैया को पुल्लिंग यानी पुरुषार्थी कह सकते हैं, उनको कोई भी समर्थ व्यक्ति नहीं मिला। जो भी मिला वह मादा अर्थात् असमर्थ ही मिला।

x-x-x

खेवली के श्री कवलजीत सिंह कन्नन पांडेय के दोस्त

22-03-2002

रमाशंकर : दादाजी! आपका शुभ नाम क्या है?

कवलजीत : मेरा नाम कवलजीत सिंह है।

रमाशंकर : आपका धूमिलजी से क्या संबंध था? उनके परिवार के बारे में आप क्या जानते हैं?

कवलजीत : धूमिल हमारे पुरोहित के लड़के थे। उनके पिता स्वर्गीय शिवनायक पांडेय महाकवि जयशंकर प्रसादजी के यहाँ रहते थे। वृद्धावस्था में वे यहाँ गाँव में आ गये। हमारा जो शिवाला है, उसमें पूजा-पाठ करने लगे और यहीं रहने लगे। वे कहा करते थे 'सुदामा को बहुत पढ़ाऊँगा यदि वह जी जायेगा, तो उसका बहुत नाम होगा। श्री शिवनाथ के छोटे भाई- श्री रामनायक, श्री हरिनायक, श्री रामनेवाज, श्री हरिहर और श्री जगन्नाथ को कोई वंश नहीं था। सिर्फ शिवनायक पांडेय का ही वंश चला। उनके पांच लड़के थे। एक लड़की भी थी। सुदामा सबसे बड़े थे। वे पढ़ते-पढ़ते बनारस के हरिश्चन्द्र कॉलेज पहुँच गये। वहीं आई. टी. आई. में नौकरी पा गये।

रमाशंकर : बचपन में धूमिलजी को किसमें ज्यादा रुचि हुआ करती थी?

कवलजीत : धूमिल एक बहुत कुशल चित्रकार एवं कलाकार थे। उनकी रुचि चित्र बनाने में हुआ करती थी। जब भी हम रामलीला में विदूषक का काम किया करते थे; तो इसके पीछे सुदामा का जबरदस्त हाथ रहा करता था। मुझे याद है एक बार जब कृष्ण नाटक हुआ था; उसमें वे जब कृष्ण बनके आये, तो लोगों को लगा-कि सही में कृष्ण आ गये हैं।

रमाशंकर : धूमिल जी से गांव के लोगों से क्या कभी खटपट हुआ करती थी?

कवलजीत : गांव में उनके अपने पट्टीदारों से खटपट जरूर थी। यह सत्य है कि गांव में जब भी कोई उभरने लगता है, तो सबसे पहले पट्टीदारों को जलन होने लगती है कि यह बढ़ने न पाये। हर इतिहास में लगभग ऐसा ही होता है। उनके पट्टीदारों ने एक 'मंगलदल' बनाया। धीरे-धीरे उन्होंने अपनी धाक पूरे गांव में जमा ली।

रमाशंकर : धूमिलजी के पट्टीदार कौन हुआ करते थे? जिनसे उनको हमेशा उलझना पड़ता था?

कवलजीत : यही कन्नन पांडेय, उनके प्रमुख पट्टीदार थे जिनको कोई औलाद नहीं थी।(इसी मध्य बगल में बैठे धूमिल के बेटे ने कवलजीत सिंहसे प्रश्न करते हैं)

रत्नशंकर पाण्डेय :उस समय गांव में झगड़ा-फसाद का मुख्य जड़ कौन था?

कवलजीत : उस समय गांव में झगड़ा-फसाद की मुख्य जड़ कन्नन पाण्डेय ही था। गांव में उसका उपद्रव मचाना, खड़ी फसल काटना और कटवाना रोज का काम था। खुले आम वह लोगों को गाली, फक्कड़ देता रहता था। एक बार उसने मेरे पिताजी की ही फसल कटवा डाली थी। बात-बात में यह भी कहता था कि मेरा 'हंसुआ चमकेगा'। धूमिल का विचार था कि 'इस अनर्थ को बंद किया जाए। यह अन्याय है।' भरी पंचायत में धूमिल और कन्नन से इतनी बहसें हुई कि कन्नन पाण्डेय को मंदिर में जाकर गंगाजल उठाकर कसम खानी पड़ी कि अब इस तरह का अनर्थ कभी नहीं होगा।

रमाशंकर : ग्रामीण विकास के लिए धूमिलजी का क्या योगदान रहा है?

कवलजीत : धूमिल के क्रांतिकारी विचार से सारा गांव प्रभावित था। वे कहा करते थे कि

'मैं अपने गांव को शहर से जुड़वा दूँगा। इसीलिए उन्होंने जगह-जगह 'चकरोट' (रास्ता) छोड़वाये हैं। निडरता एवं स्पष्टवादिता उनका अनुपम गुण था। उनका यह स्वभाव किसी व्यक्ति विशेष से नहीं; बल्कि सामाजिक बुराइयों एवं कुप्रथाओं से विद्रोह करना था। धूमिल के पास जो भी अमीर-गरीब जाते थे, वे यथाशक्ति सबकी मदद करते थे। सही मायने में वे लोगों के मददगार थे। वास्तव में वे गरीबों एंव असहायों के मसीहा थे।

x-x-x

खेवली के श्री बनारसी बाबू उर्फ भगेलू सिंह धूमिल के समवयस्क २२-०३-२००२

रमाशंकर : दादाजी आपका नाम क्या है और आप किस गांव से हैं?

बनारसी बाबू : मेरा नाम बनारसी बाबू उर्फ भगेलू सिंह है। मैं खेवली गांव का हूँ।

रमाशंकर : आपका पेशा क्या है?

बनारसी बाबू : मैं रिटायर व्यक्ति हूँ। अब थोड़ी बहुत खेती-बाड़ी कर लेता हूँ।

रमाशंकर : आप कहाँ और क्या काम किया करते थे?

बनारसी बाबू : मैं लखनऊ में गांधी स्मारक में एक सहायक के रूप में प्रचार-प्रसार का काम किया करता था।

रमाशंकर : आप धूमिलजी को कब से जानते हैं?

बनारसी बाबू : हम उन्हें बचपन से जानते हैं।

रमाशंकर : सुदामा पांडेय धूमलजी का व्यक्तित्व कैसा था?

बनारसी बाबू : पांडेयजी बहुत समझदार और निडर व्यक्ति थे। वे डरनेवालों में से नहीं थे। उन्हें किसी की दरबारी-गिरी या चापलूसी करना कतई पसंद नहीं था। वे किसी की भी परवाह नहीं किया करते थे। वह हमेशा कमजोर पक्ष का ही समर्थन करते थे। उनका उठना-बैठना कैसे-कैसे लोगों से हुआ करता था? यह बात गाँव के लोगों को बिलकुल नहीं मालूम होती थी। जब उनकी चर्चाएँ पत्र-पत्रिकाओं तथा अखबारों में होने लगी थी, तब गाँववालों को मालूम पड़ा कि उनके कैसे-कैसे लोगों से क्या संबंध थे? धूमिलजी बड़े निराले ढंग के व्यक्ति थे। वे बनारस में सर्विस जरूर करते थे लेकिन वह चाहे बरसात का दिन हो या ठंडी का या फिर गर्मी का महीना हो गाँव में रोजाना अपनी साइकिल से आते थे। कभी-कभी नहीं आ पाते थे।

(इसी मध्य पास बैठे धूमिल के बेटे बोल पड़ते हैं)

रत्नशंकर पांडेय : यदि उनकी साइकिल कहीं रास्ते में पंक्चर हो जाती या बिगड़ जाती, तो वे हमेशा एक व्यक्ति से बनवाते थे; क्योंकि उनको उस दुकानदार पर पूरा भरोसा रहता था।

रमाशंकर : धूमिलजी का व्यवहार अपने परिवार और पड़ोस के साथ कैसा हुआ करता था?

बनारसी बाबू : धुमिलजी चार-पाँच भाई थे। उनको जोड़े रहना उनका अपना नैतिक दायित्व था। खेत की सिंचाई करने के लिए वे एक 'पंपिंग सेट' भी लगवा लिए थे। जिससे गाँव के लोगों को तथा अपने खेत की सिंचाई करने की सुविधा रहे। इसके अलावा नदी के पानी से भी सिंचाई करते थे; लेकिन उसमें हमेशा पानी नहीं रहता था।

धूमिल गाँव के झगड़े को लेकर काफी परेशान रहते थे। उनके पड़ोसी कन्नन पांडेय रात में खड़ी फसल को कटवा डालते थे। यह उनकी आदत बन चुकी थी। लेकिन धूमिल की फसल की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते थे; क्योंकि कन्नन पांडेय धूमिल से डरते भी थे। कन्नन पाण्डेय थोडे-बहुत पढ़े-लिखे थे; लेकिन उनके व्यक्तित्व से पूरा गँवारपन झलकता था। धूमिल कन्नन पांडेय की तरह डरपोक तथा कायर नहीं थे। दूसरों की कटी फसल को लेकर वे जरूर गांव की पंचायत में अपनी दस्तक देते थे।

रमाशंकर : ब्रेन ट्यूमर से ग्रसित धूमिलजी को लखनऊ मेडिकल कॉलेज में भर्ती करने-करवाने में किन-किन लोगों का योगदान रहा था?

बनारसी बाबू : लखनऊ मेडिकल कॉलेज में भर्ती के दूसरे दिन मैं उनको देखने के लिए गया

था। उस समय वे सरदर्द से बहुत परेशान थे। उनके अनुज कन्हैया तो थे ही। गाँव के राजेश्वरी सिंह व अन्य लोग भी थे। श्रीलाल शुक्ल, कुँवर नारायण, विनोद भारद्वाज, ठाकुरजी आदि प्रसिद्ध साहित्यकारों की मदद से उनके उपचार में कोई कसर नहीं होती थी। बड़े-बड़े साहित्यकारों का आना-जाना बराबर रहता था। उस समय हमने धूमिल को अच्छी तरह से परख लिया था कि इतने बड़े-बड़े साहित्यकारों से उनका घनिष्ठ संबंध है। मेरी दृष्टि में धूमिल कोई मामूली आदमी नहीं थे।

×-×-×

खेवली के युवा श्री देवीशंकर सिंह २२-०३-२००२

रमाशंकर : श्रीमान जी, आपका शुभ नाम क्या है?

देवीशंकर : मेरा नाम देवीशंकर सिंह है। ग्राम खेवली का निवासी हूँ।

रमाशंकर : आप क्या काम करते हैं?

देवीशंकर : मैं खेती-बाड़ी करता हूँ। राजनीति में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (C. P. I.) का मेम्बर हूँ। जन सांस्कृतिक मंच का राष्ट्रीय पार्सर हूँ। मैं अपने गाँव की 'धूमिल जन संपर्क समिति' का सचिव भी हूँ।

रमाशंकर : आपका धूमिलजी से परिचय कब हुआ था?

देवीशंकर : शुरूवाती दौर में हम धूमिल से परिचित नहीं थे। उन्हें सुदामा पांडेय के रूप में ही हम लोग जानते थे। जब वे हमारे घर आते थे, तो हम उन्हें प्रणाम वगैरह किया करते थे। हम बहुत ज्यादा खुलकर उनके सामने नहीं आते थे; क्योंकि अवस्था का फर्क था। उस समय हम बहुत छोटे थे। उनका डील-डौल काफी लंबा चौड़ा था। काफी ऊँचे कद के थे। घनी मूँछें थीं। पहली नजर में देखकर कोई भी डर जाता था। उनका काव्य संग्रह 'संसद से सड़क तक' प्रकाशित होने के बाद ही हम लोग उनके साहित्यिक नाम 'धूमिल' से परिचित हुए। वे कविता के अलावा गीत भी लिखा करते थे। एक गीत की कुछ पंक्तियाँ मुझे अब भी याद हैं -

"गीत उड़ते कहाँ हैं
अधर पर धरे स्वाँस की
तापसी बांसुरी जल गई ..."

इनके मरने के बाद 'कल सुनना मुझे' और 'सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र' ये दो काव्य संग्रह 'धूमिल' के नाम से प्रकाशित हुआ।

रमाशंकर : क्या गाँव की उनसे संबंधित कोई ऐसी प्रेरक घटना आपको याद है?

देवीशंकर : वैसे तो कई घटनाएँ हैं। प्रमुख रूप से दो घटनाओं से मैं बहुत प्रभावित रहा हूँ। पहला 'हँसुआ यज्ञ' है। यह यज्ञ 1916 के आस-पास से चला आ रहा था। यह व्यक्तिगत लड़ाई थी। इस लड़ाई में एक पट्टीदार दूसरे पट्टीदार की फसल काट लेते थे। यह खास करके 'भूमिहारों' (ठाकुरों) में हुआ करता था। यह सब अपना विरोध जताने के लिए होता था। आगे चलकर यह 'हँसुआ यज्ञ' अन्याय का प्रतीक बन गया। इस 'हँसुआ यज्ञ' में गाँव के उस दबंग किस्म के लोग शामिल थे, जिनके पास धन और सत्ता हुआ करती थी या पहुँचवाले होते थे। ये पढ़े-लिखे समझदार भी होते थे। 'भूमिहारों' में बेचन सिंह एम. ए. के विद्यार्थी हुआ करते थे। इस गुट में लालजी सिंह, हौसिला सिंह और मलसूदन सिंह शामिल थे। और तो और इस गाँव के प्रधान रामरति सिंह का भी इसमें सक्रिय योगदान होता था। इधर पंडितों में धूमिल के पड़ोसी कन्नन पांडेय भी इस 'हँसुआ यज्ञ' के सक्रिय कार्यकर्ता थे। उस समय यह 'हँसुआ यज्ञ' काफी जोर पकड़े हुए था। यह लगभग दस-बारह दिन तक चलता रहा। इस 'हँसुआ यज्ञ' में लगभग 40.45% लोगों की फसल स्वाहा हो गई थी।

अब कन्नन पांडेय को भी भय होने लगा था कि कभी भी मेरी फसल भी कट सकती है। इस 'हँसुआ यज्ञ' का अंत एक ग्रामीण पंचायत में बहस के दौरान शिवालय में जाकर शपथ ग्रहण समारोह में खत्म हो गया; लेकिन उसके भूत-प्रेत आज भी कहीं-न-कहीं जीवित मिलते हैं और भविष्य में भी मिलते रहेंगे।

मुझे दूसरी जो घटना याद आ रही है वह 'लाल घोड़ा' की। यह घटना उस समय की है, जब मैं ग्यारहवीं में पढ़ रहा था। एक दिन मास्टर परमानंद सिंह मेरे घर आए हुए थे। शाम के सात बज रहे होंगे। उसी समय गन्ने के एक खेत में आग लग गई, जिसे देखकर मास्टर साहब ने ग्राम प्रधान राममूरत सिंह से कहा कि 'आज फिर लाल घोड़ा दौड़ गया है'। यह घटना भी अन्याय का प्रतीक था।

(धूमिलजी के पुत्र श्री रत्नशंकर पांडेयजी से हुई बातचीत के कुछ अंश)

रमाशंकर : पांडेयजी, क्या आपको कोई ऐसी घटना याद है, जिसे धूमिलजी ने चुपचाप सहन किया था?

रत्नशंकर : हाँ, मुझे याद है। सन् 1967-68 बात है एक बार हमारी आलू की कच्ची फसल काट ली गई थी। कुछ उखाड़ भी दिया गया। उन दिनों पिताजी का सहारनपुर तबादला हो गया था। हमारे चाचा ने पिताजी को पत्र लिखा कि 'भाई साहब रात को कुछ बदमाश हमारे खेत के आलू का फसल उखाड़ दिए हैं। क्या किया जाए?' पिताजी ने वहाँ से पत्र लिखा था कि 'लड़ाई झगड़ा से दूर रहना, ज्यादा अच्छा होगा। यह कन्नन पांडेय की साजिश रही होगी। बिना किसी से इसकी चर्चा किए, चुपचाप सारी आलू को खोद डालो और उसे बाजार में ले जाकर बेच डालना, अभी आलू का भाव कुछ ज्यादा है, जो भी पैसे मिलेंगे उससे नया बीज लाकर बो देना। इस तरह से मेरा आलू भी लग जाएगा और कुछ पैसा भी मिल जाएगा। उनकी बात सभी ने मान ली। आलू के अच्छे दाम मिल गए थे। कुछ पैसे से बीज भी लाया गया। उसकी पैदावर भी अच्छी हुई थी।

एक घटना और याद है, यह 72-73 की बात है। पूस का महिना था। बहुत ही पाला पड़ रहा था। हल्की-हल्की रिमझिम बारिश भी हो रही थी और थोड़ी बहुत हवा भी बह रही थी। पिताजी सुबह ही उठकर, छाता लेकर अपने खेत की तरफ गए थे। बरसात और हवा के कारण फसल कुछ-कुछ गिर गई थी। दूर से ही देखा कि आज उनकी फसल कट गई है। यह देखकर पिताजी परेशान नहीं हुए। फसल कट गई तो कट गई, जाने दो। लेकिन जब करीब आकर देखा तो फसल जमीन पर लेट गई थी। मन-ही-मन में बहुत हँसने लगे। यह घटना उन्होंने जब घर आकर बताई, तो सभी हँसने लगे। कुछ इसी तरह से पिताजी का तर्क होगा कि जब मेरी फसल नहीं कट रही हैं तो मैं दूसरों की क्यों फसल काटूँ ?

रमाशंकर : क्या आपने कभी धूमिलजी को गाँववालों से झगड़ा करते हुए देखा है?

देवीशंकर : हाँ, शायद अप्रैल का महीना था। एक बार कन्नन पांडेय से धूमिलजी का झगड़ा होते मैंने देखा था। पांडेय उनके पट्टीदार थे। दोनों के घर बिलकुल आस-पास थे। जगह-जमीन के लिए झगड़ा हो गया था।

मार-पीट के लिए कन्नन पांडेय अपने दरवाजे पर ढेर सारे इट-अद्धे इकट्ठा किए थे। धूमिल जी भी अपने भाई झारी और जूठन को लिए, लुंगी मोड़े हुए नंगे बदन, हाथ में गोजी लिए भागते हुए आ पहुँचे। उनके अनुज कन्हैया पांडेय उस समय नहीं थे। गाँव के लोग इकट्ठा हो गए। फौजदारी की नौबत आ गई। गाँववालों के बीच-बचौवल से उस समय झगड़ा टल गया।

धूमिल जी से संबंधित एक घटना यों है। एक दिन गाँव में धनपत बिंद के घर के बगल से एक रास्ता जाता था। वह रास्ते को खेत में से मिट्टी निकाल कर पाट रहा था। मैं, बेचन सिंह, रमेश, कवलजीत, हौसिला, झारी पांडेय लगभग 8-10 लोग मरा हुआ बरधा (बैल) गाड़कर, नदी में स्नान करके उस रास्ते से गुजर रहे थे। रास्ते को पाटते हुए झारी पांडेय

ने देख लिया। पांडेय को लगा कि यह तो गाँव का रास्ता ही कब्जा कर रहा है। इस पर पांडेय ने आपत्ति जताई। उस समय आपत्ति का स्वर भी कुछ वैसा ही था, क्योंकि 'हँसुआ यज्ञ' की लड़ाई में उनकी जीत हो गई थी। आपस में मार-पीट कर लिए।

दूसरे दिन 'हँसुआ यज्ञ' के हारे हुए लोगों ने अपने को संगठित किया। 'हँसुआ यज्ञ' के प्रतिरोध के रूप में धनपत बिंद को धूमिल के खिलाफ खड़ा कर दिया कि सुदामा पांडेय को ही मारा जाए। किसी तरह इनको बेइज्जत किया जाए। उनके सारे विरोधी एक जुट हो गए। धूमिल तड़के सुबह पाँच बजे ही हमारे गाँव में आए और कहा कि 'बिंद लोग हमारा घर घेर लिए हैं। घर की नरिया-थपुआ फोड़ रहे हैं। आप लोग नहीं चलेंगे तो अनर्थ हो जाएगा। आप लोग चलिए, हम लोग तो हैं ही। मेरे पास पिस्तौल भी है।' गाँव के दो परिवार धूमिलजी की ओर से 'सपोर्ट' कर रहे थे। दोनों तरफ से गोजी-बल्लम, ईट-अद्धे लिए लोग लड़ाई करने के लिए तैयार खड़े थे। कुछ लोग स्थिति की जायजा लेने के लिए भी खड़े थे। लेकिन किसी तरह समझौता हो गया। समझौते के बाद लोगों ने कहा कि धनपत बिंद से हाथ मिलाइए, तो उन्होंने पुनः टोका और कहा कि हाथ क्यों मिलाए। हम इन लोगों की तरह गलत तो किए नहीं, गलती तो इन लोगों की है। अतः ये लोग गोड़ परै (चरण छुए)। बाद में धनपत बिंद गोड़ पर कर अपनी गलती स्वीकार की सबके सामने। इस तरह समझौता हो गया। लड़ाई झगड़ा नहीं हुआ। उस समय हम इंटर में पढ़ रहे थे। हम भी साथ थे।

रमाशंकर : क्या धूमिल जी अपने पास पिस्तौल भी रखा करते थे?

देवीशंकर : वे अपने पास पिस्तौल रखते थे कि नहीं कहा नहीं जा सकता। लेकिन गाँव के लोग समझते थे कि उनके पास पिस्तौल है। वास्तविकता क्या थी यह पता नहीं।

x-x-x

गाँव खेवली भतसार के निवासी : डॉ. सदानंद सिंह
(हिंदी विभागाध्यक्ष - राजकीय महाविद्यालय, चंदौली)
१८-०२-२००३

रमाशंकर : धूमिल जी का परिवेश क्या था?

सदानंद सिंह : धूमिल दो परिवेश से जुड़े हुए थे। एक गाँव खेवली और दूसरा बनारस शहर का अस्सी और गोदौलिया। शहर के इसी दो अड्डे पर उनकी साहित्यिक चर्चाएँ हुआ करती थी। धूमिल का साहित्यिक परिवेश यहीं से बना। धूमिल जब इस एक परिवेश से छूटते थे, तो दूसरे परिवेश में प्रवेश करते थे। वह दूसरा परिवेश उनका गाँव खेवली था। धूमिल ने अपनी गाँव खेवली पर एक कविता भी लिखी है। जो 'कल सुनना मुझे' कविता संग्रह में संकलित है।

रमाशंकर : धूमिल जी अपनी कविता की खुराक कहाँ से उठाते थे?

सदानंद सिंह : धूमिल अपनी कविता की खुराक जनता के बीच मानवीय संवेदना से उठाते थे। धूमिल की तमाम कविताओं में यही मानवीय संवेदना बड़ी दर्द के साथ उभरी हैं। मैं एक संस्मरण सुना रहा हूँ, वे साइकिल से जा रहे थे वरूणा पुल के पास रजिस्ट्रेशन कार्यालय था। (अब वहाँ एक होटेल बन गया है।) उन्होंने देखा कि एक लंबी लाइन लगी हुई है। उन्होंने पूछा ये क्या है? पता लगा कि बेरोजगार पढ़े-लिखे लोग अपनी नौकरी के लिए रेजिस्ट्रेशन करवा रहे हैं। उन्होंने उस पर सोचा और अपना एक बहुत बड़ा तर्क दिया कि जिंदगी को जीने के लिए किन-किन चीजों की जरूरत पड़ती है। रोटी-कपड़ा और मकान। यह बहुत दिनों से चला आ रहा है, इसके अलावा भी बहुत कुछ है। लेकिन सबसे बड़ी चीज जो है वह मानसिक खुराक है। उस मानसिक खुराक की कमी के कारण कुंठा होती है। निराशा, हताशा और छटपटाहट होती है। ये जितने भी चालू शब्द हैं, सब उसी के विभिन्न रूप हैं। उन्होंने बड़ी बारीकियों से उन भावनाओं का तराशा। इसलिए हमने उनको यथार्थ का कवि कहने की अपेक्षा जनवादी चेतना का कवि कहा है। क्योंकि वह जन का उद्धार चाहते थे। जन का उद्धार करने के लिए उन्होंने जो मुहावरे गढ़े वह उन्हीं के बीच से उठाए हैं। वह मुहावरा अशिष्ट और अश्लील भी हो सकता है। गाँव की बोलचाल भाषा में जो बातें धूमिल ने सुनी, उसका यथार्थ अंकन किया है। वह यथार्थ चाहे अपने से अलग हटकर व्यक्ति का हो, सड़क पर के व्यक्ति का हो, मजदूर-किसान का हो, चोर-बेईमान का हो, जमींदार आदि का हो। बड़ी बखूबी के साथ यथार्थवादी चित्रण किया है। उसमें बिंब भी उभरते हैं। चित्र भी उभरते हैं; लेकिन उनमें कहीं वह जटिलता या वह सारी बातें नहीं हैं, जो कहीं अज्ञेय और मुक्तिबोध की कविताओं में है। इनको समझने के लिए आपको बहुत मूड बनाना पड़ता है। धूमिल के यहाँ ऐसा कुछ नहीं है। धूमिल अधिकांश भाषा के शब्दों के प्रति पूर्ण जागरूक थे। वे नहीं चाहते थे कि भाषा के कारण उनके भावों का कहीं गला घुटता हुआ दिखाई दे। यह उनकी सबसे बडी विशेषता है। धूमिल के अनुसार वह जो केवल भाषा तरासता है, वह हमारी दृष्टि में कवि नहीं है। वह बहुत बड़ा पंडित हो सकता है; पर कवि नहीं हो सकता। क्योंकि सहृदयता हमेशा निचले स्तर से जुड़ी होती है।

रमाशंकर : आप धूमिल जी को हिंदी के किन-किन कवियों से जोड़ते हैं?

सदानंद सिंह : मैं धूमिल को कबीर से जोड़ता हूँ। उसके बाद निराला पर आकर रूकता हूँ। फिर केदारनाथ से सीधे धूमिल पर आता हूँ। कबीर की परंपरा की जो बातें रहीं, उन बातों को धूमिल ने बिलकुल जन-जन की भाषा के माध्यम से उकेरने की कोशिश की है। कबीर और धूमिल की भाषा में अंतर यह है कि कबीर की भाषा में बड़ा गडमड है। खिचड़ीपन है। पर धूमिल की भाषा में अगर अंग्रेजी के शब्द भी हैं तो अंग्रेजी न जाननेवाला भी उस अंग्रेजी को जानता है।

धूमिल ने जिन प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया उसे पूँजी के रूप में, थाती के रूप में जब अपने पहले संग्रह 'संसद से सड़क तक' के माध्यम से पाठकों तक उन्होंने पहुँचाया, तो निश्चित ही धूमिल पर आक्षेप करनेवाले शुरू में मेरी समझ से ज्यादा थे। जो उनके मित्र भी थे। वे भीतरघाती थे। धूमिल के कंधों पर हाथ रखकर चलनेवाले उनको भैया कहने वाले, उनके सामने जिनकी बोलती बंद हो जाती थी। वो लोग भी धूमिल या उनकी प्रतिभा से अनायास बहुत ही जलने लगे। लेकिन धूमिल इसकी परवाह नहीं करते थे।

रमाशंकर : आपके गाँव का नाम क्या है?

सदानंद सिंह : मेरे गाँव का नाम खेवली- जहाँ धूमिल का गाँव है। लेकिन गाँव में भी अलग-अलग पुरवा है। धूमिल जी पांडेय पुरवा के थे। मेरा पुरवा अलग है। मैं बचपन से लेकर 20-22 साल तक गाँव में ही रहा था। अभी गाँव जाता हूँ कभी-कभी।

रमाशंकर : धूमिल जी के समय गाँववालों में किससे दहशत बनी रहती थी?

सदानंद सिंह : धूमिल के समय गाँववालों में कन्नन पाण्डेय से दहशत बनी रहती थी। ये धूमिल के पट्टीदार थे। इनकी जान-पहचान बड़े लोगों से थी। अपने को बड़ा आदमी समझते थे। बिना कारण ये लोगों को पिटवा देते, चोरी से खेत में खड़ी लहलाहाती फसल कटवा लेते। इस तरह उनका शोषण और अन्याय भयादोहन बढ़ता ही जा रहा था। इस भयादोहन में गरीब बेचारे जो आर्थिक दृष्टि से संपन्न नहीं होते थे, मारे जाते थे। उनका मानसिक शोषण भी होता था। अकेले इसका विरोध करना धूमिल के वश की बात नहीं थी। यहाँ तक कि किसी बड़े परिवार या पुरवा के लोग भी इसका विरोध नहीं कर सकते थे। क्योंकि उनको भय था कहीं किसी को मरवा न दें। इस भयादोहन को धूमिल स्वीकार नहीं कर सकते थे। कुछ अपने और कुछ दूसरे गाँव के चंद नवयुवकों के साथ उन्होंने उसका जबरदस्त विरोध किया। गाँव का कोई सयाना आदमी उनके साथ नहीं था। यही लोग उनके गाँव की पूँजी थी, जिससे वह लोहा लेने के लिए तैयार रहते थे। साथ ही साथ दस-बारह मुकदमें देखना, नौकरी करना, पाँच-छः भाइयों के सहित परिवार की देखभाल करना ये सारी चीजें बड़ी अजीबो गरीब स्थिति में होती थी। ऐसी स्थिति में कविता का सृजन करना, उसको सवारना, मांजना और अपने बड़े-बड़े आलोचकों को सुनना। अगर उन्हें समय न होता, तो धूमिल कहते तुम इसको सुनो, बहस करो और बताओं इसमें क्या कमी रह गई है। धूमिल जीते जी सबको जबाब दे दिया था।

रमाशंकर : धूमिल जी के मरने के बाद उनके खास सहयोगियों से कोई किसी प्रकार की मदद उनके परिवार वालों को मिली क्या?

सदानंद सिंह : नहीं ! धूमिल के मरने के बाद वाराणसी के जो गणनायक थे, इन लोगों से जितनी सहानुभूति मिलनी चाहिए वह नहीं मिल पाई। डॉ. रत्नशंकर इसके गवाह हैं। कई एक-दो संस्मरण इन्होंने मुझे सुनाए हैं। मुझे वह चेहरे अंदर और बाहर से दोनों समझ में आए।

दोपहरी में रत्नशंकरजी रहे थे 'कल सुनना मुझे' की पांडुलिपि लिए। इसका क्या शीर्षक रखा जाए। इसमें संकलित कौन कविता कैसी है। इस पांडुलिपि को देखने के लिए अब इनके पास वक्त नहीं है। जो लोग धूमिल को दिन भर बैठकर सुनते रहते थे। घंटो-घंटों इंतजार करते थे। रत्नशंकर तो कम लेकिन उनके चाचा कन्हैया जी हमेशा हरहुआ के रास्ते जब भी मिलते थे, तो इस संग्रह के बारे में पूछते थे कि वह प्रेस में कहाँ तक पहुँचा। दोनों साइकिल से होते थे। दोनों पैदल बातचीत करते हुए महादेव से उतरते हुए चल पड़ते थे। कन्हैया हमारे गाँव से होते हुए अपने घर जाते थे। इस बीच काफी बातें हो जाया करती थीं। जिन बातों को मैं नहीं जानता था, वे बातें उनके माध्यम से जाना।

रमाशंकर : आपको ऐसी कोई घटना याद है जहाँ धूमिल के व्यवहार में मानवता झलकती हुई दिखाई देती है?

सदानंद सिंह : हाँ! उनके व्यवहार में मानवता कूट-कूट कर भरी हुई थी। मैं अपने साथ घटित एक अविस्मरणीय घटना सुनाता हूँ, मैं उस समय बी.ए. का छात्र था। काशी हिंदू विश्वविद्यालय में पढ़ रहा था। जाड़े की छुट्टियाँ हुई थीं। मैं चेतगंज में भाई साहब के साथ रहता था। गाँव आने का मन नहीं था। लेकिन भाई साहब के कहने पर मैं साइकिल लेकर चल पड़ा। ज्यों साईकिल के. के. इंटर कालेज के पास पहुँची, उसका चिमटा ही टूट गया। मैं गिर पड़ा। थोड़ी चोट भी घुटनों में लग गई थी। किसी तरह मैं हरहुआ बाजार तक साइकिल घसीटते हुए आया। वहाँ पर सुख्खू की दुकान पर, जो रास्ते में पड़ती थी, धूमिलजी बैठे हुए थे। मैं उनको 'गुरू पा लागी' कहकर प्रणाम किया। हम लोग भूमिहार हैं। हम लोग वैसे ही ब्राह्मणों का बड़ा आदर सत्कार करते हैं।

धूमिल को सारी कहानी बता डाला। उन्होंने कहा चाय पियोगे, कुछ खाओगे। मैं सोच में पड़ गया, पिताजी कहा करते थे कि 'ब्राह्मण का कभी कुछ खाना नहीं चाहिए।' मैं कुछ हिचक रहा था। धूमिल ने कहा, "यही सोच रहे हो न कि ब्राह्मण का कैसे खाए? चलो तुम्हीं पैसा दे देना।" मैं अपना जेब टटोल रहा था। जेब में कुछ नहीं था; क्योंकि जहाँ साइकिल से गिरा था वहीं सारे पैसे गिर गए। धूमिल समझ गए और कहा पैसा नहीं है, ठीक है कल लौटोगे न तो दे देना आज मैं इनको दे रहा हूँ। कभी हमको दे देना।" मैंने कहा "नहीं गुरुजी मैं पैसा दे दूँगा।" चाय पीकर हम घर जाने के लिए तैयार हो गए। धूमिल ने चायवाले सुख्खू से कहा कि 'जहाँ मैं साइकिल बनवाता हूँ वहीं यह साइकिल बनाने के लिए दे देना।' दोनों पैदल ही चल पड़े। गली के बाहर निकलते ही उन्होंने कहा "आओ आगे की तरफ बैठ जाओ। हम साइकिल चलाएँगे।" हमने पूछा, "आप चला लेंगे।" उन्होंने कहा, "हाँ हाँ ! क्यों नहीं। इस पर दो-दो बोरी खाद लादकर ले जाता हूँ। क्या तुम उससे ज्यादा वजन के हो।" मैं सकुचाते हुए साइकिल पर आगे बैठ गया। इतिफाक़ कहिये, थोड़ी दूर हम गए होंगे कि धूमिल की साइकिल पंक्चर हो गई। धूमिल ने कहा- "लो ठाकुर तुम नहीं बैठना चाहते थे। साइकिल पंक्चर हो गई। चलो अब पैदल ही चला जाए।"

फिर दोनों पैदल चल पड़े। थोड़ी बहुत बूंदाबांदी हो रही थी। धूमिल ने मुझसे कहा "ठाकुर हमारे गाँव में बहुत कम लोग पढ़े-लिखे हैं। तुम बी.ए. में पढ़ रहे हो। बहुत अच्छा है। तुम किसी भी मूल्य पर पढ़ाई का विरोध मत करना। तुम्हें पढ़ना है। यह केवल मत समझो कि तुम्हारे ऊपर केवल तुम्हारे सिर पर माँ-बाप या भाई का साया है। जो भी समझदार गाँव का है उसका आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। तुम पढ़ाई मत छोड़ना।"

धीरे-धीरे हम अपने घर के करीब पहुँच गए। मैंने उनको पानी-वानी के लिए आग्रह किया, उन्होंने कहा, "मैं छोड़ने तो चलूँगा; लेकिन पानी नहीं पिऊँगा।" इतने में रास्ते पर ही गाँव के परमानंद मास्टर मिल गए। उनके साथ मुझे मेरे घर भेज दिया और कहा, "संभाल कर ले जाना। चोट लगी है। जब पिता जी को मालूम पड़ता कि धूमिल बेटे को अपने साथ-साथ लेकर आए। दूसरे दिन सुबह धूमिल जी से मिलने के लिए पिताजी उनके इंतजार में खड़े राह देख रहे थे। धूमिल जी बड़े बुजुर्गों को बड़ा सम्मान किया करते थे। उन्हें देखते ही साइकिल से उतर जाते थे। वे हमें ठाकुर कहते थे और जो पिता के उम्र के होते उनको सरकार कहते थे। यह उनका संबोधन था। धूमिल पिताजी को देखते ही साइकिल से उतर गए और बोले "अरे सरकार! लड़कवा कैसे बा?" पिता जी ने कहा, "बहुत अच्छा हुआ जो आप रास्ते में मिल गए थे। नहीं तो बबवा परेशान हो जाता।" धूमिल ने कहा "आप से तो उसका हाल मिल गया; लेकिन हम चलकर देखब जरूर।" वे आए और पूछे क्या हाल है ठाकुर? सब ठीक तो है।" कहकर थोड़ा मुस्कुराए। कुछ कहकर थोड़ा मुस्कराना उनके स्वभाव का एक अंग था। उनकी गछी हुई मूँछें, वही पीला भड़कीला चेहरा, जाकेट, कुरता, गमछा सब उनके शरीर पर शोभा देता था। वे वस्त्र से सुशोभित नहीं होते थे; बल्कि वस्त्रों को ही वह सुशोभित करते थे। अगर वह फट गया है तो उसपर भी वे कुछ-न-कुछ सुना देते थे।

धूमिल को हमने प्रणाम किया। उन्होंने मुझे समझाया "जीवन में इस तरह के न जाने कितने धक्के लगेंगे, तुम्हें सँभलना है मुस्तैदी के साथ आदमी को हिम्मत नहीं हारना चाहिए।" दोनों चारपाई पर बैठे-बैठे चाय पिए।

यह संस्मरण सुनाने का मात्र मेरा एक ही इरादा था कि धूमिल के अंदर चाहे वह बच्चा हो, चाहे बूढ़ा हो, चाहे जवान हो या वह चाहे हरिजन ही क्यों न हो, बल्कि हरिजन के प्रति वे ज्यादे संवेदनशील थे। आज वह दुनिया में नहीं रहा। उसके लड़के हैं। मोट-वोट बहाता था। बहुत दिन बाद रत्नशंकर जी ने मुझे बताया 'मोचीराम' कविता का पात्र और कोई नहीं है वही निकाम दादा हैं। निकाम हरिजन को रत्नशंकर जी निकाम दादा इसलिए कहते हैं, क्योंकि धूमिल जी खुद उनको 'कका' कहते थे।

धूमिल का व्यक्ति त्व संघर्षशील रहा है। लगभग गरीबी रेखा के आसपास जो परिवार जी रहा हो, उस परिवार की कीर्ति को अपने यश से अपने कृतित्व से जिसने इतना ऊँचा दर्जा दिया, आज हिंदी जगत का ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जो धूमिल को न जानता हो। डॉ. रत्नशंकर को न जानता हो। अगर कोई नहीं जानता है, तो उसको हिंदी का विद्वान मैं नहीं मानता हूँ। जब भी समकालीन कविता, नई कविता और जनचेतना पर बहस छिड़ती है, तो धूमिल को पार करके कोई भी विद्वान आगे नहीं बढ़ सकता है। धूमिल हर एक के जुबान पर आएँगे। भले ही वह धूमिल की आलोचना करे, लेकिन नाम तो लिए बिना नहीं रह सकता। उससे वह विरक्त नहीं हो सकता। मैंने बहुत से ऐसे आलोचकों को देखा है जिनके जेहन में धूमिल जी न समाए हुए हो।

अब आवश्यकता इस बात की है कि इस तथ्य पर विचार करे कि धूमिल जी ने मानव समाज को जो मानवता का पाठ पढ़ाया, ज्ञान की जो दिशा दी, वह कहाँ-कहाँ अवरुद्ध हो रहा है। आज नई कविता के सामने बहुत बड़ी चुनौती है। इस चुनौती को जब तक स्वीकार करके उनके अनुरूप दिशा में काव्य को उत्प्रेरित नहीं करेंगे। तब तक हिंदी कविता नई कविता का भविष्य नहीं सँभाल सकेगी; क्योंकि धूमिल के बाद ऐसा कोई एक नाम नहीं

है; जो धूमिल के समकक्ष खड़ा हो सके या उनकी तुलना उनसे की जा सके। जब भी हम तुलना करेंगे, तो कहीं निराला से और कहीं कबीर से। बीच में कोई ऐसा नाम नहीं है; जो धूमिल को शिकस्त दे सके।

रमाशंकर : धूमिल जी की हिंदी कविता में क्या उपलब्धियाँ रही हैं?

सदानंद सिंह : जब भी हिंदी काव्य जगत् में धूमिलजी की उपलब्धियों की बात की जायेगी तो मैंने जो अभी उद्‌बोधन में बताया है कि धूमिल कभी भी पूर्वाग्रह पर संबंधों को ढोने के आदी नहीं थे। जैसे कबीर और निराला नहीं थे। वैसे धूमिल ने पूर्वाग्रह संबंधों से हटकर के लिखा। नई चेतना पर प्रयोगवादी के लिए प्रयोग उन्होंने नहीं किया। उनकी जितनी भी बातें रहीं हैं, वह ठोस यथार्थ के धरातल पर ही हैं। चाहे वह यथार्थ में धूमिल को कांटों की तरह चुभा हो, चाहे उनकी चेतना को द्वन्द्वायित (झंझोड़ा) किया हो। चाहे वह उनको खींच कर सुदूर-विस्मृत की रेखा पर ले जाने के लिए कभी विवश किया हो; पर धूमिल ने कभी भी समझौता नहीं किया। यही कारण है कि यथार्थ की चोट से उभरी हुई उनकी कविता की हर पंक्ति एक श्लोगन बन गई है। ऐसा बहुत कम कवियों के साथ हुआ है और खास करके नयी कविता में इतना श्लोगन देनेवाला कोई और नहीं है।

धूमिल की इस चेतना को संजोकर चलने की बहुत लोगों ने नकल की; लेकिन वह धूमिल जैसी कविता नहीं बन पाई। क्योंकि धूमिल की सोच हमेशा यथार्थ के ठोस धरातल पर पैर रखकर चलने की बात होती है। उसको उन्होंने अपनी पूरी जिंदगी के अंतिम क्षणों तक कायम रखा। उनकी अंतिम कविता यही कहती है-

लोहें का स्वाद/ उस लोहार से मत पूछो
उस घोड़े से पूछो /जिसके मुँह में लगाम है।

हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर आज तक खोजने पर शायद ही धूमिल जैसा कोई विरला कवि मिलें; जो कविता को अपनी सोच से नई दिशा दे सके।

शायद यह सोच इसलिए बनी कि ऐसे तमाम यथार्थ जो जिंदगी को छूते हैं। कहीं बोझिल करते हैं, कहीं गंभीर करते हैं। कभी हताश करते हैं। उस सारी स्थितियों को धूमिल ने स्वत: जिया है। अब उस तरह की चेतना उपजाने के लिए जरूरत है कि धूमिल जैसा संदेश देने के लिए किसी भी कवि को बड़ी गहराई तक सामाजिक अनुभूतियों का अध्ययन करना पड़ेगा। जिससे लोग टकराते हैं। अत: धूमिल की कविता की जो परिपाटी है; वह उन्हीं तक की सीमित रह गई।

रमाशंकर : मैंने सुना है कि धूमिल जी एक अच्छे आर्टिस्ट भी थे क्या यह सच है?

सदानंद सिंह : हाँ ! धूमिल एक अच्छे आर्टिस्ट भी थे। हमारे गाँव में कृष्णलीला और रामलीला के नाटक हर साल खेला जाता था। धूमिल जी सबसे पहले साँझ होते ही रामलीला के ग्रीन रूम में पहुँच जाते थे। ग्रीनरूम में राम और लक्ष्मण तथा अन्य सारे पात्रों को अच्छी ढंग से अभिनय कला सिखाते थे। वे अभिनय कला समझाने में इतने माहिर थे, कि तमाम प्रकार की झाँकियाँ सीमित साधनों में जैसे गाँव के किसी ने ऐसी साड़ी खरीदी हो जिसमें इतनी सिलवटें पड़ी हो आप देखना नहीं चाहेंगे। ऐसी साड़ियों को लेकर वह क्षीर सागर का दृश्य निर्माण करते थे, जिसमें विष्णु भगवान लेटे हो। कभी-कभी शंकर भगवान के तांडव नृत्य का अतुलनीय दृश्य निर्माण कर देते थे। हमने उन्हीं से प्रेरणा लेकर गाँव में एक समिति संगठित की थी। हम हर साल नाटक किया करते थे। धूमिल एकाध दिन रिहलसल में आते थे। एकाध दिन में ही

वह पूरे पात्र को, उनके डायलाग, ऐक्शन इतना माँज देते थे कि फिर किसी पात्र के अभिनय में कोई कमी ही नहीं रह जाती थी। धूमिल पूरे समय तक वहाँ ग्रीन रूम में उपस्थित रहते थे।

x-x-x

डॉ. वाचस्पति उपाध्याय : हिंदी विभागाध्यक्ष राजकीय महाविद्यालय, अहरौरा, मिरजापुर १५-०२-२००३

रमाशंकर : धूमिल जी का व्यक्तित्व कैसा था?

वाचस्पति: धूमिल मस्त मौला घूमने फिरनेवाले व्यक्ति थे। वे बहुत ही मुहफट और स्पष्टवादी कवि थे। स्पष्टवादिता के कारण ही वे अपने परम मित्र काशीनाथ सिंह को भी नहीं बख्शते थे। धूमिल बाहर से मुँहफट थे, उदंड थे। जिसे लोग भोजपुरी में लट्ठ किस्म का व्यक्ति कहते और मानते हैं। लेकिन अंदर से बहुत कोमल संवेदनशील थे। अपने से छोटो के प्रति बहुत स्नेह का भाव रखनेवाले थे।

Y¥_b Selfmade व्यक्ति थे। जीवन में भी और कविता में भी । अत: वे कभी भी किसी के सामने झुकते नहीं थे। निरालाजी ने लिखा है ''झुक कर कुछ भी मत उठाओं भले ही वह कविता ही क्यों न हो।'' धूमिल के जीवन में यही चीज है। निराला ने जो लिखा था वह धूमिल पर चरितार्थ होता है। धूमिल ही ऐसे कवि हुए हैं जिनका अनुकरण बहुतों ने करने की कोशिश की; पर ना कामयाब रहे। कारण धूमिल जो मुहावरा, वाक्य विन्यास डिक्शन का प्रयोग करते हैं, वह उनका अपना है।

रमाशंकर :वे कौन से कवि हुए हैं जिन्होंने धूमिल जी की नकल करने की कोशिश की है?

वाचस्पति :धूमिल की नकल बहुत सीमा तक लीलाधर जगूड़ी ने की है। लेकिन वे उतने सफल नहीं हुए। उन्होंने धूमिल की कविता 'मोचीराम' के तर्ज पर 'बलदेव खटिक' नामक लंबी कविता लिखी। जो हिंदी जगत में 'मोचीराम' की तरह उतनी स्वीकृत नहीं हुई। कवि धूमिल की यह कविता तमाम भाषाओं में अनूदित हुई है। लेकिन जगूड़ी की कविता इस सीमा तक नहीं पहुँच पाई।

रमाशंकर:आप ऐसा कोई संस्मरण सुनाइए जिससे उनके व्यक्तित्व की कुछ अन्य विशेषताएँ उजागर हों सकें?

वाचस्पति:हाँ मैं एक उदाहरण सुनाता हूँ जो बहुत गौर करने की चीज है। धूमिल के समवयस्क समकालीन कवि लीलाधर जगूड़ी उनके पास आए थे। उनके छोटे भाई मुरलीधर बी. ए. करने के लिए यहाँ (काशी विश्वविद्यालय) आए थे। वे अंधे थे। मुरलीधर हमारे सहपाठी थे। हम दोनों एक ही होस्टेल (विरला छात्रावास) में रहते थे। एक बार जगूड़ी धूमिल से मिलने आए। उन्होंने धूमिल से कहा था ''मेरा भाई मुरलीधर यहीं बी.एच.यू. में पढ़ रहा है जरा ध्यान देना।'' सुबह हो, दोपहर या रात हो जब भी वे (धूमिल) वहाँ से गुजरते थे, होस्टल के पास आकर रूक जाते और जोर से आवाज देते मुरलीधर। यह होस्टल रास्ते में पड़ता था। मुरलीधर का कमरा मेरे कमरे से तीन चार कमरे के बाद था। मुरलीधर आवाज सुनते ही धूमिल के पास आ पहुँचते थे। बातचीत करते थे। कभी-कभी मैं धूमिल के साथ साइकिल लेकर निकल पड़ता था। उनके साथ बैठकर चाय पीता, कभी-कभी भोजन भी कर लेता था।

पहाड़ी पर रहने वाले कवि लीलाधर जगूड़ी द्वारा धूमिल से अपने भाई की देखभाल के लिए कहने पर, वे अपनी पारिवारिक परेशानियों के बावजूद भी छात्रावास में मुरलीधर से मिलने लगभग पाँच सौ बार गए होंगे। ऐसें नि:स्वार्थ भाववाले व्यक्ति धूमिल जी थे।

रमाशंकर: उस समय आपकी उम्र क्या रही होगी?

वाचस्पति:मैं लगभग 20 साल का रहा हूँगा।

रमाशंकर: आपके अलावा धूमिल किन-किन लोगों से जुड़े थे?

वाचस्पति: उस समय गोदौलिया पर एक 'दि रेस्टोरेंट' हुआ करता था। अब वह एक बहुत बड़ी सोने-चांदी की दुकान में बदल गया है। रेस्टोरेंट की ठीक ऊपर सी.पी.आई का आफिस था। यह रेस्टोरेंट बुद्धिजीवियों, कलाकारों, चित्रकारों, लेखकों, कवियों के बैठने का अड्डा था। यहीं यहाँ के लोग राजनीतिक क्षेत्र से जुड़े हुए सी.पी.आई एवं सी.पी.एम के लोग भी आते थे।

धूमिल की जिंदगी भर किसी से पटी नहीं, क्योंकि उनकी बहस में एक तीखापन रहता था जिससे लोगों से उनका संबंध बिगड़ जाता था। धूमिल मुँहफट और स्पष्टवादी थे। यहाँ तक कि अपने परममित्र काशीनाथ को भी उन्होंने कभी नहीं बख्शा। बहस में उनसे अनबन हो जाती थी। धूमिल हफ्तों-महीनों काशी के यहाँ नहीं जाते थे। जीवन के अंतिम क्षणों में यही हुआ भी।

काशीनाथ सिंह के बहुत अधिक संपर्क में रहनेवाले समकालीन जनमत के संपादक महेश्वर शरण उपाध्याय जी और एक कुमार संभव जी थे। धूमिल इनसे बहुत ही चिड़ते थे। क्योंकि ये दोनों पार्टी लाइन के हिसाब से बहुत उपहास करते थे। ये नक्सलाइट आंदोलन से जुड़े हुए थे। महेश्वर जी बहुत अच्छे क्रांतिकारी गीत लिखते थे। इनसे जब धूमिल की नहीं पटती थी तो वे अपने घर 26/252 नवाबगंज आते थे। फ्रेश होते थे। उनके कमरे में खिड़की के पास पंडित जवाहर लाल का बहुत बड़ा फोटो टंगा हुआ था। एक कोने में तमाम प्रकार की पत्रिकाएँ nsx hmWrW& `n{ÎHEHN> IT| के पते से, कुछ काशीनाथ के पते से और कुछ नवाबगंज के पते से आई हुई थी। उनकी दृष्टि में जो पत्रिकाएँ बेकार की होती थी, उन्हें झोले में रख लेते थे। फिर नागानंद को आवाज देते थे। दोनों साइकिल लेकर निकल पड़ते थे। रास्ते में कोई नया रचनाकार मिल गया, तो उसे वे पत्रिकाएँ देते थे।

धूमिल के मित्रों में एक कंचन कुमार बंगाली हुआ करते थे। वे 'आमुख' नामक पत्रिका निकालते थे। रास्ते में उनका घर पड़ता था। उनसे बातचीत करते थे। विश्वनाथ मंदिरवाली गली के पास लेफ्ट में एक सरदार का ढाबा था, अब वहाँ साड़ी की दुकान खुल गई है। वहाँ भोजन करते थे। कभी-कभी मैं उनके साथ होता था।

एक बार हम, धूमिल, कंचनकुमार और 'वातायन' पत्रिका के संपादक हरीश बागानी खड़े-खड़े बात कर रहे थे। कंचन कुमार द्वारा संपादित 'आमुख' पत्रिका का नया-नया अंक निकला था। वह उनके हाथ में थी। कुछ दूसरी पत्रिकाएँ भी झोले में थी। एक गाय खाने के लिए बार-बार लपक रही थी। धूमिल ने झोले से सारी पत्रिकाएँ निकालकर उस गाय को खिला दी। ऐसी बातों को लेकर लोग धूमिल की बहुत आलोचना किया करते थे। तब उनका तर्क होता था- इस तरह की 200-250 पत्रिकाएँ इस देश में क्यों निकल रही हैं। जहाँ कागज का अभाव है, जहाँ कागज के लिए कई परेशानियाँ हैं, आप मित्रों की जेब पर डाका डाल रहे हैं। अगर पत्रिकाएँ निकालनी है तो सुनियोजित ढंग से निकालिए। यह धूमिल का अपना दृष्टिकोण था। ऐसी ही भाषा धूमिल की कविता में देखने को मिल जाती है।

रमाशंकर : मैंने सुना है धूमिल बड़े बड़े आचार्यों से भी बहस करने में कभी चूकते नहीं थे। क्या आप इस पर कुछ प्रकाश डालेंगे?

वाचस्पति : हाँ। मुझे अच्छी तरह याद है कि 'यूनिवर्सल बुक हाऊस' का उद्घाटन होनेवाला था। त्रिलोकी सिंह यादव ने धूमिल से विचार विमर्श किया था कि आखिर इस दुकान का

उद्घाटन किससे करवाया जाए। एक दिन पहले ही आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी से धूमिल की काफी बहस हुई थी। दोनों एक-दूसरे से काफी नाराज हो गए थे। फिर भी धूमिल ने उनको ही चुना और कहा कि वे हमारे शहर के गौरव हैं, उन्हीं से उद्घाटन करवाइए।

रमाशंकर : मुझे डॉ. रत्नशंकर पांडेय से पता चला है कि आप जितने करीब धूमिल से है उतने ही करीब बाबा नागार्जुन के । क्या यह सत्य है?

वाचस्पति : बाबा नागार्जुन जी से हमारा विद्यार्थी जीवन से ही परिचय था। हमारा जीवन पहाड़ों के बीच भी गुजरा है। जब हम वहाँ रहते थे। बाबा हमारे घर बराबर आते थे। तीन-तीन, चार-चार दिन रहते थे। पहाड़ों पर जहाँ हम रहते थे, वहाँ महीनों रहते थे। मेरे अपने बच्चों का नाम तक उन्हीं का दिया हुआ है। एक दिन हमने बैठकर हिसाब लगाया अंदाजन, एक मोटा हिसाब है कि अपने जीवन के लगभग 3 वर्ष बाबा नागार्जुन हमारे घर बिताए हैं।

मेरे पास यह डायरी और यह फोटो अलबम सबूत के तौर पर रखी हुई है। कवि त्रिलोचन जी के भी मैं करीब रहा। लेकिन वे संत स्वभाव के स्वामी व्यक्ति थे। यह बाबा नागार्जुन Amp Yy_b H$i`{°$d H$ma^md hrh¡{Oggo_ZoAnZr P.H.D. डिग्री पाने के लिए विश्वविद्यालय के आचार्यो के पीछे-पीछे नही भागा। मैंने अपने बलबूते पर ही पी. एच. डी. की डिग्री तथा सर्विस भी प्राप्त की।

रमाशंकर : धूमिल जी का सामान्य तबके के लोगों के साथ कैसा रवैया होता था?

वाचस्पति : धूमिल बहुत संवेदनशील व्यक्ति थे। सामान्य तबके के लोगों के साथ जैसे रिक्शेवाले के साथ कोई अन्याय हो रहा है वह चाहे रेलवे स्टेशन हो, अस्सी हो, या विश्वविद्यालय का गेट हो, पढ़ने वाले लड़के एक- या दो रहे हो तो भी धूमिल उनको समझाते थे और पूरा पैसा अपने सामने दिलवाते थे। अगर किसी मजदूर या सब्जीवाले के साथ अन्याय हो रहा है अन्यायी चाहे पुलिसवाला हो या दारोग हो, कोई कितना भी बड़ा हो वे यह नहीं सोचते कि इसका परिणाम क्या होगा? वे भिड़ जाते थे, उस व्यक्ति के लिए। यह मैंने स्वयं अपने आँखों से देखा है।

रमाशंकर : आप की धूमिल जी से आखिरी मुलाकात कब हुई थी?

वाचस्पति : धूमिल ब्रेनट्यूमर से बहुत पीड़ित थे। इसके इलाज के लिए लखनऊ गये थे। मैं उनको देखने के लिए वहाँ गया था। वे उस समय किंग जार्ज मेडिकल के पीछे भूलभूलैया एक ऐतिहासिक इमारत है, उसके चमूतरे पर बैठे थे। उन्होंने हम से दो बातें कही- जो उनकी पीड़ा को व्यक्त करती है- ''वाचस्पति अब क्या पता कब भेंट हो, देखो दो काम मत करना- एक अध्यापक मत बनना और दूसरी सरकारी नौकरी मत करना।'' लेकिन विडंबना देखिए कि मैं अध्यापक भी हूँ वह भी राजकीय महाविद्यालय में। नौकरी के सिलसिले मुझे बनारस वापस आना था। फरवरी 1975 में नौकरी हेतु मेरा साक्षात्कार था 10 फरवरी 1975 की रात में धूमिल का देहांत हो गया। मैं उनके अंतिम संस्कार में शामिल नहीं हो पाया। इसका मुझे आजीवन खेद रहेगा।

रमाशंकर : धूमिल की लंबी कविता 'पटकथा' के संबंध में आपके अपने विचार क्या हैं?

वाचस्पति : धूमिल की 'पटकथा' शीर्षक कविता की बात जब आती है, तो लोगों मुक्तिबोध की लंबी कविता 'अंधेरे में' से तुलना करते हैं। 'अंधेरे में' जो कविता है वह बौद्धिकों की कविता है। बौद्धिक लोग ही इसको पढ़ते हैं और उसकी प्रशंसा करते हैं। धूमिल की पटकथा आजादी के बाद के दस्तावेज को लेकर लिखी गई है। जो बहुत ही सरलता से संप्रेषित हो जाती है। उसमें जो हमारे समय की विसंगतियाँ, विडंबनाएँ हमारे नेताओं और बुद्धिजिवीयों के जो अवसरवादी

चरित्र है, उनका बहुत स्पष्ट संकेत हैं। 'पटकथा' का मतलब ही हुआ सिनेरियो। अगर इस कविता का नाट्य रूपांतरण किया जाए, उस पर सीरियल बनाया जाए, आजादी के बाद का जो भारत है, पचास-साठ वर्षों का, जो दस्तावेज हैं बड़ी सफलता के साथ चित्रांकन किया जा सकता है।

इस कविता में धूमिल जी कहीं भी पूंजीवादी वर्ग के या नौकरशाही वर्ग या शोषक वर्ग का समर्थन करते हुए नहीं दिखलाई पड़ते हैं। धूमिल एक जगह कहते हैं- ''जिसकी पूँछ उठायी उसको मादा पाया।'' यहाँ दलितगुण विमर्श या स्त्री गुण विमर्शवाले लोग इस सारगार्भित सूक्ति का विरोध करते हैं। यहाँ धूमिल की वह भावना नहीं है, वह दृष्टिकोण नहीं जो लोग सोचते हैं। यहाँ उसका प्रयोग एक मुहावरे के रूप में किया गया है। वरना ये अपनी पत्नी का, अपनी चाची का, चाचा का, अपने परिवार का कितना ख्याल करते थे कि भाव विह्वल हो जाते थे।

रमाशंकर : हिंदी साहित्य में धूमिल का क्या योगदान और उपलब्धियाँ रही हैं?

वाचस्पति : धूमिल स्वयं अकविता आंदोलन से प्रभावित थे। उनकी कविताओं पर अकविता आंदोलन की छाया परिलक्षित होती है। बाद में, उन्होंने अपनी कविता को ही नहीं; बल्कि समकालीन कविता को भी उस अकविता आंदोलन के प्रभाव से बाहर लाये । उन्होंने ही पहली बार कविता को पठनीय और सहज रूप से स्वीकृत बनाया। पठनीय इस रूप में है, आजादी के बाद मोह भंग की स्थितियों के चित्रण को धूमिल ने अपनी कविता में स्थान दिया।

दूसरी बात यह है जो अधिकांश विद्वान और आचार्य धूमिल की कविता का दुर्गुण मानते है। लेकिन मैं उसे गुण मानता है। वह है वक्तृत्व शैली। यानी एक संबोधनवाली शैली। एक संबोधन शैली तो राष्ट्रीय आंदोलन वाली कविता में थी, जिसके प्रमुख कवि रामधारी सिंह दिनकर, शिव मंगल सिंह सुमन, बालकृष्ण शर्मा नवीन आदि हैं। लेकिन धूमिल की संबोधनवाली शैली वह नहीं है। उनकी शैली में वह मध्यवर्ग आता जो निचले तबके का है। वह संघर्ष करता hÅamNnQ>HSgmZ _OXg, gmYmaU IQZdmbdbmō hŠYy_b ñd`S.T.I. की साधारण नौकरी में थे। उनका लंबा चौड़ा संयुक्त परिवार था। जिम्मेदारियों से लदे हुए थे। सामान्य व्यक्तियों की संघर्षशीलता और पीड़ा उन्होंने अपनी कविता में व्यक्त की है।

धूमिल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह अपने शिल्प के क्षेत्र में 'पायोनिया' हैं। मतलब यह है कि उस समय श्रीकांत वर्मा की कविता में जो शिल्प है, तुक है वह बीच से लेते हैं। धूमिल इससे भिन्न हैं। तुक उनमें भी मिलते हैं। लेकिन तुक मिलाने के लिए वह कोई 'एक्सरसाइज' नहीं करते थे। कविता में ये तुक बिलकुल सहज रूप में आते हैं। वही सहजता ही धूमिल की कविता को स्वीकृत बनाती है। वह सहजता उन्हें अनायास ही नहीं मिली बल्कि जीवन में नौकरी में संघर्ष करते हुए उसे प्राप्त किया है।

राजनीतिक दृष्टिकोण से यदि आप धूमिल की कविता का अध्ययन करें तो उसमें कई अंतराल (गैप) दिखलाई पड़ेगा। यह अंतराल अगर आप वर्ग संघर्ष की दृष्टि से देखेंगे, तो धूमिल किसी पार्टी के मेम्बर नहीं थे। वे एक सरकारी सेवा में थे। उनपर पारिवारिक जिम्मेदारियाँ थी। इनकी कविता एक स्कॉलर वाली नहीं है कि मार्क्सवाद का जो एक स्कॉलर लिखता है। धूमिल की कविता जीवन के संघर्ष रूपी आग के अनुभवों में तपी हुई कविता है। अर्थात् जीवनसंग्राम में कूदकर कविता लिखी हुई है।

धूमिल का जो सकारात्मक योगदान है वह मैं यह मानता हूँ - ''पिछले तीस-चालीस वर्षों में लिखी हुई कविता जटिल और अपठनीय है। उसका कारण यह है कि जीवन के जो

प्रत्यक्ष अनुभव है, उनसे हमारे कवि दूर होते हुए दिखाई देते हैं। वह उच्च सुविधा भोगी वर्ग से हैं। यह शब्द बड़ा आपत्ति जनक लोगों को लग सकता है कि वहाँ जो प्रत्यक्ष यथार्थ है वह नहीं है, कल्पित यथार्थ है।''

मेरे ख्याल से धूमिल को यदि पूरा समय मिलता तो जो काम कथा साहित्य में प्रेमचन्द ने किया, कुछ वैसा ही काम धूमिल जी काव्य जगत में कर जाते । प्रेमचन्द कथा साहित्य के माध्यम से जिस मोकाम पर पहुँचे, जो अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की, उस स्तर तक कविताओं के माध्यम से धूमिल भी पहुँचते अपने प्रयत्न से किसी की कृपा से नहीं। उनको सिर्फ 1960-1975 वर्ष तक काही समय मिला। 15 वर्षों के अल्पकाल में धूमिल ने हिंदी कविता को जो उपलब्धियाँ दिए वह कम नहीं है।

धूमिल तक हिन्दी कविता में जो एक प्रकार से ठहराव (Stagnant) हो गया था। जिस तरह कभी-कभी नदी की गौण धारा में हरे रंग की काई वगैरह जम जाने से पानी ठहर जाता है। धूमिल ने काव्य जगत को ठहरी हुई उस धारा को जरा तेज करने का काम किया है। समकालीन कविता में धूमिल का यह सबसे बड़ा योगदान रहा है।

धूमिल की सबसे बड़ी उपलब्धि मैं मानता हूँ- धूमिल की कविता के ऐसे पाठक ज्यादातर हैं जो बी.ए. एम.ए की कक्षाओं में पढ़ रहे हैं। कारण इन कक्षाओं की हिंदी कविता के पाठ्यक्रम में धूमिल की कविताओं को बहुत अधिक पढ़ाया जाता है। पढ़ाये जाते रहेगे भी। तमाम कवि पाठ्य क्रम के कारण ही जीवित रहते हैं। कुछ कवि ऐसे हैं जो पाठ्यक्रम के बाहर भी लोग पढ़ते हैं याद करते हैं। जैसे तुलसी, कबीर, रहीम, दुष्यंतकुमार आदि उसी तरह से धूमिल की काव्य पंक्तियाँ लोगों की जुबान पर हैं। शोध प्रबंध के लिए लोग पढ़तेही है। लेकिन धूमिल की कविता ने एक आम पाठक वर्ग को तैयार किया है।

धूमिल कुल मिलाकर 39 वर्ष ही जीवित रहें। इतनी अल्पायु में उन्होंने हिंदी जगत को जो अतुलनीय योगदान दिया वह सराहनीय योगदान है। पहले के कवि 20-22 वर्ष में Mature कवि हो जाते थे। परंतु आज 18-19 वर्ष के जो कवि है वेह अपरिपक्व Inmatrue हैं। कारण इलेक्ट्रोमीडिया वाली संस्कृति उनके मस्तिष्क को दूषित किये हुए हैं।

धूमिल अब तक जिंदा होते, तो वे सत्तर वर्ष के भी नहीं होते। 2006 में वह सत्तर वर्ष के हो जाते। धूमिल की जो संभावनाएँ थी धूमिल की जो पूरी ऊर्जा की शक्ति थी वह पूर्ण रूप से कविता में नहीं आ पाई। एक तरह से आप कह सकते हैं उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह उम्र की लिहाज से 1/3 ही है। अंतिम क्षणों तक धूमिल कुछ-न-कुछ लिखते रहे। उनकी अंतिम कविता है- लोहे का स्वाद /लोहार से मत पूछो/उस घोडे को पूछो /जिसके मुँह में लगाम है।(कल सुनना मुझे)

x-x-x

डॉ.विश्वनाथ प्रसाद भूतपूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष एवं कला संकायअध्यक्ष, उदयप्रताप महाविद्यालय, वाराणसी, १८-०२-२००३

रमाशंकर : धूमिल जी की काव्य यात्रा कहाँ से आरंभ होती है?

विश्वनाथ सिंह: धूमिल की काव्ययात्रा गीत से आरंभ होती है। इन गीतों में दो प्रकार के गीत हैं कुछ उनके निजीत्व से जुड़े हुए हैं, जिनमें प्रेम संबंधी रचनाएँ और कुछ गीत ऐसे हैं जिनमें किसान और किसानों की जिंदगी है। खेत, खलिहान, हल-बैल हैं। गाँव के लोग और उनका जीवन है तथा गाँव की प्रकृति है। ये सभी उनके आरंभिक गीतों में आए हैं। बाद में उन्होंने गीत को छोड़ा है, सीधे मुक्तक लिखने लगे।

रमाशंकर : धूमिल जी की रचनाओं में सबसे ज्यादा बदलाव कब आया?

विश्वनाथ सिंह: धूमिल जब बनारस हिंदू विश्व विद्यालय में आए और वहाँ के बहुत सारे प्रगतिशील चेतना के लेखकों से जुड़े, तब उनकी अनुभूति, चिंतन तथा उनके शिल्प में इतना परिवर्तन आया कि पहले के गीतों को देखिए और नई कविता के दौर की कविता को देखिएगा, तो लगेगा ही नहीं कि ये एक व्यक्ति की ही रचनाएँ हैं। इसीलिए कुछ समीक्षक चाहते हैं कि उनके गीतों की चर्चा न हो। लेकिन मैं उनमें से हूँ जो कहते हैं कि जहाँ से धूमिल ने शुरुआत की है उसको भी तो देखिए। यह धूमिल का एक धनात्मक पक्ष है कि वे कहाँ से कहाँ पहुँच गए। भाषा और मुहावरों के बनाने में कितना बदलाव आया, लाक्षणिकता कितनी अधिक आयी, बिंबों और प्रतीकों में कितने आगे बढ़े। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक उद्वेलनों को वे कितनी स्पष्टता के साथ समझने लगे थे।

धूमिल के चिंतन की प्रौढ़ता को समझने के लिए उनके निबंधों को भी पढ़ने और समझने की आवश्यकता है; क्योंकि कविता में तो ध्वनि होती है, संकेत होते हैं; लेकिन गद्य में स्पष्टत: चिंतन होता है।

रमाशंकर: धूमिल के यथार्थ के संबंध में आपका क्या विचार है?

विश्वनाथ सिंह: धूमिल के यथार्थ के कई पक्ष हैं। उनका जो यथार्थ है वह मार्क्सवादी चिंतन पर आधारित यथार्थवाद है। उसी के आधार पर वह सामाजिक विषमताओं को भी पहचानने और विश्लेषित करने की कोशिश करते हैं। उसी आधार पर आर्थिक अभाववाले जो लोग हैं, उनको भी समझने और उनके अधिकार को दिलाने के लिए छटपटाते हुए दिखलाई पड़ते हैं। 1965 की राजनीति में जो गिरावट आ रही थी उन्होंने उस यथार्थ को देखा। धूमिल का जो यथार्थवाद है वह वैज्ञानिक यथार्थवाद है। उसे द्वन्द्वात्मक-भौतिकवाद भी कह सकते हैं। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में व्यक्ति समाज को दो वर्गों (एक शोषक और दूसरा शोषितवर्ग) में बांटकर पहले देखता है। धूमिल के सामने बड़ा स्पष्ट था कि शोषक वर्ग कौन है और शोषित वर्ग कौन है? धूमिल हमेशा शोषित वर्ग को प्रेरित करते रहे कि शोषक वर्ग से लड़ो और अपनी हक की माँग करो। धूमिल उनके साथ खड़े भी हुआ करते थे। इस यथार्थ को धूमिल ने अपनी गाँव पर लिखी 'खेवली' कविता में स्पष्ट चित्रण किया है। जो 'कल सुनना मुझे' में संकलित है।

धूमिल ने अपनी कविताओं में जो प्रजातंत्र और गाँव की पंचायत का जिक्र किया है वह शोषण का एक माध्यम है। गाँव की नालियों और लाठियों पर उन्हीं लोगों का वर्चस्व बना है। 'सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र' काव्य संग्रह की कविताओं के माध्यम से शोषण मुक्त समाज

की परिकल्पना की गई है; लेकिन समाज में दलित ही रह जाता है। शोषित शोषित ही रह जाता है। जो प्रजातंत्र है उसके शोषण का रूप भयंकर है। धूमिल कहते है- ''एक आदमी रोटी बेलता है। एक आदमी रोटी खाता है और एक आदमी रोटी से खेलता।'' यह वहीं शोषक आदमी है जो रोटी से खेलता है।

धूमिल ने इस व्यवस्था के ऊपर चोट करते हुए लिखा है- ''लोहे का स्वाद/ लोहार से मत पूछो/ उस घोड़े से पूछो/ जिसके मुहँ में लगाम है। यहाँ 'घोडा' तो प्रगति का ही सूचक है, लेकिन उसके मुँह में जो शोषण की लगाम लगी हुई, उससे वह नही चल पा रहा है। जो प्रगतिशील लेखक हैं, वे शोषण के खिलाफ लड़ रहें। लेकिन शोषण की व्यवस्था पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है। मामला ज्यों-का-त्यों बना हुआ है। धूमिल ने अपनी कविता में ये जो बिंबात्मक और प्रतीकात्मक संकेत दिए हैं। उसको कक्षा 8 का अध्यापक नहीं समझा सकता है।

सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक यथार्थ को समझना एक बात है; लेकिन उसमें व्यक्ति को अंतर्विरोधों में घुटते हुए देखना दूसरी बात है। उसे उससे मुक्ति कैसे मिलेगी? बहुत से ऐसे कवि और रचनाकार हुए हैं जो अंतर्विरोधों को कहकर रह जाते हैं। उनको यथार्थ की पहचान ही नहीं हो पाती। कुछ ऐसे रचनाकार हैं; जो भविष्य की ओर संकेत नहीं कर पाते हैं। लेकिन वह ज्यादा सामर्थ्यवान होते हैं जो सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक यथार्थ को समझने के बाद उसके अंतर्विरोधों का विश्लेषण भी करते हैं। वे उसके खिलाफ उठने के लिए जनता को सावधान की ही मुद्रा में नहीं रखते, बल्कि उसको आगे बढ़ने के लिए बाध्य करते हैं।

रमाशंकर : भाषा के संबंध में धूमिल जी का क्या विचार है?

विश्वनाथ सिंह: धूमिल जब भी भाषा के संबंध में बात करते हैं, तो वह केवल हिंदी की ही पक्षधरता नहीं करते हैं। उनके अनुसार भाषा एक ऐसा माध्यम है, जो सामान्य जन की चेतना का माध्यम है। भाषा उसकी जागृति का एक आधार है। वह चाहते हैं कि सामान्य जन जिस भाषा में बात करता है उसी भाषा में कविता का सृजन होना चाहिए। क्योंकि उसमें उसकी चेतना और जागृति छिपी होती है।

रमाशंकर: हिंदी की नई कविता में धूमिल जी का क्या योगदान और उपलब्धियाँ रही हैं?

विश्वनाथ सिंह: हमें नई कविता को अलग-अलग दशकों में पढ़ना चाहिए। नई कविता में 80 दशक तक काफी बदलाव आ गया था। नई कविता के पहले दौर में एक तरफ धर्मवीर भारती का अस्तित्ववादी चिंतन, दूसरी तरफ भवानी प्रसाद मिश्रा का गांधीवादी चिंतन और तीसरी तरफ अज्ञेय का कलाबोध और आत्मा-विस्तार का चिंतन था, जो लोगों को बहुत प्रभावित किया। नई कविता के पहले दौर में अलग-अलग दिशाएँ थी।

धूमिल ने किस व्यक्ति को लाने की कोशिश की। वह हालांकी सन् 65-70 के बीच लिखी कविताओं में स्थापित कर दिया था। धूमिल ने मध्यवर्ग से हटकर गाँव के उस आदमी को जो एकदम अभाव में जी रहा है, उसको स्थापित करने की भरपूर कोशिश की। वही बाद में चर्चा का विषय बना। धूमिल, नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल इन तीनों कवियों की कविताओं में वही सामान्य व्यक्ति आता है।

शिल्प के धारातल पर धूमिल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह हर तरफ मौलिक हैं। वे शब्दों के प्रयोग में मौलिक है। जैसे 'मिस्त्री बाल्टू'। इस प्रकार न जाने कितने शब्द हैं,

जो अभी तक कविता के लिए अछूत माने जाते थे। कविता के अन्दर जिस बिंबों प्रतीकों का प्रयोग लोगों ने नहीं किया, नाली में बहता हुआ खून, लाही, गगरी में गरा आटा, ताने पर चिमटा का मचलना। गँवे-गँवे जाती है जैसेा क्रियापदों का प्रयोग धूमिल ने किया है वह नई कविता की नई उपलब्धि है।

धूमिल की जो दूसरी सबसे बड़ी बात है, उनके भाषा में बदलाव। यह थोड़ा सा विवाद का विषय बन सकता है। धूमिल जिस व्यक्ति के लिए लिख रहे हैं, वह निचले तबके का अंतिम व्यक्ति है। लेकिन वह जिस भाषा का प्रयोग करते हैं वह बहुत ही कारीगरी की भाषा है। धूमिल स्वयं मुहावरे बनाते हैं। स्वयं अपने मौलिक बिंबों का प्रयोग करते थे। धूमिल जिस प्रकार भाषा के मुहावरों और पदावली का चयन करते रहते, वह सब उनका गढ़ा हुआ सधा हुआ था। लेकिन बाद के संग्रह में 'कल सुनना मुझे' की भाषा उससे भी आगे निकल गई। शायद वह जिंदा होते, तो उनकी भाषा भी वहाँ पहुँच जाती, जहाँ नागार्जुन और त्रिलोचन की भाषा है।

धूमिल में दोनों विशेषता है। धूमिल एक तरफ तो नई कविता की भाषा के उन शिल्पकारों में से हैं जो मौलिकता की दृष्टि से अधिक उल्लेखनीय है, दूसरी तरफ अपनी मौलिकता से जो गाँव के अनछुवे शब्द, बिंब प्रतीक हैं तथा वह जिस तकनीकि परिवेश के व्यक्ति थे, उस परिवेश की शब्दावली को चुनचुनकर कविताओं में स्थान देना उनके जैसे विरला व्यक्ति ही कर सकता है।

×-×-×

वशिष्ठमुनि ओझा, हिंदुस्थान (बनारस) समाचार पत्र के उपसंपादक १५-०२-२००३

रमाशंकर : आप धूमिल जी के संदर्भ में अपने जीवन का ऐसा कोई संस्मरण सुनाइए जिसे मरते दम तक नहीं भूल सकते हैं?

वशिष्ठमुनि : मैं आपको धूमिल की एक कविता से संबंधित एक संस्मरण जरूर सुनाना चाहूँगा। उस कविता का नाम है- 'रोटी और संसद' यह कविता धूमिल ने दशाश्वमेघ घाट पर, चितरंजन पार्क के पास, पोस्ट ऑफिस के ठीक बगल में एक सिंधी की चाय की दुकान हुआ करती थी। वह चाय की दुकान शहर के उभर रहे कवि साहित्यकारों की अड़ी हुआ करती थी। यहाँ धूमिल भी आया-जाया करते थे। यह बहुत साफ हो गया था कि अगर इस संसार में कोई शिकार है तो वह भारतीय संस्कृति है। उसकी रक्षा के लिए हम धूमिल से लड़ बैठते थे।

धूमिल में एक खास बात होती थी कि उनके दिमाग में प्राय: कविता की सृजन प्रक्रिया चलती रहती थी। विचार और प्रतीक बनते रहते थे और कहीं से भाषा, शब्द, मुहावरा मिल जाते थे, तो वही हूबहू किसी चिट पर लिख लेते थे। क्योंकि नहीं लिखने पर भूलने की संभावना रहती थी। 'रोटी और संसद' यह कविता उसी चाय की दुकान पर तैयार हुई। इस कविता को पूरी करने में एक लड़का नरेंद्र नीरव, प्रभुनारायण झिंगुरन (जो आजकल दूरदर्शन लखनऊँ के डायरेक्टर हैं) सुधेंदु पटेल और मेरी भूमिका रही थी। हम सभी एक उम्र के थे। मूल कविता इस प्रकार है- ''एक आदमी/ रोटी बेलता है/ एक आदमी रोटी खाता है/ एक तीसरा आदमी भी है जो न रोटी बेलता है न रोटी खाता है/ वह सिर्फ रोटी से खेलता है/ मैं पूछता हूँ-/ 'यह तीसरा आदमी कौन है?' मेरे देश की संसद मौन है।''

यह अकेली कविता ही धूमिल को व्याख्यायित करने में काफी सक्षम है। यह कविता कई दिन तक चलती रही प्रक्रिया की ऊपज है। उस प्रकिया में कुछ बातें फँस गई थी, कविता बन ही नहीं पा रही थी। धूमिल ने पहले ही दो-तीन लाइन लिख ली थी। वह कविता रुक गई थी। क्योंकि कविता के जरिए कवि जो भी व्यक्त करना चाहता है, उसके लिए उपयुक्त शब्द नहीं मिल पा रहा था।

'रोटी और संसद' कविता धूमिल ने हम लोगों के सामने तैयार किया था। यही कविता बनारस के गांडीव की एक साप्ताहिक पत्रिका थी (जिसके संपादक जगदीश मिश्र थे) में वशिष्ठ मुनि ओझा के नाम से छप गई। वह कविता रातो रात खूब प्रचारित हो गई। निश्चित ही धूमिल को इससे परेशानी बढ़ गई। उन दिनों हम खुराफाती लौंडे थे। मैं बी. ए. के अंतिम वर्ष का छात्र था। अंग्रेजी, संस्कृत और समाज शास्त्र मेरे विषय थे। मैं कुछ-न-कुछ लिखने लगा था उस समय। कारण यह था कि साहित्य संपादक के लड़के मेरे साथ पढ़ते थे। जो भी लिखता था छप जाता था। 10-15 रुपये भी मिल जाते थे। उस समय हमारा काम सिर्फ साहित्यिक खुराफातें करना था। हमें कोई नामी साहित्यकार बनने की ख्वाईश नहीं थी। दूसरे दिन समाचार पत्र में छप गया कि इस कविता के दो-दो दावेदार हैं। धूमिल को पता था मैं काशी विश्वविद्यालय में जरूर मिलूँगा। धूमिल अचानक तीसरे दिन विश्वविद्यालय के कम्प्लेक्स में दिख गए। उनके चेहरे पर गुस्सा चढ़ा हुआ था। लेकिन हम उनसे डरते-वरते नहीं थे। हम जानते थे, अन्तत: वह हमारे पास ही आएँगे। क्योंकि हम लोग ही सबसे ज्यादा उनके पक्ष धर थे। हमारे लिए धूमिल से बढ़कर कोई दूसरा कवि नहीं था। वह हमारे भाई की तरह था इसलिए लड़ लिया भी करते थे।

धूमिल हम लोगों के पास आ पहुँचे और कहा तुमने मेरी कविता अपने नाम से छपवा कैसे दी। मैंने कहा- 'हम क्या उसमें हिस्सेदार नहीं है? हमारी आपसे बातचीत तभी होगी जब आप चाय पी लेंगे। चाय पीने के बाद वह प्रसन्न हुए और मैं उनके साथ गया गांडीव में। लिखीत रूप में दिया कि यह मेरी कविता नहीं है। गलती से वशिष्ठ मुनि ओझा के नाम से छप गई है। यह मूलत: संपूर्ण धूमिल की कविता है।

धूमिल बहुत ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं थे; लेकिन बाजार में जो भी नई से नई चीज आ जाती, उसको किसी तरह प्राप्त करके पढ़ते जरुर थे। वहीं से लिए हुए विचार को जसका तस भाषा में अपनी कविता में फिट कर लेते थे। इसके साक्षी शुकदेव भी हैं। शुकदेव सिंह ने एक बार उनको टोका भी था। यह लाइन हमने वहाँ देखी है। इस संबंध में धूमिल का तर्क था विचार जोरदार है, मार करने वाला है, उसमें उपयुक्त भाषा है। तो दूसरे किसी कवि की रचना की एक पंक्ति या शब्दों को लेने में संकोच नहीं करना चाहिए। धूमिल इस विचार धारा के कवि थे।

रमाशंकर : धूमिल की कविता 'रोटी और संसद' के ढाँचे पर आपका अपना विचार क्या है?

वशिष्ठमुनि : प्रगतिशील लेखकों का कहना है कविता Content (विषयवस्तु) से पहचानी जाती है। धूमिल ने इसको नकारा है। क्योंकि धूमिल की इस कविता ने अर्थ अधिक दिए हैं। यह भले ही छोटी-सी कविता है। लेकिन बेजोड़ है। यह छोटी-सी कविता कवि के निशाना साधने की कला को उजागर करती है। आदी कवि-वालमीकि के प्रथम उद्‌गार में अर्थ प्रधान है। वह है गुस्सा-जा पापी, जा निशाद तुम्हें शाश्वत प्रतिष्ठा नहीं मिलेगी। क्योंकि यह क्रोधवश में किया है, यहाँ कवि का गुस्सा ही निशान के रूप में उभरा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि धूमिल का निशाना कितना सधा हुआ है। इस बात को कहने के लिए यह कविता ही पर्याप्त है।

कविता में जो आदमी रोटी खाता है, वह खाने का हकदार है। जो रोटी बेलता है वह भी रोटी के उपयोग का हकदार है। क्योंकि वह श्रम करता है और जो तीसरा व्यक्ति है वह न तो श्रम करता है न तो श्रम से उपजी वस्तु का सदुपयोग करता है। वह बरबाद करता है। वह संसद के उस तबके का आदमी है, जो हमारे देश को समाज को, हमारी मानवता को बरबाद करता है। इसतरह संसद में मार करनेवाली कविता मैंने जीवन में कभी नहीं देखी।

दूसरी चीज जो है वह शिल्प। शिल्प के कारण धूमिल बहुत टिकाऊँ रहनेवाले कवि हैं। अर्थ चाहे बदल जाए। समकालीन कविता को इतना बड़ा शिल्प देनेवाले कवि धूमिल को सौ साल तक पढ़ा जाता रहेगा।

रमाशंकर : धूमिल जी की भाषा के संबंध में आपके क्या विचार हैं?

वशिष्ठमुनि : भाषां के स्तर पर मैं एक बात कहना चाहूँगा कि हिंदी पत्रकारिता में भाषा का विमर्श अपने ढंग की चीज है, जो बहुत पहले से चली आ रही है। लेकिन भाषा में सरल भाषा का अर्थ किसी ने समझा नहीं। जिस सरल भाषा को इस प्रदेश के अखबार कर रहे हैं वह महाराष्ट्र के हिंदी भाषियों के लिए एक सरल भाषा है। एक मानक भाषा होती है। वह सब जगह चलती है। यह एक विशेष स्तर की भाषा होती है। मान लीजिए संस्कृत का आचार्य है, उसके लिए सरल भाषा कौन-सी होगी। सरल भाषा का अर्थ है सुबोध भाषा। जो भाषा कान्टेन्ट के आसपास हो, वही भाषा सुबोध होती है। इस बात को हिन्दी वालों ने बहुत कम समझा। सुबोध भाषा यदि हमारे समय के किसी कवि में देखी जाए, तो वह धूमिल में मिलेगी।

धूमिल ने भाषा को मांजने का काम किया है। उन्होंने कविता को जैसी भाषा प्रदान की। इससे तय हो गया कि कविता में ऐसी सरल सुबोध भाषा होनी चाहिए। दूसरी भाषा नहीं चल सकती।

आप देख सकते हैं कि धूमिल के बाद जितने भी कवि आए हैं। इसको नकल नहीं कहेंगे। सब में भाषा का वही रूप वाक्य विन्यास, शब्द मुहावरे और ध्वनि प्राय: वही हैं। इस तरह की साँचा अपनाने में किसी को कोई दिक्कत नहीं आई क्योंकि; उनकी रचनाओं में मौलिकता है। भाषा में सुबोधता है। जिसके माध्यम से अपने विचारों को बेहतरीन ढंग से पहुँचा सके हैं। अब युवा कवियों में ऐसी ही भाषा का प्रयोग होता रहेगा।

रमाशंकर : धूमिल को एक सशक्त कवि के रूप में स्थापित करने का श्रेय किसको जाता है?

वशिष्ठमुनी : धूमिल उन दिनों प्रचारित किए जा रहे थे कि नामवर सिंह और काशीनाथ सिंह के द्वारा निर्मित हैं। धूमिल इस बात के लिए क्षुब्ध थे। उन दिनों काशीनाथ सिंह का एक उपन्यास छपा था- 'अपना मोर्चा'। वास्तविकता तो यह है कि उस उपन्यास का बीज और उसका नाम तक दोनो धूमिल का ही दिया हुआ था। धूमिल की एक ही कमजोरी थी कि वह गद्य नहीं लिख सकता था। उसका कारण यह है कि वह गद्य में रमता नहीं था। लेकिन कविता में हमेशा रमा रहता था। धूमिल इस बात के लिए हमेशा क्षुब्ध हुआ करता था कि शोषण तो मेरा और मेरे thought का हो रहा है। उल्टी गंगा बहाई जा रही है।

सत्य तो यह है कि धूमिल को एक सशक्त एवं जुझारू कवि या धांसू कवि (यानी बनारसी भाषा में धांसू कवि) के रूप में स्थापित करने का श्रेय डॉ. रामचंद्र शुक्ल को जाता है। डॉ. शुक्ल उन दिनों ललित कला महाविद्यालय के हेड थे। चित्रकला के विद्वान थे। इन्होंने ही चित्रकला में एक नई विचार धारा का प्रवर्तन किया है वह है समीक्षावादी चित्रकला। उनकी मान्यता यह थी कि सृजन चाहे चित्र में हो, चाहे कविता में हो, वह सामाजिक जीवन की समीक्षा होती है। अगर अभिव्यक्ति काव्यात्मक है तो कविता हो गई। यदि वह रंगों है तो वह चित्र बन जाता है। उनकी मान्यता यही थी कि सृजन अपने में ही समीक्षा है। चित्रकला के इतिहास में न जाने कितनी क्रांतियों और बदलाव आए हैं। इसी तरह तुम्हें भी अपनी कविताओं मे क्रांति लानी है। बदलाव लाने हैं। उन्होंने यह भी कहा था यदि रातो रात प्रसिद्ध होना है तो write something Highly Controversial

धूमिल को उनकी यह बात बड़ी रुचि कर लगी। यह बात लगभग 66-67 की होगी। उसके पहले भी धूमिल कवि थे। लेकिन वह परंपरा के कवि थे। शृंगार और प्रेम के कवि थे। गीत भी लिखा करते थे; लेकिन डॉ. शुक्ल के संपर्क में आने से जैसे उनकी प्रज्ञाचक्षु खुल गए। उनकी कविता का स्वरूप, एक दम बदल गया। 'संसद से सड़क तक' काव्य संग्रह इसका साक्षी है।

रमाशंकर: क्या यह सत्य है, धूमिल जी की कविता को कोई आसानी से समझ नहीं पाता है?

वशिष्ठमुनि : हाँ यह बात सही है। कविता को लेकर आप मंथन करते रहिए। तभी उसका अर्थ खुलता है। धूमिल के संबंध में कहा भी गया है कि वे अर्थ के कवि हैं। 'कल सुनना मुझे' इसका मतलब ही यही है। यह युग बीत जाएगा, फिर भी मैं (धूमिल) पढ़ा जाऊँगा। कविता में जिसकी जितनी आस्था होती है वही बड़ा कवि होता है। धूमिल कहा करते थे कि हम उस कविता को कविता नहीं मानते, जिसका नाम चिनिया बादाम की तरह लिया जाता है।

x-x-x

खेवली के पूर्व प्रधानाचार्य श्री राजेश्वरी प्रसाद सिंह

२२-०३-२००२

रमाशंकर: आपका नाम क्या है?

राजेश्वरी सिंह : मेरा नाम राजेश्वरी प्रसाद सिंह है। मैं इसी गाँव खेवली का भूतपूर्व प्रधानाचार्य हूँ।

रमाशंकर : आप का धूमिलजी से क्या संबंध था?

राजेश्वरी सिंह : प्राइमरी की पढ़ाई तक मेरा और धूमिल का संबंध एक गुरु-और शिष्य का था। उस समय उनका नाम सुदामा पांडेय था। धूमिल के नाम से तो बाद में परिचित हुए। जब वे एक प्रतिष्ठित कवि के रूप में उभरने लगे थे। तब मेरे हृदय में उनके प्रति और सम्मान बढ़ गया था।

रमाशंकर : बचपन में धूमिलजी की रुचि किसमें हुआ करती थी?

राजेश्वरी सिंह : खेलकूद में तो उनकी रुचि थी ही। वे एक अच्छे अभिनेता भी थे। कई बार उन्होंने रामलिला व कृष्णलीला में अभिनय भी किया था। मुझे याद है कि एक बार हम लोगों के निर्देशन में कृष्ण की अच्छी भूमिका उन्होंने निभाई थी। जो आज भी स्मरणीय है।

रमाशंकर : धूमिल जी के साथ कभी किसी से कोई लड़ाई-झगड़ा हुआ करता था?

राजेश्वरी सिंह : ग्रामीण क्षेत्र में छोटा-मोटा लड़ाई-झगड़ा तो हुआ करता था। खास करके उनके पट्टीदारों में जमीन जायदाद को लेकर झगड़ा अवश्य हुआ करता था।

रमाशंकर : वे कौन से पट्टीदार हैं जिनसे धूमिलजी के परिवार से हमेशा झगड़ा बना रहता था?

राजेश्वरी सिंह : उस समय उनके पट्टीदार गया प्रसाद पांडेय उर्फ कन्नन पांडेय और छेदी पाण्डेय हुआ करते थे। खास तौर से इन्हीं दोनों से उनका झगड़ा था।

(पास बैठे धूमिलजी के सुपुत्र प्रश्न पूछ बैठते हैं)

रत्नशंकर पांडेय : सर ! क्या कन्नन पांडेय एक आँख से काने थे?

राजेश्वरी प्रसाद : वे काने नहीं थे। उनके चाचा हरिहर पांडेय एक आँख से काने थे।

रमाशंकर : गया प्रसाद पांडेय उर्फ कन्नन पांडेय का रवैया कैसा हुआ करता था?

राजेश्वरी सिंह : गया प्रसाद पांडेय बड़े असभ्य किस्म के व्यक्ति थे। गुंडा-गर्दी करना उनके जीवन का अंग बन गया था। बाल बच्चे थे नहीं। सोचते थे कि हम ही सबसे ताकतवाले हैं। जो लोग हाथ जोड़ लेते थे उनको वे नहीं सताते थे। जो लोग उनका थोड़ा बहुत विरोध करते थे। उनसे नाना प्रकार की खींचा-तानी, लड़ाई झगडा किया करते थे और कोई ऐसी खास बात नहीं थी। हाँ, खान-पान में उठना-बैठना सब कुछ जारी था। उसमें कोई प्रतिरोध नहीं था। गाँव में वैसे दो तरह की गुटबंदी हो गई थी। कुछ लोग धूमिल की ओर थे, तो कुछ लोग कन्नन पांडेय की ओर। यही गुटबाजी कुछ समय तक चलती रही। अब सब कुछ शांत हो गया है। कोई लड़ाई-झगड़ा का प्रश्न ही नहीं रहा।

रमाशंकर : यह गुटबाजी क्यों? क्या धूमिल लड़ाकू किस्म के व्यक्ति थे?

राजेश्वरी सिंह : गुटबाजी का मतलब है कि गाँव में कुछ अच्छे लोग भी थे। जो धूमिल के साथ रहना पसंद करते थे। धूमिल के व्यक्तित्व में एक आकर्षण था। कोई भी निम्न जाति का व्यक्ति उनसे प्रभावित हो जाना था। यही कारण है कि लोग उनके साथ-साथ रहते थे।

अन्याय एवं असत्य के खिलाफ लड़ना धूमिलजी का स्वभाव बन गया था। किसी की

भी बुराई देखकर वे मौन व्रत नहीं रह सकते थे। उसका विरोध करना एक तरह से उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गया था। यह बात सच है लेकिन कहाँ तक परिस्कार कर पाते थे, यह तो वह समय बतलाएगा। कहीं पर वे बाजी मार ले जाने थे। मुँह की खानी भी पड़ती थी। दो तरह की दशाएँ बनती थी। किसी क्षेत्र में कुछ तो किसी क्षेत्र में कुछ। यह सच है कि वे संघर्षशील स्वभाव के व्यक्ति थे। समाज हित के लिए ज्यादा सोचते थे। वे संशोधनवादी थे। वे किसी व्यक्ति विशेष से नहीं, बल्कि उसकी बुराइयों से बेरे करते थे।

(पास बैठे धूमिलजी के सुपुत्र रत्नशंकर पांडेय प्रश्न करते हुए बोल बैठते हैं)

रत्नशंकर पांडेय: गाँव में जो नाटक, रामलीला व कृष्णलीला हुआ करती थी सामाजिक मनोरंजन के लिए, उसमें धूमिल जी की क्या भूमिका रहा करती थी?

राजेश्वरी सिंह : सन् 1953 में हम लोगों ने 'कृष्णावतार' नाटक खेला था। उस नाटक में उन्होंने कृष्ण की भूमिका अदा की थी। उस समय वे 10 वीं कक्षा के विद्यार्थी हुआ करते थे। कृष्ण जी के रूप में जितना बढ़िया रोल सुदामा पांडेय ने उन दिनों अदा किया था, बिरला ही उस उम्र का कोई भी छात्र कर पायेगा। विभिन्न सीन-सीनेरियों के बीच से उनको निकलना पड़ता था। जैसे जमुना नदी में कालिया नाग के साथ नागनथैया करना, चतुर्भुज कृष्ण के रूप में प्रदर्शित करने की कला आदि। जहाँ-जहाँ भी उन्हें पिरोया गया, उसमें वे साक्षात प्रमाणित होते गये। कहीं से भी यह कोई नहीं कह सकता था कि ये कृष्ण नहीं है। बाँसुरी बजाते हुए नृत्य की बेजोड़ कला का वह दृश्य बहुत आकर्षक हुआ करता था। सभी लोगों ने उसकी सराहना की थी।

रमाशंकर: धूमिल जी को नौकरी की तलाश में कहाँ-कहाँ भटकना पड़ा था?

राजेश्वरी सिंह : पिताजी का असमय निधन हो जाने के कारण उन्होंने किसी तरह हाईस्कूल द्वितीय श्रेणी में पास किया। आगे पढ़ने की इच्छा थी, लेकिन आर्थिक परिस्थिति के कारण नहीं पढ़ पाए । तब वे नौकरी की तलाश में कलकत्ता चले गए। कुछ दिनों तक उन्होंने वहाँ 'मेसर्स तलवार ब्रदर्स प्राइवेट लिमिटेड' नामक कंपनी में पासिंग ऑफिसर की नौकरी की। लेकिन कंपनी मालिक का रवैया देखकर उन्होंने नौकरी छोड़ दी तथा गाँव वापस लौट आए। बनारस में I.T.I. कालेज में पढ़ने के लिए दाखिला लिया। इस विभाग में उन्होंने अपनी अच्छी इमेज बनाई थी। परिणाम स्वरूप वहीं पर उनको 'सुपरवाइजर' की नौकरी मिल गई। सुपरवाइजर से इन्स्ट्रक्टर हो गए ।

रमाशंकर : बनारस में किन-किन साहित्यकारों से संपर्क रहता था?

राजेश्वरी सिंह: बी. एच. यू. के ठीक पश्चिम में करौली I.T.I. Collage है, जहाँ डॉ रामचंद्र शुक्ल, शंभूनाथजी, काशीनाथजी, नामवर सिंह आदि जैसे साहित्यकार रहते थे। जिनके साथ उनका उठना-बैठना बराबर था। इन्हीं लोगों के संपर्क में आने के बाद थोड़ा बहुत साम्यवाद और प्रगतिवाद की छाया उन पर पड़ने लगी थी।

रमाशंकर : अच्छा मेरा आपसे आखिरी प्रश्न यह है कि धूमिलजी का मृत्यु कब और कैसे हुई? उनको बचाने के लिए क्या- क्या उपाय किए गए थे?

राजेश्वरी सिंह: धूमिल की मृत्यु ब्रेनट्यूमर से 10 फरवरी 1975 की रात लखनऊ मेडिकल कॉलेज में हुई । धूमिल के सिर में ब्रेनट्यूमर के कारण असहनीय दर्द उभरा करता था। उस समय दूसरों से बात करना तो दूर अपना होश-हवाश भी खो देते थे। इसका इलाज काशी हिंदू विश्वविद्यालाय मेडिकल कॉलेज में हो रहा था। किंतु उनकी दशा संतोष जनक सुधार न होने पर उनको हमलोग लखनऊ ले गए। दो दिन निरीक्षण करने के बाद उनका 'ऑपरेशन' हुआ। ऑपरेशन सफल

रहा। वे 24 घण्टे तक गहन चिकित्सा कक्ष में पड़े रहे। उसके बाद वार्ड में लाए गए। तीसरे दिन वह होश में आ गए थे। धूमिल ने हमलोगों से बातचीत की। खतरा टल गया था। मुझे 6 दिन लगातार वहीं रुकना पड़ा था। विद्यालय भी आना था। अत: मैं वहाँ से चला आया।

सोमवार का दिन था। प्रार्थना सभा समाप्त होने के बाद छात्र कक्षा में चले गए थे। कुछ देर बाद अचानक एक गाड़ी विद्यालय के पास आ गई, जिसमें सुदामा पांडेय उर्फ धूमिल जी की लाश थी। लाश उतारी गई। उन्हें हमने श्रद्धांजलि अर्पित की। लाश को उनके घर लाया गया। विधिवत उनका अंतिम संस्कार किया गया। यही उनकी संक्षिप्त जीवन-मरण की कहानी है।

x-x-x

बनारस के हिंदी कथाकार डॉ.काशीनाथ सिंह
धूमिल जी के परममित्र २०-०५-२००२

रमाशंकर : हर व्यक्ति के दो पक्ष होते हैं- एक बाह्यपक्ष और दूसरा आंतरिक पक्ष। धूमिल जी के बाह्य पक्ष के संबंध में आपका अपना क्या विचार है?

काशिनाथ सिंह : मेरा और धूमिल का संबंध लगभग दस वर्षों तक रहा है। उस बीच उनसे प्राय: बातचीत मुलाकात हुआ करती थी। वे अपनी कविताएँ मुझे सुनाया करते थे। वे क्या-क्या कर रहे होते; वह सब हमें बताते थे। उनकी कविता कहाँ तक पहुँची है, क्या शेप लेने जा रही है। इन सब चीजों के बारे में चर्चा किया करते थे। मैंने एक चीज पर गौर किया कि धूमिल की मुद्रा बहुत ही आक्रमक होती थी। 'टॉलरेस' या सहनशीलता बहुत कम होती थी। खास तौर पर जहाँ कहीं वे अन्याय, अनुचित या गलत होते देखते थे; तो उन्हे अपने को रोकना-सँभालना बहुत ही मुश्किल होता था। इसतरह के तत्व उनके परिचित हो या अपरिचित, वे सीधे उलझ जाते और लड़ जाते थे। यह आक्रमकता अंत तक बनी रही।

दूसरी चीज धूमिल बहुत कुछ पारिवारिक व्यक्ति थे। अपने परिवार में भाइयों को लेकर, बेटी की शादी को लेकर, बेटा व पत्नी इन सब को लेकर काफी चिंतित रहते थे। उनके भाई उनका बहुत सम्मान करते थे। वे जीते जी यही चाहते थे कि उनमें मन मोटाव जैसा न हो। कभी भी अलग न होने की सोचे। मुट्ठी की सारी ऊँगलियाँ एक दूसरे से मिली जुली रहती है। ठीक उसी तरह से वे उनको मिलाकर रखना चाहते थे। उनके भाई भी किसी भी तरह की कुर्बानियाँ देने के लिए तैयार रहते थे। ये दोनों चीज खास थी।

रमाशंकर : अधिकांश विद्वानों का अभिमत है कि धूमिल जी की कविताएँ बनारसी परिवेश से जुड़ी हुई है। इस संदर्भ में आपका अपना क्या विचार है?

काशीनाथ सिंह : इसके बारे में मैं इतना ही कह सकता हूँ कि इस चीज पर विचार करने के लिये उस दौर के यानी साठ के बाद कविता के सारे माहौल को जानना बहुत जरूरी है। हिंदी में ढेर सारे आंदोलन चल रहे थे जैसे; अकविता का, ठोस कविता का, भूखी पीढ़ी की कविता का आदि। वे आंदोलन ज्यादातर नई कविता की जमीन से निकले हुए थे और कविता के अमूर्तन की तरफ जाया करते थे। यही एक बात हो सकती है।

दूसरी बात यह है उन कविताओं में जो केंद्रीय विषय थे, वे शहरी मध्यवर्ती जीवन से संबंधी थे। पढ़े लिखे लोगों का जो तबका होता था, वाणी का, अफसरों का, जिसका अपना ड्राईंग रूम हो और उसमें 'कैक्टस' हो, सजावट हो, उनसे काफी शहरी मध्यवर्ती जीवन से जुडा हो। नई कविताओं के कवियों की यह विशेषता होती थी। धूमिल का सबसे बड़ा 'कन्ट्रीबूशन' (योगदान) यह है कि उन्होंने शहरी और इस मध्यवर्गी जीवन से नई कविता को बाहर निकालने का सफल प्रयास किया। धूमिल कविता को सीधे अपने गाँव में ले गए खेवली में। जहाँ गरीब हैं, किसान हैं, खेत और खलिहान हैं, उनकी आपस की लाग-डाँट है। जब वे अपनी कविता गाँव में ले गए यानी कविता में अपने गाँव को स्थान दिया, विषय बनाया, तो ढेर सारे भदेश शब्द उनकी कविता में आए। बोलचाल के शब्द आए। वे शब्द ही नहीं; बल्कि गाँव की जिंदगी भी आई। यह धूमिल का एक बड़ा 'कान्ट्रीबूशन' (योगदान) था। सच्चे मायने में धूमिल ने कविता को गाँव से जोड़ा है। पंद्रह साल पहले कहानी गाँव से जुड़ गई थी। और कविता नहीं जुड़ पाई थी। कविता को गाँव से जोड़ने का श्रेय धूमिल को जाता है। तो धूमिल ने ही अपनी कविता को गाँव के सभी तबको एवं उनकी समस्याओं से जोड़ा। जिन्हें हम अति पिछड़े कह

सकते हैं। यानी 'मोचीराम' जैसी कविता। रोज कमाने खानेवाले जैसे व्यक्ति से जोड़ा हैं।

इस तरह धूमिल ने लगभग शहर का तिरस्कार किया। बनारस की जो खास चीज है वह उनकी कविता में दिखाई पड़ती है। उनके टोन में जो बनारसी अक्खड़पन था वही उनकी कविताओं में भी दिखाई पड़ता है। बड़े बेलोसे कहना, धार-धार तरीके से कहना, ऐसा कथन कहना जिसमें पैनापन हो तीखापन हो, जो सीधे चोट करे। उनका यह जो लहजा था बनारसी परिवेश का ही था। बाकी जीवन और कविता के भीतर आनेवाले यथार्थ और समस्याएँ सारी की सारी गाँव से जुड़ी थी।

रमाशंकर : सर, आपने अपनी पुस्तक 'आलोचना भी रचना है' में धूमिल से संबंधित एक लेख में लिखा है कि पानी का झगड़ा डाड़ मेड़ का झगड़ा, वाद-विवाद का झगड़ा, मुकदमों आदि को लेकर चिंतित रहते थे। इस तरह की घटनाएँ क्या धूमिल जी ने कभी आपको सुनाई थी?

काशीनाथ सिंह : हाँ, जरूर सुनाया करते थे। घटना ज्यो-की-त्यों नहीं याद है। उनके पड़ोसी थे कन्नन पाड़े। काफी फितरती और फिकरेबाज आदमी थे। उनके घर से और धूमिल के घर से प्राय: मुकदमे बाजी हुआ करते थे। पाड़े बड़े लडाकू स्वभाव के थे। जमीने हड़प लेना, मेड़ उलट देना उनके बाएँ हाथ का खेल था। लोगों को सिर्फ परेशान करना उनकी आदत बन गई थी। ये चीजें थीं, जो धूमिल को परेशान करती थीं। कभी-कभी उनके भाई कन्नन पाड़े से उलझ जाते थे। धूमिल बराबर समझाने की कोशिश किया करते थे कि लड़ाई- झगड़ा मत किया करो। अगर लड़ना ही है तो कोर्ट कचहरी से लड़ो। लेकिन बलवा करना या मारपीट की कोई जरूरत नहीं है वे कन्नन पाड़े को लेकर बराबर परेशान रहते थे। और उसी झगड़ा को अपनी कविताओं में -जहाँ कहीं पड़ोस का जिक्र आता, चाहे पाकिस्तान हो, चीन हो, चाहे हिन्दी भाषा के साथ तमिल भाषा का झगड़ा हो, भाषा विवाद हो, उसे वे पड़ोस के झगड़े के रूप में देखते थे। कन्नन पाड़े के झगड़े का रिफलेक्शन पाकिस्तान-चीन और हिंदी-तमिल भाषाई झगड़ों के रूप में उनकी कविताओं में प्राय: परिलक्षित होता है।

रमाशंकर : आपने एक जगह और लिखा है कि - ''धूमिल में कविता लिखने की पर्याप्त क्षमता थी, पर 'मॉडेल' की खोज में वह शिकारी बाज की तरह अपनी आँखें पैनी किए हुए रहता था।'' इस कथन के पीछे आपका अपना दृष्टिकोण क्या था?

काशीनाथ सिंह : उस समय विदेशी भाषाओं के कवियों में दो कवि बड़े लोकप्रिय थे। हिंदी लेखकों के बीच प्राय: उनकी चर्चा मिलती है। एक तो रुसी कविता का बड़ा विद्रोही किस्म का युवा कवि था - येन्तुशेकों। वह अपने काव्य पाठ की नाटकीयता के लिए बड़ा प्रसिद्ध था। उसकी कविता में भाषण देने की जो मुद्रा होती है या उसकी कविता में जो वक्रता शैली दिखाई पड़ती है। एक प्रवाह में बड़े नाटकीय ढंग से और ओजस्वी ढंग से घंटों कविता पढ़ता था। लोग उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। उसकी कुछ कविताएँ बहुत चर्चित थी और चर्चित हैं। धूमिल ने भी उसकी कविताओं को अच्छी तरह पढ़ी थीं। दूसरा कवि था अमेरिका का बिट कवि एलनगिन्स बर्ग। वह अपनी कविताओं में यौन शब्दों के प्रयोग के लिए बदनाम था, जिन्हें समाज में गंदा और अश्लील माना जाता है; लेकिन उस समय वह अमेरिका का बड़ा ताकतवार कवि जाना जाता था। ये दो कवि धूमिल के सामने थे।

दूसरी तरफ धूमिल के दौर में नई कविता, अकविता, ठोसकविता आदि जो कविता आंदोलन चल रहे थे। उन्हें धूमिल ने अस्वीकार किया। क्योंकि धूमिल को एक नया रास्ता तैयार करना था, अलग पहचान बनानी थी। वैसा रास्ता हवा में नहीं बन सकता था। तो उन्हें

एक 'मॉडिल' की तलाश थी। अगर कविता हो तो किस तरह की हो? कैसी कविता लिखनी चाहिए। तो ये दो विदेशी कवि उनके सामने थे। हिंदी में वे कौन से कवि थे, जो उनके लिए एक आदर्श की मशाल हो सकते थे। ऐसे लोगों में वे दो कवियों को चुने। एक तो 'निराला' थे। लेकिन वे छायावादी कवि थे और वे उनके बहुत काम के नहीं हो सकते थे। दूसरे कवि उन्हें जो दिखाई पड़ते थे वे 'मुक्तिबोध' थे। उन्ही दिनों 'चाँद का मुँह टेढ़ा'। मुक्तिबोध का काव्य-संग्रह प्रकाश में आ गया था। 'मुक्तिबोध' में जो खास चीज थी वह फेंटेसी और नाटकीयता। धूमिल ने उन कविताओं को अच्छी तरह पढ़ा था। उन्होंने महसूस किया कि इन कविताओं में जो नाटकीय प्रवाह, बिंब और 'फैंटेशी' है उनके काम की हो सकती है। धूमिल ने 'पटकथा' नामक एक लंबी कविता लिखी। 'पटकथा' लिखते समय निश्चित ही उनके दिमाग में मुक्तिबोध की लंबी कविता 'अंधेरे में' जरूर थी। एक तरह से फैंटेसी और नाटकीयता उनका अपना मॉडेल था। जब मैंने मॉडेल की बात कहाँ है, तो मेरा मतलब यही था कि वे अपना मार्ग बनाने के लिए उन्हें आदर्श की तलाश थी। जिसमें मॉडेल के रूप में मुक्ति बोध को लिया। लेकिन उनके अवचेतन में कहीं-न-कहीं येन्तुशेको और गिन्सबर्ग भी थे। जैसे मासिक धर्म का लत्ता या हर तीसरे पाठ के बाद कविता का धर्मशाला हो जाना। इस तरह के प्रयोगों के पीछे कहीं-न-कहीं गीन्सबर्ग का असर है। 'भाषा की रात' कविता में जो एक भाषण की रौ दिखाई पड़ती है। इस के पीछे कहीं न कहीं येन्तुशेकों हो सकते हैं। तो मॉडल से मेरा मतलब यही है।

रमाशंकर : बहुत विद्वानों ने इसका जिक्र किया है धूमिल ने कविता के अलावा गीत, शेरो-शायरी या गद्य में लेख या कहानी लिखी है? लेकिन इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता है। इस संबंध में आपका क्या मत है?

काशीनाथ सिंह : ऐसा है कि कविता लिखने के पहले धूमिल गीत लिखा करते थे। कभी-कभी सम्मेलन में भी जाया करते थे और यह भी कहना चाहिए कि वह कवि सम्मेलन के सफल कवि नहीं रहे। यानि कि मंचीय कवि नहीं रहे। शुरू में 1961-62 में उन्होंने जो गीत लिखे थे, उन गीतों का एक संग्रह भी तैयार करके रखा था। 'बाँसुरी जल गई' के नाम से। उसी समय से उनका नाम धूमिल चला आ रहा है। शायरी-वायरी नहीं लिखते थे। लोगों के बीच उनके गीत कविता की तुलना में ज्यादा लोकप्रिय होते थे। मेरे ख्याल से उन्होंने ज्यादा गीत नहीं लिखे हैं। वे अलग से गीत के रूप में संकलित हो या गीत रूप में प्रकाशित हो इसके पहले ही वे गीतों की गीतात्मकता तोड़कर कविता में इस्तेमाल कर देते थे। जैसे उन्होंने मुझे गीत की एक पंक्ति सुनाई थी "मैंने जिसकी पूंछ/ उठायी है उसको मादा/ पाया हैं" इसे उन्होंने कविता में इस्तेमाल किया। यह स्वतंत्र गीत नहीं रहा। ऐसे ही अधिकांश गीतों के साथ भी हुआ है। मेरे कहने का मतलब है कि कविता के पहले वे गीत लिखे थे। बाद में नहीं लिखे। हाँ कविता के पहले उन्होंने एक कहानी लिखी है। 1962-63 के आस पास यह कहानी कल्पना पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। उनकी एक मात्र यही कहानी थी। वह बहुत काव्यात्मक भाषा में लिखी गई थी। इसकी चर्चा उन्होंने अस्सी पर की थी। वह कल्पना का अंक भी दिखाया था। वे डायरी लिखा करते थे। जो गद्य में हुआ करती थी। वह भी उनके कविता की ही तरह हुआ करती थी।

रमाशंकर : मेरा अगला प्रश्न आपसे यह है कि क्या धूमिल और प्रेमचंद में कहीं भी अंतर या समानता दिखलाई पड़ती है?

काशीनाथ सिंह : ऐसा है, समानता अगर बताई जा सकती है तो सिर्फ इस शर्त में कि संघर्ष का जीवन दोनों ने ही जिया । मुंशी प्रेमचंद के पिता तो उपेक्षा के सम्पन्न थे। प्रेमचंद के चाचा

जी काफी दिनों तक जीवित रहे। चाचा तो धूमिल के भी थे जिन्हें भंगा बाबू बोलते थे। वे भांग खाते थे इसलिए भंगा बाबू कहलाते थे। धूमिल उनका बहुत सम्मान किया करते थे। भंगा बाबू की मृत्यु तब हुई जब धूमिल लगभग कवि के रूप में प्रतिष्ठित हो रहे थे। वे कैंन्सर से मरे थे। धूमिल के पिता जयशंकर प्रसाद के यहाँ काम करते थे। प्रसाद जी ने अपने बेटे का नाम रत्नशंकर रखा था उसीके प्रभाव में संभवत धूमिल के बेटे का नाम रत्नशंकर रखा गया।

संघर्ष का जीवन इस तरह कह सकते हो कि धूमिल ने हाईस्कूल के बाद इंटरमीडिएड में हरिश्चंद्र महाविद्यालय में प्रवेश तो लिया था; लेकिन पढ़ नहीं सके। इसलिए की पिता थे नहीं। माँ और चाची थी। चाची धूमिल को बहुत मानती थी। धूमिल की माँ बहुत बाद में मरी। लेकिन चाची अभी भी जीवित हैं। इंटर मीडिएट में दाखिल लेने के बाद भी आर्थिक तंगी एवं पारिवारिक जिम्मेदारियों के कारण उन्हें पढ़ाई छोड़नी पड़ी और नौकरी की तलाश में दर-दर ठोकरें खानी पड़ी। अंत में किसी तरह आई.टी.आई. कर लेने के बाद अपनी योग्यता के बल पर उन्हें वही सुपरवाइजर की नौकरी मिल गई। उन्होंने 'स्ट्रगल' तो किया था। यह स्ट्रगल वे जीवन के अंतिम क्षणों तक करते रहे। वे नवाबगंज में रहते थे। लेकिन हर शनिवार को गाँव चले जाते थे। खेती बारी भी देखते थे। परिवार की देखभाल करते थे। भाइयों को देखते थे कि कहीं वे आपस में लड़ तो नहीं रहे हैं। घर का मालिक होने का दायित्व उन्होंने निभाया है। और इसी का नतीजा था कि उनके भाई उन्हें देवता की तरह मानते थे, पूजा करते थे।

x-x-x

डॉ. अवधेश प्रधान; रीडर हिंदी विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी १६-०२-२००३

रमाशंकर : धूमिल कैसे कवि थे?

अवधेश प्रधान : धूमिल ऐसे कवि थे जिन्होंने अपनी कविता में अदालत या कचहरी की शब्दावली का कलात्मक प्रयोग किया है। समकालीन अन्य कवियों की कविताओं में ऐसी शब्दावली कम ही देखने को मिलती है। हाँ, कहानी में तो जरूर मिलेगी। धूमिल जब कहते हैं - अकेला कवि कटघरा होता है। कटघरा अदालत का वह हिस्सा है जहाँ गवाह खड़ा होकर बयान देता है। 'बयान' शब्द अपने आप में देखिए तो बहुत ही अकाव्यात्मक है। अदालत और कचहरी के शब्दों को कविता में लाकर एक अभिनव कलात्मक प्रयोग किया है।

इसी प्रकार उनके ग्रामीण परिवेश को भी बड़ी सावधानी से देखना चाहिए। जहाँ से धूमिल ने अपनी कविता निर्माण के लिए सामग्री इकट्ठा की सीमेंट, बालू, लोहा, ईट उनकी कविता के भवन निर्माण की यह जो सार सामग्री है, धूमिल ने अपने परिवेश से ही उठाया है। उन्होंने अलंकार ग्रंथ और आलोचना के भारी-भारी ग्रंथ पढ़कर ये निर्माण सामग्री नहीं जुटाई। धूमिल अनुभवी कवि थे। अनुभव के धरातल पर ही वे भारी-भारी आचार्यों से भी भिड़ जाते थे।

रमाशंकर : धूमिल के काव्य की क्या उपलब्धियाँ हैं?

अवधेश प्रधान : कविता को जनता के बीच ले जाना ही धूमिल के काव्य की सबसे बड़ी उपलब्धि है। उस दौर के समस्त कवियों में यही एक ऐसी चीज है; जो धूमिल को सबसे अलग कर देती है। आँखों देखी बात है 20 साल बाद, सन 1972 में जब बांदा में प्रगतिशील लेखक संघ का अपना सम्मेलन चल रहा था, मंच पर जितने भी नए कवि दिन भर अपना भाषण दिए थे, सबके सब भाग खड़े हुए। धूमिल के सामने किसी का भी साहस नहीं था कि वे अपनी अधमरी कविताएँ जनता के सामने सुना सके। बूढ़ों में मंच पर नार्गाजुन थे, नए-पुराने गीतकार भी थे। ज्यादा पढ़े-लिखे लोग भी थे। धूमिल के अलावा किसी के भी भाषा में वह तेवर नहीं था।

जब 'संसद से सड़क तक' काव्य संग्रह छपकर बाजार में आ गया तो धूमिल को इस बात की चिंता थी जिन बंधुओं के लिए कविता लिखी गई है, वे ही लोग इस संग्रह को नहीं पढ़ सके। वे उन कवियों में से थे, जो खुद अपनी सीमा देख सकते थे। धूमिल के बाद ही यह संभव हुआ कि कविता लोगों के बीच पढ़ी जाए। वे अपने को कसौटी पर बराबर कसते रहे।

आज पाँच आदमी की रचनाओं की पचास प्रतियाँ छप रही हैं। उस समय भी यही स्थिति थी। जिनकी रचनाएँ छप रहीं थीं, वे ही एक-दूसरे की चर्चा कर रहे थे। एक समय था लोगों के बीच मैथिलीशरण गुप्त उद्धृत किए जाते रहे थे, फिर सबसे ज्यादा दिनकर उद्धृत किए जाने लगे। जैसे 'सेनानी करो प्रयाण सारा आकाश तुम्हारा है...।' उसके बाद धूमिल को चाहे अध्यापक वर्ग हो या छात्र वर्ग सभी के जुबान पर उनकी कविताओं की पंक्तियाँ चढ़ गई। जैसे-

"क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
या इसका कोई खास मतलब होता है।"

बहुत कम कवियों में यह भाग्य बदा होता है कि उनकी कविता की पंक्तियाँ कुछ लोगों को याद हो जाए। बड़े-बड़े आचार्य-विद्वान भारी-भारी आलोचक ही याद रखे यह उसकी सार्थकता नहीं है। तुलसीदास यदि आज जिंदा हैं; तो अपनी सरल-सुगम लोकप्रचलित भाषा

के कारण; क्योंकि इनकी रचनाएँ शिक्षित वर्ग के साथ-साथ कम पढ़े-लिखे लोगों के बीच भी लोकप्रिय है। आज लोग उनकी सूक्तियों एवं दोहों को समय-समय पर उद्धृत करते हैं।

रमाशंकर: आज के कवियों की महत्त्वाकांक्षाओं के संदर्भ में धूमिल के विषय में आपका क्या विचार है?

अवधेश प्रधान : आज के कवियों की टूटपूंजिया किस्म की महत्त्वाकांक्षाएँ हैं। उन्हें यह अवार्ड मिल जाए, वह अवार्ड मिल जाए या एक गोरा चेहरा विदेशी का दिख जाए तो अपनी कविता का अनुवाद कराने के लिए कुत्तों की तरह घूमने लगते हैं। यह मैंने स्वयं आँखों से देखा है। इस संदर्भ में मैं दो लोगों का नाम बता सकता हूँ - एक काशीनाथ सिंह और दूसरे गोरख पांडेय- केदारनाथ के पास एक रूसी संग्रह आया था उसमें उन्होंने देखा कि भारत की एक कविता का अनुवाद हुआ है। वह कविता गोरख पांडेय की थी। लेकिन धूमिल की ऐसी कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं थी। न तो विदेशी चेहरों के साथ अपना फोटो खिचवाने के इच्छुक थे, नहीं कविता का अनुवाद करवाने के।

मेरी आँखों के सामने एक घटना घटी कि उस दौर का सबसे ज्यादा चर्चित कवि गिन्स बर्ग यहाँ आया हुआ था, बंगलादेश जाने के लिए। मैं, त्रिलोचनजी, और गिन्स बर्ग तीनों बनारस के बेनिया बाग की तरफ जा रहे थे। सामने धूमिल को साइकिल से जाते हुए हमने देखा। त्रिलोचन जी ने बेनिया बाग के पास हाथ उठाकर उन्हें रोका। धूमिल साइकिल से उतरे नहीं। एक पैडेल पर पैर रखकर खड़े हो गए। गिन्स बर्ग ने कहा - How Dhoomil Dhoomil`, How are you । गिन्स बर्ग को देखकर धूमिल को कोई आश्चर्य नहीं हुआ। धूमिल ने साइकिल पर बैठे ही नमस्कार नमस्कार कहा। गिन्स बर्ग ने कहा 'How much about you are writting।' बातचीत में गिन्स बर्ग ने धूमिल से पूछा तुम बहुत बड़े कवि हो गए हो, बताओं अब क्या लिख रहे हों। धूमिल ने कहा - 'I am not writting. I am composing ' धूमिल के कहने का मतलब है कि writting और composing में फर्क होता है। धूमिल लिखते नहीं, रचते हैं। गिन्सबर्ग धूमिल को बहुत रोक रहा था; लेकिन धूमिल ने कहा 'No No! I am going to my village. I have no time' इतना कह वह चल दिए। दूसरा आदमी होता गाँव जाने को कौन कहे फोटों खिंचवाने बैठ जाता था। अपनी रचना के अनुवाद की बात करता।

रमाशंकर: बांदा के कवि सम्मेलन में भाग लेने धूमिल गए थे। वहाँ अपने व्यवहार में उन्होंने ऐसा कोई चमत्कार किया हो? उससे संबंधित ऐसा कोई संस्मरण क्या आपको याद है?

अवधेश प्रधान : हाँ! धूमिल सबके लिए चमत्कारी व्यक्ति थे। नहाने के लिए केन नदी पर कई लोग गए थे। जिसमें कवि रंजन, अमरकांत वर्मा भी थे। धूमिल बिना झोला लिए खाली हाथ नहाने के लिए आए थे। अमरकांत बहुत ही सीधे-सादे व्यक्ति थे। वे नहा रहे थे गमकदार साबुन से। धूमिल ने देखा 'ओह! साबुन बहुत गमक रहा है। लगा लूँ मैं? अमरकांत ने इस पर आपत्ति नहीं जताई । नहाने के बाद खूब बखान किया। धूमिल ने कहा- खूब आनंद आ गया, पता नहीं अब कब साबुन शरीर पर लगेगा। बहुत लोग तो श्रद्धा के मारे अमरकांत के सामने झुक जाते थे। लेकिन धूमिल ऐसे व्यक्ति नहीं थे। धूमिल उन लोगों में से थे; जो लोगों को अपने सामने झुकाते थे।

धूमिल केन नदी में नहाने के बाद कुछ दूर अकेले में अपना लंगोटा-धोती पछारकर फैलाए खड़े देख रहे थे। यह दृश्य लोगों के लिए बड़ा चमत्कार जैसा था। केन नदी पर ही मैंने कविरंजन को देखा वे पैंट के दोनों जेब में दो तरह के रूमाल रखे हुए थे। एक रूमाल से चेहरा पोछने के लिए, दूसरे रूमाल से वे बीच-बीच में जूता पोछते थे। धूमिल ने कहा - 'अरे

! यार जिस साले को यह ध्यान रहे बराबर कि किधर जूता पोछनेवाला रूमाल और किधर चेहरा पोछनेवाला। मैं तो भूल जाऊँ। जूतेवाले से मुँह पोछू। जो साल इतना ख्याल रखता है वह कवि कैसे हो सकता है।

विजय मोहन सिंह पर एक संस्मरण सुनाते हुए अवधेश प्रधान ने कहा, ''विजयमोहन जब भी दाढ़ी बढाकर लेनिन कट करवा कर और कखौरी में कवि सार्त की कोई पुस्तक दबाए निकलते थे, तो लोग उनकी प्रशंसा करते थे ; लेकिन धूमिल उस किताब पर कोई विशेष ध्यान नहीं देते थे। बल्कि कहते थे, आप इसको लेकर क्यों चलते हैं। पढ़ना है, तो कहीं दूर जाकर पढ़िए, या घर में पढ़िए। धूमिल किताब का पीछा छोड़े तो उनके दाढ़ी की बनावट पर आकर रुके। उन्होंने कहा कि यह दाढ़ी खुद काटी है या किसी से कटवाई है। ऐसा है बंधु, हमारे यहाँ तो दाढ़ी कटवाने का एक ही बढ़िया तरीका है, ईटा पर बैठ जाइए और दाढ़ी कट जाने के बाद उस्तरा और फिटाकिरी रगड़ दीजिए काम खतम। मैं भी वही रखता हूँ। हमारे यहाँ आफ्टर शेव नहीं होता।

यहाँ उनके कहने का एक ही मतलब निकलता है, भाई कविता में कुछ बढ़ाओ-घटाओ, दाढ़ी क्यों बढ़ा-घटा रहे हो। ऐसे कथन उनकी स्पष्टवादिता एवं व्यक्तित्व को निखारने वाले हैं।

रमाशंकर : यथार्थवाद के प्रसंग में आपके क्या विचार हैं?

अवधेश प्रधान : यथार्थवाद के प्रसंग में मेरा विचार यह है कि वह वस्तुतः यूरोप में कथा साहित्य के क्षेत्र में एक साहित्यिक आंदोलन के बतौर उभरा। सन् 1835 में केमरा का आविष्कार हुआ। केमरे की खासियत यह है कि वह चीजों को हूबहू अंकन कर देता है। केमरे के इस विशेषता ने चित्रकला के आगे एक चुनौती पेश कर दी। क्योंकि इसके पहले किसी चित्रकार का कौशल इस बात में समझा जाता था कि वह कैसे किसी वस्तु का दृश्य ज्यों का त्यों अंकित कर देता है। अब चित्रकार से भी समर्थ माध्यम आ गया है, जो एक चित्रकार की तुलना में कहीं ज्यादा यथातथ्य अंकन करता था। यथार्थ की दृष्टि से, फेक्ट या तथ्य की दृष्ठि से कैमरा चित्रकार की तुलना में कहीं ज्यादा प्रामाणिक और विश्वसनीय माना जाता है। इससे चित्रकला के आगे समस्या आई और साहित्य के आगे एक नई प्रेरणा। फ्रांस में केमरा का अनुकरण साहित्यकार ने करना शुरू किया। उसने उसे आदर्श गुरु मान लिया कि तथ्य का हूबहू अंकन करना ही यथार्थ है। और कलाकार, उपन्यासकार, उस केमरे की क्षमता का उपयोग अपनी लेखनी के माध्यम से करने लगे। सबसे पहले 'मैडम बावरी' उपन्यास की रचना की।

मैडम बावरी के बाद पहले फ्रांस के कलाकारों में फिर पूरे यूरोप में एक होड़ मच गई कि तथ्यों का जीवन में जो कुछ है उस सब कुछ का एकदम ज्यों-का-त्यों (हूबहू) अंकन किया जाए। जैसे दरवाजे का, खिड़की का,खिड़की पर ओंस का गिरना, फिर उसका टपकना, उसकी धार का बनना, उस धार के साथ जो धूल भी लगी हुई, उसका रेखांकन सब कुछ। इस तरह का अनुकरण करने के बाद इमिजोला ने 'नाना', 'नाना की माँ' और 'जर्मीलल अंकुर' ये तीन उपन्यास लिखे। इन तीनों उपन्यास में यथार्थ का अनुकरण दिखलाई देता है। यह यथार्थवाद वास्तव में नेचुरलिज्म (प्रकृतिवाद) है।

लेकिन अनुभव से यह देखा गया कि कलाकार का इतना ही धर्म नहीं है अगर वह कैमरे की तरह हूबहू अंकन करता है, तो एक चित्रकार में और कैमरे से खींचे हुए फोटो में फिर फर्क ही क्या रह जाता है? चित्रकार अपनी विचार दृष्टि, जीवन दृष्टि के मुताबिक अपनी अनेक भावात्मक प्रतिक्रियाओं के जरिए यथार्थ को वह दूसरा रूप भी दे सकता है। तभी मोना लिसा

की मुस्कान की अलग-अलग व्याख्या के लिए गुंजाइस बन सकती है।

रमाशंकर : यह मोना लिसा क्या है?

अवधेश प्रधान : मोना लिसा एक विश्व प्रसिद्ध इटली की कलाकृती है। मोना लिसा की जो छवि है, उसमें तमाम समीक्षकों ने अलग-अलग व्याख्याएँ की हैं कि उसकी मुस्कान एक प्रेयसी की मुस्कान है। या एक मादा की मुस्कान है। उसमें मातृत्व की वत्सलता है। या उसमें एक प्रेयसी का आवाहन या आकर्षण है। उसमें ममता है। यह सब व्याख्याएँ इसीलिए संभव हों पाई क्योंकि उसमें कलाकार ने अपनी भावना का रंग भी घोल दिया है।

कैमरा यह काम नहीं कर सकता। इसीलिए कलाकार का धर्म सिर्फ इतना नही है कि वह तथ्य का हूबहू अंकन करें। वह अपनी ओर से समाज का सिर्फ यथार्थ चित्रण ही नहीं करता; बल्कि इस यथार्थ को बदलता भी है। इस यथार्थ में अच्छा भी है। बुरा भी है। वह अपनी ओर से अच्छे और बुरे में सकारात्मक और नकारात्मक प्रतिक्रियाएँ गूँथ देता है। वह अंकन नहीं करता चित्रण करता है। वह सिर्फ कैमरे की तरह फोटो नहीं खींचता; बल्कि वह उसमें तरह-तरह के रंग मिलाकर एक तस्वीर तैयार करता है।

रमाशंकर : आलोचनात्मक यथार्थवाद का विकास यहीं इंगलैण्ड के कथा साहित्य से ही हुआ है ना?

अवधेश प्रधान: हाँ, यहीं इंग्लैण्ड के कथासाहित्य में यथार्थवाद की एक दूसरी शाखा (आंदोलन) विकसित हुई, उस शाखा का नाम आलोचनात्मक यथार्थवाद है। जिसमें पूँजीवादी समाज की या पुराने सामंती समाज की आलोचना निहित है। इसके लिए आपको सबसे अच्छा है कि नीदरलैंड के उस महान कलाकार के 'डॉलस हाऊस' जैसे नाटक पढ़ें। इस कलाकार के नाटकों का अनुवाद सबसे अधिक हिंदी में लक्ष्मीनारायण मिश्रा ने किया है।

इस पूँजीवादी समाज की नैतिकता को एवं पारिवारिक मर्यादा को उन्होंने तार-तार कर दिया। इस तरह से जिस कलाकृति में आलोचना का प्रधान तत्त्व होता है, उसको हम आलोचनात्मक यथार्थवाद कहते हैं।

रमाशंकर : समाजवादी यथार्थवाद किसे कहते हैं?

अवधेश प्रधान : सोवियत कलाकार समाजवादी दृष्टि से समाज का समाजवादी रूपांतरण करने की दृष्टि से यथार्थवाद की प्रवृत्ति का जो उपयोग साहित्य में करता है। उसको सामाजिक यथार्थवाद या समाजवादी यथार्थवाद कहते हैं। सोवियत साहित्य की खासियत यह है कि वह आलोचना के साथ-साथ समाज के नकारात्मक तत्त्वों का सामाजिक आदर्श भी चित्रित करता है।

लेखक इब्सन ने नाटकों में जिस आलोचनात्मक यथार्थवाद को रूपायित किया और सोवियत कलाकारों ने सामाजिक यथार्थवाद को रूपायित किया, इन से भिन्न रास्ता भारत जैसे देश के यथार्थवादी कलाकारों का है, जिसमें हमारे भारत के प्रेमचंद आते हैं। चीन के लूसो आते हैं। ये पूँजीवादी समाज के लेखक भी नहीं है; लेकिन ये समाजवादी समाज के लेखक भी नहीं है। इन देशों में मुक्ति के लिए स्वाधीनता संग्राम चल रहा था। ये तीसरी दुनिया के गरीब देशों के गरीब लेखक हैं। ये स्वाधीनता संग्राम से जुड़े हुए लेखक हैं। ये समाज की आलोचना भी करते हैं और अपने सामने एक भावी राष्ट्र का, समाज का एक लक्ष्य भी रखते हैं। वह समाजवादी समाज से बहुत मिलता जुलता है। लेकिन फिर भी वह समाजवादी समाज के लेखक नहीं हैं। ऐसे में प्रेमचंद जैसे लेखको को यथार्थवाद को क्या कहा जाये। प्रेमचंद ने अपने साहित्य में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को स्थान दिया है। वे समाजवाद की आलोचना भी

उसमें रखते हैं लेकिन एक आदर्श भी उसमें रखते हैं।

'मुक्तिमार्ग' कहानी में पिछड़े किसानों की पिछड़ी चेतना का विस्तार से चित्रण किया गया है। विपत्ति और दु:ख के दौर से गुजरते हुए कहानी के दोनों प्रमुख पात्रों का हृदय बदलता है। दोनों भट्टे पर मजदूर हो जाते हैं। दोनों का हृदय उस समय दु:ख की आंच में पिघल कर एक हो जाता है, दोनों एक-दूसरे से की हुई गलतियों को स्वीकार करते हैं। प्रेमचंद के ऐसे यथार्थवाद को आदर्शोंमुख यथार्थवाद कहते हैं। चंद्रबली सिंह ने प्रेमचंद के यथार्थवाद पर एक लंबा लेख लिखा है। उन्होंने कहा है समाजवादी यथार्थवाद इसे कहा नहीं जा सकता, आलोचनात्मक यथार्थवाद कह नहीं सकते। इन दोनों के बीच में हमें सुविधा के लिए ऐसे यथार्थवाद को या तो जनवादी यथार्थवाद कहना चाहिए या तो क्रांतिकारी यथार्थवाद कहना चाहिए। इस तरह से यथार्थवाद की अनेक किस्में हैं ये सारी किस्में कथा साहित्य के माध्यम से सामने आई।

रमाशंकर : हिंदी कविता में यथार्थवाद का प्रयोग कब होने लगता था?

अवधेश प्रधान : हिंदी कविता में यथार्थवाद का प्रयोग प्रगतिशील आंदोलन के बाद, जब कवियों ने कविता के केंद्र में किसान को मजदूर को श्रमजीवी जनता को, लोक जीवन और उसकी लोक संस्कृति को, उसकी धडकन को, उसकी आशा-आकांक्षा को जय-पराजय को स्थान मिलने लगा तो कविता में एक धड़कता हुआ लोकजीवन सामने आया और वो बहुत कुछ यथार्थवादी रंग लिए हुए था। और इसने कविता का चेहरा ही बदल दिया। इसलिए रामविलास शर्मा जब कविता में यथार्थवाद की बात करते हैं तो कुछ लोगों को खटकता है कि कविता से यथार्थवाद का क्या लेना देना है?

लेकिन केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन आदि की अनेक कविता हैं जिसकों पात्र वैसे ही दौड़ते चले आते हैं। जैसे प्रेमचंद के कथासाहित्य के पात्र दौड़ते चले आते हैं। धूमिल जी उसी धारा के कवि है। उनकी कविता आप देखेंगे कि साठवें दशक के बाद का जो भारतीय जन-जीवन है, जो एक नये राष्ट्र के निर्माण की आशा लगाए बैठा था, वह अपने को छला हुआ अनुभव करता है। उसे जिस स्वाधीन राष्ट्र के समाजवाद की पुकार से आशा बांधी थी कि उसके दु:ख हमेशा-हमेशा के लिए चले जाएँगे और सुख के दिन लौटेंगे। उसकी आशाएँ पूरी होती नहीं दिखाई दी; बल्कि उसने यह पाया कि उसके सारे आदर्श एक-एक कर चकनाचूर हो रहे हैं तो उसका आक्रोश असंतोष- उसकी बौखलाहट कविताओं में दिखलाई देने लगती हैं। इसीलिए धूमिल की 'पटकथा' शीर्षक कविता हैं उसकी शुरूआत ही एक आशा से होती है। उसने तारों पर बैठी हुई चिड़ियों को देखा और कहा आजादी, पीठ पर बस्ते लादे हुए बच्चों को स्कूल जाते हुए देखा तो उसने कहा आजादी। वह खेतों की ओर दौड़ा और अखुवाते हुए अंकुरों को देखा जैसे कसरत करते हुए बच्चे हों, उसने कहा आजादी। यह जो हरियाली का एक उत्साह था बहुत रक्तपात के बाद जो आजादी मिली थी, यहाँ धूमिल का जो संतोष है वह एकहरा संतोष है। बड़ी गहरी आशाएँ टूटने के बाद वह संतोष असंतोष में बदल जाता है। इसीलिए उस असंतोष में गहराई अधिक है।

धूमिल के पहले जो कवि हैं, उनके असंतोष में वह गहराई नहीं है; क्योंकि उनका असंतोष ओढ़ा हुआ है। उन्होंने कुछ शब्द याद कर लिए हैं बिटनिक कवियों के और गाली की भाषा में दोहराते हैं। धूमिल की कविता में अश्लील शब्द सीधे-सादे आदमी बोलते हुए दिखाई देते हैं। वह जो असंतुष्ट जन है, वह धूमिल की कविता में मूर्तिमान दिखाई देता है। उसका रेखाचित्र नहीं खींचा गया है, लेकिन वह शब्दों के माध्यम से सामने बोलता हुआ दिखाई देता है। वह जिस लहजे में बोलता है- 'मोचीराम' कविता में उसका चित्र नहीं अंकित किया

गया है। लेकिन वह जिस शैली में बात करता है। वह भद्रवर्ग को जिस ढंग से देखता है उसका वर्णन है। इसके साथ-साथ यह भी नहीं है केवल आक्रोश और आलोचना है, बल्कि इसका विकल्प क्या हो, इसकी भी एक तस्वीर धूमिल के मन में है जो उनके बाद की कविता में दिखाई देती है।

रमाशंमर : काशीनाथ सिंह ने अपने लेख में लिखा है कि धूमिल गिन्सबर्ग से बहुत प्रभावित थे। क्या यह बात सही है?

अवधेश प्रधान : कवि गिन्सबर्ग से तो भारतवर्ष के सभी लोग प्रभावित थे, प्रभावित होना बड़ी चीज नहीं है। क्या भारत में कवि तुलसीदास से बहुत लोग प्रभावित नहीं है। कवि निरालाजी उनसे बहुत प्रभावित हुए हैं। एक प्रभावित कवि वह होता है जो किसीका प्रभाव लेकर आगे निकल जाए। धूमिल ही ऐसे कवि हैं; जो कवि गिंसबर्ग से थोड़ा प्रभावित होकर काव्य जगत में उनसे बहुत आगे निकल गए हैं।

काशीनाथ सिंह ने अपने संस्मरण में तो यही बताया है ''हमने धूमिल को यह पढ़ने को दिया, वह पढ़ने को दिया। परन्तु वह कहीं भी नहीं कहा है कि धूमिल ने भी मुझे कुछ दिया है, बताया है। अब आप ही कल्पना कर सकते हैं, मानो मैं आपको साथ 20 वर्ष तक गोवा में रहा हूँ। मैं यह बताऊँ कि उसको मैं यह सिखाया। मैं यह कहीं न बताऊँ कि उससे भी मैं कुछ सीखा है। यह क्या है? यादे उस दौर की काशीनाथ सिंह की कहानियों को देखा जाये, तो आप वाक्य-वाक्य अंडरलाइन कर सकते हैं कि यह धूमिल का बोला हुआ वाक्य हो सकता है। मैं बहुत छोटा था, उसका अंतरंग मैं नहीं जानता, यदि एक बार आप किसी आदमी की शैली को जान जायेंगे तो फौरन उसे पकड़ सकते हैं।

एक संस्मरण मुझे याद आ रहा है कि एक दिन हम गोदौलिया पर खड़े थे। गूंगा आदमी संकेतों में बात कर रहा था। यह देखकर धूमिल ने कहा - साले के पास जुबान नहीं है; लेकिन यह पूरे शरीर से बोल रहा है। अब मुझे लग रहा है कि वह थोड़ी देर में घुटनों से बोल पड़ेगा।

x-x-x

हरहुआ के निवासी धूमिलजी के
सहपाठी कैलाश सिंह 25-05-2003

रमाशंकर : श्रीमान जी, आपका परिचय धूमिलजी से कब हुआ था?

कैलाश सिंह : मेरा परिचय उनसे उन दिनों हुआ था, जब वे यहाँ हरहुआ के माध्यमिक विद्यालय में पढ़ने आए। यह सन् 1946 की बात है। उस समय हम पाँच में पढ़ रहे थे। तीन साल तक हम मिडिल स्कूल तक साथ-साथ पढ़े।

रमाशंकर : धूमिलजी कहाँ से पढ़ने आते थे?

कैलाश सिंह : धूमिल खेवली गाँव से यहाँ पढ़ने आते थे। यहाँ (हरहुआ) से उनका घर तीन किलोमीटर है। रास्ते में एक बरना नदी पड़ती है। वे पढ़ने के लिए पैदल ही आते-जाते थे। धूमिल गरीब माँ-बाप के बेटे थे। उस समय इस इलाके में इतनी गरीबी थी कि कोई एकाध परिवार कुछ संपन्न था, जिसको पेटभर खाने को मिलता।

रमाशंकर : धूमिल जी का स्वभाव कैसा था?

कैलाश सिंह : धूमिल शरीर से बहुत दुबले-पतले थे। गरीब बच्चों के प्रति उनकी हमदर्दी रहती थी। खेलकूद में ज्यादा रुचि नहीं थी। तेज विद्यार्थी भी नहीं थे न ही गधे थे। यहाँ उनकी प्रतिभा में ऐसी कोई विशेष झलक नजर नहीं आती थी। इतना जरूर था कि वे एक सिस्टम से रहना चाहते थे। उदंडता उनमें नहीं थी। मेहनती थे। मन लगाकर पढ़ते थे।

(पास में बैठे आचार्य पंकज के प्रश्न)

आचार्य पंकज : क्या आप यह समझ पाए थे कि वे उस समय कविता-वमिता किया करते थे या नहीं?

कैलाश सिंह : नहीं, ऐसा कुछ नहीं था। थोड़ा बहुत हिंदी पढ़ने में रुचि जरूर लेते थे। एक बार के.के.इंटर कालेज में 'डिबेड' हुआ था- 'झूठ' विषय पर बोलने के लिए। तब वे नवीं कक्षा के छात्र थे। उसमें उन्होंने भाग लिया था, तब उनको प्रथम पुरस्कार मिला था। कक्षा दस तक पहुँचते-पहुँचते सुदामा पांडेय बदल गये। व्यवहार में नहीं, बुद्धि में।

रमाशंकर: धूमिल से आपका साथ कब छूटा? साथ छूटने के बाद वे कभी आपसे मिलते थे या नहीं? इस पर कुछ प्रकाश डालिए।

कैलाश सिंह : तीन साल बाद हमारा और उनका साथ छूट गया। वे काशी इंटर कालेज हरहुआ चले गए और कचहरी के पास जे. के. इंटर कालेज। चूँकि तीन साल साथ-साथ पढ़े थे। बचपन के साथी थे। आते-जाते यहीं हरहुआ मे उनके गाँव की ओर जानेवाले रास्ते पर भेट हुआ करती थी। बाद में उन्होंने आई. टी. आई किया। वहीं पर उनकी नियुक्ति हो गई अध्यापक के रूप में। जब भी उनकी पोस्टींग होती तो हम बराबर मिलते थे।

जब वे बनारस में रहते तो अपनी टूटी हुई साइकिल पर आते-जाते बराबर दिखाई देते। चमचमाती हुई नई साइकिल की कल्पना न करे। ट्यू-टायर ठीक हो भले ही वह कठिन चले। खेवली से यूनिवर्सिटी रोज आते जाते। कभी-कभी नहीं आते; क्योंकि 40 किलोमीटर आना जाना पड़ता था।

रमाशंकर : धूमिल का राजनीतिक क्षेत्र में क्या प्रतिक्रिया हुआ करती थी?

कैलाश सिंह : हमारा रुझान राजनीति की तरफ ज्यादा था। हम कांग्रेस के समर्पित थे। धूमिल हम सबके साथ साथ बराबर बैठते थे। कांग्रेस की जो व्यवस्था थी उससे धूमिल कभी भी संतुष्ट नहीं थे। कभी-कभी हम उनसे पूछ बैठते थे कि आखिर तुम्हीं ही बताओ कैसा होना चाहिए?

तो वे कहते हमारे बताने से हो जायेगा । उनका कहना था ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जिसमें सब का भला हो। वे नेता लोगों से चिढ़ते थे। देश की व्यवस्था से उन्हें दु:ख था। व्यवस्था संबंधी में आपको एक संस्मरण सुनाता हूँ-

एक बार अचानक खाद की कीमत दुगुनी हो गई। यह सब जगह उपलब्ध नहीं होती। इसकी एक ही सरकारी दुकान थी। किसान उसके मेम्बर थे, उनको उचित दाम पर अच्छी खाद मिलती थी। संक्रमण की स्थिति पैदा हो गई थी। खाद कहीं नहीं मिल रही थी। हम बैठकर चाय पी रहे थे। धूमिल ने कहा ''अरे भाई हमें खाद नहीं मिल रही है।'' मैं सरकारी कोटे का अध्यक्ष था ही उनको मैंने पाँच बोरी खाद कम कीमत में दिलाई। पाँच बोरी खाद अलग रखवा दी और कहा 'शाम को ले जाऊँगा जब लोग जुटेंगे।' शाम को लौटे तो कहा 'आज नहीं कल ले जाऊँगा।' मुझको बुरा लगा और कहा- 'नहीं ले जानी थी तो इतना खटपट क्यों करवाया'। तो उन्होंने कहा- 'कुछ और खाद की बोरियाँ दिलवा दीजिए तो बहुत अच्छा होगा'। मैंने कहा - 'दो चार के अलावा और मैं व्यवस्था नहीं कर सकता'। तब उन्होंने न ले जाने का तर्क देते हुए कहा 'जब गांव भर के लोग नहीं पा रहे हैं आपकी कृपा से मैं पा ही गया तो ले ही के क्या करूँगा। छोड़िए हम भी नहीं लेंगे।' हमने पलटकर कहा - 'अरे यार तुम पागल आदमी हो मिल रहा है, तुम नहीं ले रहे हो। कुछ और दिलवा दूँगा तो भी नहीं ले रहे हो।' उन्होंने कहा- 'जब सब को नहीं मिल रही है तो हम लेकर ही क्या करेंगे। हम भी नहीं लेंगे। जब सब को मिलेगा तब हम भी ले लेंगे।

धूमिल ने व्यवस्था के तहत नहीं लिया। उन्होंने सोचा चूँकि वे मेरे मित्र हैं मुझे मिल रहा है। इस तरह कथनी-करनी की बात आम आदमी नहीं सोच सकता। वह खाद उनको पचास रुपये में मिल रही थी, जब कि और कहीं बाजार में सौ की भी नहीं मिल रही थी।

रमाशंकर : प्राय: देखा गया है कि नौकरी मिल जाने के बाद लोगों के व्यवहार में परिवर्तन आ जाता है। क्या धूमिल के व्यवहार में कभी ऐसा आपने देखा है?

कैलाश सिंह : जी नहीं ! वे आचरण के मुताबिक व्यवहार करते थे। धूमिल जी जो कहते वह करते भी थे। उनका रंग गेहुँआ था। पाँच रुपये की मोटीवाली खद्दर धोती और उसी ढंग का मोटा खद्दर कुर्ता पहनते थे। पैर में एक हल्की-सी चप्पल होती। चूँकि उनको परिवार पालना था, इसीलिए उन्होंने जीवन भर तड़क-भड़क से दूर रहते थे। लोग नौकरी करते ही बदल जाते हैं, लेकिन इनमें ऐसी बात नहीं थी। धूमिल गांव के रहनेवाले गांव की यथार्थता से वाकिब थे। यहाँ खाने को मक्का, जोनहरी, बेर्रा, मटर, चना किसी तरह मिलता था।

धूमिल इतने संघर्षशील व्यक्ति थे कि अपने शरीर की सुरक्षा करना भूल जाते थे। कभी बालों में कंघी लगाना या कपड़े पर इस्त्री करना। एक बार कपड़ा धुल गया एक हफ्ता तक उसपर इस्त्री नहीं चलती थी। उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। वे बहुत सोचते रहते थे। हम कभी कहते भी थे कि इस तरह सोचते रहोगे तो पागल हो जाओगे। वे कभी किसी पार्टी के पक्ष में नहीं रहे।

x-x-x

बी. एच. यू. के भूतपूर्व वाइस चांसलर
डॉ. त्रिभुवन सिंह 17-02-2003

रमाशंकर : धूमिल का व्यक्तित्व कैसा था?

त्रिभुवन सिंह : धूमिल का व्यक्तित्व ऐसा था कि वे कभी फालतू लोगों के साथ नहीं बैठा करते थे। पढ़े-लिखे साहित्यकार के बीच में रहना उनकी ललक थी। कोई कितना भी बड़ा साहित्यकार, वकील हो या अन्य कोई हो उसको ज्यादा महत्त्व नहीं देते थे। एक झटके से झाड़ देते। धूमिलजी सबको 'मास्टर साहब' ही कहते थे। चाहे वह हजारी प्रसाद द्विवेदी ही क्यों न हो। इनमें जो एक तरह का रोब था, वे यह सोचते कि साहित्य हमारे ढेंगे पर चलता है, उसका धूमिल ने जबरदस्त खंडन करते थे। वे सबको मास्टर साहब कहकर एक तरह से 'मिनीमाईज' कर देते थे। अहम को तोड़ना उनके सामाजिक व्यवहार में था और वही रचनाओं में भी है। वे जिसको एक बार पसंद कर लिया, उसके साथ उनकी बराबर बनीं रही। जिनके साथ उनकी नहीं बनी अंत तक उसे 'रिजेक्ट' करते रहे।

धूमिल में मानवता तो बहुत अद्‌भूत थी, धूमिल जैसा समाज में इतना बड़ा आदमी पल रहा है, इसका किसी को एहसास नहीं था। 'संसद से सड़क तक' काव्य संग्रह छपते ही तत्काल लोगों ने उन्हें पहचाना। इस एक मात्र पुस्तक से वे पूरी तरह साहित्य जगत में छा गए। कभी उन्होंने किसी के सामने हाथ नहीं फैलाए। आजकल लोग अपना काम बनाने के लिए मिठाई उठाई खिलाते हैं कि सबेरे पत्र-पत्रिकाओं में मेरी लेख छप जाए।

धूमिल अपनी रचनाओं के बल पर जीवनकाल में जितना जाने जा सकते थे, लोगों ने उन्हें जाना। इतना कम समय में जितना धूमिल का प्रचार हुआ शायद ही किसी का हुआ होगा। धूमिल एकदम कुंठा मुक्त व्यक्ति थे। वे साहित्य को स्वयं जीवन के लिए कोई उपयोगी नहीं माना और साहित्यकार का क्या धर्म होता है? इसके निर्वाह में संकोच न करना, किसी से भयभीत न होना यह धूमिल का व्यक्तित्व था।

x-x-x

कवि ज्ञानेंद्रपति 17-02-2003

रमाशंकर : आप अपने परिचय से मुझे अवगत कराइए।

ज्ञानेंद्रपति : मेरा नाम ज्ञानेंद्रपति है। लोग मुझे एक कवि के रूप में जानते और पहचानते हैं।

रमाशंकर: आपकी धूमिलजी से मुलाकात कब और कहाँ हुई थी?

ज्ञानेंद्रपति : धूमिल से मेरी मुलाकात उस समय हुई थी, जब दिसम्बर 1970 से बांदा में युवा कवि सम्मेलन हुआ था। इस सम्मेलन में नामवर सिंह, विजयेंद्र, नंद चतुर्वेदी आदि आलोचक एवं कवि गण मौजूद थे। सबसे ज्यादा आकर्षण का केंद्र बिंदु धूमिल ही थे। पहली बार मैंने सबसे अधिक सशक्त कवि के रूप में उन्हें वहीं देखा था। उसके बाद बनारस में उनके साथ अनेक बैठकें होती रहीं। बनारस में मेरे आने का कारण एक मात्र धूमिल ही थे। मैं तो नास्तिक आदमी हूँ। मेरे लिए काशी विश्वनाथ और संकट मौचन का मंदिर नहीं; बल्कि मेरे देवता तो ये साहित्यकार ही हैं।

रमाशंकर: धूमिलजी का युवा कवियों के प्रति कैसा रवैया हुआ करता था?

ज्ञानेंद्रपति: धूमिल युवा कवियों को बहुत अधिक महत्त्व देते थे; क्योंकि वे उनको अपना प्रतिद्वन्दी मानते थे। उनमें केवल पीठ थपथपानेवाला भाव नहीं था। वे प्रतिद्वन्दी में यह देखना चाहते थे कि उनमें कविता की समझ या परख कितनी गहरी है। कौन कितना अच्छा कवि है।

धूमिल इसकी खोज-खबर बराबर करते रहते थे। कवि की रचनाओं पर अपनी पैनी दृष्टि गड़ाए हुए थे। धूमिल अपने समय को जिन पत्रिकाओं की कविता पढ़ा करते थे, उन कविताओं के हासिए पर जो नोट्स लिखा करते थे, उन पर जो व्यंग्य कसते थे, उन सबों को उस रूप में आना चाहिए। यह बात धूमिल ने मुझे खुद बताई और दिखाई भी।

युवा कवियों पर व्यंग्य कसना एक तरह से युवोत्तर कवियों को मान देने का ढंग था। वे युवा कवियों से पंजा लड़ाने में कोई संकोच नहीं करते थे। वे कभी-कभी अपने पूर्ववर्ती कवियों से भी पंजा लड़ा बैठते थे। धूमिल का दुनिया से निपटने का यही एक अंदाज था। उन्होंने नेताओं और बुद्धिजीवियों की तरह किसी भी कवि या साहित्यकार को भी अपनी पैनी एवं आलोचनात्मक दृष्टि से नहीं छोड़ा।

रमाशंकर: धूमिल जी अपनी कविता की पंक्तियाँ कहाँ से उठाते थे?

ज्ञानेंद्रपति : धूमिल अपनी कविता की पंक्तियाँ जनता के बातचीत के बीच से उठाते थे। उसे आवश्यकतानुसार अपनी कविता में फिट कर लेते थे। धूमिल ने जो मुहावरे लिए है जनता के बीच से हैं, क्योंकि जनता ही मुहावरों का निर्माता होता है। मुहावरा कोई पंडित नहीं बनाता है।

रमाशंकर : धूमिल जी पर किस विदेशी कवि का प्रभाव ज्याद पड़ा था?

ज्ञानेंद्रपति : धूमिल पर विदेशी कवि माइकोओस्की का प्रभाव बहुत अधिक पड़ा था। वह समीक्षावादी संघर्ष से जुड़ा हुआ एक राजनैतिक कवि था।

x-x-x

धूमिल की चाची प्रभावती देवी २२-०३-२००२

रमाशंकर : मावा, कन्नन पाड़े जो तोहार पटिदार रन वह बहुत उलटी खोपड़ी के रहन का?

धूमिल की चाची : हाँ, अपने को बहुत लगावत रहन। बिन मतलब का झगड़ा सोचत रहन।

रमाशंकर : कन्नन पाण्डेय केकर लड़िका रहन?

धूमिल की चाची : रामहरक का लड़िका रहन।

रमाशंकर : मावा, हम लोगन से सुनत हैं कि धूमिल जी तोहरे बहुत करीब रहत रहन इ सही है का?

धूमिल की चाची : धूमिल हमरे इन हाथन से पैदा भड़ूल है। हम खूब लाड़-प्यार धूमिल को दिए हयन। हमरे घरवा में वही धूमिल पहले पुत्र रहेन। इही से उनका बहुत हम सब प्यार किहेनी धूमिल भी बड़ा होई के हमका खूब सम्मान देत रहन।

रमाशंकर: मावा तू इ बतावा कि धूमिल जी जब पांचवी छठवीं कक्षा में पढ़त रहलेन तब वोह बहुत क्रोधित किसिम का रहलेन का?

धूमिल की चाची : नाही, बचपन में बहुत छटपट जरूर रहलेन। लड़िकन से मिलजुलकर रहत रहन।

रमाशंकर : धूमिल जी जब बड़े होई गयेन तब उनके स्वभाव में पढ़ाई लिखाई का महत्व कैसन रहल?

धूमिल की चाची : धूमिल पाँच भाई रहलन। प्रेम से भाईन को साथ में रखकर पढ़ावै-लिखावै।

रमाशंकर : मावा इ बतावा धूमिल जी शुरु में खूब गीत उत लिखै का?

धूमिल की चाची : हाँ, भइया। सबेरे जब हम पीसैय-उसैय लागी और गीत गावैय लागी, तब बचवा का नींद टूट जायै, तो आकर कहै, मावा इ गीत गावा, इसोहर गावा हम लिखै बाटी। कभऊ-कभऊ हमन के भजन, लाचारी गावै के देत रहैन।

रमाशंकर : धूमिलजी बचपन में खूब पढ़ाई करत रहैं का? खाई-पियै का खूब कष्ट उठायै बाटेन का?

धूमिल की चाची : नहीं, तनी-मनी करै। कभऊ कहल जाई की पढ़िबा न तो खाना न मिली। जबकि खाई पियैक कौनो चिन्ता नाहीं रहैं, जो पहिनै के पाई वही पहिन लै बचवा। कौनो किसी बात क हटन धरै। कभऊ-कभऊ हाफै पैन्टवा पहिन के यू.पी. कालेज चल जाई। हम लोग कहीं पैजामा है ओके पहिन0वहिन के जावा करै। सब बच्चवन अच्छा कपड़ा पहिन के जात हैं। तब धूमिल का कहै जानल? वह कहै वह सब पागल हैं जो सज धजकर जात हैं। कभऊ उनका बरवा काटै की बात करै तो कहैं हम कौनो नाचें जात हैं। जबरन हमही तेल-फुलैल लगा देई। जूता कभऊ न पहिरै, चपल पहिरै।

रमाशंकर : हम सुनै बाटी की बचपन में धूमिल जी गांव में खूब रामलीला वगैरह करत रहै। गांव में आज की स्थिति कैसन बा?

धूमिल की चाची : धूमिल बचवा जब रहन तो बहुत अच्छा रामलीला खेलै और खेलवावै। आज 28 बरस होई गवा लेकिन वैसन कभऊ नाहीं हम लोगन के खेलत देखें। उनके जानै से ऊ परम्परा ही खतम होई गवा। हम कहत हैं उनके जैसा संसार में न कोई हौंहय न कोई हो पाई।

रमाशंकर : मावा धूमिलजी क जब मृत्यू भईल तब तू ऊ बखत कहाँ रहलू?

धूमिल की चाची : भइया ! ऊ बखत हम घरवाँ रहलै। बचवा सहारनपुर से बाजा (रेडियो)

लियाइ रहैन। बाजा कुर्सी पर बजत रहै और हम सबै भट्टा पर काम करत रहै। बजवा में मृत्यु की समाचार सुनकर हम गिरत-भहरात लगै चिल्लाई। कन्नन पाड़े उस बखत गरवा रहन। कहै लगन कि बौराई गईल हो का। तोहरे एक लड़िका दु लौरूवा हौ। थोडे ही देर में गांव के लोग बजवा सुनकर भागै-भागै चलै आएन हमरे घरवा। सब लगै रोवै पीटै।

×-×-×

हरहुआ के निवासी आचार्य पंकज धूमिल के अनुचर

२५-०५-२००३

रमाशंकर : धूमिल जी से आप का परिचय कितने वर्षों का रहा है?

आचार्य पंकज : रमाशंकर जी, इस दुनिया के बीसवीं सदी के जिस महान जन कवि के विषय में बात करने आए हैं मैं 17 साल तक उनका अनुचर, अनुज, आज्ञाकारी, आत्मसमर्पित भाव से, उनके साथ एक बालक के रूप में जुड़ा रहा हूँ। 17 साल तक मैं यह कभी नहीं जान पाया कि जिस आदमी के साथ मैं बैठता हूँ, चाय पीता हूँ, हँसता -बोलता-गप्प मारता हूँ , वह एक दिन बीसवीं सदी की कविता का महानायक होगा। मेरे पास जो भी पूँजि है, वह 17-18 साल के अनुभव के आधार पर।

मुझे वे एक बालक के रूप में देखते थे। वे कविता लिखते थे; लेकिन एहसास नहीं होने देते थे। जब कभी मंच पर लोग कविता पढ़ते थे, तो मैं उनसे पूछता था कि आपका नाम क्यों नहीं आता है इनके बीच। धूमिल अट्टाहास करके हँस देते। मेरी बात को वे जैसे नोटिस में नहीं लेते थे वही समझ लीजिए कि 'क्रांति अबोध शिशु के हाथ की जूजी है।' क्रांति के संबंध में जो भाव धूमिल की कविता में हैं, उसी तरह का भाव मेरे प्रति वह शिशुचेतना में लेते थे, हँसकर उड़ा देते थे।

रमाशंकर : धूमिल जी की कविता पर भारतीय एवं पाश्चात्य के किन-किन कवियों का प्रभाव देखा जा सकता है?

आचार्य पंकज : यह प्रश्न विचारणीय एवं महत्त्वपूर्ण है। इसका मैं एक ही वाक्य में उत्तर देता हूँ- उनपर न पाश्चात्य का प्रभाव था न भारतीय किसी कवियों का। धूमिल की कविता में उनका अपना प्रभाव है। धूमिल देशज शब्दों के साथ उठते हैं वही उनकी कविताओं में भी देखा गया है।

रमाशंकर : धूमिल किस तरह के कवि हैं?

आचार्य पंकज : हमारे यहाँ एक कहावत है- 'दस किलोमीटर पर पानी और बानी(बोली) बदल जाता है। धूमिल भाषा और बोली-दोनों के कवि हैं। धूमिल परंपरागत, शब्दानुशान, काव्यानुशासन, अक्षरानुशासन, व्यंजना-लक्षणा-अभिधानुशासन, छंदानुशासन, परिवर्धित परिसंस्कृत, परिबोधित, ''जो पराकाष्ठा कविता के पूरे के पूरे छन्दोबद्ध की साहित्यानुशासन की परिकल्पना है, उसको खंड-खंड विदीर्ण कर देते हैं। धूमिल साहित्यानुशासन को नहीं मानते। धूमिल कविता को खोलकर कहते हैं, तौलकर नहीं। धूमिल के यहाँ कोई अनुशासन नहीं है। अराजकता भी नहीं है।''

रमाशंकर : फिर कवि धूमिलजी पर अराजकता का आरोप क्यों लगाया जाता रहा है?

आचार्य पंकज : यह जो अराजकता है वह स्त्री विस्तार की अराजकता है। कामातुर व्यक्ति जो होता है उसमें न भय होता है न लज्ला। वह विस्तार की अराजकता पर हो सकती है स्त्री के साथ। नाम स्त्री का है, लेकिन पुरुष की अराजकता को संदर्भित करती है वह कविता। आक्रामक पुरुष है। इसलिए वह कहा। जहाँ अराजकता है वह उसको खोलकर कहता है। किसी तथाकथित साहित्यकार और ठेकेदार तोदियल हराम ज्यादे के लिए वह नहीं छोड़ता कि आप अराजकता खोजिए। जहाँ अराजकता की बात है वहाँ वह खोलकर कह दिया है आपको ढूँढने की जरूरत कतई नहीं है क्योंकि वहाँ ढूँढने जैसा कुछ है ही नहीं।

रमाशंकर : क्या धूमिल जी पढ़ने लिखनेवाले लेखकों के संगठन के पक्ष में ज्यादा रहते थे?

यदि हाँ तो वे किन-किन लोगों के संपर्क में अधिक रहे?

आचार्य पंकज : हाँ ! एक बार बाँदा में प्रगतिशील लेखक संघ का आयोजन केन नदी के तट पर हुआ था। बाँदा में केदारनाथ अग्रवाल एक समर्थ कवि हैं धूमिल के समकालीन थे। इस लेखक संघ में धूमिल शिरकत करते हैं। वहाँ धूमिल ने जबरदस्त अपना वक्तव्य दिया था। जिससे जाहिर होता है कि वे साहित्यकारों, रचनाकारों, लेखकों का संगठन चाहते थे। बार-बार उन लोगों को इशारा भी करते थे।

धूमिल इस बात को जान गए थे कि प्रतिबद्धता किसी राजनैतिक दल के साथ रचनाकार को छोटा कर देता है। उस खतरे को भी धूमिल समझते थे। इसलिए वे सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र काव्य संग्रह में कहते हैं कि इस अमानवीय संकट के समय में मैं कविता इसलिए करता हूँ कि भारतीय वाम पंथ के चरित्र को सुधार सकूँ। धूमिल जिस गति से चल रहे थे उनके समकालीनों में, उनके दाएँ-बाएँ चलने की किसी की हैसियत नहीं थी। धूमिल कविता का नेतृत्व कर रहे थे। जिस तरह से प्रगतिशील लेखक संघ गाइडेड बाई सी.पी.आई. और जनवादी लेखक संघ गाइडेड बाई सी.पी.एम. उस तरह धूमिल किसी दल का नेतृत्व करने के लिए या किसी के विचार का हल होने के लिए नहीं आए थे; बल्कि कविता को नई दिशा जीवन देने के लिए आए थे। लोक कल्याण के लिए आए थे।

रमाशंकर : धूमिलजी की कविता के विषय में उनके समकालीनों के विचार किस तरह के हुआ करते थे?

आचार्य पंकज: धूमिल का कुल सेंटर पॉइन्ट अस्सी चौराहा था। एक तरह से अस्सी को काशी का सिर कहते हैं। यहीं पर काशी विश्वविद्यालय के मेधावी हिंदी के छात्र, पी. एच. डी. व डी. लिट. के छात्र तथा अध्यापक गण सभी आते थे। गोरख नागानंद, शिवप्रसाद सिंह, आदि लोग यहाँ पर आते रहते थे। यहाँ साहित्यिक मंडली ही जुटती थी। धूमिल भी रहते थे। उनसे वाद-विवाद होता रहता था। 'संसद से सड़क तक' काव्य संग्रह आने के पहले ही धूमिल की कविताएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगी थी। लोग बहस करते थे कि धूमिल कितने पढ़े हैं? गोरख पाण्डेय बडा रचनाकार माने जाते थे। लेकिन धूमिल से बड़े नहीं; क्योंकि उनकी प्रतिबद्धतता और कविता नीच के हवाले कर देते थे।

उनमें कोई वैचारिक प्रतिबद्धतता नहीं। गोरख पूछते हैं आप कितने पढ़े हैं। वे स्कॉलर हो सकते हैं कवि नहीं। लोग गोरख पांडेय को ऊसका देते हैं। बी.एच.यू से पूरी टीम चली आती है। उनकी कविता को लेकर कहते - कुछ समझ में नहीं आता क्या कहते हैं, यह भाषा का तिलस्म हो सकता है या सपाटबयानी हो सकती हैं। इस तरह की बातें करके धूमिल की कविता का उपहास करते थे।

चूँकि इतनी बड़ी ताकत थी धूमिल की कविता में कि वे लोग उनके सामने कहीं भी ठहर नहीं पाए। बस सवाल कर देते थे कि धूमिल मात्र दस पास थे। वे कहते "मैं तो पी.एच.डी. कर रहा हूँ, डी.लिट कर रहा हूँ, मैं युनिवर्सिटी का प्रोफेसर हूँ।" भले ही धूमिल की कविता का अर्थ न आता हो।

कबीर कितना पढ़े थे। डिग्री की कोई आवश्यकता नहीं है प्रतिभा की आवश्यकता है। धूमिल जनमना एक कवि के रूप में, एक समाज सुधारक के रूप में, एक उद्घोषक के रूप में इस देश में पैदा हुए। इसलिए समकालीन हम किसको माने? जब कोई कहीं खड़ा ही नहीं हो पा रहा है तो समकालीन किसको कहे। समकालीन जो लोग हैं, वह ईर्ष्यालु हैं।

रमाशंकर : धूमिलजी अपनी कविताओं में स्त्री के प्रति जो कठोर एवं रूढ़ दृष्टिकोण अपनाई

है; जैसे 'जिसकी पूँछ उठाई उसको मादा पाया' इस पंक्ति को लेकर प्राय: चर्चा का विषय बन जाता है। उसके पीछे क्या कारण हो सकती है?

आचार्य पंकज : ऐसा है, आदमी दो प्रकार के होते हैं? नर और मादा। धूमिल मर्द किसिम का आदमी हैं। वह जो बात कह दिये उस पर डटे रहेंगे। जो चालू आदमी होता है, जो कहता है कुछ और करता है कुछ, उनकी दृष्टि में वह मादा आदमी है। जो संघर्ष के मैदान में पीठ दिखाकर चले जाते हैं। ऐसे व्यक्तित्व को वे मादा कहते हैं। मादा स्त्री होना क्या है? जैसे पुरुष में मादा आदमी और नर आदमी होते हैं वैसे ही स्त्री मे भी मादा स्त्री और नर स्त्री होती है। जो तलवार उठाकर झाँसी की रानी संघर्ष कर रही है। वह नर स्त्री है।

'नारी नरक की खान' है यह तुलसी ने कहा है। अपने पूर्ववर्ती कवियों की तरह उनके 'संसद से सड़क तक' काव्य संग्रह में कहीं नारी के प्रति कठोर कहा है क्या? 'सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र' काव्य संग्रह में संकलित 'घर में वापसी' शीर्षक कविता में नारी के प्रति ममता एवं सम्मान का भाव है। धूमिल ने कहा है- ''माँ की आँखें पड़ाव से पहले ही/ तीर्थ यात्रा की बस के/ दो पंचर पहिए हैं/ ××× पत्नी की आँखें आँखें नहीं/ हाथ हैं, जो मुझे थामे हुए हैं।'' इसतरह धूमिल के पूरे साहित्य में औरत के प्रति अनुराग, जितनी करुणा व्याप्त है। रूढ़ियों का उनका दूर का भी मतलब नहीं है। औरत के प्रति कठोर का भाव नहीं, एकदम सम्मान जनक भाव है।

रमाशंकर : क्या धूमिलजी पर किसी विचारधारा का प्रभाव पड़ा है? यदि हाँ तो वह किस रूप में कहाँ तक?

आचार्य पंकज : धूमिल विचारधारा के कवि नहीं हैं, अगर कहीं उनकी कविता में विचारधारा दिखाई देती है तो वह 'बीस साल बाद' कविता में। धूमिल कहते हैं- ''क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगो का नाम है, जिन्हें पहिया ढोता है।'' यहाँ यदि कोई विचारधारा दिखाई देती है तो वह सीधे राष्ट्रीय झंडे के सवाल के साथ है? धूमिल स्वयं एक विचारधारा हैं। उन पर किसी का प्रभाव नहीं है। जब गांधी के इस देश में नेहरू आते हैं शांति की, कबूतर की बात करते हैं। उनके प्रति धूमिल की श्रद्धांजलि है। यह एक मानवीय कर्तव्य बोध है। वह नेहरू के प्रति इतिश्री है। लेकिन जो सिसटम है, उस सिसटम में धूमिल स्वयं एक विचारधारा के रूप में एक धमाका करते हुए आते हैं।

धूमिल को इस लोकतांत्रिक व्यवस्था में एक ऐसी व्यवस्था की तलाश थी जिसमें लोग कुशहाल रहे प्रसन्न रहे। 'अकाल-दर्शन' शीर्षक कविता में वे कहते हैं- ''भूख कौन उपजाता है / वह इरादा जो तरह देता है/ या वह घृणा जो आँखों पर पट्टी बाँधकर/ हमें घास की सट्टी में छोड़ आती है?''

यहाँ धूमिल ने कितनी बड़ी बात कह दी है। ऐसा किसी कवि के पास है। कौन-सा इरादा तरह देता है'' यह मार्क्स और हिगेल ने लिखा है क्या? मावो तुंग ने लिखा है क्या? गांधीजी इस बात को कहते थे।

धूमिल भारतीय भावभूमि में, किसान-मजदूर, खेत-खलिहान, ढाढ़-मेढ़-मिट्टी, बैल, हँसुआ, कुदाल-फरसा, बटलोही, चिमटा, गोहरी-चिपरी, यह सब ऊबड़-खाबड़ लेकर वे खड़े होते हैं। ये किसी विचारधारा में नहीं है। धूमिल को छोड़कर अन्य कवियों में ग्रामीण भारतीय जन कहाँ हैं? भारतीय भावभूमि का जो प्रत्यक्ष बोध अगर कहीं है, तो वह धूमिल की कविता में अभिव्यक्त है। वह स्वयं एक विचार हैं, एक संवेदन है, एक क्रियात्मक हैं। वह किसी विचारधारा से प्रभावित नहीं हैं।

रमाशंकर : धूमिलजी का कविता का प्रेरणास्त्रोत आप कहाँ से लगाते हैं?
आचार्य पंकज : ऐसा है, जब मित्रों के बीच मैं रहता हूँ, उनके दु:ख-सुख का जो अवसाद है वही मेरी कविता की प्रेरणा है, उसीसे मेरी कविता फूटती है। यही बात धूमिल में भी है।
रमाशंकर : वह कौन-सी ऐसी बात है, जो धूमिलजी की कविता को प्रासंगिक बनाती है और भविष्य में कबीर की तरह बनाती रहेगी?
आचार्य शंकर : भाषा-शिल्प-मुहावरेबाजी ये ऐसे आधार हैं जो अनंत काल तक धूमिल पढ़े जायेंगे। आज आप गोवा से आए हैं। कल चीन, इग्लैंड, इटली से भी लोग आएँगे धूमिल को कविता पर शोध करने। विश्वसाहित्य जो बन चुका है, जो सात समुद्र पार जा चुका है। समालोचक सात समुद्र पार नहीं कर सकता, वह कवि होकर कर सकता है। आलोचक की एक सीमा होती है, कवि की कोई सीमा नहीं होती।

कवि जो होता है वह क्रांति दर्शी होता है। इसलिए जो क्रांतिदर्शी होगा वह परिवर्तन की बात करेगा, इसलिए वह प्रासंगिक बना रहेगा। वह अप्रासंगिक हो ही नहीं सकता। इसलिए कबीर प्रासंगिक हैं। धूमिल प्रासंगिक है। ये अनंतकाल तक प्रासंगिक रहेंगे।
रमाशंकर : धूमिलजी ने अपने काव्य में बिंब-प्रतीकों का खूब प्रयोग किया है। साथ ही मुहावरों का भी। इस प्रयोग के पीछे उनकी क्या धारणा-दृष्टि रही होगी?
आचार्य पंकज : धूमिल लोक कवि हैं। जो लोक का कवि होगा वह लोक की बात करेगा। धूमिल ने लिखा है-''न कोई प्रजा है न कोई तंत्र है/ यह आदमी के खिलाफ/आदमी का खुलासा षड्यंत्र है/'' धूमिल वहाँ नहीं हैं। वे लोक में बैठे हैं। वह जनता के कवि हैं। जो भी कविता का आदान-प्रदान है वह धूमिल और जनता के बीच से है।
रमाशंकर : धूमिलजी के काव्य में छंद और लय का क्या स्थिति है?
आचार्य पंकज : ऐसा है, हमारे यहाँ उपनिषद एक सौ से ऊपर हैं। उपनिषद का मतलब है, दस आदमी बैठकर विचार-विमर्श करना। आज 25-30 उपनिषद ही उपलब्ध हैं। वे छंद विहिन हैं। जिन लोगों को संस्कृत उपनिषद का ज्ञान नहीं है, मात्र हिंदी कविता का ज्ञान है, उन्हें लगता है कि ये छंद नियम को तोड़कर परंपरागत रूप से नई कविता या तुकांत कहिए या गद्य कविता कहिए। कविता कविता होती है न नई - न पुरानी। जगदीशवाली बात बकवास है। मैं उसको नहीं मानता। जिस तरह उपनिषद छंद परंपरा को तोड़ते हैं - संस्कृत भारतीय साहित्य में। उसी तरह से यह 'संसद से सड़क तक' काव्य-संग्रह हिंदी साहित्य का उपनिषद है। जिस तरह वहाँ छंद टूटे हैं, उसी तरह यहाँ भी छंद की कोई स्थिति नहीं है और उसकी अनिवार्यता भी नहीं रह गई है।
रमाशंकर: क्या धूमिलजी की काव्य-शैली का अनुकरण परवर्ती हिंदी कवियों के लिए उपयुक्त है?
आचार्य पंकज : हाँ ! ऐसा है कि धूमिल एक तरह से बहुत बड़े प्रेरणास्त्रोत हैं इस देश में। धूमिल के 'संसद से सड़क तक' आने के बाद मंगलेश डबराल हो, राजेश जोशी हों, अरुण कमल हो, सोम दत्त हों, उदय प्रकाश हों, ये सारे के सारे लोग जो आज हैं यह सब उन्ही की उपज हैं। धूमिल इनके प्रेरणा स्त्रोत हैं। धूमिल से इतर कुछ नहीं। कविता में जो भी ऐंठन आई है, जो भी बाते ट्रेक्क से हठकर अस्त्र-औजार के रूप में आई हैं वही धूमिल की देन है। वे कहते हैं-''हे भाई हे/ संसद जाम करने से/ बेहतर है सड़क जाम करो।'' - ऐसा निर्देश मार्ग और किसी ने दिया है क्या? समकालीन कविता धूमिल के साथ जितने भी लोग कविता में उतरे हैं उनमें सबके 'बॉस' धूमिल हैं। सबके प्रेरणास्त्रोत हैं धूमिल। आगे रहेंगे भी। उनकी कविता

पढ़-पढ़कर लोगों को कविता सृजन करने की क्षमता आएगी। मैं उम्मीद भी करता हूँ धूमिल इसतरह बराबर युवा ही रहेंगे।

रमाशंकर : धूमिलजी से आपकी आखिरी मुलाकात कब हुई थी?

आचार्य पंकज : जब मुझे पता चला कि धूमिल ब्रेनट्यूमर के कारण लखनऊ में भर्ती हैं, उस समय मैं जयप्रकाश नारायण की संपूर्ण क्रांति आंदोलन में फरार था। मैं वांटेड था। मेरी स्थानीय पुलिस विभाग से कुछ अनबन हो गई थी। मैं भागकर बांबे में आया था। मेरे घर की कुड़की होने का समाचार टेलीग्राम द्वारा मिला और मैं वापस घर आ गया। और इमरजेंसी में बंद हो गया। घर की कुड़की नहीं हुई; लेकिन मैं जेल में कैद हो गया। मैं जेल में अपनी विपत्ति झेल रहा था, उधर धूमिल अपनी विपत्ति झेल रहे थे।

धूमिल की मृत्यु का समाचार जब अखबार से पता चला तो मैं बंदी के रूप में ही उनको वहीं से श्रद्धांजलि अर्पित की। मेरे पास 'संसद से सड़क तक' पुस्तक थी। उसको मैं बराबर पढ़ता रहता।

रमाशंकर : क्या यह पुस्तक आपके जीवन में प्रेरणास्त्रोत रही है?

आचार्य पंकज : हाँ ! मेरे लिए यह पुस्तक प्रेरणा स्त्रोत रही है। इससे भी अधिक कुछ कहे तो आपका स्वागत है। इस काव्य संग्रह की कविताएँ हिंदी काव्य साहित्य का एक ऐसा सूत्र है जो सबको जोड़ने में मदद करती हैं। मैं भी इसकी मदद से ही सबसे टक्कर लेने का साहस करता हूँ।

x-x-x

बीजमंत्र के रूप चित्रकला के समीक्षक

डॉ. रामचंद्र शुक्ल १९-०२-२००३

रमाशंकर : धूमिलजी का हिंदी साहित्य में प्रवेश कब हुआ?

डॉ. रामचंद्र शुक्ल : एक जमाना था, जब बनारस में हम क्रियाशील थे। चित्रकला के क्षेत्र में तो थे ही, साहित्य के क्षेत्र में भी काफी क्रियाशील थे। यह लगभग सन् 1960 की बात है जब अस्सी पर साहित्यकारों व कलाकारों का जमघट हुआ करता था। वहीं पास में एक साधुबेला आश्रम था जहाँ हम बैठते थे। साधुबेला आश्रम के खर्चे सेही एक वासंती नामक पत्रिका निकलती थी, जिसके पहले संपादक आचार्य सीताराम चतुर्वेदी बने। बाद में मेरे एक छात्र हीरालाल चौबे उसके संपादक बने। दूसरा अड्डा केदार की चाय की दुकान और उसी के सामने हजारी चायवाले की दुकान थी। ये तीन अड्डे हम कलाकारों-साहित्यकारों का हुआ करता था। कलाकारों में महेंद्रनाथ सिंह, कमलसिंह, उमाशंकर पांडेय आदि थे। साहित्यकारों में नामवर सिंह, कथाकार शिवप्रसाद सिंह, ठाकुरप्रसाद सिंह, शंभुनाथ सिंह, केदारनाथ सिंह आदि थे। उन दिनों काफी रौनक थी साहित्यकारों तथा कलाकारों की। पूरे हिंदुस्तान का जो भी रचनाकार बनारस आता था तो वह अस्सी पर सबसे मिलने जरूर आता। वह चाहे लक्ष्मीकांत वर्मा हो या राजेंद्रप्रसाद यादव आदि। यहाँ जो भी आता वह पढ़े-लिखे विद्वान होता। गोष्ठियों में भाग लेता। साधुबेला, केदार की चाय की दुकान, तीसरा हजारी की चाय की दुकान इन तीनों अड्डों पर कालेजों और युनिवर्सिटी के साहित्यकार शाम पांच-छः बजे तक पहुँच जाया करते थे। बी. एच. यू. के बाबू हनुमान सिंह जो युनिवर्सिटी के पीछे सेतूपुर में रहते थे वह भी आया करते थे। वे थोड़ा बहुत-लिखते-पढ़ते थे।

काशी के अस्सी पर एक तुलसी पुस्तकालय है। उसमें साहित्यिक गोष्ठियाँ हुआ करती थीं। वहीं पर 'ओंमकार परिसद' नामक एक संस्था भी हुआ करती थी, कभी-कभी उसमें भी हमारी गोष्ठियाँ हुआ करती थी। एक तरह से बनारस का अस्सी साहित्यिक माहौल बन ही गया था।

जब आप धूमिल की बात करते हैं, तो वे अबतक इन सबमें प्रवेश नहीं कर पाए थे। कवितापाठ, गोष्ठी इत्यादि में इनका कोई योगदान नहीं रहा।

एक दिन हम केदार की दुकान पर चाय पी रहे थे। हनुमान सिंह भी थे। धूमिलजी एक कोने में बैठे थे। हनुमान सिंह ने मुझसे कहा - ''गुरुजी! ये सुदामा पांडेय हैं। महीनों से आप का मुँह ताकते रहते थे कि आपसे बात-चीत हो जाए। लेकिन उनकी हिम्मत नहीं पड़ती थी कि बात करें।'' उन दिनों मेरे लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करते थे। मेरी किताबें भी थीं। निश्चित ही सुदामा यह देखकर दंग हो गए थे। मैंने हनुमान सिंह से कहा- ''हनुमान जी, ऐसी कोई बात है नहीं।'' मैंने तुरन्त बुलाते हुए कहा ''आइएँ भाई, आइए- आइए।'' हनुमान सिंह उनका परिचय बताते हुए कहा- ''ये सुदामा पांडेय हैं, कविता लिखते हैं। बहुत दिनों से इनकी इच्छा थी कि आप से बात करें।'' मैने कहा- ''अरे भाई ! यहाँ जब रोज आते थे, आज महीनों बाद क्यों बात कर रहे हो, पहले ही तुम्हे बात करना चाहिए था। क्यों नहीं किया।'' मैंने कहा, 'क्या लिखते हो।'' उन्होंने कहा ''कविता लिखता हूँ।'' मैंने कहा ''कोई कविता है तो सुनाओ।'' तो उन्होंने एक गीत सुनाया था 'बासुरी जल गई' ऐसी कोई गीत सुनाई थी।

हम तो आधुनिकता के पक्षधर थे। जब उनकी कविता सुनी तो मैंने सुझाव दिया कि

तुम कविता लिखते हो वो तो ठीक है, इसतरह की कविता नहीं चलेगी। इस तरह की कविता आज खतम हो गयी है। यह पिपिहिरी बजाना, गीत गाना इसका जमाना अब नहीं रहा। अगर तुम इससे बहार नहीं निकलोगे तो इसका कोई प्रभाव पड़नेवाला नहीं है जनता पर। धूमिल ने कहा - ''अच्छा गुरुजी। तो फिर कैसा लिखना चाहिए? क्या होना चाहिए? मैंने कहा ''तुम चाहते हो कि एक ही दिन में तुम्हें झट से बदल दे; तुमको कोई दूसरा रास्ता दिखा दे ऐसा सम्भव नहीं है।'' फिर हमने समझाते हुए कहा ''तुम आते रहो, यहाँ हम लोगों के बीच बैठा करो। धीरे-धीरे सब तुमको समझ में आ जायेगा। तब से धूमिल रोज यहाँ बराबर आते रहे। चाहे-कोई हो या न हो।

रमाशंकर : आपने धूमिल जी को किस तरह एकदम गीत से हटाकर कविता की ओर मोड़ दिया?

डॉ. रामचंद्र शुक्ल : धूमिल पूछा करते थे कि कविता कैसी होनी चाहिए? मैं उनको बराबर समझाता कि यह जो गीत काव्य है, ये पुराने जमाने से चला आ रहा है। ये एक तरह से साधना-वादना का चीज है । राजा महाराज, नवाबों जमींदारों को खुश करने के लिए लोग जाकर चारण करते थे। झट से कविता बनाकर उनको सुनाया करते थे। उनकी चाटुकारी में कविता लिखी जाती थी। गीत काव्य का अब जमाना है नहीं। जो लोग मधुर गाते हैं यह कविता है या संगीत। कविता और संगीत में कोई अंतर है कि नहीं या दोनों एक ही है। तुम इन दोंनो में से या तों कविता की बात करो या तो संगीत की। संगीत गाने की चीज है गाओ। कविता कोई गाने की चीज है? वह साहित्य है। उसका अपना व्यक्तित्व है। उसका अपना रूप है। उसको गीत कह देना संगीत कह देनां यह उचित नहीं है। पहले तो राजा महाराजा के सामने नारी-सौंदर्य का वर्णन गीत के माध्यम से होता था। वह नशे में बैठा हुआ युवती के अंग रूप केवर्णन का आनंद लेता था। ये सब अब नहीं चलेगा। ये बात उनको धीरे-धीरे समझ में आई।

वह अपनी कविताएँ सुनाया करते थे। उनकी रचनाओं में वही रीतिकालीन परंपरा का प्रभाव बना था। उनको हमने सुझाव दिया कि आप अपने जमाने की बात कहें, आप पुरानी बातें छोड़ दीजिए। आप जहाँ भी-रहें वहाँ से चीज उठाइए। आपके चारों तरफ जो समस्याएँ हैं; जो वातावरण हैं उसको लीजिए। उसको सजाकर रखने की चीज नहीं है। जैसा आप इस वक्त देख रहे हैं, अनुभव कर रहे हैं। उसको वैसे ही शब्दों में सीधे-सीधे सपाट ढंग से कहने की जरूरत है। अब कविता रिझाने की चीज नहीं रही। वह चोटी करने की चीज है।

अब कविता एक अस्त्र बन गया है। यह कला एक अस्त्र बन गया है, समाज को कुरीतियों से बंधनों से मुक्त कराने के लिए ऐसे शब्दों का व्यवहार कीजिए, जो बहुत सरल हो। हर आदमी को तुरंत समझ में आए ही नहीं; बल्कि चोट करें। ऐसा न हो कि शब्दों का बवंडर सामने रखते हो। ऐसा भी न हो कि डिक्शनरी से शब्द ढूँढ़-ढूँढ़कर लाकर कविता लिख दे। आप की भाषा उस तीर के समान हो जो शरीर में लगते ही बिंध जाए। आप जो गीत लिखते हैं उनमें बनावटी शब्द ढूँढ-ढूँढकर लाते हैं। ऐसा अब नहीं होना चाहिए। आप ऐसी कविता लिखिए जो पढने वाले को तुरंत झाड़ दे। इस तरह की बहुत बातें हुई थी। यह तो हम आपको short में बता रहे हैं। यह हम उनमें जो दोष था वह बता रहे हैं।

मेरे कहने का मतलब कविता सरल भाषा में हो। बेगार का उसमें झूठे-मूठे शब्द न हो। एक-एक शब्द ऐसा हो जो मिनिंगफुल हो और जो तुरंत चोट करे। आज आदमी इतना संवेदनहीन हो चुका है। आज का जमाना है धड़-धड़ का। आज पिपिहारी वाली बात नहीं

चलेगी। धूम-धड़ाक से आवाज आनी चाहिए। आप अपनी कविता में रोजमर्रा जीवन की समस्याओं को लाइए। ऐसा वातावरण बनाइए और पुराना भूल जाइए। हमारे गुरुजी भी कहा करते थे चित्रकला में भी ऐसा होना चाहिए। चित्रकला और साहित्य में कोई खास अंतर नहीं है।

उन दिनों गोविंद उपाध्याय, शाही, शर्मा ऐसे आठ दस लोग थे, जो गोष्ठियों में अपनी कविताएँ सुनाया करते थे। धूमिल भी सुनाते थे। हम उनको प्रोत्साहित करते थे। बताते भी थे कि इसमें क्या कमी है? इसमें क्या और कैसा होना चाहिए? इस तरह उन्होंने बहुत ही जल्दी गीत लिखना बंद कर दिया। उनकी कविताओं में एक तरह से प्रौढ़ता आने लगी।

धूमिल के मस्तिष्क में मेरी कही हुई बातें ऐसी बैठी कि उनमें धीरे-धीरे बदलाव आने लगे। ऐसा नहीं है कि मैंने कविता एक-एक लाइन देखकर उनकी कविता सुधारी हो। बीचमंत्र जिसको कहते हैं वह उनके अंदर मैंने डाल दिया। जब बीज डाल दिया तो वह उठेगा ही। उसका जो रूप बना उसमें बीज के रूप में हम आते हैं।

(पास में बैठे धूमिल के बेटे रत्नशंकर पाण्डेय ने धूमिल की कविताओं की पांडुलिपि पर प्रकाश डालते हुए कहा-)

रत्नशंकर पांडेय : धूमिल की रचनाओं की पांडुलिपि देखने के बाद पता चलता है कि सन् 1962 के बाद उन्होंने कोई गीत लिखा ही नहीं। शुरू-शुरू में वे गीत लिखते थे। एक गीत की कुछ पंक्तियाँ मुझे याद है वह यों है-

"ताप के स्वास से जल गई बांसुरी
बांसुरी जल गई। ×××
पूछता है भौरा कली से फूलसे
यह अधूरा प्यार किसके लिए।

वे इस तरह की रागात्मक बोधवाली कविता खूब लिखते थे। आज हम यह महसूस कर रहे हैं कि कविता लिखने का बीजमंत्र यहीं से मिला होगा। उसके बाद उन्होंने कभी तुकबंदी की ही नहीं। जीवन बहुत कम था। सन् 1962 के पहले उन्होंने खूब गीत लिखे हैं, शायद नरकटवाली पेन से। बहुत सजा सजाकर लिखे थे। सन् 1962 के बाद ऐसी तुकबंदी कहीं नहीं देखने को मिलती। थोड़ी बहुत तुकबंदी उनकी कविता में झलकती है जरूर लेकिन तुकबंदी की दृष्टि से उन्होंने कविता नहीं लिखी, जो तुकबंदियाँ आई हैं वे अनायास आई हैं।

रमाशंकर : क्या आपके अलावा और किसी अन्य विद्वान के साथ भी धूमिलजी का उठना-बैठना था?

डॉ. रामचंद्र शुक्ल : हाँ, मेरे अलावा नामवर सिंह के साथ उनका उठना बैठना था। मेरा तो कोई पार्टी से लेना देना तो था ही नहीं, लेकिन नामवर सिंह का था। एक बार धूमिलने एक कविता सुनाई थी। मेरा काम कविता का काँट-छाँट करना था। उनकी कविता सुनते ही मैंने कहा "इसमें तो नामवरी बू (नामवर सिंह की बू) आ रही है। मैंने इसलिए ऐसा कहा क्योंकि आप एक स्वतंत्र कवि हैं। आपकी कविता में जो गहराई है, जो टेन्डेनेस है, जो बारीकी है, वह कम्यूनिष्टों के साथ जुड़े यह ठीक नहीं है। आपकी कविता में कुछ बातें आई हैं जिससे लगता है कि आप थोड़ा-सा किनारा ले रहे हैं। यह मेरे हिसाब से कुछ सही है। नामवर सिंह हमारे मित्र है, आलोचक हैं। लेकिन मैं इसको पसन्द नहीं करता। जब किसी कवि के अन्दर 'क्रिटिकल' बू आने लगे, आगे बढ़नेवाला कवि कहीं कुंठित हो जाए, जहाँ आपके तारीफ मिलने के बजाय एक पार्टी ही केवल आपकी तारीफ करने लगे। कविता जो मानवजाति के लिए है।

पार्टी को लेकर लिखना यह तो अपने को बांधना है और दूसरे से कटना है।''

यह बात हमने उनको कह तो दिया। अब उनको कितना समझ में आया वही जाने। उनको लगा होगा कि नामवर सिंह बड़े आलोचक हैं। नामवर सिंह ने उनके पीठ पर हाथ रखा होगा जरूर। यही कारण है कि नामवर सिंह का भी प्रभाव उनपर पड़ा। हमने देखा वे कुछ नए पैमाने के साथ उभरकर आ रहे हैं। हमारी तारीफ़ करना दूसरी बात है; क्योंकि हम साहित्य के क्षेत्र में नहीं थे, कला के क्षेत्र में थे। नामवर सिंह साहित्य के क्षेत्र में थे। वे लिखते बराबर थे। अपने लेख में दूसरों की कविताओं को 'कोट' करते थे। धूमिल की कविता को भी 'कोट' करते थे। तो निश्चित है उनका प्रभाव पड़ा होगा। अब आपको देखना है कि धूमिल की कविता में नामवरी प्रभाव पड़ा है या नहीं।

रमाशंकर : क्या आपको कोई ऐसी घटना याद है, जो धूमिल के व्यक्तित्व को दर्शाती हो?

डॉ. रामचंद्र शुक्ल : एक घटना यों है जो उनके व्यक्तित्व को दर्शाती है। अस्सी पर एक सिनेमाघर है, वहीं एक मिठाई की दुकान रहा करती थी। अब वह है कि नहीं मालूम नहीं। कभी-कभी हम वहाँ भी जाकर बैठते थे। एक दिन हम वहाँ बैठे थे। धूमिल भी आ गए और बैठ गए। किसी चीज को लेकर हम लोगों में बहस हो गई। वह याद नहीं। तब तक हमारे कला विभाग का एक छात्र रवींद्रनाथ मिश्र (आजकल फाइन आर्ट बी.एच.यू.की. डीन एंड हेड हैं) भी आ गए।

कहीं बीच में ही धूमिल बोल बैठे -''गुरुजी यह बात आप की बिलकुल गलत है, हम इससे सहमत नहीं है।'' इतना सुनते ही हमारा नया शिष्य झट से उठ खड़ा हो गया और बनारसी लहजे में कहा ''का कहल गुरुजी के बारे में'' वह बलिष्ठ था। ऐसा लगा कि यदि ज्यादा बहस होगी तो वह चढ़ बैठेगा। धूमिल समझदार थे। कहा ''तू जरा चुप बैठ। तू बनत है इनका चेला, आज हम कितने साल से इनका चेला हई। हमार गुरुजी की बात होंत है, तू काहें बोलत हय बीच में। तू कुछ जानल। अरे! गुरुजी से हम लोग ऐसे ही सीखे हैं। जब तक हम गुरुजी को कनसाइज नहीं करेंगे। उनकी बात की आलोचना नहीं करेंगे तो उसके आगे वो बताएँगे कैसे? हम तो उनको जान बुझकर कनसाइज करते रहते हैं। जब हम सवालेही नहीं करेंगे यह नहीं कहेंगे कि आप गलत कह रहे हैं तो उस सही को बताएँगे कैसे? समझा। हमसे ज्यादा होशियार न बन। गुरुजीके साथ हम बहुत दिन से हुई। हम जवन कुछ पाये हुई वह वोनही से मिलल बा। तू बैठ जा।'' तो वह बैठ गया बेचारा। वह समझ गया कि इन लोगों का पुराना संबंध है।

हमारा जो सीखने-सिखाने का तरीका था वह इसी तरह का। आप प्रश्न करो, हम उत्तर देंगे। हमने जो बोला उसके खिलाफ आप बोलिए, उसका उत्तर हम देंगे। कोई डरने की बात नहीं है। हमने एक बात कही आप के समझ में नहीं आई, पूछोगे नहीं तो समझोगे कैसे? वही हमारे पढ़ने-पढ़ाने का ढंग होता था। लोग लेक्चर देते हैं कविता ऐसी होनी चाहिए, कल ऐसी होनी चाहिए। पूछोगे नहीं तो हम जवाब कैसे देंगे? शुरू शुरू में धूमिल पूछते थे अमुक कवि ऐसी है वैसी है। हम उसका स्पष्टीकरण करते थे।

धूमिल में यह कला थी कि किससे कब और कैसे बात करें। जब वे समझ गए ऐसे चिपके की चिपके ही रहे। निडरता गायब हो गई। एक था कवि नागानंद उसको डॉट थे। वह यहीं आकर बैठता था। अब धूमिल में कविता की समझ आ गई थी। जब कोई कविता नागानंद सुनाता तो उसे डाँट देते थे। कहते थे कि ऐसी कोई कविता होती है? यह के आशीर्वाद से ही संभव है। वह ऐसा ज्ञान दे देगा कि आप निडर हो जाएँगे। अपने ही

चलना शुरू कर देंगे। धूमिल साफ बोलते थे। गाँव का आदमी डिप्लोमेटिक नहीं होता अर्थात कहता कुछ है और मन में कुछ और रखता है। यह डिप्लोमेटिक है। वह डिप्लोमेटिक नहीं था। अगर गुस्सा है तो वह आएगा। गाली देना है तो गाली वह देगा। हम लोग फिर भी छिपकर गाली देते हैं। वे ऐसे शब्दों का प्रयोग करते थे लोगों को ज्यादा बुरा न लगे वह गाँव से संबंधित थे उनके अन्दर निश्चल-निष्कपट भाव था। जो भी बात उसको कहनी थी वह स्पष्ट रूप से बोलते थे। वैसे ही लिखते भी थे क्योंकि वह पोलिटिक्स के प्रभाव में नहीं आये। अगर वह पोलिटिक्स में चले जाते, तो निश्चित ही उनमें परिवर्तन आ जाता।

हर कवि में ऐसा नहीं मिलता है। कवि सम्मेलनों में जाकर पैसा कमाना चाहता है यदि वे गीत लिखते होते तो शायद उनका झुकाव इस तरफ होता। वे पैसा कमाने के चक्कर मे नहीं पड़े। उन्होंने अपनी बात को बदला नहीं, जो समझ में आया, वही किया। आखिर तक करते रहे। वे किसी के दबाव में नहीं आये। उनमें स्पष्टता अधिक थी। अगर उनको लगता हमको यह पोजिशन मिल जाए, यह फायदा हो जाए, इसके साथ ऐसा बोलो-वैसा बोलो शायद बदलते भी। लेकिन जीने का समय बहुत नहीं मिला। लोग कहते हैं आज तक कोई लालबहादुर शास्त्री जैसा प्रधानमंत्री नहीं बना। कभी-कभी हम कहते हैं उनको जीने का मौका ही नहीं मिला। यदि मिला होता तो शायद आज के नेता जैसे हो जाते। कुछ ऐसा ही धूमिल पर भी चरितार्थ होता है। यदि वे जीवित होते पता नहीं वे बदल जाते या उसी रूप में रहते कहा नहीं जा सकता।

रमाशंकर : धूमिलजी की भाषा के संबंध में आपका क्या विचार है?

डॉ. रामचंद्र शुक्ल : धूमिल के गीत की भाषा अलग थी। जब वह कविता लिखने लगे। उनकी भाषा में प्रौढ़ता आई। कभी-कभी कुछ लोग यह आरोप लगाते थे कि वह कुछ अश्लील शब्द का भी उपयोग कर देते थे। तो इस पर थोड़ी बहुत चर्चा होती थी। हम तो नहीं करते थे। धूमिल जैसे कई मित्र थे जो गांव से जुड़े थे। गाली जरूर बगते थे। गाली का मतलब यह नहीं था कि वह किसी को गाली दे रहे थे। बल्कि अभिव्यक्ति का एक सहज माध्यम बन गयी थी।

धूमिल दो लाइन में ही ऐसा कह देते थे कि दूसरे से कुछ पूछने की जरुरत हीनहीं पड़ती थी। जहाँ जिसको चोट लगनी है लगे। यह गांव की भाषा थी। उसको वे गाली नहीं समझते या उसे भदेस शब्द भी नहीं सोचते हैं। उन्होंने अपने भाव को सीधे-सीधे अभिव्यक्ति दी है। (पास बैठे धूमिल के बेटे रत्नशंकर कहते हैं- वह जो बात कह देते वह लोगों को याद हो जाती है, क्योंकि उसको वह चुभ जाता है जब चुभेगा तभी तो याद रखेगा।) वह जो कुछ कहते जाबूझकर या बनावटी नहीं; बल्कि गाँव के परिवेश से जो मिला था उसी तरह से बोलता था। स्पष्ट बोलते हुए इसतरह के शब्द अपने आप आ जाते थे।

x-x-x

सहायक ग्रंथ सूची

लेखक का नाम	ग्रंथ का नाम	प्रकाशन	संस्करण वर्ष
1. अजय तिवारी	साहित्य का वर्तमान	स्वराज प्रकाशन दिल्ली	प्रथम सं. 2002
2. अर्जुन चव्हाण	राजेंद्र यादव के उपन्यास मध्यवर्गीय जीवन	राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली	प्रथम सं. 1995
3. अरविंद पांडेय	हिंदी के प्रमुख कवि रचना एवं शिल्प	अनुभव प्रकाशन कानपूर	प्रथम सं. 1989
4. अवधेश्वर अरुण	प्रतीक चिंतन के आयाम	बिहार ग्रंथ कुटीर प्रकाशन, पटना	प्रथम सं. 1981
5. अशोक वाजपेयी	फिलहाल	राजकमल प्रकाशन दिल्ली	प्रथम सं.1970
6. ओम प्रकाश अवस्थी	नयी कविता : रचना प्रक्रिया	पुस्तक संस्थान प्रकाशन, कानपुर	प्रथम सं. 1972
7. ओम प्रकाश गुप्ता	समस्थामूलक उपन्यासकार भगवती प्रसाद वाजपेयी	संस्कृति प्रकाशन अहमदाबाद	प्रथम सं. 1970
8. ओम प्रकाश ग्रेवाल	साहित्य और विचारधार	आधार प्रकाशन	प्रथम सं. 1994
9. श्रीमती ओम शुक्ल	हिन्दी उपन्यास की शिल्प विधि का विकास	अनुसंधान प्रकाशन कानपुर	प्रथम सं.
10. उमाकांत गुप्त	नयी कविता के प्रबंध काव्यशिल्प और जीवन दर्शन	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली	प्रथम सं. 1985
11. एस. एन. गणेशन	हिंदी उपन्यास साहित्य का अध्ययन	राजपाल एंड सन्स प्रकाशन दिल्ली	प्रथम सं 1961
12. एस. गम्भीर	साठोत्तर हिंदी काव्य में राजनीतिक चेतना	विद्याविहार प्रकाशन कानपुर	प्रथम सं. 1992
13. अम्बादत्त पाण्डेय	आधुनिकता और आलोचना	प्रेम प्रकाशन मंदिर दिल्ली	प्रथम सं. 1985
14. श्रीराम त्रिपाठी	धूमिल और परवर्ती जनवादी कविता	रंगद्वार प्रकाशन अहमदाबाद	द्वितीय सं.2002
15. कुंवरपाल सिंह	साहित्य और राजनीति	भाषा प्रकाशन नई दिल्ली	प्रथम सं. 1981
16. कुंवरपाल सिंह	साहित्य समीक्षा और मार्क्सवाद	पीपुल्स लिटरेसी दिल्ली	प्रथम सं. 1985
17. कर्णसिंह चौहान (सं)	साहित्य संगीत और दर्शन	पीपुल्स लिटरेसी दिल्ली	प्रथम सं. 1986
18. कर्णसिंह चौहान (अनु.)	जॉर्ज लुकाच - समकालीन यथार्थवाद	वितोशा प्रकाशन दिल्ली	प्रथम सं. 1996

19. कमलेश्वर प्रसाद	हिन्दी में लम्बी कविता-अवधारणा, स्वरूप एवं मूल्यांकन	कृष्णा नन्द शास्त्री प्रकाशन, जालन्धर	प्रथम सं. 1986
20. कामेश्वर सिंह	(सं.) समकालीन हिन्दी कविता का संघर्ष	संजय बुक सेंटर प्रकाशन, वाराणसी	प्रथम सं.1990
21. काशीनाथ अंबलगे	संतों और शिवरणों के काव्य में सामाजिक चेतना	अन्नपूर्णा प्रकाशन इलाहाबाद	प्रथम सं. 1990
22. काशीनाथ सिंह	आलोचना भी रचना है	प्रतिमान प्रकाशन इलाहाबाद	प्रथम सं. 1984
23. किरण बाला	समकालीन हिन्दी कहानी और समाजवादी चेतना	अनुभव प्रकाशन कानपुर	प्रथम सं. 1988
24. कुसुम शर्मा	साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास विविध प्रयोग	श्याम प्रकाशन जयपुर	प्रथम सं. 1990
25. केदारनाथ सिंह	आधुनिक हिंदी कविता में बिंब विधान	भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली	प्रथम सं. 1979
26. केशव देव शर्मा	आधुनिक हिन्दी उपन्यास और वर्ग-संघर्ष	राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली.	प्रथम सं. 1991
27. क्रिस्टोफर कॉडवेल (अनु. भगवान सिंह)	विभ्रम और यथार्थ	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली	प्रथम सं. 1990
28. कृष्णदत्त पालीवाल	सर्वेश्वर और उनकी कविता	लिपि प्रकाशन नई दिल्ली	प्रथम सं. 1992
29. ग. तु. अष्टेकर	कटघरे का कवि धूमिल	पंचशील प्रकाशन जयपुर	प्रथम सं. 1972
30. चंद्रकांत महादेव बांदिवडेकर	अज्ञेय की कविता : एक मूल्यांकन	सरस्वती प्रेस इलाहाबाद	प्रथम सं. 1971
31. चमनलाल गुप्त	सुदामा पाण्डेय धूमिल की कविता में यथार्थबोध	भावना प्रकाशन	प्रथम सं. 1990
32. जयशंकर प्रसाद	काव्य और कला तथा अन्य निबंध	भारतीय भंडार इलाहाबाद	तृतीय सं. 2005वि.
33. जार्ज लूकाच	स्टडी इन यूरोपियन रियलिज्म	लंदन	प्रथम सं. 1950
34. जवरीमल्ल पारख	नई कविता का वैचारिक परिप्रेक्ष्य	के. एल. पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद दिल्ली	प्रथम सं. 1991
35. जवाहर सिंह	हिंदी के आंचलिक उपन्यासों की शिल्पविधी	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली	प्रथम सं. 1986
36. जालादि विश्वमित्र	उपन्यास कला : एक विवेचन	सरस्वती मंदिर वाराणसी	प्रथम सं. 1962
37. धूमिल	संसद से सड़क तक	राजकमल प्रकाशन	चौथी आवृत्ती

		नई दिल्ली	2001
38. धूमिल	कल सुनना मुझे	युगबोध प्रकाशन वाराणसी	प्रथम सं. 1977
39. धूमिल	सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र	वाणी प्रकाशन	प्रथम सं. 1984
40. नन्दकिशोर नवल	समकालीन काव्य यात्रा	किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली	प्रथम सं. 1994
41. नन्ददुलारे वाजपेयी	आधुनिक साहित्य	भारतीय भंडार इलाहाबाद	प्रथम सं.
42. नत्थन सिंह	प्रेमचन्द मूल्यांकन और मूल्यांकन	विभूति प्रकाशन दिल्ली	प्रथम सं.1982
43. नरेन्द्र मोहन	(सं.) लम्बी कविता का रचनाविधान	मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया, नई दिल्ली.	प्रथम सं. 1977
44. नामवर सिंह	कविता के नये प्रतिमान	राजकमल प्रकाशन	द्वितीय सं. 1990
45. नामवर सिंह	वाद, विवाद, संवाद	राजकमल प्रकाशन	प्रथम सं. 1989
46. नामवर सिंह	छायावाद	राजकमल प्रकाशन	प्रथम सं. 1990
47. निर्मला जैन	(अनु) समाजवादी साहित्य विकास की समस्याएँ - दमित्री मार्कोव	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली	प्रथम सं. 1987
48. नूरजहाँ	हिन्दी कहानी में यथार्थवाद	अभिनव भारती इलाहाबाद	प्रथम सं. 1976
49. परमानंद श्रीवास्तव	समकालीन कविता का	हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ	प्रथम सं. 1988
50. प्रभाकर श्रोत्रिय	रचना एक यातना है	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली	प्रथम सं. 1985
51. प्रभाकर श्रोत्रिय	कविता की तीसरी आँख	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	
52. प्रभाकर शर्मा	नरेश मेहता का काव्य: विमर्श और मूल्यांकन	पंचशील प्रकाशन जयपुर	प्रथम सं.
53. प्रेमचन्द	कुछ विचार	वाराणसी	प्रथम सं.1939
54. प्रेमनारायण शुक्ल	हिन्दी साहित्य में विविध वाद	लोकभारती प्रकाशन-इलाहाबाद	द्वितीय सं.1970
55. बुद्धिनाथ मिश्र	यथार्थवाद और हिन्दी नवगीत शोध प्रबंध (अप्रकाशित)	काशी हिन्दू विश्व विद्यालय, वाराणसी	सन 1982
56. ब्रह्मदेव मिश्र	धूमिल और उसका काव्य-संघर्ष	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद	प्रथम सं.1987
57. भगवान दास	दर्शन का प्रयोजन	ज्ञान मण्डल प्रकाशन	प्रथम सं.1948

		काशी, वाराणसी	
58. भगीरथ दीक्षित	समीक्षालोक	समुदाय प्रकाशन बम्बई	प्रथम सं. 1964
59. मंजु अग्रवाल	धूमिल : काव्य यात्रा	ग्रन्थम प्रकाशन कानपुर	प्रथम सं. 1980
60. मंजुल उपाध्याय	समकालीन कविता और धूमिल	अनामिका प्रकाशन इलाहाबाद	प्रथम सं.1987
61. मनोज सोनकर	सत्तरोत्तरी हिन्दी कविता संवेदना, शिल्प और कवि	संस्थान प्रकाशन नई दिल्ली	प्रथम सं.1994
62. मीनाक्षी व्यास	कवि सर्वेश्वर - सृजन के नए आयाम	लिपि प्रकाशन नई दिल्ली	प्रथम सं. 1994
63. मैनेजर पांडेय	शब्द और कर्म	धरती प्रकाशन बीकानेर	प्रथम सं. 1981
64. मोहन अवस्थी	आधुनिक हिन्दी काव्य-शिल्प	हिंदी परिषद प्रकाशन इलाहाबाद	प्रथम सं.
65. मृदुला गुप्ता	बच्चन के काव्य में बिम्ब-योजना	शब्द और शब्द प्रकाशन	प्रथम सं.
66. रतनलाल सुराना	(सं.) वाद और सिद्धान्त	मित्र परिषद प्रकाशन, कलकत्ता	प्रथम सं.1982
67. रवीन्द्र कुमार जैन	उपन्यास : सिद्धान्त और संरचना	नेशनल पब्लिशिंग हाउस- दिल्ली	प्रथम सं.1972
68. रवीन्द्र नाथ श्रीवास्तव	संरचनात्मक शैली विज्ञान	आलेख प्रकाशन दिल्ली	प्रथम सं.1979
69. राकेश कुमार	जॉर्ज लुकाच का यथार्थ दर्शन	शुभदा प्रकाशन दिल्ली	प्रथम सं. 1991
70. राकेश कुमार	धूमिल की काव्य चेतना: विविध आयाम	ज्योति प्रकाशन पटियाला	प्रथम सं.1986
71. राजकुमार सैनी	यथार्थवाद और सौन्दर्य शास्त्र	राजधानी प्रकाशन नई दिल्ली	प्रथम सं.1988
72. राजनाथ शर्मा	साहित्यिक निबंध	विनोद पुस्तक मंदिर आगरा	उन्नीसवाँ सं. 1982
73. राजेश्वर गुरु	(सं.) गोदान	राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली	द्वितीय सं. 1989
74. राजेश्वर सक्सेना	इतिहास विचारधारा और साहित्य	कोर्णाक प्रकाशन दिल्ली	प्रथम सं. 1983
75. रामलखन शुक्ल	हिन्दी उपन्यास कला	सन्ममार्ग प्रकाशन दिल्ली	प्रथम सं.1972

76. राहुल	विपक्ष का कवि : धूमिल	नीरज बुक सेंटर दिल्ली	प्रथम सं.1992
77. राहुल सांकृत्यायन	साम्यवाद ही क्यों?	युगान्तर प्रकाशन पटना	प्रथम सं.1935
78. रोहिताश्व	नई कविता सम्प्रेषण की समस्या	प्रभा प्रकाशन इलाहाबाद	प्रथम सं.1985
79. रोहिताश्व	समकालीन कविता : मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में	प्रभा प्रकाशन इलाहाबाद	प्रथम सं.1986
80. लक्ष्मीकांत वर्मा	नये प्रतिमान पुराने निकष	भारतीय ज्ञानपीठ	प्रथम सं.
81. विजय कुमार	साठोत्तरी हिन्दी कविता : परिवर्तन दिशाएं	संस्थान प्रकाशन नई दिल्ली	प्रथम सं.1986
82. विजय द्विवेदी	नई कविता स्त्रोत और सिद्धान्त	प्रगति प्रकाशन आगरा	प्रथम सं.1978
83. विजयशंकर मल्ल	हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद	सरस्वती मंदिर, वाराणसी	द्वितीय सं. 1950
84. विद्यानिवास मिश्र	रीतिविज्ञान	राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली	प्रथम सं. 1973
85. विद्यानिवास मिश्र	साहित्य का सौंदर्य शास्त्र	हरियाणा साहित्य अकादमी चंडीगढ	प्रथम सं. 1997
86. विमला सिंह	हिन्दी के जनवादी उपन्यास	श्री प्रकाशन इलाहाबाद	प्रथम सं.1988
87. विश्वंभरनाथ उपाध्याय	समकालीन कविता की भूमिका	दि मैकमिलन कं. ऑफ इंडिया लि.	प्रथम सं. 1976
88. विश्वनाथ प्रसाद	समकालीन हिंदी कविता	राजकमल प्रकाशन	प्रथम सं. 1982
89. वीरेन्द्र कुमार	हिन्दी उपन्यासों में मार्क्सवादी चेतना	संजय प्रकाशन दिल्ली	प्रथम सं.1994
90. डॉ. वीरेन्द्र सिंह	मुक्तिबोध- काव्यबोध का नया परिप्रेक्ष्य	पंचशील प्रकाशन जयपुर	प्रथम सं.1978
91. शांति स्वरूप गुप्त	पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त	अशोक प्रकाशन दिल्ली	नवीन सं.2000
92. शिवकुमार मिश्र	मार्क्सवादी साहित्य चिंतन इतिहास तथा सिद्धांत	मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल	प्रथम सं. 1973
93. शिवकुमार मिश्र	यथार्थवाद	दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया, दिल्ली	प्रथम सं.1975
94. शिवपाल सिंह	पंत का काव्य-शिल्प	साहित्य रत्नालय कानपुर	प्रथम सं.1987
95. शुकदेव सिंह	(सं.) धूमिल की कविताएँ	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी	द्वितीय सं.2003

96. शेरजंग गर्ग	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में व्यंग्य	साहित्यभारती प्रकाशन, दिल्ली	प्रथम सं.1973
97. श्याम बिहारी राय	शुक्लोत्तर काव्य-चिंतन पाश्चात्य परिप्रेक्ष्य	युनाइटिड बुकहाऊस, दिल्ली	प्रथम सं.1973
98. सत्यकाम	आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचन्द	राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली	प्रथम सं.1994
99. सत्यपाल चुघ	प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों का शिल्प विधान		प्रथम सं.1968
100. सत्येन्द्र	(सं.) प्रेमचन्द	राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली	तीसरा सं.1989
101. समीक्षा ठाकुर (सं)	कहना न होगा	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली	प्रथम संस्करण 1994
102. सर्वजीतराय	हिन्दी उपन्यास साहित्य में आदर्शवाद	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद	प्रथम सं.1969
103. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	जंगल का दर्द	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली	प्रथम सं.1976
104. सुनंदा पालकर	समाजवादी उपन्यासकार भैरव प्रसाद गुप्त	विकास प्रकाशन भातपुर	प्रथम सं.1997
105. सुरेन्द्र दुबे	दिनकर की काव्य-भाषा का संरचनात्मक अध्ययन	शब्द और शब्द प्रकाशन, दिल्ली	प्रथम सं.1986
106. सुरेन्द्र बाबू	भूषण के काव्य में अभिव्यक्ति विधान	अरविन्द विवेक प्रकाशन, आगरा	प्रथम सं.1986
107. सुरेश सिनहा	उपन्यास शिल्प और प्रकृतियाँ	रामा प्रकाशन लखनऊ	प्रथम सं.1965
108. सरोज मार्कंडेय	निराला साहित्य में युगीन समस्याएँ	विद्याप्रकाशन, कानपुर	प्रथम सं.1989
109. त्रिभुवन सिंह	हिन्दी उपन्यास एवं यथार्थवाद	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी	प्रथम सं.1955

पत्र-पत्रिकाएँ

1. आलोचना, जुलाई 1953 संपादक धर्मवीर भारती
आलोचना, अप्रैल 1956 संपादक नंददुलारे वाजपेयी
आलोचना, अक्तूबर 1963 संपादक शिवदानसिंह चौहान
आलोचना, जुलाई- सितंबर 1971 संपादक नामवर सिंह
आलोचना, अक्तूबर-दिसंबर 1971 संपादक नामवर सिंह
आलोचना, जनवरी-मार्च 1974 संपादक नामवर सिंह
आलोचना, जुलाई सितंबर1974 संपादक नामवर सिंह
आलोचना, अप्रैल-जून 1975 संपादक नामवर सिंह
आलोचना, जुलाई-सितंबर 1987 संपादक नामवर सिंह
आलोचना, अगस्त-सितंबर 1988 संपादक नामवर सिंह
आलोचना अंक 89 अप्रैल-जून 1989 संपादक नामवर सिंह
आलोचना, सहस्त्राब्दी अप्रैल 2002 संपादक नामवर सिंह
2. आगाह - अंक 3,4 वर्ष 2
3. आजकल, अंक 11 मार्च 1980
4. आलोक - अंक 19 जून 1978
5. कल्पना, अगस्त 1967
कल्पना सितंबर 1969
6. काशी प्रतिमान 1997
7. कुटज 8 अगस्त 1963
8. जनसत्ता (दैनिक समाचार पत्र-दिल्ली) 09-11-1986
9. दस्तावेज - 10 जनवरी 1981
10. परिक्षेत्र वर्ष-1 संयुक्तांक 2,3,4 अगस्त 81- जनवरी 82
11. पहल जनवरी-जून 1996
12. पूर्वग्रह अंक 7 मार्च-अप्रैल 1975
पूर्वग्रह संयुक्तांक 51-52, जुलाई-अक्तूबर 1982
13. प्रगतिशील आकल्प- समकालीन कविता 2002 सं. शोभनाथ यादव
14. प्रस्ताव 6 मार्च 1984
15. भारतवाणी, दिसंबर 2002
16. मधुमती, जुलाई 1989
17. संभव, जनवरी-सितंबर 1993

18. समकालीन साहित्य अंक3 दिसंबर 1990
19. समालोचक, फरवरी 1959, रामविलास शर्मा
20. साकी 15 जून 1960
21 सारिका अंक-1 जनवरी 1980
सारिका अंक 9 सितंबर 1978
22. साहित्य सेतु सागर, फरवरी-मार्च 1998
23. वर्तमान साहित्य अगस्त 1992